श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -5



देशनाकार

श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित ''सारसमुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-5)

[टीकात्मक प्रवचन श्लोक 220 से 259 तक]

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनिराज

प्रकाशक

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ मूलकृति – श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित 'सार-समुच्चय'

❖ प्रस्तुत कृति – **''सद्-देशना'' (भाग-5)**
(वर्ष 2012, आगरा चातुर्मास में 'सारसमुच्चय' पर किये गये टीकात्मक प्रवचन)

❖ देशनाकार – **श्रमणाचार्य विशुद्धसागर मुनिराज**

❖ संकलन – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादन – पंडित शिवचरण लाल जैन, मैनपुरी

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना

❖ आवृत्ति – प्रथम, वर्ष 2016, 2200 प्रतियाँ

❖ प्रकाशक – श्रमणसंस्कृति सेवासमिति, इंदौर

❖ पुण्यार्जक –
- श्री ऋषभ कुमार जी 'शाहगढ़', भोपाल
- श्री अनिल बाकलीवाल, अनिल बुक डिपो, भिलाई
- श्री आजाद कुमार रवि देवी जैन, इंदौर

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- श्री महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ न्यौछावर – रु. 200/- (पुनर्प्रकाशनार्थ)

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
	सम्पादकीय	V-IX
	संदर्भ सूची	X
	ध्यातव्य / निवेदन	XI
	प्रारम्भिक मंगलाचरण	XII
	ग्रंथ का मुख्य मंगलाचरण	XII
220-222	मानवजन्म निष्फल है	1
223	सम्यक् तप	15
224	धन्य जीवन	15
225	जीवन की सफलता	26
226	आर्त्त-रौद्र का त्याग करो	36
227	आत्महित की साधना	47
228	परमपद मोक्ष प्राप्ति	60
229	पण्डित/विद्वान् कौन?	72
230	परिग्रह के दुष्परिणाम	82
231	शरीर अशरण, अनित्य है	87
232	परिग्रह ही दु:ख की परम्परा है	100
233	शरीर का ममत्व ही दु:ख की परम्परा है	113
234	मोक्ष का बीज	128
235	परमोत्कृष्ट पद की प्राप्ति	141
236	अनर्थों का मूल 'धन'	141
237	भोगी की दशा	155

238	धन परलोक में साथ नहीं जाता	162
239	सन्तोष की महिमा	180
240	सन्तोष ही सार-रत्न है	195
241	धन-संचय में सुख नहीं	211
242	सन्तोष में प्रीति करने का उपदेश	228
243	सन्तोष धारण करो	243
244	सन्तोष ही श्रेष्ठ है	255
245	तृष्णा जलाती है	264
246	मानसिक दु:खों का नाशक है सन्तोष	273
247	निर्वाणसुख का कारण है सन्तोष	285
248	साधु क्या धारण करते हैं ?	296
249	ध्यानस्थ प्राणी के विचार	308
250	रागादि भाव को छोड़ने का आदेश	320
251	चिन्ता करना निरर्थक है	320
252	कर्मबन्ध का कारण	342
253	स्वहित से पराङ्मुख	342
254	कर्मबन्ध के कारण	359
255	महाफल देने वाला योग	371
256	यज्ञ की महिमा	378
257	सच्ची-प्रज्ञा	389
258	सेवन करने योग्य प्रज्ञा	397
259	सेवनीय दया अंगना	414

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्त्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासननायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतलप्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवतः एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवनपरिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथरचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप् छन्दों में,

संस्कृत भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचना 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधनरूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाशन होचुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषावचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935) सूरत व नरियाँ वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह

(संभवतः मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी का भाषाटीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य है -

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है -

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥ 325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥ 326/सा.स. ॥

बालस्वभाव वाले कुलभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टप छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुतः यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघनायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध्यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व श्रावक सभी के लिए परम रसायन का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र

चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पचासों कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी 'देशना' की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।''

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्त:करण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विरागसागर जी से बालब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैनशासनरूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद्-देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद्-देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त शीर्षकों को भी लिया गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन-वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञानभावनापूर्वक तप करणीय है, आत्मचिकित्सा की प्रेरणा, संसारदु:खनाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद्-देशना की भाषाशैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले, पदयात्री-करपात्री, पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से नि:सृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्यश्री की उभय लोकहित करुणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जना: धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिता:।
दुर्लभा: हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षव: ॥

वृथा ही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करुणारस पूरित हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्यश्री परोपकार की मूर्ति हैं।

जिनमें स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्त गुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोकभाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्त्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबता नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

- शरीर में कोई प्राण है, बल है, शक्ति है, ताकत है, वह वीर्य है, वैसे ही धर्म-क्रियाओं में कोई प्राण है, उसका नाम भावों की विशुद्धि है। (पृ.3)
- पर को छोड़ना कठिन नहीं है, निज में निज को जोड़ना कठिन है। (पृ.5)
- गूँगे-बहरे वे ही होते हैं जो जिनालय में पर की निन्दा, आलोचनादि बाहर की बातें सुनते हैं, करते हैं। (पृ.69)
- वस्त्र के जीर्ण हो जाने पर देह जीर्ण नहीं होती है। ऐसे ही देह के जीर्ण हो जाने पर आत्मा जीर्ण नहीं होती है। (पृ.120)
- आयुर्वेद की दृष्टि से कथन है कि जिसका कफ और पित्त का साम्य है, वे पुरुष समाज में, देश में, राष्ट्र में शासन अच्छे से चला पायेंगे। (पृ.178)
- कोई भी काम करो, पहले तैयारी करो। बिना तैयारी के काम करोगे तो बिफल हो जाओगे। (पृ.250)
- नगर-डगर बदलने से कुछ नहीं होता है अपनी परिणति बदलो, भाव बदलो। उससे भगवान् बनोगे। गाँव बदलने से कुछ नहीं होगा। (पृ.292)
- भूमि और धन के पीछे कषाय नहीं करना। भवन तो पुनः मिल जायेंगे, भूमि मिल जायेगी, परन्तु भावों की विशुद्धि कहीं मिलनेवाली नहीं है। (पृ.330)
- कषाय धर्म न थी, न हुई, न होगी। कषाय तो पाप ही है। अज्ञानी जीवों ने धर्म के नाम पर कषाय करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी भूल जीवन में कभी मत करना। कषाय कभी धर्म होती ही नहीं। (पृ.375)

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत-रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकस्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती हैं इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च परमपूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज को शतशः नमन। उनके मार्गप्रभावना एवं प्रवचनवात्सल्य से ही यह कार्य जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा। समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़नेवाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार। **श्री वाय. के. जैन, श्री मनीष मोनाजी इंदौर एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।**

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द का अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर, जनताजनार्दन को सुख-शान्ति का सन्देश देकर, जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

संदर्भ ग्रंथ सूची

संक्षेप	ग्रंथ नाम	ग्रंथकर्ता
सा.स.	सारसमुच्चय	आचार्यश्री कुलभद्र स्वामी
स.भ.	समाधि भक्ति	आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी
प.मु.सू.	परीक्षा मुखसूत्र	आचार्यश्री माणिक्यनंदी स्वामी
र.श्रा.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार	आचार्यश्री समन्तभद्र स्वामी
त.सू.	तत्त्वार्थसूत्र	आचार्यश्री उमा स्वामी
इष.	इष्टोपदेश	आचार्यश्री पूज्यपाद स्वामी
त.सा.	तत्त्वसार	आचार्यश्री देवसेन स्वामी
ज्ञाना.	ज्ञानाङ्कुश	आचार्यश्री योगीन्द्रदेव स्वामी
पु.सि.	पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय	आचार्यश्री अमृतचंद्र स्वामी
मूला.	मूलाचार	आचार्यश्री वट्टकेर स्वामी
स.सा.	समयसार	आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी
नि.सा.	नियमसार	आचार्यश्री कुन्दकुन्द स्वामी
आ.शा.	आत्मानुशासन	आचार्यश्री गुणभद्र स्वामी
छ.ढा.	छहढाला	पण्डितप्रवर दौलतराम जी

ध्यातव्य

एक गूढ़वादी के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह बड़ा विद्वान् हो और न ही वर्षों तक व्याकरण और न्याय में सिर खपाकर उसमें सुयोग्य बनने का ही प्रयत्न करता है, किन्तु मानव-समाज को दु:खी देख आत्म-साक्षात्कार का अनुभव ही उसे उपदेश देने के लिए प्रेरित करता है और व्याकरण आदि के नियमों पर विशेष विचार किये बिना जन-सामान्य के सामने वह अपने अनुभव रखता है। अत: उच्चकोटि की रचनाओं में प्रयुक्त की जाने वाली भाषा को छोड़कर समय की प्रचलित भाषा का अपनाना ही महत्त्व रखता है। अध्यात्म में भाषा नहीं, भाव महत्वपूर्ण होते हैं। भाषा का बोध विद्वत्ता नहीं, विषय का बोध विद्वत्ता है।

निवेदन

इस ग्रन्थ में प्रमादवश व अज्ञानतावश टंकण, मुद्रण, शब्द संयोजन, शब्द संशोधन, शब्द विन्यास में रही त्रुटियों के लिए सुधी पाठक-विद्वत्जन से क्षमायाचना करता हूँ कि वे मुझ अल्पज्ञ को क्षमा करें और उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे त्रुटियों का यथास्थान संशोधन करें तथा उन संशोधनों/त्रुटियों से मुझे भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उन संशोधनों को समाहित किया जा सके। माँ जिनवाणी की सेवा में मेरा यह शिशुवत् प्रयास है, अत: त्रुटियों से अवगत कराने वाले सुधी पाठकों का मैं कृतज्ञ होऊँगा।

जिनेन्द्र कुमार जैन
ए-60, पद्मनाभ नगर, भोपाल 462023
दूरभाष-2759084
चलित-8989405479

प्रारम्भिक मंगलाचरण

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः॥

अविरल शब्दघनौघ प्रक्षालितसकलभूतल कलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्॥

अज्ञान तिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री "सार समुच्चय" नामधेयं अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्रीसर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्त्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री कुलभद्राचार्यदेव विरचितम्, तस्य भाषा टीका आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचिता, एषः 'सद्देशना' नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया श्रृण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमोगणी, मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोस्तु मङ्गलं॥
सर्वमङ्गल मङ्गल्यं सर्वकल्याणकारकं, प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्॥

ग्रन्थ का मुख्य मंगलाचरण

देवदेवं जिनं नत्वा, भावोद्भव विनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः॥ (1/सा.स.)

"मानवजन्म निष्फल है"

समः शत्रौ च मित्रे च, समो मानापमानयोः
लाभालाभे समो नित्यं, लोष्ठकाञ्चनयोस्तथा॥ सा. स. 220॥

सम्यक्त्वभावनाशुद्धं, ज्ञानसेवापरायणः।
चारित्राचरणासक्तमक्षीणसुखकाङ्क्षिणम्॥ सा. स. 221॥

ईदृशं श्रमणं दृष्ट्वा, यो न मन्यते दुष्टधीः।
नृजन्म निष्फलं सारं, संहारयति सर्वथा॥ सा. स. 222॥

अन्वयार्थ-शत्रौ च मित्रे समः = जो महात्मा-साधु शत्रु में और मित्र में समानभाव रखते हैं, **च मानापमानयोः समः** = और मान और अपमान में भी समभाव रखते हैं, **लाभालाभेसमः** = लाभ और हानि में समता रखते हैं, **तथा नित्यं लोष्ठ काञ्चनयोः समः** = उसी तरह जो सदा कंकड़ और सुवर्ण में समभाव यानि एकसा भाव रखते हैं, **सम्यक्त्व-भावनाशुद्धं** = जिनकी भावना सम्यग्दर्शन के कारण शुद्ध रहती है और, **ज्ञानसेवा परायणः** = जो तत्त्वज्ञान की सेवा में तत्पर रहते हैं, **चारित्राचरणासक्तं** = जो सम्यक्चारित्र के आचरणों में आसक्त हैं, **अक्षीणसुख काङ्क्षिणम्** = अविनाशी आत्मिकसुख की ही जिनको इच्छा है, **ईदृशं श्रमणं दृष्ट्वा** = ऐसे सच्चे निर्ग्रंथ श्रमण (साधु) को देखकर, **यः दुष्टधीः** = जो दुष्टबुद्धि मानव **न मन्यते** = भक्ति नहीं करता है उसका **नृजन्मं निष्फलं** = मानवजन्म निरर्थक होता है।, **सारं सर्वथा संहारयति** = इस जन्म से जो सार (फल) प्राप्त करना था वह उसको बिल्कुल नष्ट कर डालता है।

भावार्थ—जो महात्मा शत्रु और मित्र में, मान और अपमान में, लाभ और अलाभ में, लोष्ठ (पत्थर) और सुवर्ण में सदा समभाव रखते हैं, जिनकी भावना सम्यग्दर्शन से शुद्ध है, जो निरन्तर ज्ञानसेवा में परायण हैं, जो सम्यक्चारित्र के आचरणों में लीन हैं और अविनाशी आत्मीयसुख के इच्छुक हैं, ऐसे निर्ग्रन्थ साधु को देखकर जो दुष्टबुद्धि मानव उनकी भक्ति/सत्कार नहीं करता है, उसका मानवजीवन निरर्थक होता है। वह मानवजीवन के सार को सर्वथा नष्ट कर देता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य कुलभद्र स्वामी सारसमुच्चय ग्रन्थ में साधु-संगत का उपदेश प्रदान कर रहे हैं। जो मानवजन्म प्राप्त करके साधुओं की सेवा नहीं करते, उनका मानवजन्म निष्फल है।

मुमुक्षुओ! मध्यस्थ भाव बहुत बड़ी साधना है। जहाँ राग भी उत्पन्न न हो, द्वेष भी उत्पन्न न हो, बहुत बड़ी साधना है। इस मध्यस्थ भाव की चरम सीमा ही चारित्र है। संयम का पर्यायवाची नाम है मध्यस्थ भाव।

सुख में और दु:ख में साम्यदृष्टि है, वही मध्यस्थ भाव है। सुख भी कर्माश्रित है, दु:ख भी कर्माश्रित है। मैं कर्म नहीं हूँ, तो मैं दु:ख कहाँ हूँ, मैं सुख कहाँ हूँ ? जिसका सुख और दु:ख में साम्यभाव है, उसका नाम साधु है। साधु की और कोई परिभाषा नहीं है। व्याख्या साधुचर्या की है, साधुभेष की है, पर साधुस्वभाव की व्याख्या मात्र इतनी है कि जो सुख और दु:ख में साम्यभाव में है, उसका नाम साधु है।

जब तक आप शरीर से साधु नहीं बन पाये, कम-से-कम आज से इस बात का अभ्यास प्रारम्भ करो कि सुख और दु:ख में साम्यभाव हो। जब तक तुमको सुख में दु:ख में भेद दिखता है, तबतक साधुभाव नहीं है। जब तुम्हारा सुख में और दु:ख में भेद समाप्त हो जायेगा, उस दिन समझना कि मैं साधु बन चुका। दीक्षा लिये कितने ही दिन निकल जायें, प्रतिक्षण/प्रतिपल अभ्यास रहना चाहिये। दीक्षा लेने के उपरान्त भी जब तक साम्यभाव नहीं आ रहा है, तब तक व्रतों के पालक साधु हैं, संयम के पालक साधु हैं, अभ्यास जारी है। निर्वाण प्रवृत्ति में नहीं होगा, निर्वाण निवृत्ति में होगा। निवृत्ति सुख-दु:ख में साम्यभाव है। जब तक प्रवृत्ति है, तब तक साम्यभाव की सिद्धि की साधना है, ध्यान रखना, मोक्ष की साधना नहीं है। जो भी मुनिचर्या का पालन चल रहा है, वह साम्यभाव की सिद्धि के लिये साधना चल रही है। जो साम्यभाव है, वह निर्वाण की सिद्धि के लिये है। आप कुए से पानी भर कर लाये, द्रव्य बनायी, श्री जी का अभिषेक-पूजन किया है, ये सब प्रवृत्ति थी। इस प्रवृत्ति से लोक में धर्मात्मा नजर आ रहे थे। इस प्रवृत्ति

से हमारे जैनत्व की सिद्धि हो रही थी, जैनधर्म की प्रभावना हो रही थी, आपकी इस प्रवृत्ति से व्यवहार धर्म परिपूर्ण पल रहा था, परन्तु तेरा धर्म तो उतना ही होगा जितना उस क्षण उस क्रिया में तेरा साम्यभाव था। आह्लाद भाव था, उतना तेरा धर्म था। आह्लाद नहीं है, 'अब क्या करूँ? महाराज जी ने नियम दिया सो निर्वाह तो करना ही है।' यदि ऐसा भाव आ रहा है, तो तेरा कल्याण कुछ नहीं हो रहा है, परन्तु हमारा व्यवहार धर्म चल रहा है। ज्ञानी के मन में भाव आ गया कि मैं समाज का मुखिया, मैं सौधर्म इन्द्र हूँ। इस दृष्टि से मैं अभिषेक कर रहा हूँ तो यह इसका मान का सम्मान है। मेरी पर्याय धन्य हुई कि लोग हाथ में छुरी लिये किसी रोड़ पर बैठे होंगे और आज मेरे हाथ से अरहन्त के शीश पर अभिषेक हो रहा है। धन्य हो मेरी पर्याय, धन्य हो मेरे परिणाम। ऐसी परिणति चल रही है, उतना धर्म है इसके पास। फल में छिलके भी होते हैं, दल भी होता है, रस तो बहुत कम होता है। उपादेयभूत रस है और रस अत्यन्त न्यून होता है। रस में भी सत होता है। सर्वशक्तिमान कोई वस्तु है वह है वीर्य, जैसे आपके शरीर में रस है। भोजन किया, पहले रस बना। रस से रक्त, माँस, मज्जा, अस्थि, ओज बने। ओज के बाद कोई अर्घवान् कीमती द्रव्य तेरे शरीर में है, उसका नाम है शुक्र यानि वीर्य। वह है सर्वशक्तिमान द्रव्य। कितना भोजन किया, तब कहीं जरा-सा शुक्र निर्मित हुआ। सन्तान की उत्पत्ति उसी शुक्र से होगी और धर्म की लीनता भी उसी शुक्र (वीर्य) से होगी। यदि उसका रक्षण नहीं किया, तो तेरा सारा भोजन व्यर्थ गया। व्यवहार से कह रहा हूँ। **जैसे शरीर में कोई प्राण है, बल है, शक्ति है, ताकत है, वह वीर्य है; वैसे ही धर्म की क्रियाओं में कोई प्राण है, उसका नाम भावों की विशुद्धि है।** यदि विशुद्धि का अभाव हो गया, तो तेरी सारी प्रक्रिया यों-ही चली गई। कोटि-कोटि वर्ष की साधना एक क्षण के क्रोध में विलीन हो गई। यह बहुत समता का मार्ग है। जयपुर में प्रतिमायें गढ़ी जाती हैं। जब पत्थर बड़ा होता है, तब शिल्पकार इतना ध्यान नहीं देता, ठोकता रहता है क्योंकि उसको तो व्यर्थ का पाषाण अलग करना है। जब धीरे-धीरे आकृति बनना प्रारम्भ हो जाती है तो जैसे ही चेहरे पर आते हैं उसका हाथ और छैनी सम्हल जाते हैं। विश्व में जितनी प्रतिमायें शिल्पकार बनाता है, उसमें उसको ज्यादा रूप रंग देने पड़ते हैं,

फिर भी कीमत कम मिलती है। देवी-देवताओं की प्रतिमाओं में हाथ भुजायें आदि अनेक-अनेक रूप देने पड़ते हैं, फिर भी उनकी कीमत कम मिलती है। अरहन्त की प्रतिमा में कोई रूप नहीं दिये जाते हैं, तब भी कीमत ज्यादा मिलती है। किसी ने शिल्पकार से प्रश्न कर दिया, भाई! हमारी अरहन्त की प्रतिमा तो सामान्य सहज होती है, उसकी कीमत आप अधिक लेते हो, अन्य प्रतिमाओं में आपको ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है पैसे भी कम मिलते हैं, ऐसा क्यों? भैया! आप आँखों का विषय बोल रहे हो, जिसमें मैं अनेक रंग भरता हूँ, अनेक भुजायें बनाता हूँ। यदि कुछ आड़ा-तिरछा हो भी गया तो उसमें मैं एक नया रूप दिखा दूँगा। कहीं क्रेक भी आ गया तो रंग भर दूँगा। मेरी पूरी कीमत में बिकेगी। परन्तु ध्यान दो, तेरे मन में कुछ भाव आ रहे हैं। तू तो कपड़े पहने बैठा हुआ है, तुझे भरी सभा में खड़ा कर दिया जाय तो भीतर कौन देख रहा है कि तेरे शरीर के अङ्गों में क्या हो रहा है? भीतर कौन देख रहा है? क्योंकि तू कपड़ा पहने हुये है। कपड़े उतारकर खड़ा किया जाय, तब खोटे भाव करके दिखाओ, सारे जगत् को पता चल जायेगा कि तुम क्या हो? सरागता को कहीं भी छिपाया जा सकता है, वीतरागता को छिपाने कहाँ जाओगे? सरागता को बनाना सरल है, वीतरागता को प्रकट कराना बहुत कठिन है। शिल्पकार कह रहा है कि नाना भेषों को बनाना सरल है, लेकिन जब मैं अरहन्त की प्रतिमा बनाता हूँ तो हाव-भाव नहीं भरे जाते हैं। जगत् की अन्य प्रतिमाओं में कहीं हाव भरे जाते हैं, कहीं भाव भरे जाते हैं। अरहन्त की प्रतिमाओं में हाव-भाव निकाल करके वीतरागता भरी जाती है। जब वीतरागता की मुद्रा बनाता हूँ, तब मेरे भावों में वीतराग रुचि परिणत होती है, तब कहीं आकार दे पाता हूँ। अरहन्त की प्रतिमा मुस्कराती नहीं है। यदि स्वप्न में भी मुस्कराती प्रतिमा दिख जाये, तो आपको शान्तिकर्म करना पड़ेगा। अशुभ है, अज्ञानी शुभ समझ लेते हैं। **दिगम्बर मुनि या अरहन्त की प्रतिमा स्वप्न में भी मुस्कराते दिख जाये तो यह आपको अशुभ सूचना है, शान्तिविधान करो।** मुनियों के जो चित्र तुम मन्दिरों में लगा रहे हो, ये कोई ऐक्टरों के चित्र नहीं हैं। किसी के दाँत दिख रहे, कोई खिल-खिला रहे हैं, विचित्र मुद्रा से बैठे हुये हैं। मैं ऐक्टरों को देखने नहीं आ रहा हूँ, मैं वीतरागी मुद्रा को देखने आ रहा हूँ। इनके तो जैसे गजकुमार मुनि के सिर पर सिगड़ी रखी

हुई है, ऐसे ध्यानस्थ बैठे हुये मुद्रा होनी चाहिए। जगत् के नाना रूपों को जब देखकर थक जाता हूँ तब वीतरागी का रूप देखने आता हूँ। निर्ग्रन्थों/मुनियों के फोटो भी लगाओ, पूर्ण सौम्य शांत मुद्रा में हों, अन्य कोई आकार नहीं। शिल्पकार क्या बोलता है कि इनकी वीतरागता को निकालने में जो मेहनत लगती है। इसके पैसे लेता हूँ। जगत् की अन्य प्रतिमाओं को बनाने में तो हथौड़े-छेनी की मेहनत है, परन्तु अरहन्त की प्रतिमा में वीतरागता भरने के लिये मस्तिष्क की मेहनत है। आप विचार करना, टोकनी डालने वाले को कितना वेतन और आफिस में बैठे पुरुष के लिये कितना वेतन?

उपवास करने वाले की अपेक्षा ध्यान करनेवाले की अधिक निर्जरा होती है। उपवास में तो पर वस्तु को छोड़ा है, ध्यान में निज को निज में जोड़ा है। **पर को छोड़ना कठिन नहीं है, निज में निज को जोड़ना कठिन है।** यह वस्तुस्वरूप समझो। ढोल-धमाका दुनियाँ के हल्ले-गुल्ले, ध्यान रखना, व्यक्ति का स्तर जितना कमजोर होगा उतना शोर अधिक होगा। आप तटस्थ होकर निहारना। जितना निम्न जीव होगा, उसका चलन भी उतना शोर-गुल-मय होगा। जो द्वैतभक्ति मार्ग है उसमें आवाजें अधिक हैं, अद्वैत में कोई आवाज नहीं है। श्रावक धर्म और साधु धर्म को ही देख लो। जितना आडम्बर श्रावक धर्म में है, उतना आडम्बर साधु धर्म में है क्या? जैसे-जैसे अन्तरङ्ग का उत्कर्ष बढ़ता है, वैसे-वैसे बहिरङ्ग का आडम्बर क्षीण होता है। आपको मालूम न हो तो किसी बगीचे में जाकर नारियल के उगते हुये वृक्ष को देखना, जब उगता है, तब बहुत बड़ी छाल होती है। जैसे-जैसे वृक्ष विस्तार को प्राप्त होता है, वह छाल समाप्त हो जाती है। जब ऊपर पहुँचता है, सब समाप्त हो जाता है, मात्र फल लगता है। केला का फूल, फलों में सबसे बड़ा होता है। फूल तभी तक है, जब तक फल नहीं आया। जैसे-जैसे फल आते-जाते हैं, फूल झड़ता जाता है। फल वृद्धिमान होता है तो पुष्प झरना प्रारम्भ हो जाता है। और जब केले का फल परिपूर्ण वृद्धिमान हो जाता है, तब फूल का अवशेष ही नहीं बचता। ध्यान दो, आडम्बर तब तक है, जब तक फल नहीं मिलता है। फल मिलते ही आडम्बर समाप्त हो जाते हैं। जब खाने को होते हो तो ऊपर का छिलका भी अलग कर दिया जाता है। ऐसे ही यह मुनिचर्या है, सब आडम्बर भिन्न कर दिये

जाते हैं। जब स्वानुभूति की अनुभूति आती है तो पिच्छी कमण्डल और देह की मुद्रा को राग भी अलग कर दिया जाता है। मात्र शुद्ध सफेद फल, जैसे अन्दर का दल। जैसे केले का दल तुम मीठा चख रहे होते हो, वैसे ही स्वानुभूति की अनुभूति लेता है, उसका नाम दिगम्बर वीतरागी योगी होता है। यह है निर्ग्रन्थ का स्वभाव। तुमने देह के मुनियों को तो बहुत निहारा, उनकी बहुत परिभाषायें भी सुनी। ये आत्मा के भीतर के भावों के मुनि की व्याख्या है।

बन्दर भी छिलका नहीं खाता है, तो अहो श्रावको! तुम छिलका कैसे खा सकते हो? छिलका तब तक पकड़े रहना, जब तक दल खाने को न मिले। जब दल मिल जाये, तो छिलके को फेंक देना। बहिरङ्ग आडम्बर तभी तक है, जब तक स्वानुभूति की अनुभूति नहीं है। जब स्वानुभूति होती है, तो बाहरी क्रियायें समाप्त हो जाती हैं। यह योगी की द्रव्यदृष्टि है। आँखों से देखोगे तो हरा छिलका ही दिखेगा। जब खरीदने जाओगे तो हरा छिलका सहित ही खरीद कर लाओगे। जब खाने बैठोगे तो भीतर का सफेद दल दिखेगा। यही निर्ग्रन्थ की दशा है। जैस-जैसे आप स्वरूप की ओर उन्मुख होगे, वैसे-वैसे क्रियायें अल्प होती चली जायेंगी। सहज अल्प होती चली जायेंगी। आपको पूजन करनी होगी, अभिषेक करना होगा, द्रव्य लगाना होगी लेकिन महाराज जायेंगे तो मात्र पिच्छी उठाकर वन्दना कर लेंगे। वही महाराज जब जंगल में बैठे हैं, स्व में लीन हैं; आप कभी नहीं कहोगे कि महाराज ने दर्शन नहीं किये। मेरे मित्र! जिननाथ के दर्शन इसीलिये तो करने पड़ते हैं। निजनाथ के ही दर्शन करने लग गया, उसको जिननाथ के दर्शन का विकल्प समाप्त हो चुका है। जिननाथ की वंदना निजनाथ से मिलने के लिये है। जो निज से मिल ही गया है, वह उस विकल्प को भी छोड़ चुका है। बेटा! शाम को भोजन न मिले तो कैसा लगेगा? सुबह अच्छा मिला था, लेकिन तुम्हारा शाम का त्याग नहीं था, शाम को भी भोजन चाहिये था और न मिले तो आप तुरन्त घड़ी देखते हो कि रात्रि होने वाली है, यहाँ कोई पूछ भी नहीं रहा है। जिस दिन तू एकासन कर लेता है, आज तो कोई टेंसन ही नहीं है।

जितना ग्रहण करोगे, उतना ही दुःख है, उतने ही विकल्प हैं। जितना छोड़ते जाओगे, उतना ही आनन्द है, शान्ति है। आपको विश्वास न हो तो करके देखो।

जितने सम्बन्ध जुटाओगे, उतना दु:ख है। जितना पर को अपना बनाओगे, उतना दु:ख है। जब तेरे घर में बेटे की माँ नहीं आयी थी, वह अपने पिता के घर के बैठी कन्या थी, तब उसके सिर में दर्द हो रहा है कि हाथ टूट रहा है कि पैर टूट रहा है तुझे क्या टेंसन था? जिस दिन से तेरा सम्बन्ध हुआ, अब उसको कुछ भी होता है तो अरे! अब क्या कहूँ? बेचारे कैसे जीव हैं जो पर के सिर दर्द के पीछे अपने सिर का आनन्द खो बैठे और धन्य हैं वे योगीश्वर मुस्कराते रहते हैं। जिनने पर को स्वीकारा ही नहीं है। पर तो पर है, निज ही निज है। सुखी होना चाहते हो तो आज से सम्बन्ध छोड़ो। ये सब झूठ बोलते हैं, 'महाराज! मैं दु:खी हूँ। मैं सुखी होना चाहता हूँ।' मुझे मालूम है तुम्हें कौन-सा सुख चाहिये। आज साधुओं के पास भी, भगवान् के पास भी जो भीड़ लग रही है, उनसे दु:ख माँगने आने वालों की भीड़ ज्यादा हो रही है। सुख की बात तो ये करना जानते ही नहीं हैं। आप यही कहोगे महाराज! बहुत दु:खी हूँ, आशीर्वाद दे दो। मुझे मालूम है तू किस बात पर दु:खी है। कोई का व्यापार नहीं चल रहा है इसलिये दु:खी है, कोई को सन्तान नहीं हो रही इसलिये दु:खी है। हे अज्ञानी! तू यहाँ दु:ख माँगने के लिये आया है, सुख माँगने की बात कर तू छोड़ दे तो सुख-ही-सुख है। कम-से-कम सत्य को जान तो लो। हमारा ज्ञानी महाराज बन जाये तो ये मालूम क्या करेगा? लो ये नारियल फुकवा लो, हमसे एक कलश रखवा लो घर में, मेरे से आशीर्वाद लेले, मालामाल हो जायेगा। हे ज्ञानी! तूने किया क्या? घर में मंगलकलश जाकर रखवा दिया। जो कम-से-कम मन्दिर में आकर भगवान् की वन्दना करता। साथ में यह और बोल दिया कि रोज कलश के दर्शन करना।

ज्ञानी! तूने भगवान् से हटा करके मंगलकलश में और उलझा दिया। अब वह पूरे समय मंगलकलश देखता है। अब कब भरेगी मेरी तिजोड़ी? तूने प्रभावना की दृष्टि से कितनी अप्रभावना कर दी। मन्दिर सूना और करा दिया। वह कम-से-कम दु:खी था तो भगवान् के चरणों में तो आ जाता था तो लोगों को यह तो दिखता था कि जैन लोग कितने मन्दिर में आ रहे हैं। लेकिन तूने घर में कलश रखवा कर मन्दिर से दूर और करवा दिया और कह रहा है कि मैंने धर्मात्मा बना दिया है। महाराज बनकर क्या घर-घर में कलश रखने जाओगे? हाँ, घर-घर में कलश

रखवाने जाना। जब तू आहार को जाये, उन जीवों से आहार लेने से पहले वे आपसे कहें कि आज मेरा आलू खाने का त्याग है तो व्रत का कलश रखवा दिया। जहाँ संयम का कलश रखना चाहिये था, वहाँ तूने उसके घर में चारित्र का कलश रखवा दिया। कलश तो मांगलिक है, लेकिन उसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसकी आराधना में लग करके भगवान् को छोड़ दो। यदि तीव्र कर्म का उदय हुआ कलश रखने के बाद तो कलश से भी श्रद्धा गई, रखवाने वाले से भी श्रद्धा गई, और भगवान से भी श्रद्धा गई, उसको तुमने पूरा नास्तिक कर दिया। एक करोड़ दान दिये थे और कुछ भी नहीं हुआ। इसलिये धर्म की वही प्रभावना करो जो धर्म है। यूँ कहो, भाई! तेरे असाता का उदय है। यदि तीव्र असाता का उदय है तब वर्तमान का तेरा पुरुषार्थ छोड़ मत देना। भविष्य के लिये तो अच्छा होगा। भगवान् की भक्ति करने से अशुभ नहीं हो रहा है। पूर्व में अशुभ बन्ध किया था, इससे अशुभ हो रहा है। आप उसको दूर करना चाहते हो तो वर्तमान में भगवान् की आराधना करो। फलित नहीं भी दिखेगा तो तुम घर में बैठ कर करोगे क्या? जहाँ हाथ लगा रहे हो, वहाँ घाटा लग रहा है। ज्ञानीजीव होगा तो व्यापार बन्द कर देगा और धर्म प्रारम्भ कर देगा। जब आपको समझ में आता है कि वहाँ घाटा लग रहा है तो सिर पर कर्ज ही तो बढ़ रहा है। आप शान्ति से व्यापार बंद कर दीजिये और जो दुकान पर बैठ कर व्यापार करते थे उस समय मन्दिर में बैठना प्रारम्भ कर दो। भगवान् की जाप करना प्रारम्भ कर दो। कम-से-कम नया कर्ज तो नहीं चढ़ेगा। साथ में तेरे कर्मों की निर्जरा प्रारम्भ हो जायेगी और देखते -देखते समय बदलेगा। सबके दिन एक-से नहीं होते। घूरे के भी दिन बदलते हैं। जहाँ घूरे पड़ते थे, वहाँ आज महल बने हुये हैं। इसलिये भैया! न रोना, न मुस्कराना। मध्यस्थ होकर देखना। सबके दिन एक-से नहीं होते। घूरे के दिन बदलते देखे गये हैं और भवनों के दिन भी बदलते देखे गये हैं। जहाँ कुछ नहीं था, वहाँ भवन हैं। जहाँ भवन थे, वहाँ खण्डहर हैं। जो युवा दौड़ते दिखते थे, वे बूढ़े हो गये। अब जो है सो है बुरा लग जाये तो लग जाने दो अब जो है सो है। जो घुटने चलते थे, वे देखते-देखते दौड़ने लग गये। जो दौड़ते थे, वे लाठी लेकर चल रहे हैं। जो लाठी लेकर चलते थे, वे दिखाई ही नहीं दे रहे हैं। क्या करोगे? सही है न? जब सही है तो सोचो। सबके साथ

यही होगा। चाहे शान्ति से जीकर चले जाओ, चाहे हुंकार के साथ जीकर चले जाओ, चाहे अहंकार के साथ जीकर चले जाओ, लेकिन नियति के नियतपने को कोई टाल नहीं सकता। इन्दो वा जिणन्दो वा। चाहे इन्द्र आ जाये, चाहे जिनेन्द्र आ जाये, वे भी नहीं टाल पायेंगे। किसको ? जिस देश में जिस विधान से जिसकी जो भवितव्यता घटित होना है, उसे कोई टाल नहीं सकता। जब ऐसा होता ही है, तब क्यों न हम समता के साथ जियें।

आचार्यभगवन् योगियों से कह रहे हैं और श्रावकों को समझा रहे हैं। ये तीनों कारिकायें दोनों के बीच में एकता अखण्डता को प्रदान कर रही हैं। इसलिये हे श्रावको! 222 नं. का श्लोक, जितने भारत के मुनि विद्वान् ज्ञानी लोग हैं, इन सबके अन्दर में गूँजना चाहिये। यहाँ आचार्य कह रहे हैं, वे योगी कैसे हैं? जिन-जिन के आर्यिका बनने के परिणाम हों, मुनि बनने के परिणाम हों, वे इन तीन श्लोकों को ध्यान से सुनें। यदि इन श्लोकों के अनुसार अपने जीवन को नहीं बना सकते हो, तो मुनियों की सेवा करना, परन्तु संख्या बढ़ा करके मुनि धर्म की अवहेलना मत कराना। भेष की संख्या बढ़ा करके जिनभेष को बदनाम मत कर देना। कठोर अवश्य है, परन्तु ध्रुव सत्य है।

जब नगर में महाराज आ जाते हैं तो सारे लोग पहुँचते हैं, लेकिन जब ठण्ड में ठिठुरते हैं और तपन में झुलसते हैं, रोड पर चलते नहीं बनता, तब घर छोड़कर के किसी भी स्कूल में कहीं कुछ नहीं मिला तो पाण्डाल लगा करके पड़गाहन करते हैं, तब चन्द लोग ही होते हैं। तब ये ही लोग होते हैं, याद करो उस दिन की। एक ने मकान दे दिया, दूसरे ने मना कर दिया। अपने घर में होता तो कहता मैं अपमान सहन कर सकता था क्या? जैसे ही साधु पहुँचे, जिसने मना किया था, वह भी कहने लगा, भैया! क्षमा करो। पूरा मकान खाली है, आप रहो। जो श्रावक अपना घर-द्वार पत्नि बेटा-बेटी को छोड़ करके तुम्हारे साथ विहार में लगा हो, उससे किञ्चित् कोई भूल हो जाये तो उस पर ध्यान नहीं देना। मेरा विश्वास है कि श्रावक साधु के साथ जानकर भूल नहीं करता। मेरा ऐसा सोच है, व्यक्तिगत किसी का जो भी सोच हो। माना कि आपने घर में चौका लगाया। साधु को अन्तराय कराने के लिये कोई चौका नहीं लगाता। इतना अभागा कोई श्रावक नहीं होगा कि

महाराज को अन्तराय कराने के लिये कोई चौका लगाये। वह तो इसलिये लगाता है कि वीतरागी तपोधन हमारे घर पधारें, उनका निरन्तराय आहार हो, जिससे उनकी साधना निरन्तराय हो। मेरे घर के भोजन में अन्तराय न हो और उनकी साधना में अन्तराय न हो। यदि तुम मुनि बने और किसी ने पड़गाहन किया, उसमें कलश गिर जाये, फिर तुम क्या करोगे? हूँ हूँ करोगे या भाग जाओगे? हाँ, गिर तो गया। अब तुम तनक खड़े हो जाते, वह शान्ति से उठा लेता। आप जानते हैं कि कलश गिरते ही उसकी धड़कन बढ़ गई, श्वास बढ़ गई और कहीं तुम भाग गये, फिर उसके भावों से पूछो कि आज का दिन उसका कैसे निकलने वाला है ज्ञानी? तुझे हिंसा का दोष लगेगा। ध्यान रखना, सुसराल जाकर भी नाटक करेगा तो हिंसा का दोष लगेगा। क्या दु:ख देने गया था? हिंसक है हिंसक, धर्म की दृष्टि से। आप दिखाने गये थे कि मैं कुछ हूँ। समझदार होगा तो वह कहेगा, बेटा! मैं देख चुका हूँ, तू कुछ नहीं है, कषायी है। व्यवहार के नाते वह तुमको मनायेगा, लेकिन भीतर यही कहेगा कि कुछ नहीं, कषायी है। क्या करूँ? बिटिया दी है सो झेलना पड़ रहा है, लेकिन है तो कषायी। ऐसे ही मैं उस श्रावक के भावों को समझता हूँ। यदि साधु को बदनाम कर दिया और कहीं साधु ने वहाँ नाटक किया, तो श्रावक का मन कहता है कि महाराज जी हैं, इसलिये चर्या तो कराओ, लेकिन परेशान कर डाला। इसलिये **पहले स्वाध्याय होना चाहिये, फिर साधना होना चाहिये।**

अमृतचन्द्र स्वामी कह रहे हैं 'पुरुषार्थ-सिद्धि-युपाय' में कि अज्ञानपूर्वक चारित्र धारण नहीं करना चाहिये। ज्ञानपूर्वक चारित्र धारण करना चाहिये। अब सुनिये साधु का स्वभाव। समं शत्रु:, जिसका शत्रु के प्रति भी साम्यभाव है और मित्र के प्रति भी। राग है तो मित्र, द्वेष है तो शत्रु। जिसके भीतर राग भी न हो, द्वेष भी न हो। न शत्रु, न मित्र। ये कठिन है। मैंने इतनी दूर पैदल विहार किया आपके साथ, किसी ने एक श्रीफल भी भेंट नहीं कराया, मेरा तो किसी ने नाम भी नहीं लिया। भैया! वैयावृत्ति के उद्देश्य से तूने साथ में बिहार किया या नाम के लिये, मान-सम्मान के लिये गया था। जिस उद्देश्य से गया था, उसका फल तो मुझे मिल गया है। आगे और मिलेगा। यदि मान के लिये गया था तो वह फल तो तेरा चला गया।

मेरे तो महिला मण्डल हैं। हमने इतनी साधुओं की सेवा की है। इतने चौके लगाये हैं। राष्ट्रीय अधिवेशन में खोल-खोल कर पढ़कर सुना रहे हो, मैंने इतने साधुओं की सेवा की है। तुमने इसके लिये किया था क्या? राष्ट्रीय पुरस्कार मिलेगा। इसके लिये किया था क्या? अरे! आपको तो सिद्धसिला की सीट मिलने वाली थी, कहाँ कागजों की तस्वीर लेकर खुश होकर लौट आये? पर्युषण में दस उपवास किये, ज्ञानी ने नाम लिखकर इतना सम्मान करा दिया कि दस दिन की साधना भूल गया। सम्मान में इतना मान बढ़ गया था कि देखो मैंने उपवास किया तो मेरा कितना सम्मान बढ़ा? हाँ! समाज का कर्तव्य है कि त्यागियों का सम्मान करना ही चाहिये, परन्तु जिसका सम्मान हो रहा है उसका कर्तव्य है कि उसे फूलना नहीं चाहिये, क्योंकि हमने तो कर्मनिर्जरा के लिये किया है। उभय दृष्टि से समझना। आपका धर्म क्या है? जिसने तपस्या की है उसका सम्मान करना चाहिये। जिसने तपस्या की उसका कर्तव्य क्या है? जिसका सम्मान हो रहा है वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ वह तो निज के सम्मान से ही पूर्ण है। इस तथ्य को भी समझना होगा। लोक में जैसा उपदेश चलता है मैं वैसा भी उपदेश करना जानता हूँ। एक दिन मैं स्वयं वैसे उपदेश करके आया और सामायिक करने बैठा तो मुझे स्वयं आनन्द नहीं आया। क्यों? सबको हँसवा दिया, ताली बज गई, कुछ आह्लाद हुआ ही नहीं है। जिनवाणी ये कह रही है कि एक सिनेमाहाल में गया बच्चा घर आकरके वैसा रूप दिखाना प्रारम्भ कर देता है, वैसी नकल करना प्रारम्भ कर देता है, जिनेन्द्र की सभा से आकर के तुम्हारे भावों में नकल घर में न पहुँचे तो तुम बच्चे से भी गये बच्चे हो। यहाँ से जैसे ही उठ कर जाओ तो माँ कहे मेरा बेटा, पत्नि कहे मेरा पति, लेकिन वह है ही नहीं जो गया था। कल तो तुम भोजन की थाली को फेंकते थे, आज नमक न मिले, मिर्च न मिले, तब भी शान्ति से भोजन कर लिया, फिर देखना, तेरा सम्मान बढ़ जायेगा। कोई पूछे कि और लायें क्या? तो कुछ मत बोलना। ये रखूँ क्या? तो कुछ मत बोलना। कुछ लोगों की आदत ही होती है, कैसा लगा? अब जो है, सो है। उस काम की प्रशंसा सुनना चाहता है। तो उसको भी लगता है कि मैंने इतनी देर से भोजन बनाया है, कोई ये तो कह दे कि अच्छा बना है। आप तो ऐसे ही करना, कोई कुछ भी पूछे, ठीक है? ज्यादा पूछे तो कह

देना 'जो है, सो है'। जो स्वाद आ रहा, वह तो आ ही रहा है। अब तू नया बना कर तो खिलायेगी नहीं। अब जो है, सो है। कैसे परिणाम? सम्मान किसका होता है? मान कषाय का, अभिमान किसको होता है? मान कषाय को। जब मान कषाय ही नहीं है, तो किसका मान किसका अपमान? न लाभ न अलाभ। चाहे तुम मोती बिखेरो, चाहे चन्दन के चौक पूरो, चाहे मिट्टी पूर दो। ठीक है, अच्छा-बुरा उसकी आँखों में है जिसके अन्दर लोभ है, जहाँ लाभ-अलाभ है। पत्थर और सोने में, कंचन कामिनी में एकत्वभाव। काँच को काँच देखे, कंचन को कंचन देखे, राग-द्वेष भाव। जिसको कंचन व काँच में एकत्व दिख रहा यानि पुद्गल का पिण्ड वह साम्यभाव है। जिनकी बुद्धि सम्यक्त्व भावना से शुद्ध है, प्रतिक्षण अपने उपयोग को ज्ञान में ले जा रहा है, ये है श्रमण धर्म। यदि आहार को भी जा रहे हैं तब भी कोई सूत्र गुनगुनाते जाओ। आहार को जा रहे हो, कहीं रास्ते में कोई घटना घट गई, उसी राग में ऊपर चले जाओगे तो असमाधि हो जायेगी। आहार को भी जा रहे तो भी अभी त्याग करके ही जा रहे, रास्ते में पंचपरमेष्ठी का ध्यान कर रहे हैं। परन्तु वे जिनेन्द्र की चर्या को दिखाने गये थे, भीतर अभी भी त्याग में जा रहे हैं। **एक अज्ञानी आहार ले रहा है, मस्ती में रसों को चख रहा है और दूसरा रसों को लेते हुये भी नीरस का वेदन कर रहे हैं और निज रस में लीन हैं, समरस में लीन हैं। जब तुम मुनि बन जाओगे, तो तुम्हारे सम रस का परीक्षाकेन्द्र श्रावक का रसोई घर ही होगा। समता का परीक्षाकेन्द्र श्रावक का चौका ही होगा।** हटवाया था नमक, माँ ने मीठा उठा दिया। अब देखो परिणाम। पसन्द था मीठा, नमक की जगह मीठा उठा दिया और नमक का त्याग था सो नमक तो लेगा ही नहीं। अब नमक भी गया और मीठा भी गया, ज्यादा कुछ किया, माँ समझ नहीं पाई, सो उसने घी और उठा दिया। दूसरी माँ आयी, उसने पूछा, क्या-क्या हटाया? नमक और मीठा तो हटाया, घी भी हटा दिया। सो एक बोलती है कि नीरस होगा। अब दूध मत दिखाओ। वह भी गया। अब क्या बचा? एक माँ कहती है क्या चलाऊँ ? सो चौके वाली माँ कहती, रोटी में तो नमक डला है? अब मुनि बैठे चेहरा बना रहे हैं। दाल में घी डला है। अब उस समय परिणामों से पूछो, मैंने कुछ भी तो छोड़ा नहीं है, परवश ने सब छुड़वा दिया। जल लाओ, थोड़ा ठहरो,

पानी ज्यादा गरम हो गया है। उधर पानी ठण्डा हो रहा था, इधर उसकी गरमी बढ़ रही थी। ये तुम्हारी समता का केन्द्र था, परीक्षा दो। एक माँ कहती, महाराज खाली थोड़े-ही खड़े रहेंगे, लो, बादाम दे दो। अरे! बादाम तो दूध के बाद देनी पड़ती है। जब आज दूध नहीं लेंगे, तो बादाम क्या देना? लो, समझो, जीव के भाव देखो। अब तुम उस समय क्या करोगे? अब यहाँ कहो 'जो है, सो है'। अब कहो 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं। अब पता चलता है कि समता कौन-सी वस्तु है? तुमने कहा कि दो पिच्छी। भाग गये वहाँ से। क्या मतलब? करो सहन। बने क्यों थे मुनिराज? श्रावक तो है महा ज्ञानी, उससे भूल हो भी जायेगी, कहेगा, महाराज! हम तो श्रावक हैं, तुमने कुछ किया, सो कहेंगे, महाराज होकर गुस्सा कर रहे हैं। प्रवचन और सुनने को मिलेगा। साधु ऐसे नहीं बनना पड़ता कि कपड़े उतार कर बैठ गये। इतना सीखो। यदि इतना धैर्य तुम्हारे पास हो, तो कल नहीं आज ही महाराज बन जाना। इतना धैर्य न हो, तो सच्चे साधु की सेवा करना। संख्या बढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मायाचारी करने के लिये आर्यिका मत बनना। स्त्रीपर्याय के नाश करने के भाव हों तो आर्यिका बनना। अब यहाँ लगाना चाहिये ज्ञान। ठीक है, जो पढ़कर आया था वही तो है। आज दो समता की परीक्षा। मत कहना आकरके। महाराज ने तो सब हटवा दिया। जैसा उदय था, वैसा लाभ हो गया।

बाहर की साधना सबको दिखती है। जो भीतर चल रहा था, उसे कौन देख रहा था? जैसे मटकी में पड़ा पानी, **मटके की महिमा देखो, पानी को शीतल कर देता है। ऐसे ही साधु का हृदय कलश है। उसमें आयी विषमता भी समता में बदल जाये, उसका नाम साधु-घट है।** आसक्ति है तो मात्र चारित्र में है। सुखाभिलाषा जीव को गिरा देती है। आप शहर में हो, यहाँ तो हर मौसम में हर फल खाने को मिल रहे, जूस मिल रहा। विहार भी करना नहीं चाह रहे हो। तुमको पता नहीं है। करते रहो साधना। परन्तु साधना से विफल हो चुके हो। जब तुम बाहर जाओगे, तो कूलर ए.सी. याद आयेंगे। काहे की साधना? जब तुम कमरे में बिना कूलर, ए.सी. के नहीं रह पाओगे, तो क्या विहार करने के भाव रखोगे? तमतमा जाओगे कि मैं ऐसे रहता था, ऐसे खाता था। भूत की यादें छोड़ो। वर्तमान

में साधु हो, उसे कैसा होना चाहिये, उसकी बात करो। जिसने सुखस्वभाव को छोड़ दिया है उसके है उत्कृष्ट साधना। यहाँ तक साधुस्वभाव का वर्णन किया। ऐसा महान् साधु जीवन में, मरण में, समता में, विषमता में, मान में, अपमान में, सुख में, दुःख में जो साम्यभाव रखता है। ऐसे महान् योगी, धरती के देवता को देखकर भी जो नहीं मानता है, वह दुष्टबुद्धि है। सारा विश्व कह रहा है योगीश्वर। पूरा देश पूरा नगर जिसके चरणों में सिर टेकता हो।

मुझे तो तू दिखता है भगवान् के दर्शन कर रहा है। तेरा पिता भले ही सिगरेट पीता हो, मुझे इससे क्या लेना? मात्र दुष्ट धी काम कर रही है। ऐसे लोग भी हुये हैं जिन्होंने महावीर स्वामी के आने पर सिर मोड़ लिया। क्या दूसरे के सिर मोड़ लेने से महावीर की वीतरागता का नाश हो गया? अरे! सीधा बोलो, महावीर में दोष नहीं, तेरी दुष्टता में दोष है। दुष्ट धी, जो वीतरागी साम्यस्वभावी निर्ग्रंथ, धरती के देवता, भगवान्स्वरूपी मुनि को भी नहीं मानता है, उसका नरजन्म निष्फल है। तुम्हारा नरजन्म तो सफल है। तुम मार्ग में बैठकर मार्ग की बात कर रहे हो, इससे बड़ा पुण्यात्मा कौन होगा? बारात की आगवानी तो अनन्त बार की है, अपन उनकी अगवानी करें जो मुक्तिवधू से शादी करने जा रहे हैं। माताओ दुष्ट धी की बातों में मत आना, सम्यग्दृष्टि की बातों में आना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"सम्यक्-तप"

रागादिवर्द्धनं सङ्गं, परित्यज्य दृढव्रताः।
धीरा निर्मलचेतस्का, तपस्यन्ति महाधियः॥ सा. स. 223॥

अन्वयार्थ—रागादिवर्द्धनं सङ्गं = रागद्वेषादि को बढ़ाने वाले परिग्रह का **परित्यज्य** = परित्याग करके **महाधियः** = महान् बुद्धिमान साधु **दृढव्रताः** = दृढ़ता से व्रतों का पालन करते हैं **निर्मलचेतस्काः** = और चित्त को शुद्ध रखते हुए, **धीराः** = वे धैर्यवान, **तपस्यन्ति** = तप का आचरण करते हैं।

भावार्थ—रागद्वेष को बढ़ाने वाले परिग्रह का त्याग कर दृढ़व्रती महान् बुद्धिमान निर्मल चित्त के धारक धीर-वीर महापुरुष सम्यक्-तप का आचरण करते हैं।

"धन्य जीवन"

संसारोद्विग्नचित्तानां, निःश्रेयससुखैषिणाम्।
सर्वसङ्गनिवृत्तानां, धन्यं तेषां हि जीवितम्॥ सा. स. 224॥

अन्वयार्थ—संसारोद्विग्नचित्तानां = जिनका चित्त इस दुःखमय संसार से विरक्त है, **निःश्रेयससुखैषिणाम्** = और जो मोक्ष के अविनाशी सुख के अभिलाषी हैं **सर्वसङ्गनिवृत्तानां** = तथा जो सर्व अन्तरंग-बहिरंग संग के त्यागी हैं **तेषां हि जीवितम् धन्यं** = ऐसे ही महात्माओं का जीवन धन्य है, प्रशंसनीय है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! संसार से विरक्त चित्तवाले, मोक्षसुख के अभिलाषी और सर्व-परिग्रह से रहित साधुओं का जीवन धन्य और प्रशंसनीय है।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधनों की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जो साम्यभाव से परिणत है, शीलस्वभाव से मण्डित है, चैतन्य ज्ञान घन में लवलीन है, ऐसा वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन आपकी दृष्टि में दिखना प्रारम्भ हो जाये तो सारे कार्य छोड़ कर उनके चरणों में श्रद्धा से

बैठ जाना और कहना, स्वामी! जब आप अशरीरी सिद्ध बन जाओगे, तो मुझे आँखों से देखने नहीं मिलोगे। आज मेरा अहोभाग्य है, भविष्य के भगवान् मेरे सामने खड़े हैं। ये भविष्य के भगवान् हैं। अरहन्तदेव के चरण नहीं छू सकते हो। समवसरण में श्री मण्डप भूमि पर किसी जीव को चरण स्पर्श करने का सौभाग्य नहीं मिलता। जब तक अरहन्त दशा प्रकट नहीं हुई है, निर्ग्रन्थ के चरणों में बैठ कर के तुम उनके चरणों का स्पर्श भी कर लेते हो, उनके हाथ पर ग्रास भी रख लेते हो, परन्तु जब ये अशरीरी सिद्ध परमात्मा पद को प्राप्त कर लेंगे, फिर मात्र इस भूमि से हाथ ही जोड़ पाओगे, उन्हें आँखों से देख भी नहीं पाओगे। वे जीव धन्य हैं जो निर्ग्रन्थ दशा में सिद्धत्व को निहारते हैं। **वे जीव आगम की दृष्टि में दुष्ट धी हैं जो सामने आये वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन को देखकरके भी सिर झुकाना नहीं जानते, आँखों से देखना पसन्द नहीं करते। इन बेचारों के तीव्र अशुभ कर्म का उदय चल रहा है।**

जिसको नीच गोत्र का बन्ध हो चुका है, अशुभ आयु का बन्ध हो चुका है, ऐसा जीव कभी दिगम्बर मुनि के हाथ में ग्रास नहीं रख सकता, ये आगमवचन है। सम्मेदशिखर की यात्रा और दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास वे ही जीव रख सकते हैं जिनको नरक आयु का बन्ध नहीं हुआ, साधु बनना तो बहुत कठिन है। जिस जीव ने मनुष्य आयु का बन्ध कर लिया हो, जिस जीव ने तिर्यञ्च आयु का बन्ध कर लिया हो, ऐसा जीव कभी त्यागी नहीं बन सकता, ऐसा जीव कभी देशव्रती नहीं बन सकता, महाव्रती नहीं बन सकता। ये तो बहुत कठिन है। नरक आयु का बन्धक जीव तो महाव्रती के हाथ में ग्रास भी नहीं रख सकता। उसके भाव नहीं आयेंगे। वह खड़ा रहेगा, अनुमोदना कर सकता है, दूसरे से कहेगा कि आप आहार दो महाराज को, लेकिन स्वयं वस्त्र बदल कर ग्रास नहीं रख सकता है। उसके पास इतनी विशुद्धि नहीं बन रही है। इतना कठिन है। आश्चर्य नहीं करना। ऐसे बहुत सारे लोग हैं। जैनियों की संख्या कितनी है? फिर उनमें धर्मात्मा कितने हैं? उन धर्मात्मा में भी साधुओं को मानने वाले कितने हैं? साधुओं को मानने वाले में भी चर्या कराने वाले कितने से लोग हैं?

मुमुक्षु! यदि किसी की मृत्यु हो जाये तो वह जीव श्मसान तक लाठी टेक कर जा सकता है, शवयात्रा के लिये जा सकता है, परन्तु शिवयात्री पधार जायें तो कहेगा, महाराज! चलते नहीं बनता है। श्मसान क्यों गया था? अरे महाराज! यहाँ मुझे आना है, सो देखने आया था। वहाँ नहीं जाना है, इसलिये उनके लिये मैं क्यों जाऊँ? ये भावों से पूछना। जीव के मन में ये भाव आता है कि चलो, अमुख व्यक्ति चला गया। कुछ नहीं सही तो उसकी अन्तिम यात्रा में तो चले ही चलो। ऐसा भाव करके उसके अन्दर स्फूर्ति आती है, वह श्मसान घाट तक पहुँच जाता है, लेकिन ऐसा भाव मन में कभी नहीं आया कि शिवयात्री के पास पहुँचें। ये शव यात्रा ही निकलवाना चाहता है, शिवयात्रा नहीं चाहता। ग्रन्थ में 'दुष्ट-धी' शब्द का प्रयोग किया है। श्रमण को देखकर भी जो नहीं मानता है, उस जीव का मनुष्य-जन्म निष्फल है। यह आपके पूर्व के पुण्य की प्रबल सत्ता है कि पुण्य के उदय में पुण्य कर रहे हो। श्री प्राप्त करके कौन मद को प्राप्त नहीं होता? आप सब श्री को प्राप्त करके श्रीजी का अभिषेक कर रहे हो, श्रीजी की जिनवाणी सुन रहे हो और श्रीजी की मुद्रा की वन्दना कर रहे हो। यह पुण्यानुबन्धी पुण्य का फल चल रहा है। जैसी-जैसी गति होगी, जीव की बुद्धियाँ वैसी पलटना प्रारम्भ हो जाती हैं। आँख का फड़कना, गद्दी का खुजलाना, ये आपके कार्य के हेतु नहीं हैं, परन्तु जो होना होता है उसकी सूचना है।

आँख के फड़कने से अशुभ नहीं होता, शुभ नहीं होता। ये सूचना है कि सम्भलना हो तो सम्भल जाओ। आपका अशुभ सामने आने वाला है। ऐसे ही तटस्थ होकर के शान्त होकरके अपने जीवन को पाँच मिनट देना प्रारम्भ कर दो। आपने सबको इतना समय दिया कि पूरा जीवन निकल गया, मात्र पाँच मिनट अपने आप को देना प्रारम्भ कर दो इस बात के लिये दिन भर में। इस पाँच मिनट में न मित्र से चर्चा करना, न शत्रु से चर्चा करना, न माँ से बात करना, न पिता से बात करना, न पुत्र, न पत्नि, किसी से बात नहीं करना। इस पाँच मिनट को आप भगवान् को भी मत देना। जब भगवान् भी तेरे मस्तिष्क में आयेंगे, तो उस काल में तुझे भक्ति तो दिखेगी, भगवान् तो दिखेंगे, पर निज के गुण-दोष नजर नहीं आयेंगे। जब आपके सामने भगवान् होंगे, तो आपके अन्दर श्रद्धा उमड़ेगी, भक्ति उमड़ेगी,

उनके चरण दिखेंगे, परन्तु आपको अपना आचरण दिखाई नहीं देगा। जब आपके घर में मेहमान आ जाता है तो आप एकाएक खड़े हो जाते हो। उस समय आपको किसी का ध्यान नहीं रहता। क्या वो अव्रती नहीं होते? होते हैं, पर उस समयकाल में आपको मेहमान दिखता है। जब घर का मेहमान इतना प्रधान हो जाता है कि माता-पिता का विस्मरण हो जाता है, फिर जिसके सामने परमात्मा मेहमान बन कर आया हो, वहाँ अपने बारे में विवेक जगे, ये हो ही नहीं सकता।

ये पाँच मिनट परमात्मा से भी हट कर रहने देना। **क्षण-क्षण की आवाज पल-पल के शब्द बेचैन कर देते हैं। किञ्चित् भी कहीं की ध्वनि आ रही हो तो वह आपकी शान्ति को भङ्ग कर देती है।** भगवान् को आप पूरा समय दो, मैं तो सिर्फ पाँच मिनट की बात कर रहा हूँ। पाँचमिनट में करना क्या है? न भगवान् को लाऊँगा, न परिवार को लाऊँगा। तो पापों को लाऊँ क्या? जब परमात्मा को मना कर रहे हैं, तो पापों को क्यों बुलाऊँगा? जिस स्थान पर परमात्मा को भी स्थान नहीं दिया जा रहा हो, वहाँ पापों को स्थान कैसे दिया जा सकता है? पाँच मिनट कुछ नहीं करना, बिल्कुल फ्री होकर बैठ जाओ। बहुत सुख भोगा, परन्तु इन्द्रियों के माध्यम से सुख भोगा। आपने ऐसा कौन-सा समय छोड़कर रखा है जिस समय इन्द्रिय का आनन्द न लूटा हो। आपने अपने आप को प्रत्येक इन्द्रिय से सन्तुष्ट किया है। इतना धन तेरे पास था। ससुराल से लेकर के बहू के द्वारे तक तेरा सम्मान हो चुका है। प्रभु के द्वारे पर भी तेरा सम्मान हो गया। स्पर्श इन्द्रिय से लेकरके चक्षु श्रोत आदि पाँचों इन्द्रियों की अनुभूति ले चुके हो। मित्र! एक अनुभूति अवश्य शेष है। भगवान् के पंचकल्याण की अनुभूति ले ली, श्री जी को विराजमान करने की अनुभूति ले ली है, अभिषेक की अनुभूति ले ली है, जिन-जिन द्रव्यों की अनुभूति ले रहा था, वह कौन था? उसकी अनुभूति तू नहीं ले सका। जिसने सारे जगत् का वेदन किया है, सारे लोगों से परिचय किया है, वह वेदन करने वाला कौन है? पाँच मिनट उसके लिये देना है जो वेदन कर रहा है।

एक-एक जीव की जानकारी लेने तुम तड़फ रहे हो, ये कौन पुरुष है? जिसका नाम मैंने अनन्त काल से सुना है, तुम उस पुरुष से मिलने की बात क्यों नहीं कर रहे हो? वह पुरुष मेरा चैतन्य आत्मा है। पाँच मिनट यह चिन्तन करना कि मैंने

आज तक किया क्या है? या तो भोगा है, या स्मरण किया है, या अर्जन किया है। सामग्री का संग्रह किया, संग्रह करके भोगा, भोगने की सामर्थ्य नहीं रही सो स्मरण किया, और तूने किया क्या है? इसके बाद विदाई की बेला है। सात दिन के अन्दर-अन्दर सबकी विदाई हो जायेगी। सम्हलना हो तो सम्हल जाओ। मेरा काम आपको मात्र सूचना देना है। बाकी की ॐशान्ति। विदाई की बेला है, सात दिन के अन्दर सब विदा हो जायेंगे, फिर दूसरी पर्याय में पहुँच जाओगे, परन्तु नियत नहीं है कि ऐसा नियोग पुनः मिलेगा। जिनदेव हों, जिनवाणी हो, निर्ग्रन्थ गुरु हों और सुनने के परिणाम हों, यह प्रबल पुण्य का नियोग है। शान्ति की अनुभूति का संयोग। इसलिये आज से मात्र पाँच मिनट देना प्रारम्भ कर दो।

मैं आपसे धन नहीं माँग रहा हूँ। मैं अपने लिये कुछ भी नहीं माँग रहा हूँ। कुछ नहीं चाहिये। मेरा तो एकसूत्रीय कार्यक्रम चल रहा है, मैं रत्नत्रय धर्म का तीर्थ बना रहा हूँ। यदि मेरा वह तीर्थ सफल हो गया, उसका शिखर सिद्धालय में चढ़ेगा। उसका लक्ष्य है **'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारी।' पूरा जिनमन्दिर बन जाये और शिखर नहीं है, तो उसकी शोभा नहीं है। पूरे जीवन का चारित्र पल जाये और सल्लेखना का शिखर नहीं है, तो उसकी कोई शोभा नहीं है।** आप ठीक कर रहे हो। बनाओ शिखर, लेकिन ध्वजा जरूर चढ़ाना। शिखर बन गया और ध्वजा नहीं चढ़ी, तो आनन्द नहीं आयेगा। पताका तो होना ही चाहिये। पाँच मिनट अपने आप को दे देना। कोई कहता है कि आप अपनी आमदनी का इतने प्रतिशत दान करते रहना। मैं तो वह भी नहीं कह रहा हूँ। आप तो अपने जीवन के आयुकर्म के निषेक में से एक दिन में पाँच मिनट दे देना। अब सुनो, उस पाँच मिनट में करोगे क्या? न भाई की निन्दा, न पड़ौसी की आलोचना। कुछ नहीं। शुद्ध समय चाहिये बेटे ने क्या किया, क्या नहीं किया, पिता ने क्या दिया, कुछ नहीं। यहाँ तक कि जब मैं यह बोल चुका हूँ कि अरहन्त कैसे हैं, मुनि कैसे हैं, यह विकल्प भी नहीं आना चाहिये। उन पाँच मिनट में आपको मात्र इतना सोचना है कि बिना टेंसन का जीवन कैसा है? बिना कुछ किये रहने का जीवन कैसा है और शान्ति से बैठने का जीवन कैसा है? यदि पाँच मिनट में एक सेकेण्ड मात्र भी वेदन हो गया, तो जो आनन्द रसगुल्लों में नहीं आया, इष्ट मित्रों के बीच नहीं

आया, नारी-नर के बीच नहीं आया, वह आनन्द ये है। मेरा विश्वास है, जिसने पाँच मिनट का आनन्द लूट लिया, उसको नियम से दिगम्बर मुनि बनना पड़ जायेगा। इस भव में न सही, किसी-न-किसी भव में नियम से बनेगा। क्यों? **बन्धन का अनुभवन भिन्न है, निर्बन्ध का अनुभवन भिन्न है।** पाँच मिनट आप किसी में बन्धके नहीं रहना।

इतना आपको ज्ञान होना चाहिये कि मैं सबसे भिन्न हूँ। सिर पर रखी पोटली, कोई भी बालक कह देगा कि दादा! आप वृद्ध हो, मैं रखे लेता हूँ। तो आपको हल्का महसूस होता है। लेकिन तेरे सिर के भीतर टेंसन की पोटली रखी होती है, उसे उठाने कौन आयेगा? कहीं कोई मिल जाये तो कह देना मेरे मित्र! मेरे सिर पर रखी पोटली को कोई भी उतरवा देगा, परन्तु मेरे भीतर में संकल्प-विकल्पों की जो पोटली रखी हुई है, इसको हटवाने का प्रयास कर दो तो मैं बिल्कुल स्वस्थ हो जाऊँगा। विश्वास रखना, विश्व में रोगियों की संख्या तो बहुत कम है। इनके मस्तिष्क में जो टेंसन की पोटलियाँ रखी हैं, इन्हें हटवा दो, सब स्वस्थ हैं, किसी को कोई रोग नहीं है। पाँच मिनट के समय का इसमें उपयोग करना है। जो जीव अपने जीवन के लिये पाँच मिनट नहीं दे सका, उसने अपने जीवन में क्या किया? जैसे शान्त यहाँ बैठे हो, ऐसे वहाँ भी पाँच मिनट शान्त बैठना है। हल्ला सुनते-सुनते बहुत समय व्यतीत हो गया। बैंडों की आवाज, घर के बर्तनों की आवाज, इन सब से तुम्हें बेचैनी नहीं होती? मैं तो इतना बेचैन हो गया, सो बर्तन में खाना ही बन्द कर दिया। हाथ से खा लेता हूँ, झंझट ही समाप्त। घर के बर्तनों से डरा, सो घर ही छोड़ दिया। यही दिगम्बर तपोधनों की अनुभूति है। बर्तन और वर्तन दोनों में विघ्न है। घर के बर्तन भी छोड़ो, घर का वर्तन भी छोड़ो। निज का वर्तन निज करो, यही तेरे स्वरूप की दृष्टि है, यही दृष्टि है। बाहर-बाहर बहुत घुमा दिया, एक बार भीतर की बात तो करो। इन पाँच मिनट में किसी को गाली नहीं दोगे और किसी ने आपको गाली दी तो उसे भी नहीं सुनोगे।

निर्मली फिटकरी डाल देने से जैसे पानी का मल बैठ जाता है, मिठाई बनाते समय चासनी में दूध का छींटा मार दिया जाता है तो उसका मल अलग हो जाता है, ऐसे ही पाँच मिनट अपने आप में ऐसी निर्मली डालना है, जिससे भावों के नीर को विशुद्ध किया जा सके।

जिस व्यक्ति ने पाँच मिनट हल्केपन का वेदन कर लिया, उसके मन में तुरन्त आयेगा कि पाँच मिनट खाली बैठने पर इतना सुख है, तो जो चौबीस घण्टे खाली बैठ चुके हों, उन्हें कितना सुख होगा? चलो योगियों के पास, जो चौबीस घण्टे अपने आप को खाली रखते हैं। जो खाली या भरे के विकल्प से ही शून्य हो चुके हैं, उन भगवान् को कितना सुख होगा? **साधु बन कर भी खालीपने का वेदन नहीं कर सका, तो मात्र स्थानान्तरण है, आनन्द नहीं है। निर्भर हो जाओ, निर्भार हो जाओ। निज में निर्भर हो जाओ, निर्भार हो जाओ। निज में निर्भर रहो पर के भार से रहित हो जाओ।** आज के लिये पाँच मिनट का विषय। ये पाँच मिनट मन्दिर में नहीं, घर में देना और घर के ऐसे स्थान पर बैठना जहाँ से पूरा घर दिखाई दे। फिर देखना मैं घर में हूँ कि घर मेरे में है?

आँखों से देखना, आँखें बन्द मत करना। न मेरे में घर है, न घर में मैं हूँ। तो है कौन किसमें? मैं नर में हूँ कि मैं नारी में हूँ? मैं नर में नहीं, मैं नारी में नहीं। मैं जिसमें हूँ, उसमें हूँ। क्या है? देखना और वेदन करना। में निर्वस्त्र हूँ, मैं दिगम्बर हूँ। कपड़े मत खोलना, आप तो ऐसे ही बैठे रहना। **निर्वस्त्र होना महानता का सूचक नहीं है। निर्वस्त्र होना साधुता की सूचना नहीं है। जगत् में निर्वस्त्र तो बहुत सारे प्राणी हैं। वस्त्रधारियों की संख्या तो अंगुलियों पर गिननेलायक है। वस्त्रधारियों की तो गिनती हो जायेगी, लेकिन निर्वस्त्रों की गिनती करने की तुम्हारे पास कोई सामर्थ्य नहीं है। गगन निर्वस्त्र है, अवनि निर्वस्त्र है, वृक्ष निर्वस्त्र हैं, सारे तिर्यञ्च निर्वस्त्र हैं।** वस्त्रधारी की संख्या कितनी-सी है? फिर भी अहंकार में डूबा है, मेरी बहुत संख्या है। अरे! सबसे अधिक संख्या तो हम लोगों की है।

जो प्रकृति का धर्म है, जो प्रकृतिमय रहता है, उसका नाम दिगम्बर है। यथाजात स्वरूपोऽहं। जैसा जन्मा हूँ, वैसा ही तो बैठा हूँ। तुम सब मायाचारी कर रहे हो। बुरा मत मानना। जो है, सो है। हम प्रकृति के साथ रह रहे हैं। निर्वस्त्र होना महानता नहीं है। निर्भर और निर्भार होना महानता है। **निज में निर्भर होना, पर के भार से रहित होना, इसका नाम वीतरागी तपोधन है।** दिगम्बर स्वरूपोऽहं। जब चिन्तन के मुनि बनने में इतना आनन्द है, तो चारित्र के मुनि बनने में कितना आनन्द होगा?

मात्र एक दिन बन कर देखना, लेकिन ध्यान रखना, मुनि बनकर मिटा नहीं जाता।

स्वामी ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा सुनो अचरजकारी
हँसी-खेल में श्वांग रचायो जिनमत की दीक्षा धारी।

खेल-खेल में साधु तो बना जा सकता है, परन्तु साधु बनकर खेल नहीं होता है। जब निर्ग्रन्थ दशा की चर्चा सुनने में इतना आनन्द आता है, तो निर्ग्रन्थ बनने में कितना आनन्द होगा? ये यहाँ जो बैठे हैं, वे मुझे नहीं सुन रहे हैं, साधुस्वरूप सुन रहे हैं, इसलिये शान्त बैठे हैं। ये अपनी बात सुन रहे हैं, इसलिये शान्त बैठे हैं। पर की बात किसी को नहीं रुचती। पर की प्रशंसा कोई सुनना पसन्द नहीं करता। और निज की प्रशंसा होने लग जाये तो बिल्कुल कान लगा लेता है। आचार्यभगवन् यहाँ कह रहे हैं वे श्रमणराज कैसी प्रवृत्ति करते हैं? मध्यस्थ भाव से युक्त हो करके तपते हैं। जलते नहीं हैं। चूल्हे में जो जलता है, वह राख हो जाता है। जो तपता है, वह कुन्दन हो जाता है।

मेरे मित्रो! सारी समाज के बीच में, परिवार के बीच में, राष्ट्र के बीच में तुम तप कर रहो, जल कर मत रहो। तप कर रहोगे तो सारे लोक में कुन्दन बना कर, तिलक बना कर माथे पर रखेंगे और तू जल कर रहेगा तो राख हो जायेगा। **लकड़ी चूल्हे में जलती है तो राख हो जाती है। सोना तपता है सो तिलक बन कर बैठता है। तपना सीखो, जलना मत सीखो। चमकना है तो तपो, राख होना है तो जलो। न किसी के वैभव को देखकर जलो, न किसी की साधना को देखकर जलो, न किसी के प्रभाव को देखकर जलो। जलोगे तो राख हो जाओगे। सोना अग्नि के भीतर रहते हुये भी चमकता है। मोक्षमार्ग तप मार्ग है, जलने का मार्ग नहीं है। जलने से पहले जलना छोड़ो।**

इस देह में आग लगे, उससे पहले भीतर के जलन की आग निकाल दो। आप लोगों को जलना है कि तपना है? तपना है तो लकड़ी नहीं बनना पड़ेगा, सोना ही बनना पड़ेगा।

आचार्यश्री यहाँ कह रहे हैं, हे श्रमण! जिससे राग की वृद्धि होती हो, ऐसे संग को छोड़ दो। संग यानि परिग्रह। रागादिक की वृद्धि से अपनी आत्मा की रक्षा करना है तो संग का परित्याग करो। जितना वैभव बढ़ जाता है, उतना तनाव भी

बढ़ जाता है, चिन्तायें भी बढ़ जाती हैं। जब आप अपने पिता के अकेले पुत्र थे तो जैसे रहते थे वैसे अपने पुत्रों के बीच रह कर दिखाओ। शोक में डूब गये, कि सुन रहे हो? मैं आपको शोक में डुबाने के लिये बात नहीं कर रहा हूँ, स्वरूप में डूबने के लिये बात कर रहा हूँ। शोक में मत डूबो। **अज्ञानी शोक में डूबता है, ज्ञानी स्वरूप में डूबता है। समय दोनों में जाता है। स्वरूप में डूबेगा तो परमात्मा हो जायेगा, शोक में डूबेगा तो बहिरात्मा हो जायेगा।** अब निर्णय कर लो कि करना क्या है?

स्वरूप में डूबना है तो परिग्रह छोड़ना पड़ेगा। रागादिक परिग्रह को छोड़ करके व्रतों में दृढ़ हो करके धीर बनो। अधीर होना कायरता है, दुर्बलता है, शक्ति की क्षीणता है। अधीरता में सम्पत्ति नहीं कमा पाओगे, मोक्ष क्या जा पाओगे? सुबह से दुकान खोलते हो, आवश्यक नहीं है कि चल जायेगी। कभी-कभी तो घर से खर्च करना पड़ता है। तब भी आप आशा की डोर लगाये बैठे रहते हो कि चलो, कोई-न-कोई शाम तक ही आ जाये। अन्तिम बढ़ाने तक मंगल करने तक सोचता है कि अभी भी कोई ग्राहक आ जाये। कितनी आशा आपको बन्धी है। **श्री कमाने में तुम इतना धैर्य रखते हो, श्री जी बनने के लिये कितना धैर्य चाहिये। उतावले का मोक्षमार्ग नहीं है। पापी के भी पाप छुड़ाना है तो उससे भी प्रेम की भाषा बोलो। अशुभ सोचना बन्द करो, अशुभ सुनना बन्द करो, अशुभ बोलना बन्द करो, धैर्य को लेकर आओ। तुम्हारे घर के जितने काम बिगड़े हैं, अधीरता में बिगड़े हैं।**

बेटा अलग होने की बात करे तो धैर्य रखना, गरम मत होना, उसकी कमियाँ मत खोजना। कमी यह देखना कि जिसने भवन बनाया है, खण्डहर होने के लिये नहीं बनाया, भवन तो भवन के लिये ही बनाया है। समय कहता है कि तुम सुन्दर बना सकते हो, परन्तु सुन्दर बना कर रख नहीं सकते हो। तुमको बनाकर मुझे सौंपना पड़ेगा ऐसा काल कह रहा है। समाज को सौंपो या नहीं, लेकिन मुझे तो सौंपना ही पड़ेगा और मैं इसे खण्डहर करके रहूँगा।

तेरे माता-पिता ने तुझे बूढ़ा जन्म नहीं दिया। माँ ने जब जन्म दिया, बिल्कुल सुकुमार, लाल शरीर था, सर्वाङ्ग सुन्दर दिखता था, लेकिन काल कह रहा है, माँ!

तू जन्म दे सकती है, किसी की गोद में दे या न दे लेकिन तुझे मेरी गोद में तो देना ही पड़ेगा। मैं उसको बूढ़ा करके छोड़ूँगा और एक दिन शरीर से भी निकलवा दूँगा। मैं तो आपको मात्र सत्य बता रहा हूँ कि तुम किस भ्रम में पड़े हो? भवन खण्डहर हो गये, किसी ने नहीं गिराये। जो ईंट से ईंट चिपकी थी, उसमें दरारें आ चुकी हैं।

तुम ये मत देखो कि बेटा मेरे से अलग होना क्यों चाह रहा है। तुम ये देखो कि मकान पुराना हो चुका है और उसको किसी ने गिराया नहीं है, ईंटें ईंटों से चिपकी थीं। ये दरार क्यों पड़ने लगी? मसाले की स्निग्धता कमजोर हो चुकी है। बालू झरने लगी है, इसलिये ईंटें खिसकने लगी हैं। आप ये मत देखो कि बेटा अलग क्यों हो रहा है? ये क्यों नहीं देखते हो कि मेरे भावों की स्निग्धता में कमजोरी आ चुकी है। जो दुलार मैं पहले देता था, मेरा दुलार अब बँट चुका है इसलिये बेटा भी मेरे से दूर होना चाहता है। तुम दूर कर दो उसको, चिपकाने का प्रयास मत करो। आज तक पिताओं ने बेटे की ही गल्ती देखी है, आज तक बेटों ने पिता की ही गल्ती देखी है। अपनी-अपनी गल्ती देख लेते तो न पिता में शत्रुता दिखती न बेटे में शत्रुता दिखती। दोनों को समझ में आ जाता कि ऊपर-नीचे जो ईंटे थीं, उनके बीच की मिट्टी सूख चुकी है, इसलिये दरारें पड़ चुकी हैं, और-कुछ नहीं है। परस्पर का वात्सल्य सूख गया, इसलिये दरार आ चुकी है, और-कुछ नहीं है। या फिर स्वार्थ की घुन लग चुकी है। इसलिये दूर हो रही है। फिर भी रोना नहीं। जो है, सो है।

मुमुक्षुओ! साधु का क्या आनन्द का जीवन है। इन बेचारों को दिन-दिन भर कमाना पड़ता है, तब भी सोचना पड़ता है। ये साधु कुछ भी नहीं करते हैं, तब भी लोग पहले से खड़े मिलते हैं, भो स्वामी! पधारो। मुनियों को देखकर ईर्ष्या नहीं होती? होनी चाहिये। कुछ भी करते नहीं, फिर भी दोनों हाथों से खाते हैं। मैं भी खा सकता हूँ। ठीक है। तो फिर चलो, बनो। रागादि एवं परिग्रह से रहित, धीर, वीतरागी, श्रमण, निर्मल चित्त वाले, बुद्धिमान, वीर। शरीर छोटा हो कोई विकल्प नहीं, लेकिन सोच छोटी नहीं होना चाहिये। घर के संवाद भी छोटी बुद्धि वालों से होते हैं। मुनि-संघों के विसंवाद भी छोटी सोच वालों से होते हैं। निर्ग्रन्थता की

अनुभूति लेना है, अरहन्त दशा को प्राप्त करना है तो मोटे शरीर से काम नहीं चलेगा, विशाल निर्मल बुद्धि से काम चलेगा।

अपनों को अपना मान लेना, अपनों से अपना मनवा लेना, बहुत बड़ी बात नहीं है। परायों के बीच में अपना होके रहना सीखो, इसका नाम साधुता है। तेरा पुत्र तो तुझे पिता कहेगा ही। सारे नगर के लोग तुझे सम्मान के साथ देखें, तब समझ में आता है कि हाँ, मैं कुछ बड़ा हुआ हूँ। पर के बेटों से दादा कहलाने के लिये तुझे स्वार्थ छोड़ना पड़ेगा। अपने शिष्यों का गुरु बन कर बैठ लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। रावण भी अपनी लंका में बहुत सम्मान प्राप्त करता था। राम बन कर दिखाओ, जो शत्रु के घर में भी सम्मान को प्राप्त करता था। राम का सम्मान राम के वैभव से नहीं था, उनके चरित्र से था, उनकी सरलता से था, उनकी विशाल बुद्धि से था। इसलिये अपने हृदय को विशाल करना। ऐसे महापुरुष सम्यक् तप का आचरण करते हैं जो राग-द्वेष को बढ़ाने वाले परिग्रह का त्याग कर देते हैं, दृढ़ व्रती होते हैं। महा बुद्धिमान, निर्मल चित्त के धारक जीव ही निर्दोष संयम का पालन कर पायेंगे। मन में किञ्चित् भी विकल्प रहेगा तो तपस्या निर्मल नहीं हो सकती है।

ज्ञानी! पैर का काँटा जमीन पर पैर अच्छे से नहीं रखने देता, ऐसे ही शल्य का काँटा मोक्षमार्ग पर अच्छे से चलने नहीं देता। इसलिये निशल्य होकरके जीना।

आज से पाँच मिनट अपने आप को देना, जब तक पर्याय में प्राण रहें। मैंने न आपसे कुछ छुड़ाया है, न माँगा है, दिया ही है। अपने लिये पाँच मिनट दे देना। मेरा विश्वास है यदि आपने ये पाँच मिनट पाँच वर्ष भी दे दिये तो आपके घर के लोग जो तुझको शत्रु-जैसे देखते थे, वे तुम्हारे चरण छुयेंगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"जीवन की सफलता"

सप्तभीस्थानमुक्तानां, यत्रास्तमितशायिनाम्।
त्रिकालयोगयुक्तानां, जीवितं सफलं भवेत्॥ सा. स. 225॥

अन्वयार्थ—सप्तभीस्थान मुक्तानां = जो सात प्रकार भयों के स्थान से मुक्त हैं **यत्रास्तमितशायिनाम्** = जहाँ भी सूर्य अस्त हो जावे वहीं विश्राम करने वाले हैं **त्रिकालयोगयुक्तानां**= एवं तीनों काल योग करने वाले हैं **जीवितं सफलं भवेत्** = उन्हीं का यह जीवन सफल होता है।

भावार्थ—हे भव्य! उन्हीं मानवों का जीवन सफल होता है, जिनका चित्त सात प्रकार के भय-स्थानों से विमुक्त है, जो जहाँ पर सूर्य अस्त होता है, वहीं पर शयन करते हैं, रात्रि में गमन नहीं करते हैं तथा जो वर्षा, शीत और उष्ण इन तीनों कालों में योग धारण करने वाले हैं।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में निर्ग्रन्थ वीतरागी तपोधन के अन्तस् स्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। निर्ग्रन्थ, निर्विकार, निज समरस में लवलीन, विषय-विष से दूर आत्म-भवन में लीन, जड़ भवनों से दूर, सप्त भय से विमुख, पापों से भयभीत ये वीतरागी दिगम्बर तपोधन की पहचान है, जिन्होंने अपने भीतर के भगवान् को समझ लिया हो। श्रद्धा के भगवान् के दर्शन हो चुके होते हैं, आस्था का भगवान् तो दिखने ही लगता है जब तीर्थ के रास्ते में व्यक्ति गमन करता है। यदि आस्था का परमात्मा सम्मेदशिखर में न होता, तो आज सम्मेदशिखर की वन्दना का रास्ता पकड़ नहीं सकते थे। गिरनार की टोंक पर तुमको नेमिनाथ झलकते हैं, परन्तु अपने स्थान पर बैठ कर स्वर्णभद्र कूट के पारसनाथ न दिखें, उर्जयन्त पर्वत की उन चोटियों पर, गिरनार की उन शिलाओं के ऊपर तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी न झलकें, पावापुर के सरोवर में वर्द्धमान न दिखें, कैलास की चोटियों पर भगवान् ऋषभदेव न झलकें, विश्वास रखना, तुम रास्ते में चल नहीं सकते हो। मार्ग की कठिनाइयाँ होती हैं। जो आनन्द घर में रहने पर आता

है, वह तीर्थ वन्दना में कहाँ? यह सबको ज्ञात रहता है कि घर के बाहर घर-जैसी समतायें (सुविधायें) नहीं होंगी, विषमतायें होंगी। फिर भी आपको घर में समता-सुख होने पर भी विषमता दिखती है। मोक्ष मार्ग की विषमता में भी आपको समता दिखती है। **भगवान् को देखने वही जा सकता है जिसको भगवान् दिखते हैं। जिसको भगवान् नहीं दिखते, वह भगवान् को क्या देखने जायेगा? उसे तो पत्थरों के टीले दिखेंगे, पत्थरों के ढेर दिखेंगे और एक पाषाण में मनुष्य की आकृति दिखेगी,** और-कुछ नहीं दिखेगा। जब व्यक्ति तीर्थवन्दना को जाता है, यथार्थ मानिये, जब आपको अपने घर में भगवान् दिखने लगते हैं, तब आप तीर्थों की ओर जाते हो। एक श्रावक या ग्रहस्थ को जब अपने घर के आँगन में भगवान् दिखने लगते हैं, तो वन्दना के भाव करता है। ऐसे ही जब वैरागी को भीतर का भगवान् दिखने लगता है, तब वह चारित्र धारण करने के परिणाम करता है। लक्ष्यविहीन क्रिया मोक्षमार्गी में रहती नहीं। लक्ष्य पवित्र होना चाहिये। **लक्ष्य पवित्र होगा तो लक्ष्य भी पवित्र दिखेंगे। पूत के पाँव पालने में दिखते हैं तो परमात्मा के पाँव चारित्रवान् मुनि के पालने में दिखते हैं। जिसका आचरण पवित्र है, उसका भविष्य भी पवित्र है।** कढ़ाही में रखा हुआ घृत यदि शुद्ध ब्रज की गाय-भैंसों का है, तो पूरा मोहल्ला जान सकता है। यदि शुद्ध घी का छोंक भी किया जाय, तो मोहल्ले में सुगन्ध छा जाती है। ऐसे ही शुद्ध आचरण पूरे विश्व में अपनी महक फैला देता है। यही कारण है कि तीर्थंकर भगवन्तों ने, ऋषियों/साधुओं ने जो साधना की है, वह झाड़ियों में छुप कर की है, पर्वतों की चोटियों में बैठ कर की है। एक आदिसागर महाराज हुये हैं अंकलीकर के। आचार्य शान्तिसागर महाराज तो दक्षिण से उत्तर तक आये, उन्होंने धर्म की प्रभावना खूब की, परन्तु आदिसागर महाराज के निश्चित क्षेत्र थे। उसी क्षेत्र में विहार करते रहते थे। वे दक्षिण से उत्तर को नहीं आये। ये ऐसे योगी थे कि सात दिन में एक बार आहार करते थे और उनका नियम था कि जो सामग्री श्रावक प्रथम बार दिखा देता था, उसी सामग्री को लेना है पूरे आहार में। किसी ने आम दिखा दिया तो बस, उतना ही लेकर आ जाते थे। वह भी सात दिन के बाद। इस भूमि पर ऐसे-ऐसे साधक हुये हैं।

आज अपने सामने तो नहीं हैं, उत्तर भारत में आये भी नहीं हैं। ध्रुव सत्य है, धूपदान में धूप डाल दो और एक कोने में छिपाकर आ जाना और काली चादर से ढक देना। अग्नि से वह धूप अपनी सुगन्ध बिखेर रही है, कक्ष को महका रही है। ऐसे ही योगियों से मेरा कहना है कि मात्र लोकप्रभावना के राग में लिप्त मत हो जाना। जैसे धूपदानी एक कोने में रखी रहती है और उसकी सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है। आपका चारित्र विशुद्ध निर्मल होगा, पवित्र होगा, तो सारे विश्व में आपका नाम अपने आप फैल जायेगा। जिसमें सुगन्ध ही नहीं है, टेसू का फूल, लाखों फूल अपनी पीठ पर टाँग लेना और गली से निकल जाना, न कोई भौंरा पीछे लगेगा न कोई पुरुष पूछेगा। ऐसे ही आपने सुगन्धविहीन करके वैराग्यविहीन चारित्र का पालन किया, बाहर के बैंड तो बज सकते हैं, लेकिन भीतर सुगन्ध नहीं है तो किसी को प्रभावित नहीं कर सकते हो। आचार्य आदिसागर की सुगन्ध उत्तर भारत तक आ चुकी थी। उत्तर भारत का युवा एक श्रावक शास्त्री करके आदिसागर महाराज के चरणों में आ गया।

इसमें कोई शंका नहीं करना, एक भी सन्तान उज्जवल निकल आयी तो पता नहीं कितनी पीढ़ियों तक नाम रोशन करेगी। वह उत्तर भारत का युवा आ. आदिसागर से दीक्षित हो गया। कुछ समय बाद गुरु ने अपना आचार्यत्व इन युवा मुनि को दिया। वे आचार्य महावीरकीर्ति महाराज बने आज सारे विश्व में उनका नाम है। आदिसागर, शान्ति सागर (दक्षिण), शान्तिसागर छाणी इन तीन आचार्यों की परम्परा ही आज पूरे विश्व में दिगम्बरत्व का दर्शन (परिचय) करा रही है। वैसे तीन भव्य जीव हो गये, नहीं-तो दिगम्बर जैनियों को लोग बिन-गुरु कहना शुरू कर दिये थे कि इनके कोई गुरु नहीं हैं। इन ज्ञानी से पुण्यात्मा इनके बेटे का बेटा है। तेरे पिता दादा ने तो तुझे मेले में जाकर खिलाया, गुब्बारे दिये, खुनखुना दिये, आज तू अपने बेटे को गोद में लेकरके मुनियों के बीच में खिलाने लाता है। तू भाग्यवान्, कि वह पोता भाग्यवान्? पण्डित बनारसीदास, दौलतराम, भूधरदास इन सबसे पुण्यात्मा आज का दूध पीता बच्चा है। ये तो कमरे में कपड़े उतार कर कह कर चले गये 'ते गुरु मेरे उर बसो', दिगम्बर मुनि के दर्शन नहीं हुये। आजका बच्चा

आँख खोलता है तो उसे मुनि के दर्शन होते हैं। इस बात को भूल जाना, लोग कहते हैं कि आज यहाँ धर्म कम है। जहाँ तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म हुआ है, जब उनको वैराग्य हुआ तो ऐसा हो ही नहीं सकता कि आगरा से न निकले हों। इस भूमि में बैठ कर आप अपने सामायिक का विषय बनाओ। इस भूमि में कभी नेमिनाथ स्वामी अपनी बालमण्डली के साथ घूमा करते थे। फिर चिंतन करना कि इस भूमि पर नेमिनाथ स्वामी मुनियों के साथ विचरण करते थे। फिर सोचना कि उनका दिव्य समवसरण यहाँ लगा होगा। उस सत्य को निहारो, श्रद्धा को समझो। समुद्रविजय के एक ही तो पुत्र थे नेमिनाथ स्वामी। आज सारा विश्व जानता है। वेदों में, पुराणों में नाम आता है तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी, वर्द्धमान, ऋषभदेव। लोगों को लगा कि कोई वस्तु तो है। विश्वास रखना, **सत्य से व्यक्ति दूर हो सकता है, परन्तु सत्य को दूर नहीं कर सकता।**

आप अपनी स्ववशता में संयम का पालन नहीं कर पा रहे हो। आपका बेटा आपसे नहीं कहेगा। मेरे से बोला—महाराज! मन करता है कि मैं भी अपने जीवन में संयमित जीवन जीऊँ, परन्तु क्या करूँ? युवावस्था की आँधी-तूफान की गर्मी को सहन नहीं कर पाता हूँ। अपने आप को वश नहीं कर पाता हूँ। सत्य से दूर अवश्य है, चारित्र से दूर अवश्य है, पर चारित्र को श्रद्धा से दूर कहाँ कर रहा है। **कितना ही पापीजीव होगा, वह धर्म से दूर हो सकता है, पर अपने हृदय से धर्म को दूर नहीं कर सकता।** माँ बेटे के साथ मायाचारी कर सकती है और करती ही है। माँ! कितने विषयों में मायाचारी हो जाती है। हे तात्! कितने विषय में मायाचारी कर लेते हो। जब ठण्डे होकर बैठते हो, तब हृदय अवश्य कहता है कि गलत हो, पर आपसे सत्य दूर नहीं है। मैं इस बात पर किञ्चित् भी विश्वास नहीं करता हूँ कि लोग सत्य को जानते नहीं हैं। एक कसाई जीवों के टुकड़े कर रहा हो, वह भी मुनि को देखकर कहता है कि कपड़ा ढंक दो। वह भी माँस की टोकनी पर कपड़ा डाल देता है। और यहाँ तक देखा है कि हाथ जोड़ कर बैठ जाते हैं। एक ओर जीवों के टुकड़े कर रहा है, दूसरी ओर दिगम्बर मुनि के प्रति हाथ जोड़ रहा है। वह भी समझ रहा है कि सत्य तो यही है। धिक्कार है मेरी

पर्याय को, धिक्कार है, मेरे परिणामों को है जो सत्य को जानते हुये भी सत्य पर चल नहीं पा रहा हूँ। मेरा मिथ्यात्व और चारित्रमोहनीय का तीव्र उदय है। **सत्य को जानना कठिन नहीं है, सत्य को पहचानना कठिन है और सत्य को पहचानने के बाद सत्य पर चलना कठिन है।**

परवस्तु पराधीन है। ये माइक मेरा द्रव्य नहीं है, परद्रव्य है। इसका जो परिणमन चल रहा है, वह इसका स्वभाव है। लेकिन अच्छा-बुरा चिन्तन लाना इसका स्वभाव नहीं है, मेरा स्वभाव है। **साधु और असाधु में ज्यादा अन्तर नहीं है। जो विपरीतताओं को विपरीतताओं में देखता है, उसका नाम असाधु है। जो विपरीतताओं में भी सम्यक् सोच लाता है, उसका नाम साधु है।** आपको किसी ने घी, बूरा, आटा दे दिया तो तू सूखा फाँकेगा और वहीं किसी माँ को दे दिया तो वह एक लोटा पानी मिला करके बढ़िया हलुआ बना लेगी। बस, इतना ही तो अन्तर है। एक आटे को संस्कारित करके भोजन बना लेता है, दूसरा उस आटे को ही फाँक लेता है। हमारे आचार्यों का चिन्तन अद्भुत है। ऐसे ही मन आपके पास भी है, वचन आपके पास भी है, शरीर आपके पास भी है, आटा तो है, पर बनाने की प्रज्ञा क्या है? मन, वचन, काय को जिसने जोड़ दिया है। जितना शब्दों में रहस्य है, उससे कोटि-कोटि गुना अङ्कों में रहस्य है। पूरा ज्योतिष अङ्कों पर टिका हुआ है। पूरा भूगोल अङ्कों पर टिका हुआ है। आपको ज्ञात होना चाहिये 'सिरि भूवलय' ग्रन्थ अङ्कों में है, जिसको भारत सरकार रखे हुये है। यह वीतरागी दिगम्बराचार्य का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की विशेषता है कि आप चाहो तो कुरान की आयतें निकाल लो, चाहे आप वेदों की ऋचायें निकाल लो, चाहे आप गीता के श्लोक निकाल लो, चाहे जिनवाणी की गाथायें निकाल लो। आपको पढ़ने की शैली आना चाहिये। आपके पास मन वचन काय तीनों हैं। जो तीनों को जोड़ लेते हैं, एकाग्र करना जानते हैं, जब एकाग्र कर लें, तब वे साधु हो जाते हैं। जब एकाग्र कर चुके होते हैं, तब वे योगी हो जाते हैं। आपने बिरलन करके रखा है। जहाँ मन जाना चाहे, वहाँ मन लगा देते हो। जैसे वचन बोलना चाहो सो बोल देते हो। जैसी शरीर की चेष्टा करना चाहे सो कर लेते हो। यही भोगियों का काम है। साधना

कोई वस्तु नहीं, शान्त हो जाओ। मैं साधना करूँ, मैं साधना करूँ, यही विराधना है। क्यों? परिणामों को शान्त नहीं रख पा रहा है। कुछ नहीं करना, यही साधना है। कुछ करते रहना बहुत सरल है। करने की आदत इतनी खोटी होती है कि व्यक्ति साधु भी बन जाये, घर नहीं बनायेगा तो तीर्थ बनाने लग जायेगा। **करने के संस्कार अनादि के हैं। करना और माँगना, ये दो चले जायें तो सच्चा साधु है। करेगा सो माँगेगा। करना और माँगना ये दो साधुता के शत्रु हैं।** आपका सम्मान तभी तक है, जब तक आप मन्दिर के नाम पर किसी के द्वारे रसीद-कट्टा लेकर नहीं पहुँचे। खुशी में तुम एक करोड़ जेब से निकाल कर दे सकते हो। कट्टा वाले को देखकर ऐसा लगता है कि 'कट्टा' ही लेकर आ गया हो। जो है, सो है। माँगने से बड़ा अनादर नहीं है। जैनसमाज विश्व की ऐसी समाज है जो घर के काम अपने घर में निपटाती है, लेकिन दूसरी जगह भीख माँगने नहीं जाती है। इस सत्य को भूल मत जाना। सारे विश्व का रिकार्ड है जैनी अपने धर्म के नाम पर किसी दूसरे के घर नहीं जाता कि हम विधान कर रहे हैं, पंचकल्याणक कर रहे हैं, सहयोग करो। इस परम्परा को जीवित रखना। अपन देनेवाले हैं, लेनेवाले नहीं हैं। अन्य जगह कोई काम हुआ तो बिना जैनियों के काम नहीं बनता। कभी नहीं माँगना। अयाचक वृत्ति है। यह भिखारियों का मार्ग नहीं है, यह वीतरागियों का मार्ग है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं, जिन्होंने मन वचन काय को जोड़ लिया है, अपने में अपने आप को लगा लिया है, वह योगी है। ऐसा योगी जब समरस में लीन होता है, तो जगत् के सारे रस फीके हो जाते हैं। श्रावक से पूछना, जब साधना में लीन साधु के दर्शन करता है, तो उसे कितना आनन्द आता है। वह आनन्द साधु को पता नहीं है, कि कौन मुझे देखकर क्या आनन्द लूट रहा है। प्रभु के दर्शन करके साधु जो आनन्द लूट रहे हैं, वे प्रभु भी नहीं लूट रहे हैं। प्रभु का आनन्द प्रभु लूट रहे हैं। साधु का आनन्द साधु ले रहे हैं और श्रावक का आनन्द श्रावक ले रहे हैं।

हे श्रमण! आपकी मुद्रा को देखकर श्रावक आनन्द में डूब जाता है तो आपका आनन्द कितना होगा? पानी के सामने से गुजरने पर जब शीतलता

महसूस होती है, तो पानी कितना ठण्डा होगा? साधु के पास आने पर आनन्द आता है, तो साधु के पास कितना आनन्द होगा? शीतल पानी चाहिये है तो मटकी में पानी भरते हो और मटके को भी ठण्डे स्थान पर रखते हो। प्याऊ बनाते हो तो खस की टटिया लगा देते हो और सुगन्ध भी चाहते हो तो खस की एक डली भी डाल देते हो। हे श्रावको! **मटके के पानी को ठण्डा रखना चाहते हो तो उसे अग्नि की सिगड़ी पर मत रखना, उसे धूप में मत रखना। ऐसे ही मित्रो! इन योगियों के शीतल ज्ञान समरसी नीर से भरा हुआ यह आत्म-घट है। इसे शीतल रखना चाहते हो तो इन योगियों को किसी संस्था की सिगड़ी पर मत रखो, इन योगियों को अपने स्वार्थ की धूप में मत सेंको, इनको स्वच्छ रहने दो।** अन्यथा तुमको म्यूजियम में देखने जाना पड़ेगा कि दिगम्बर मुनि कैसे होते हैं? तुमने मुनियों को मुनीम बना रखा है। कि महाराज देखते रहना। इनको मुनि रहने दो, मुनीम मत बनाओ। ये गुणस्थान की दीवाल को ऊँची करें, इ ंट-चूने की दीवाल में अपना जीवन नष्ट न करें। सत्य यही है। इस बात को भूल जाओ कि कौन देखेगा? जिसे तुम देखने चले थे, उसे देखो। ज्ञानी ने सिनेमाघर जाकर तीन सौ का टिकट खरीदा और जैसे ही अन्दर गया, एक जैबकट उसके पीछे बैठ गया। अब वो आगे देखे कि पीछे? बाहर आकर कहता है कि मेरा तो पूरा समय ऐसे ही चला गया, तीन सौ ऐसे ही गये। क्यों? पीछे जेबकट बैठा था। ऐसे ही हे मुनिराज! तुमने रत्नत्रय का टिकट खरीदा, मोक्षमार्ग पर चल रहे थे और स्वानुभूति की पिक्चर देखने आये थे, आत्मानुभूति की तस्वीर देखने आप आये थे, समाजरूपी जेबकट तुम्हारे पीछे लग गये कि ये संस्था बना दो। तुम्हारा पूरा समय नष्ट हो गया। सभी वीतरागी श्रमणों तक यह चर्चा भेज देना कि महाराज! इन जबकतरों से दूर रहो। साधुओं को अपनी संस्थाओं से दूर रखो तो बहुत अच्छा रहेगा। श्रावकधर्म भिन्न है, साधुधर्म भिन्न है। अनियत विहारी, अनियत निवासी।

जबलपुर में वाचना के मध्य बिहार के दो ब्राह्मण युवा आये। उन्हें पता चला कि यहाँ साधु हैं। वे भी प्रवचन में आ गये। प्रवचन के बाद कक्ष में आकर डायरी खोली और कहते हैं, महाराज साब! मुझे बहुत अच्छा लगा! आप अपना एड्रेस

दे दो, जिससे मैं पुनः दर्शन कर सकूँ। कोई फोन नं. वगैरह हो तो बता दीजिये। कोई निश्चित स्थान? देखो भाई! मेरा नियत स्थान जो जाने का है, वह तो सिद्धशिला है और वर्तमान में पूरा भारत देश है। यदि आश्रम की बात पूछ रहे हो तो ब्रह्मलीनता ही मेरा आश्रम है। वो सोचते हैं कि ये बोल क्या रहे हैं? बोले, महाराज! तनक सरल भाषा बोलो। मैंने कहा, भैया! ये दिगम्बर मुनि कालिया नाग के समान है।

विश्व में कोई ऐसी वस्तु नहीं होती जिसमें औषधि के गुण न हों। विश्व में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जिसमें कोई गुण न हो। आपके अन्दर ग्रहण करने की सामर्थ्य होनी चाहिये। कालिया नाग में भी गुण है। धवला जी षट्खण्डागम पुस्तक नं. एक में लिखा हुआ है 'जैन मुनियों को कालिया नाग की भाँति रहना चाहिये।' जैसे कालिया नाग अपने जीवन में कभी अपना भवन नहीं बनाता। बामी को दीमक बनाती है, उसमें कालिया नाग रहता है। वह तो निष्पृह रहता है। ऐसे ही योगियो! जैसे कालिया नाग अपना घर नहीं बनाता, परघरों में रहता है, ऐसे ही दिगम्बर मुनि कभी अपना घर नहीं बनाता है, पर के घरों में रहता है। इस अपेक्षा नाग के तुल्य कहा है। जिनको निज में निज की लगन हो, ऐसे निर्ग्रन्थ समाचार किसके लेंगे? वे मात्र समाचारी में लीन होते हैं। उन्हें जगत् के समाचार लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिनको आना होता है, स्वयमेव आते हैं और जिनको जाना होता है, स्वयमेव जाते हैं। श्रावकों के अन्दर भक्ति होती है, उनको चैन नहीं पड़ती, वे स्वयमेव चले आते हैं। जैसे गर्म लोहे के पिण्ड के पास चारों ओर से पानी खिंचा चला आता है, ऐसे ही वीतरागी श्रमण के पास ये श्रावक खिंचे चले आते हैं, आपको बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। साधना के मार्ग को सुरक्षित रहने दो।

अब वे युवा समझ गये कि इनका कोई स्थान नहीं है, ये घूमते रहते हैं। संसार में सर्वाधिक घुमक्कड़ दिगम्बर जैन साधु होता है। ज्ञानी! जितने घरों का पानी तूने नहीं पिया होगा, उतने घरों का पानी मैं पी चुका हूँ। इसलिये मुझे पता चल जाता है कि इस घर के लोग कैसे होंगे। मन्दिर की देहरी में पैर रखो तो समाज का पता चल जाता है और घर की देहरी में पैर रखो तो परिवार के सदस्यों का पता चल जाता है कि इस घर में कुछ नहीं है, ये गरीब लोग हैं।

एक बार विहार के समय एक अजैन युवा ब्रह्मचारी जी से पूछता है 'ये आप लोग नदी के पास घूम क्यों रहे हो? सब नंगे घूम रहे हैं? कुछ सफेद कपड़े पहने हैं। चेहरे से तो नहीं लगते कि आप गरीब हो। चेहरे से तो लग रहे हो जैसे राजा महाराजा सेठों के बेटे होंगे। फिर भी कपड़े क्यों नहीं हैं?' ध्रुव सत्य है, जो फटे कपड़े पहने सो गरीब, दरिद्री अच्छे कपड़े पहने सो अहंकारी, जो कपड़े उतार कर घूमे सो ज्ञानी। आनन्द है ना? कुछ भी कहो, आनन्द तो है। जब आनन्द है, तो एक बार तो लूट कर देखो। ड्रेस बदल-बदल करके, ससुराल के अलग कपड़े, मन्दिर के अलग कपड़े, बाजार के अलग, एक बार उतार कर तो देख, आनन्द है। जब सारे जगत् के आनन्द समाप्त हो जाते हैं, तब निर्ग्रन्थ दशा का आनन्द प्रारम्भ होता है।' उन युवाओं ने अपनी जेब से हरे-हरे लम्बे-लम्बे नोट निकाले और मेरे हाथ की ओर लाने लग गये और कहते हैं—महाराज साब! अब मैं जा रहा हूँ, अपनी भेंट स्वीकारो।' मैंने कहा, 'भेंट को ही तो छोड़ कर आये हैं। आकिञ्चन स्वरूपोऽहं। सारे जगत् के लोग श्री को देखकर नतमस्तक होते हैं, यहाँ श्री आके भी चरणों में लोट जाये तब भी श्री से दूर होके चलते हैं। उसका नाम दिगम्बर मुनि होता है। **वमन करके चाटना श्वान का काम तो हो सकता है, लेकिन वह किसी भी इंसान का धर्म नहीं होता। यदि इंसान का धर्म नहीं है, तो साधु का धर्म कैसा?** आप स्वयं देखो, रखेंगे किस पर? उन्ना लत्ता तो हैं ही नहीं। जेब का साधन वस्त्र ही नहीं है, तो भरेंगे किसमें? तुमको मालूम होना चाहिये कि कितना स्वतन्त्र आनन्द का जीवन है। '**पाणीपात्र दिगम्बराः।**' जिनको भोजन के लिये भी बर्तन की आवश्यकता नहीं है। ये पाणीपात्र में भोजन करते हैं। सुबह युवा कह रहे थे, महाराज! साधु के साथ विहार करने में कितना आनन्द आता है। आनन्द चखना हो तो साधु बन कर देखो। चर्चा ऐसी करो जिससे लोगों की आस्था बढ़े कि हाँ, सत्य मार्ग ये है।

उन बेचारों ने आँखें नीचे करके अपने नोट अन्दर रखे। महाराज! अभी तक तो मैं भेंट ही देता रहा, पर अब तक भेंट नहीं हो पाई थी साधु से। जो भेंट ले, वह वीतरागी साधु नहीं होता है। जब वीतरागी साधु से भेंट हो जाये, उससे बड़ा

कोई आनन्द नहीं होता। इस मुद्रा को भिखारी मत बनाना। कठोर लग सकता है आपको, परन्तु हर श्रावक के हृदय से पूछना, स्वीकार सत्य को ही करता है। महाराज बनके ही रहना। निर्ग्रन्थ तपोधन जिस घर के द्वार पर आयें और चौके में पहुँचे, उस श्रावक के गद्गद् परिणाम तो देखो। जब वे सहजता में खड़े हों, तब हे वर्द्धमान! मैंने आपको तो नहीं देखा, परन्तु आपकी मुद्रा आज भी देखने को मिल रही है। जब श्रावक के मन में साधु को देखकर महावीर की याद आने लग जाये, तब तो आनन्द है। साधु को देखकर मान की याद आने लग जाये, तो क्या लाभ? महावीर की याद आना चाहिये।

ध्रुव सत्य है, तत्त्व में जो आनन्द है, वह जगत् में कहीं नहीं है। अब तो ऐसे भाव बनाओ। कभी-कभी ये लगता है कि वे जीव कितने भाग्यवान् होंगे जो सीमन्धर स्वामी के समवसरण में बैठे होंगे। वे जीव कितने महान् होंगे जो महावीर स्वामी के समवसरण में दिव्यदेशना को सुने होंगे। वे श्रावक कितने महान् होंगे जिन्होंने योगी के हाथ पर ग्रास रखा होगा, उनके श्रीमुख से कर्णाञ्जुलि में जिनवाणी को धारण किया होगा। वे सब भव्य पुण्यात्मा जीव हैं।

यथार्थ मानो, अपन सभी का इतना नियोग है कि सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में भी हमारी निर्मल पर्याय झलक रही होगी।

ऐसा कौन-सा नियोग है कि आज कलिकाल में भी हम बैठ करके जिनवाणी सुनने के भाव बना रहे हैं। निर्ग्रन्थों की बात को निर्ग्रन्थों के मुख से सुनने का अलग ही आनन्द है। एक बात बताओ, घर जाओगे या जाना पड़ेगा? जाना पड़ेगा। मेरे मित्रो! जब इतना कष्ट है वहाँ पर, तो मत जाओ।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि उन जीवों का जीवन सफल है जो सप्त भय से रहित हैं और वे निर्ग्रन्थ तपोधन जयवंत हों, जिन्होंने वीतराग मुद्रा को धारण किया है। निर्भय मुद्रा यदि कोई है, तो मात्र वीतराग मुद्रा है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

"आर्त्त-रौद्र का त्याग करो"

आर्त्त-रौद्र-परित्यागाद्, धर्म-शुक्ल-समाश्रयात्।
जीवः प्राप्नोति निर्वाणमनन्तसुखमच्युतं॥ सा. स. 226॥

अन्वयार्थ—आर्त्तरौद्रपरित्यागात् = आर्त्त और रौद्रध्यान का त्याग करने से, **धर्म-शुक्ल-समाश्रयात्** = धर्मध्यान, शुक्लध्यान का आश्रय करने से, **जीवः** = यह जीव **अनन्तसुखं** = अनन्तसुख से पूर्ण, **अच्युतं** = और अविनाशी, **निर्वाणं** = स्वात्मस्थिति रूप मोक्ष पद को, **प्राप्नोति** = प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—हे भव्य! आर्त्त-रौद्रध्यान का त्याग करने से और धर्मध्यान एवं शुक्ल-ध्यान का आश्रय करने से जीव अनन्तसुख से परिपूर्ण अविनाशी निर्वाण (स्वात्मस्थिति रूप मोक्ष पद) को प्राप्त कर लेता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन के सहजस्वरूप की व्याख्या कर रहे हैं। धन्य हों वे धरती के देवता जिन्होंने अपने अन्तस् में सप्तभय का विसर्जन कर दिया है। **जगत् में सबसे बड़ी भूल असत्य को पुष्ट करने वाली शक्ति है, उसका नाम है भय। जब तक भय अन्तरङ्ग में रहेगा, तब तक सत्य वाणी में आ नहीं सकता है। जब तक अंतरङ्ग में भय रहेगा, तब तक निर्दोष संयम पल नहीं सकता है। भयभीत पुरुष, जिसको मृत्यु से डर लगता है, वह जीवन में क्या कर सकता है? जितने मिथ्यात्व में डूब रहे हैं, डूबे हैं, डूबेंगे और डूब चुके हैं, भयभीत पुरुष हैं।** जगत् में सबसे बड़ा भय मृत्यु का भय है। मेरा मरण न हो जाय। अभय का सेवन कर रहे तो किसके नाम पर मेरा मरण न हो जाय? तेरा जन्म ही नहीं है, तो मरण किसका होगा? जिसने सत्य को समझ लिया है, उसका भय अभी समाप्त होता है। समझ लो विषय को। इस पर्याय में समझ में नहीं आया, तो जिस भी पर्याय में समझ में आयेगा, तो आपको स्वीकारना तो पड़ेगा कि सत्य ये है। यदि मुख से न सही, नलियों से बाँटलों से यह जीव रक्त पी रहा है, किसके कारण? मृत्यु

से भय है। माँस का सेवन नहीं कर रहा है, लेकिन सूखी गोलियों में माँस पीस कर खा रहा है, किसके पीछे? मृत्यु से डर है। पानी को छानकर पीने की बात चलती है, बाँटलों में जो ड्रग्स रखे हुये हैं, वे कब-कब छान कर रखे गये थे और कितने दिन तक छना रहेगा? ये किसके लिये पी रहे हो? मृत्यु से बचने के लिये। आप मुझ से यह प्रश्न मत करना, 'महाराज! व्यवहार तो भय का जीवन है।' क्या व्यवहार में लोग जिये नहीं हैं? हमारे बुजुर्ग नहीं जीते थे क्या? तेरी माँ तो घर में चंदोबा बाँध करके कुए के शुद्ध जल से भोजन बनाती थी। उस समय के तुम इतने छोटे-छोटे बच्चे बड़े हो पाये कि नहीं? जब माँ घर के अचार को बच्चे को नहीं खिला रही है, तो बीमारी क्यों देगी? माँ! यदि तुम्हारे मटके में अचार पड़ा हुआ है, चार-छः मास बीत गये हैं, वर्ष हो चुका है, डाक्टर से पूछ लेना, देश में जितने जैन डाक्टर हैं, वर्ष में एक बार सम्मेलन करके बोलना कि अब तीन भगवान् तुम्हारे पास आ चुके हैं। कौन? भगवान् की कोई नहीं सुनता है, डाक्टर पहला भगवान् है। चाहे बात परिपूर्ण असत्य हो, किसी ने पेपर में छाप दी, तो वह दूसरा भगवान् हो गया। कोई नियत नहीं है कि पेपर में लिखी बातें पूर्ण सत्य हो। आज आपकी ज्ञानी से पटती है, सो आप उसको मित्र बनाये बैठे हो। कहीं उसने आपके मन की नहीं की तो आप हजार दोष निकाल कर बैठ जाओगे। अथवा आज तुम्हारा उत्कर्ष दिखने लग गया, तो आपके सामने बहुत सारे समाचार आने लग गये। इसलिये जो जिनवाणी में लिखा है, उस आज्ञा-सम्यक्त्व का पालन तुम नहीं कर पा रहे हो। पर अमुख व्यक्ति के बारे में पेपर में ऐसा छपा हुआ था। पेपर वीतरागी की वाणी नहीं थी, छापने वाला वीतरागी नहीं था, छपवाने वाला भी वीतरागी नहीं था। छपवाने वाला द्वेषी है। वित्त दे दो, जो छपवाना चाहो सो छपवा सकते हो। एक पृष्ठ पर आपकी निन्दा मिल जायेंगी, पृष्ठ पलटने पर आपकी प्रसंशा भी लिखी मिल जायेगी। वही पेपर है। निन्दा करने वाले ने पैसा दिया, सो उसकी भी छाप दी और प्रशंसा करने वाले ने पैसे दिया, तो उसकी भी छाप दी। अब निपटो तुम। तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। जो है, सो है। हे पढ़ने वालो! तुम अपनी प्रज्ञा का दुरुपयोग क्यों कर रहे हो? आपका टाइम पास नहीं हो रहा है तो आप जिनवाणी के पृष्ठों को खोल कर पढ़िये। दुनियाँ की कषायों को पढ़कर

परिणामों को खोटा क्यों करते हो? जैन पत्रपत्रिकायें भी जो आ रही हैं, उनमें भी एक-दूसरे की कषाय भरी होती हैं। मैं भगवान् जिनेन्द्र की वाणी सुनना पसन्द करता हूँ। उस अन्धे पुरुष से पूछना जिसके नेत्रों की ज्योति जा चुकी है, कि देखने में कितना आनन्द आता है? उससे पूछना कि आँखों की कितनी कीमत है? क्यों तुम खोटे उपन्यासों को पढ़कर अपने नेत्रों की ज्योति को नष्ट कर रहे हो? पर की आलोचना प्रत्यालोचना पढ़ने में अपने आँखों की ज्योति को क्यों नष्ट कर रहे हो?

मेरे मित्र! विश्वास रखना, कलिकाल है। इसको पद्मप्रभमलधारि देव ने 'नियम सार' जी ग्रन्थ की टीका में दग्ध काल कहा है। यह जला हुआ काल है, यह झुलसता हुआ काल है। इस काल में जन्मने वाले के परिणाम भी झुलसते हुये ही हैं। साधु-भावों का होना बहुत कठिन है। साधु का अर्थ है सज्जन। तो दूसरा भगवान् तुम्हारा पेपर हो गया। उन दोनों भगवानों से बड़ा भगवान् टेलीविजन है। जो उसमें आ गया, सो सब सत्य है।

इस पंचमकाल में धर्मगुरुओं को कोई सुनने नहीं बैठता है। पर आपके पास कोई आता है तो मेरे मित्र! जब लोग तेरी सुनते ही हैं, तुझे भगवान् के रूप में देखते हैं, तो तू भी तो कह सकता है—हे जीव! यदि तू स्वास्थ्य को ठीक करना चाहता है, प्रसन्न होकर रहना चाहता है, तो पहले मद्य माँस मधु का त्याग करो। यदि तू स्वास्थ्य को बनाकर रखना चाहता है तो माँ जो सुबह से पराठों के साथ अचार रख कर दे रही है, वह बन्द कर दें। जब वह माँ आपके पास आये कि मेरा बेटा बीमार हो गया है, तो कहना—लगता है माँ! तेरे घर में पैसा बढ़ गया है। न धर्म से प्रीति है, न बेटे से प्रीति है। बेटे से प्रीति होती तो उसे नरक भेजने के लिये तू अचार न खिलाती। और पैसा बढ़ गया है, सो खिला करके बीमार करके लाई हो। मेरे लिये दे जाओ पैसा। ऐसा बोल करके आराम से रख लेना पैसा। घबराना नहीं। तब भी लोग नहीं मानेंगे।

क्या गुटके की पुड़िया पर बिच्छू नहीं बनी? सिगरेट से कैंसर होता है, क्या यह डिब्बी पर नहीं लिखा? लिखा है, तब भी ये अभागे नहीं मानते। निहारिये, यदि मृत्यु से डर लगता है तो पहले अभक्ष्य खाने से डरो। यदि मैं सीधा कहूँ

कि ये धर्म करो, इसलिये अभक्ष्य मत खाओ, तो आपको लगता है कि महाराज धर्म की बात कर रहे हैं। मैं आपके साथ आपके विवेक की बात कर रहा हूँ। आप वैद्यों/डाक्टरों से पूछ लेना और जो अचार का मटका रखा है, उसे सूक्ष्मदर्शी से देख लेना, उसमें जीव घूमते मिल जायेंगे। उन जीवों को खायेगा तो कहाँ जायेगा? नरक का पहला द्वार है संधान (अचार)। अच्छा, आज निर्णय कर लो, किन-किन को नरक जाना है? किसी को नहीं। यदि नहीं जाना है, तो आज ही उन मटकियों को जमीन में गाड़ दो जिनमें अचार रखा हुआ है। और बाजार जाकर मुरब्बा खरीद कर लाये, वह भी वर्षों-वर्षों का सड़ रहा है। मृत्यु से डर लग रहा है ना? अपने मरण से डर है, परन्तु अनन्त जीवों को तुम नष्ट कर रहे हो, उससे डर क्यों नहीं लग रहा है? आप सब सुन रहे हो तो प्रत्याख्यान कर दो त्याग कर दो, न खिलाऊँगा, न खाऊँगा। पुष्पित से तात्पर्य है जिसमें फफूँद आ चुकी है। वह चाहे पूड़ी हो या रोटी हो, जिनागम में जो मर्यादायें लिखी हैं, उससे बाहर जो भी द्रव्य जाता है, वह अनन्त जीवों का पिण्ड है। शाम को बना कर सुबह और सुबह बनाकर शाम को भी चल रहा है। आप सोचो, आज बुद्धियाँ तुच्छ क्यों हो रही हैं? प्रज्ञायें क्षीण हो रही हैं। विवेकविहीन हो रहा है पुरुष, क्यों? बालक को कुछ बनाकर खिला दो। ये पैकिंग की जो सामग्रियाँ आ रही हैं, क्या वह मर्यादा के भीतर हैं? नहीं। आज लोगों ने चाक्षुष चमक को सर्वस्व मान लिया है, लेकिन आपको यह बोध होना चाहिये कि जो दृश्यमान है, वही नहीं है। दृश्यमान पदार्थों की सीमा बहुत कम है, अदृश्यमान पदार्थों की सीमा अनन्त है। आपकी आँखों की क्षमता इतनी नहीं है कि हर वस्तु को देख सके। यह मात्र केवली के ज्ञान की क्षमता है। उन्होंने दिव्यदेशना में कह दिया है कि इन पदार्थों में इतने जीव हैं। प्रासुक अप्रासुक की व्याख्या आँखों से देखने का विषय नहीं है, यह केवलज्ञान का विषय है। आजकल व्यक्ति अपने नेत्रों से देखना चाहता है इसमें जीव कहाँ दिख रहे हैं? तुझे मालूम होना चाहिये कि तेरे चश्में के नम्बर अलग-अलग हैं और हर व्यक्ति को हर वस्तु दिखाई नहीं दे रही है, इसका मतलब है। शरदपूर्णिमा की चाँदनी में मैंने पुस्तक खोल कर पढ़ा है, लेकिन आज गौर से देखना पड़ रहा है कि अक्षर कौन-से हैं? एक बालक जिसकी नेत्रों की ज्योति पवित्र है, उस चन्द्रमा

की चाँदनी में बिना बल्ब के ग्रन्थ पढ़ लेता है। जिसकी आँखें ढल चुकी हैं, वह यह कहेगा कि झूठ बोलता है। उसको एक भी अक्षर नहीं दिख रहे हैं, तो क्या उस बालक को भी नहीं दिख रहे थे? ज्ञानियो! अपने नेत्रों से सत्य को मत खोजो। इसलिये आगम ने जगत् के नेत्रों को प्रमाण नहीं स्वीकारा, केवली के नेत्रों ने जो देखा है, वह प्रमाण है। आपके नेत्रों में थकान आती है, आपके नेत्रों में रोग होता है, आपके नेत्रों में धूल पड़ती है, लेकिन कैवल्य में कोई रोग नहीं होता है। जीवन जीने के लिये तुम आँखों से देखो, लेकिन श्रद्धा के लिये आँखों से मत देखो। श्रद्धा के लिये आगम से देखो। जीवन जीने के लिये आँखें हैं। बाहर के पदार्थ देखने के लिये आँखें हैं। परन्तु आस्था के लिये आँखें नहीं हैं, आस्था के लिये आगम है। इसलिये अभी समझ लो, बहुत बड़ा तूफान आने वाला है काल का। अपनी सभा में ऐसे-ऐसे लोग बैठे हुये हैं, कहीं-न-कहीं के श्रावक हर दिन आते हैं, जो देश-देश में कई साधुओं के पास घूम कर आते हैं। इन लोगों के मन में भी टीस है कि धर्म कैसे बदलता जा रहा है। मित्रो! विश्वास रखना, धर्म बिल्कुल भी नहीं बदला, बिल्कुल नहीं बदलेगा। बदल रहे हैं तो जीवों के भाव बदल रहे हैं। हमारे निर्ग्रन्थ इस बात पर निश्चिन्त होकर जियें कि धर्म का क्या होगा? धर्म का कुछ भी होने वाला नहीं है। जो विपरीत चल रहे हैं, उनका ही बिगड़ेगा। धर्म तो 'जो है, सो है।' धर्म का क्या बिगड़ेगा?

आचार्यभगवन् यहाँ कह रहे हैं, वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। लोग रो रहे हैं। सोच रहे हैं। कुछ लोग अपना धर्म इसीलिये खो बैठे हैं कि अब धर्म का क्या होगा? और चौबीस घण्टे दूसरे के संकल्प-विकल्प में डूब करके अपने परिणामों को अशुभ कर रहे हैं। अब धर्म का क्या होगा? धर्म का तुम क्या कर सकते हो? धर्म तो धर्म है। धर्म का ह्रास तो कभी होता ही नहीं है। ज्ञानी! तू गुस्सा भी करता है तो भी मैं प्रसन्न रहता हूँ। क्यों? तू जानता ही कहाँ है? धर्म का नाश तो होता ही नहीं है। पैर छू लिये, तू क्षमा माँग रहा है, भैया! शान्त हो जा। तू क्षमा भी माँग रहा है, तब भी मैं कुछ नहीं बोलूँगा। धर्म ही तो है।

भैया! जैन-धर्म को समझने के लिये कई भव लग जायेंगे। जितनी आयु हमारी शेष विद्यमान है, चाहें तो इसको समझने में समय दे सकते हैं। ज्ञानी नाराज हो

रहा है, तब भी मैं प्रसन्न हूँ। बेटे की माँ कह रही है कि मेरा तो पूरा घर बरबाद हो रहा है इनकी गुस्सा से। तब भी मैं कहूँगा। माँ! तू मत रो। ये धर्म नहीं है। वस्तु में दो शक्तियाँ हैं। एक स्वाभाविक शक्ति है, दूसरी वैभाविक शक्ति है। यदि तेरा पति गुस्सा कर रहा है, तो ये धर्म में ही है, बाहर नहीं है। यह वैभाविक शक्ति से है। वैभाविक शक्ति इसके भीतर न होती तो वह गुस्सा कर ही नहीं सकता था। जो शान्तस्वभाव में जी रहा है, वह स्वाभाविक शक्ति में है। पानी गर्म है, तो यह पानी का धर्म है, यह वैभाविक धर्म है। पानी शीतल है, यह स्वाभाविक शक्ति है। धर्म का नाश कभी होता ही नहीं है। स्वभाव से विभाव में, विभाव से स्वभाव में परिणमन होता है। पर धर्म का कभी नाश नहीं होता है। जिसने इस बात को समझ लिया है, वह प्रतिक्षण प्रसन्न रहेगा। माताओ! यदि पति नाराज होता है तो आपको शान्ति से एक किनारे बैठ जाना चाहिये। स्थान बदल देना चाहिये। आपको उस पर गुस्सा नहीं करना चाहिये। अभी स्वामी विभाव धर्म में है। गर्म पानी होता है। माँ ने तुझे खीर परोसी। वह गर्म है। तो तू क्या करेगा? फेंक देगा तो क्या तेरा पेट भर पायेगा, क्या खीर का स्वाद चख पायेगा? तुझे तीव्र क्षुधा भी लगी होगी, तू हाथ से उठा कर मुख पर रखेगा तो हाथ भी जल जायेगा और मुख भी जल जायेगा। ठहर जाओ, वह खीर अभी वैभाविक धर्म में है। थोड़ी देर बाद ठण्डी हो जायेगी तो इसी खीर से तेरा पेट भरेगा, स्वाद देगी। ऐसे ही चाहे तुम्हारा मित्र गुस्सा हो, चाहे पत्नि गुस्सा हो, चाहे पिता गुस्सा हो, उसे छोड़ कर मत भाग जाना। जैसे खीर को छोड़कर नहीं भागते हो। समय दे दो, ठण्डा हो जायेगा। तुम दूसरे काम में लग जाओ। जब ठण्डा हो जायेगा, तो वह भी तेरे काम आयेगा। फेंको मत किसी को। धर्म की व्याख्याओं को धर्म से जानना सीखो। लोगों ने धर्म की व्याख्या को धर्म से जोड़ना छोड़ दिया है और तुरन्त दुश्मनी बाँध करके पत्नि अपने पिता के घर भाग गई। भाग जाओ, जब वहाँ जाकर स्वयं ठण्डे होओगे, तो तुमको भी लगेगा कि गलत किया है। शंका का समाधान घर छोड़कर भागना नहीं है, पर घर में जाना नहीं है। स्व-चारित्र को दोष लगाना हो तो भाग जाना। वहीं बैठ कर देखो कि स्वभाव धर्म है, विभाव धर्म है। स्वाभाविक शक्ति, वैभाविक शक्ति। जीव व पुद्गल में ये दो शक्तियाँ होती हैं। शेष द्रव्य में

स्वभाव-स्वभाव शक्ति होती है। आप लोगों से कह देना आपको मृत्यु से डर लगता है कि पुनः आयु भोगने का भाव है? तो भोजन शुद्धि, भाषा शुद्धि, चिन्तन शुद्धि तीन शुद्धियों पर ध्यान रखना। **जिसका भोजन शुद्ध है, उसका चिन्तन शुद्ध होगा। जिसका चिन्तन शुद्ध है, उसका भाषण शुद्ध होगा। जिसका चिन्तन शुद्ध नहीं है, जिसके विचारों में शुद्धि नहीं है, उसकी वाणी में शुद्धि कभी नहीं हो सकती है। निम्न स्तर के लोगों के भाषण निम्न स्तर के होते हैं। क्षीण पुण्य वाला जीव अच्छा भी सोचेगा तब भी उसके मुख से अच्छा निकलेगा नहीं।** नारकी जीव सोचे भी कि मैं अच्छा सोचूँ, तब भी अच्छा नहीं सोच पाता। उनकी देह, उनकी वेदना, उनकी विक्रिया, लेश्या अशुभ-ही-अशुभ होती है। पूरा विषय निज में अन्वेषण का है। आप यहाँ सुनिये, घर जाकर चिन्तन करिये। कोई आपको गाली भी दे तो मुड़ कर मत देखना, सुनते रहना। तेरे कान स्वतन्त्र हैं, उसका मुख स्वतन्त्र है।

कुछ लोग मुझसे बोलते हैं कि महाराज जी! आप जैसा बोलते हो वैसा जीऊँ तो क्या होगा? अरे! यदि ऐसा जीने लग जाओगे तो पुजने लग जाओगे। लोगों को लगता है कि महाराज जी उल्टा-सा बोल रहे हैं। सही है, उल्टी वस्तु देखते-देखते वर्षों निकल गये, उसको कोई सीधा कर देगा तो सामने वाले को वह उल्टा ही दिखेगा। आपने आजतक अपने चिन्तन की विपरीतता को सम्यक् मान लिया था अब जब सम्यक् सुनते हो, तो तुम्हें उल्टा लगता है। जब थोड़ा ठण्डे होते हो, तब समझ में आता है कि मैंने क्या कहा? तू पर के परिणमन को रोक पायेगा क्या? तुझे सुनना पसन्द नहीं है तो तुम अपने कान बन्द कर सकते हो, लेकिन तुम उसके मुख को बंद करने की चेष्टा मत करो। कहीं तुमने उसका मुख पकड़ लिया और उसकी श्वास रुक गई, तो तुम्हें पंचेन्द्रिय हत्या का दोष लगेगा। हो सकता है कि उसको बोलने की आदत ही पड़ गई हो, वह आदत में इतना निष्णात हो चुका हो, कि उसे चैन नहीं पड़ती हो। तुमने उसका मुख बन्द करा दिया तो उसको घुटन हो जायेगी और घुट कर मर गया तो तुझे पाप लगेगा। इसलिये उसे बोलने दो।

जैनी लोग कर्मसिद्धान्त को मानते हैं यदि आप जैन हो, तो अपने आप को समझा सकते हो। जब तुझे कोई गाली देने आये, तू शान्ति से निकल जायेगा, परन्तु

देने वाले को कर्म सतायेंगे कि नहीं? सतायेंगे। फिर तू क्यों टेंसन में पड़ा है? उसको कर्म देख लेंगे।

जगत् में ऐसा कौन-सा जीव होगा जो आत्मा से नहीं बोलता होगा और आत्मा की नहीं बोलता हो। कोई खोटी आत्मा को बोलता होगा। अशुभ शब्दों से बोल लो या जिनवाणी के शब्दों का प्रयोग कर लो। यदि गाली भी देगा तो ज्ञान लगायेगा और सुनेगा भी तो ज्ञान लगायेगा। तो गाली भी आत्मा से देता है और सुनता भी आत्मा से है। सबसे बड़ा भय मृत्यु भय। कहीं मैं मर न जाऊँ। जीवन से राग है, मृत्यु से द्वेष है। आपका जगत् के किसी भी प्राणी से राग-द्वेष नहीं है, अच्छी सामायिक करते हो, अच्छी साधना करते हो, तब भी तुम बन्धक हो सकते हो। किसी से राग-द्वेष नहीं है, लेकिन मन में भाव आ गया कि मैं मरूँगा, क्योंकि उम्र ढल गई है। तो मृत्यु से द्वेष नहीं किया था, परन्तु मृत्यु से द्वेष करके और जीवन से राग करके निगोद को प्राप्त हो गया। तीर्थंकर के समवसरण में किसी ने प्रश्न किया 'अमुख जीव बहुत साधना करता था, अब वह कहाँ गया होगा, कौन-से स्वर्ग गया?' भगवान् की देशना में खिरा—'वह तो निगोद में है।' कैसे चला गया? बराबर व्रतों का पालन करता रहा। उसने जगत् के किसी जीव पर द्वेष नहीं किया, फिर वह निगोद कैसे चला गया? बेटा! उसने मृत्यु से द्वेष किया था और जीवन से राग किया था। उस राग-द्वेष से निगोद चला गया था। इसलिये ध्यान दो, मृत्यु का द्वेष और जीवन का राग भी राग-द्वेष ही है। मैं धर्म का पालन करता हूँ, ये सारे लोग धर्म से दूर हो रहे हैं, ऐसा भाव करना भी अधर्म है। निश्चयनय से तो यही सत्य है 'जो है, सो है।' मेरे प्रवचन सुनकर तो कोई नहीं सुधर रहा। मैं तो मात्र प्रवचन का कर्ता हूँ, सुधारने का कर्ता नहीं हूँ। सुधरेंगे वही, जिनको मेरे प्रवचन निज के प्रवचन बन कर प्रवेश करेंगे। कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है। इसको कहने की ताकत मात्र जिनवाणी में है। ऋषभदेव महावीर के जीव को मारीचि की पर्याय में नहीं सुधार पाये, विशुद्धसागर क्या सुधारेंगे? परन्तु निमित्त दृष्टि से सहकारी है, कार्यकारी नहीं है। जीव रोते हैं, उन्हें बिलखना पड़ता है, जो सहकारी के स्थान पर कार्यकारी बन जाते हैं।

ये ज्ञानीलोग मंच पर बैठे हैं। इनका भी कर्ता में नहीं हूँ। आप किसकी बात

कर रहे हो? इन जीवों के अन्दर वैराग्य हुआ, अपन तो मात्र मंत्र पढ़ने के कर्ता हैं। उनके भाव बनाने का कर्ता मैं नहीं हूँ। वह तो उनके निज के परिणाम हैं। इस ध्रुव सत्य को भी समझो। आचार्य विरागसागर महाराज मेरे दीक्षा संस्कार के कर्ता तो हैं, परन्तु भावों की विशुद्धि के कर्ता तो विशुद्धसागर ही हैं। गुरु पिच्छी दे सकते हैं, कमण्डल दे सकते हैं, कपड़े उतरवा सकते हैं, लेकिल गुणस्थान नहीं दे सकते। गुणस्थान तो मुझे ही बनाना होगा। सत्य है। अध्यात्म की गूढ़ विद्या से तुम्हारी समाज अनभिज्ञ हो रही है और ज्ञानी लोग कह देते हैं यह समयसार तो मुनियों का ग्रन्थ है, इसे नहीं पढ़ना। ऐसा कह देंगे तो ये लोग छुयेंगे नहीं, तो हमारे असत्य को कोई पकड़ नहीं पायेगा। श्रावको! सब समयसार पढ़ो। दूसरे के दोष देखने के लिये नहीं, अपने भीतर के भावों को देखने के लिये। दूसरे के दोष को देखने के लिये समयसार पढ़ा तो तुमने कुछ भी नहीं सीखा।

पुण्यक्रिया के साथ-साथ पुण्य भावों पर भी तो लक्ष्य डालो। पुण्यक्रिया तो आपको सभी जगह दिखाई दे रही है, पुण्यभावों को समझो। नहीं-तो शान्तिधारा करते-करते ही लड़ने लगते हैं कि मुझे लोटा दो, मैंने बोली ली है। धिक्कार हो। शान्तिधारा का उद्देश्य क्या है? आपने बोली ली, आपके द्रव्य का त्याग हो गया, परिग्रह का त्याग हो गया, कषाय का त्याग हो गया, आपका काम तो हो गया। लोटे का पानी श्रीजी के सिर पर डालना था, कोई वेचारे गरीब ने हाथ लगा भी लिया तो तुम क्यों नहीं कहते कि पुण्य की अनुमोदना कर रहा है। तुम उल्टा सोचते हो कि छोड़ो। जैसे-ही तुमने उसको कहा 'छोड़ो', वैसे ही तेरा पुण्य छू। दोष पण्डित जी का था। जब वह शान्तिधारा की बोली लगा रहा था, तो इतना महिमामण्डित कर रहा था कि इससे ये दूर हो जायेगा, वो दूर हो जायेगा, सम्पत्ति मिल जायेगी। तब उसको लग गया, सो ले ली बोली। अब सोच रहा है कि दूसरे का हाथ लग गया, सो उसको भी मिल जायेगा। इसलिये वह किसी को हाथ नहीं लगाने दे रहा है। मेरे मित्र! इतना और बोल देता कि जो दूसरे का हाथ लगवायेगा, उसको दूना मिलेगा। फिर वह सबसे कहता कि हाथ लगा लो। ऐसा दग्ध काल है कि भगवान् को भी पैसे से खरीदता है। हर पुण्य को पैसे से खरीदता है। पुण्य भी पैसे के लिये कर रहा है। जितने शनिग्रह आदि ग्रहों की बातें हो रही हैं, सब भिखारियों

की बातें हैं। पुण्यात्मा जीव भगवान् की भक्ति करने जाता है, किसी ग्रह के नाम पूजा करने नहीं जाता। मृत्युभय जब समझ में आये तब समझ लेना। अभक्ष्य सेवन क्यों चल रहा है? कहीं मैं मर न जाऊँ। मित्र! आयुकर्म को कौन टाल पायेगा? बहुत सारे लोग वृद्ध होकरके दबाई खा लेते हैं। कहीं अन्तिम श्वास का समय आ ही गया तो, व्रत भी गया, प्राण भी गये। औषधि का सेवन करना ही है तो शुद्ध प्रासुक औषधि का सेवन कर लेता। जीवों के पिण्डों का सेवन नहीं करना। 'न मे मृत्युः कुतो भीर्तिः' मेरी मृत्यु ही नहीं है, तो भय किस बात का? जिसका जन्म है, वह देह है। जिसका मरण है, वह देह है। मेरे चेतन्य प्राणों का वियोग होता ही नहीं है। इसलिये मुझे डरने की आवश्यकता ही नहीं है। सम्यग्दृष्टि ऐसा सोचता है। इहलोक भय यानि मैं खूब सुखी हूँ, कहीं कुछ हो न जाय। लोक प्रमाण आत्मा है, आत्मद्रव्य लोक है और निज लोक से मैं कहीं नहीं जाऊँगा।

परलोक भय यानि अब पता नहीं कहाँ जाऊँगा। अगले भव के सुख के राग में आज सोच रहा है। तुम इसी भव में अच्छे भाव रखो तो अगला भव आनन्द में निकलेगा। परिणाम को देखो, भविष्य की पर्याय को मत देखो। यदि परिणाम पवित्र हैं, तो भविष्य की पर्याय नियम से पवित्र होगी। अगली पर्याय सुधारने का विचार समाप्त कर दो। वर्तमान के परिणाम सुधारने लग जाओ तो भविष्य की पर्याय नियम से सुधरेगी। वर्तमान के परिणामों को पवित्र नहीं रख रहा है और अगली पर्याय की चिन्ता कर रहा है, तीर्थंकर भी तेरी पर्याय नहीं सुधार पायेंगे। भाई से भाई मुख नहीं बोल रहा है। माँ को तो माँ कहकर नहीं पुकार रहा है और कह रहा है कि भव सुधर जाये। पत्नि को पीट कर आया और भगवान् से क्षमा माँग रहा है। जिनसे दुश्मनी नहीं है, उनसे क्षमा माँग रहा है। जिसे पीटकर आया, उससे मुख नहीं बोल रहा है। क्षमा माँगना है तो पत्नि के पैर पड़ ले, हे देवी! क्षमा कर। ये ताकत नहीं है तो ढोंगियो! तुम्हारा जीवन ढंग का नहीं है। बुरा तो नहीं लग रहा? अब जो है सो है। लगे सो लग जाये। क्या समय है? आनन्द है? मुस्करा लो, यहीं मुस्करा लो, मुझे मालूम है कि घर जाकर तुम्हारी क्या हालत होती है?

वेदना भय यानि मुझे कोई रोग न हो जाय। कोई अनहोनी न हो जाय। अभी कुछ भी नहीं है, लेकिन बेचारा सोच रहा है कि कहीं कुछ हो न जाय। अरे! हो

भी जाय तो क्या है? जो किया है, वही तो उदय में आया है। नया क्या है? कहना सही है, मानना बिल्कुल नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव 'न मे व्याधिः कुतो व्यथा' यह सोचता है। जब मेरे में व्याधि ही नहीं है तो मुझे व्यथा कहाँ ? मैं तो चैतन्य पिण्ड, ज्ञानघन, भगवान्-आत्मा हूँ। शरीर तो नष्ट होने वाला ही है। अब मैं भयभीत और पीड़ित क्यों होऊँ?

अरक्षा भय। भैया! तुम्हारा तो बड़ा भवन है, किले/दुर्ग हैं, बड़े-बड़े द्वार बने, सुरक्षा गार्ड खड़ा हुआ है। मेरा तो कोई रक्षक ही नहीं है, मेरा क्या होगा? जब यमराज आता है, तो ऐरावत हाथी वाला सौधर्म इन्द्र, जिसका दुर्ग स्वर्ग होता है, वह भी वहाँ उठा लिया जाता है। आज निर्भीक होकर घर जाना। कुछ नहीं, जो है सो है। मेरी रक्षा कौन करेगा? भैया! मेरी रक्षा करना। कितने पहरेदार लगाये हैं? जिसको आना होगा, पहले पहरेदार को पकड़ेगा। जैनी होकर श्वान पाल रहे। बेचारों को बन्धन में डाले हो। आठ वर्ष तक का बच्चा कोई गलत काम करता है तो सारा पाप माता-पिता को लगता है। ऐसे ही जिस घर में कुत्ते-बिल्ली आदि पलते हैं, वे हिंसा कर रहे हैं। अभक्ष्य खा रहे हैं, सबका दोष पालने वाले को लगता है। आगम वचन है कि नहीं पालना चाहिये। उनको बन्धन में डाल कर रखे हैं आप। जिनके घर में बन्धें हों, आज खोल देना। जिनके घर में हिंसक जानवर पलते हैं, वे मुनि को आहारदान देने के पात्र नहीं हैं; अभिषेक करने के पात्र नहीं हैं। इसलिये जिनके घर में पले हों, वे उनको बन्धनमुक्त कर देना। कितना स्वार्थी जीव है? अपनी रक्षा के पीछे बेचारे पशुओं को साँकल से बाँधे हैं। कुछ शौक भी लगी है। ऐसा भी है कि न शौक है, न रक्षा का भाव है। बात कुछ गहरी और—भी है।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं, हे जीव! यदि अनन्तसुख को प्राप्त करना चाहता है, तो आर्त्त रौद्र ध्यान का त्याग कर दो, धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान का आश्रय लो, यदि निर्वाण चाहते हो तो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

"आत्महित की साधना"

आत्मानं विनयाभ्यासे, विषयेषु पराङ्मुखः।
साधयेत् स्वहितं प्राज्ञो, ज्ञानाभ्यासरतो यतिः॥ सा. स. 227॥

अन्वयार्थ—प्राज्ञः यतिः = बुद्धिमान भेदविज्ञानी यति, **विषयेषु पराङ्मुखः** = पाँचों इन्द्रियों के विषयों से विमुख होता हुआ, **ज्ञानाभ्यासरतः** = तत्त्वज्ञान के अभ्यास में दत्तचित्त रहता हुआ **आत्मानं विनयाभ्यासे** = और अपने को चारित्र के अभ्यास में लगाये रखता हुआ, **स्वहितं साधयेत्** = आत्मा के हित का साधन करता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! पंचेन्द्रियों के विषयों से पराङ्मुख, ज्ञानाभ्यास में रत, प्राज्ञ, भेदविज्ञानी यतिराज अपनी आत्मा को चारित्र के अभ्यास में लीन कर आत्महित की साधना करते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्महित करने का अलौकिक उपदेश भव्यों को प्रदान कर रहे हैं। ज्ञानियो पंच पापों को त्यागकर परमचारित्र को धारण करो। वही सिद्ध पद प्राप्त कराता है। अहिंसा ही परम ब्रह्म है।

हर्ष की हिंसा। आप मन्त्री बन कर आये। बेटे ने पूरे नगर में पटाके फुड़वा दिये। धमाके हो रहे थे, तेरी विजय की चर्चा चल रही थी। उन निरीह प्राणियों पर तेरी करुणा कहाँ चली गई थी? उनने ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया था कि आपकी खुशी में उनके घात हो गये। ज्ञानी! तेरी शादी होने गयी थी। आगे-आगे आतिशबाजी हो रही थी और धमाके हो रहे थे। मेरे मित्र! तू शादी कराके आया था। उन बेचारे जीवों ने क्या दोष किया था? वे भी तेरी शादी की भाँवरें देख लेते, लेकिन उन्हें तूने पटाके चलवा कर मौत में क्यों झोंक दिया? करो जीवन के प्रायश्चित्त। ये हर्ष की हिंसा है। विषाद की हिंसा की बात थोड़ी देर से करता हूँ। कभी आपने इस पर सोचा क्या? महाराज! उस वक्त आँखें ही नहीं थीं, सोचें

क्या? यह तो हर्ष की द्रव्यहिंसा की बात कर रहा हूँ। बेटे ने जन्म लिया, सूतक किस बात का लग गया था? कितना रक्त बहा था माँ के उदर से ? उस घर में कितनी हिंसा हुई थी? उसका सूतक लगा था। बेटे ने जन्म लिया, वह तो अपने आयुकर्म से आया। तुम्हारे घर में जन्मा, तुमने बन्दूकें चलवा दीं। एक के जन्म की खुशी में अनन्तों को मार दिया। क्या खुशी प्रकट करने का यही तरीका है कि दूसरे के प्राण ले लो? लगता तो ऐसा ही है। आप गहरे से सुनो।

विशुद्धसागर की तब तक प्रशंसा नहीं होगी, जब तक कोई की निन्दा न हो जाये। यदि आप मन्त्री जी को एक कमरे में ले जाते और हीरे-मोतियों का बढ़िया हार पहनवाते, शुद्ध हीरा का मुकुट लगाते और अच्छी चाँदी जड़वा कर नारियल दे देते, तो वह कहते भैया! आपकी उदारता तो देखो, आपने मेरे साथ इतना खर्च किया, यही यदि प्रवचनसभा में कर लेते। क्यों? मुझे देना था, आपका सम्मान करना था, सो मैंने कमरे में कर दिया। 'मेरे मित्र! तूने बराबर मेरा सम्मान किया है, लेकिन सम्मान में अभी आनन्द नहीं आया।' क्यों? 'गैरों का अपमान कहाँ हुआ है?' सम्मान में आनंद आता है, सत्कार में आनन्द आता है, भीड़ में आनन्द आता है, तो कमरे में भी भीड़ हो सकती थी। जीव की आम धारणा है कि आपने जब इतना खर्च किया ही था, तो कम-से-कम कुछ लोगों को बुला लेते, पीले कार्ड छपवा लेते, फिर सम्मान करते। अब किसने देखा? जंगल में मध्य सरोवर में सहस्रदलकमल खिला हुआ है। उस कमल को किसने निहारा? काश यह राजमार्ग पर होता तो हजारों की आँखों को प्रसन्न करता। ये नीति है। इस नीति का प्रयोग क्यों किया, इस पर तो लक्ष्य करो। महान् ज्ञानीजीव हो, वक्तृत्व कला नहीं है तो जंगल में सरोवर के मध्य सहस्रदल कमल। और वक्तृत्व कला है तो तुम्हारा कमल राजमार्ग के सरोवर का है।

प्रसन्नता में हिंसा। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान जीव के युगपत् चल रहे हैं। मुझे अमुख सामग्री मिलना चाहिये, इष्ट है। इष्ट के संयोग की कामना कर रहा है। यदि नहीं मिल रहा है, तो कुपित हो रहा है, हिंसक भाव ला रहा है, रौद्रध्यान कर रहा है। हिंसानन्दी रौद्रध्यान। जो भूल कर चुके हैं, वो तो प्रायश्चित ले लेंगे। तुम

भूल करने के पहले ही प्रत्याख्यान कर दो कि मैं भूल नहीं करूँगा। जब शादी होने गयी थी, प्रसन्नता का माहौल था और अनेक प्रकार के धमाके फूट रहे थे। आप तो घोड़े पर बैठे मुस्कराकर जा रहे थे, परन्तु थोड़ा-सा इतना और सोच लेते। जब खुशी का माहौल होता है, तो मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं। उन सूक्ष्म जीवों को तुम मिठाइयाँ नहीं बाँट सकते थे तो कम-से-कम उनकी जान तो न लेते। ऐसे कितने युवा हैं? बहुत अच्छा है कि शादी ही न कराओ। यदि नहीं मानो तो कम-से-कम इतना नियम ले लो कि अपनी शादी में धमाके नहीं फूटने देंगे। कोई है राम? स्वयं तो नहीं चलाओगे पिता जी ने व्यवस्था कर दी तो? एक भी तुम्हें फूटता दिखे, जब नेमिनाथ स्वामी गिरनार पर चढ़ सकते हैं, तो तुम घोड़े से उतर जाना। अब बताओ कितने बालक नेमिनाथ जैसी चेष्टा कर सकते हैं? कायोत्सर्ग कर लो। तुम इतने गरीब नहीं हो, सब नेमिनाथ और राम बन कर दिखाओ। नेमिनाथ स्वामी ने क्या कहा था? एक के भोग के पीछे अनेक का घात कैसा? एक के सुख के पीछे कोटि-कोटि का घात कैसा? ये सुख कैसा? हर्ष की हिंसा। लोगों ने आज तक सोचा ही नहीं है कि गजरथ, पंचकल्याणक, मुनिराजों की अगवानी, महोत्सवों में कम-से-कम बन्दूकधारी तो न चलें और पटाके न फूटें बन्दूकें न चलें। धन्य हैं वे तीर्थेश। एक जिनमुद्रा ही तो ऐसी है जहाँ अस्त्र नहीं है, शस्त्र नहीं है। जिनको सप्त भय से विमुक्ति मिल चुकी है। कर्मों का निर्वाण जब होगा तो तुझे अपनी बुद्धि में सप्त भय का निर्वाण करना पड़ेगा। कर्मों का निर्वाण जब कर सकोगे, पहले मिथ्यात्व से निर्वाण कर लो। यदि निर्माण में लगे रहे, तो निर्वाण होने वाला नहीं है। सप्तभय से विमुक्त हो जाओ। सारे जगत् में भयभीत लोग मिलते हैं, एक आप ही ऐसे हो जो निरन्तर निज आलम्बन से युक्त हो। चिद्पिण्ड अखण्ड शुद्ध उपयोग की निर्मल दशा में लवलीन होने वाला, योगी जब ज्ञान को ज्ञान में लवलीन कर देता है तब जगत् के सारे भय उससे दूर हो जाते हैं। लोक में सबसे बड़ी बिडम्बना है शीघ्र दूसरे से प्रभावित हो जाना।

विद्वानों और भारत सरकार ने रोग प्रतिबन्धक औषधियों का अन्वेषण करके रखा है और स्कूलों आदि में भी लाल गोलियाँ बाँटते रहते थे। ऊपर मीठी रहती

थी, अन्दर कड़वी होती थी और शरीर में कहीं-न-कहीं इंजेक्सन लगा कर चले जाते थे। उनका उद्देश्य क्या है? चेचक आदि अनेक रोग बच्चों में न फैलें। उनके प्रतिरोधक सामर्थ्य आ जाये। उस सामर्थ्य के लिये पहले से उपचार शुरू कर देते थे। पर-दर्शनों से, मिथ्या क्रियाओं से, मिथ्याचरण से प्रभावित न हो पायें ज्ञानियों को आज इस औषधि की आवश्यकता है। आज शीघ्र ही हम विभिन्न दर्शनों से प्रभावित होकरके अपनी अहिंसक वृत्ति भूल जाते हैं। यह नहीं समझ पाते हैं कि यहाँ पर निराडम्बर धर्म की प्रधानता है। दुनियाँ के आडम्बरों की प्रधानता जिनागम में नहीं है। शीघ्र दूसरे से प्रभावित योगियों की स्पर्धा चल रही है। शीघ्र प्रभावित हो जाना, आश्चर्यचकित हो जाना महान् दोष है।

ज्ञानी! इस पर्याय से जाने के पूर्व इतना निर्णय कर लेना कि जितने अनर्थ धर्म के भीतर प्रवेश किये हैं, आश्चर्यचकित होने के कारण अनर्थ हुये हैं। दूसरे से शीघ्र प्रभावित होना हिंसा है। ध्रुव सत्य कह रहा हूँ। मिथ्या प्रवृत्ति, मिथ्या चरण, मिथ्या क्रिया को देखकरके प्रभावित हो गये, सीख कर आ गये। इतने जीवों के बीच प्रभावित हो जायेंगे, मालूम चला कि जैनत्व तो बचा ही नहीं है। 'तेरी कृपा से सब काम हो रहे हैं, नाम मेरा हो रहा है', ये तुमने सबको पढ़ाकर रख दिया, सबको मिथ्यात्व में डुबा दिया। लगता तो मीठा था, परतु जैनत्व कहाँ था? ये तो संगीत की बात हुई। आप गीतों तक प्रभावित नहीं हुये, तुम्हारे यहाँ क्रियायें भी उतर कर आ गई हैं।

हे ज्ञानी! आपके माता-पिता ने पर्युषण के अलावा कोई नौ दिन के पर्व नहीं मनाये। दस दिन के पर्वों में तप साधना की, जिनवाणी का स्वाध्याय किया, लेकिन श्री जिनालय में दस दिन तक कोई कलश भर कर नहीं रखे, कोई दीपों के ढेर बनाकर नहीं रखे। इनके पिताजी ने किसी जीव के नियोग से नरियल फोड़ा नहीं था, इनके पिताजी ने नरियल चढ़ाया था। आज के ज्ञानी लोग नरियल फोड़ना शुरू कर दिये हैं। हे मित्र! भगवान् वर्द्धमान स्वामी का निर्वाणदिवस तुम्हारे सामने आ रहा है। तीनलोक के नाथ के चरणों में समर्पित तो करना, लेकिन फोड़ने मत जाना। ये हिंसक मार्ग नहीं है। मोक्ष फल की प्राप्ति के लिये तुम चढ़ा रहे हो, कोई बलि

देने नहीं जा रहे हो जो तुम फोड़ रहे हो। जो आगम की व्याख्यायें हैं, उन्हें स्वीकारिये। दिगम्बर मुनियों को एक स्थान पर रुकने की कोई आज्ञा नहीं है, इनको विचरण करते रहना चाहिये।

इस जीव को थोड़ा राग हो गया। सभी जगह बुलाया जाता है, यहाँ कोई बुलाता नहीं है। लेकिन इतना वात्सल्य है कि कहीं भी रहते विशुद्धसागर, ढूंढ़ कर पहुँच ही जाता है। आज कमरा भी नहीं मिला, बाहर ही पड़ा रहा। भैया! यही कल्याणकारी है, सुख-सुविधाओं में जाओगे, वहाँ तो तुम्हें सुख की अनुभूति होगी, यहाँ भक्ति की अनुभूति होती है।

साधुओं को विहार क्यों करना चाहिये? मैं एक ग्रन्थ की खोज दस वर्ष से कर रहा था। वह मिल नहीं रहा था। सोलापुर आश्रम में बहुत बड़ा ग्रन्थालय है। वहाँ मुझे वह ग्रन्थ मिल गया। उन्होंने फोटोकापी करवाकर मुझे दे दी। ऐसे ही 'स्वरूप सम्बोधन' भी महाराष्ट्र में प्राप्त हुआ था। एक बहुत बड़ा मन्त्रशास्त्र मिला। इसलिए साधुओं को विहार का आदेश दिया है कि आप जगह-जगह विचरण करोगे, तो नवीन शास्त्र एवं शिष्य मिलेंगे। लेकिन आपको अध्ययन करके वहीं विराजमान करना चाहिये। ऐसा नहीं कि लेकर चले गये। आपको आवश्यकता है तो आप उसकी कॉपी करवा लो। आप किसी को दान भी देना तो पूरी सम्पत्ति किसी को दान मत दे देना। आप व्यक्ति को देखकरके उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर देते हो। कहीं तुमने किसी को पूरा दे दिया, उसके परिणाम नहीं थे, वह कभी किसी को नहीं देगा, अब तूने कितना बड़ा अनर्थ कर दिया। जब तक गृहस्थ हो, तब तक किसी को पूरी सम्पत्ति मत दे देना। उस मन्त्रशास्त्र में प्राचीन दिगम्बर जैन आम्नाय के प्राचीन मन्त्रों का वर्णन था और अनेक प्रकार की विधाओं का वर्णन था। कुछ नैमित्तिक क्रियाओं से कोई क्रिया प्रारम्भ हो जाय, तो लोग उसे धर्म में बाँध देते हैं। उसे सिद्धान्त नहीं बनाया जाता, सिद्धांत होता है। आप इतने प्रभावित हो गये, अब अपने दस दिन के पर्वों को इतने आनन्द से नहीं मनाते। इन नौ दिनों को इतना प्रभावी बनाकर रख दिया है, उसका परिणाम क्या हुआ? लगता है कि मैं धर्म बढ़ा रहा हूँ। यथार्थ मानिये, लोग वीतरागता से हट करके सरागता में शामिल हैं।

ज्ञानी कहेगा कि बाहर की भीड़ से तो बचे। नहीं, मित्र! आपका दर्शन यह कभी नहीं कहेगा। सीधे-सीधे अभक्ष्य नहीं खाते थे, तो किसी दवाई के रूप में खालो, यह जैनदर्शन स्वीकार नहीं करेगा। आप पानी की बॉटल लेकर क्यों चलते हो? आप टिफिन में पूड़ियाँ लेकर क्यों चलते हो? क्या सभी जगह भोजन नहीं मिलेगा? नहीं, महाराज! मैं जिस कुल में जन्मा हूँ, उसमें होटलों के सामने खड़े होने की परम्परा नहीं थी। तो जिस कुल में तुम जन्में हो, उस कुल में बॉटलों से खून पीने की भी परम्परा नहीं है। आगम सत्य है। लोकाचार लोकरीति है, पर आगम/जिनवाणी की व्याख्या जिनवाणीभूत ही होना चाहिये। आजकल रक्तदान की परम्परा शुरू हो गई है और लोग उसे दान कह रहे हैं। लोकव्यवस्था को गौण कर दो। लेकिन उसे 'दान' संज्ञा नहीं दे सकते हो। यदि इसे तुमने 'दान' संज्ञा दे दी, तो सत्यार्थ धर्म क्या होगा? शीघ्र प्रभावित होने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये प्रभावित नहीं होना चाहिये क्योंकि आपका रूप प्रमाणिक है, जिनमुद्रा में हैं आप। समरभूमि में योद्धा कवच पहन कर जाते हैं। बज्रमयी कवच, हाथ में ढाल लिये हुये हैं। तलवार के साथ ढाल लेकर जा रहे हैं। वह कवच इतना मजबूत है। सिर पर भी लोहे का टोप है। मेरी देह में कोई शत्रु का बाण प्रवेश न कर जाये। यदि तलवार लगे तो कवच से ही टकराकर नीचे गिर जाय। ऐसे दिगम्बर योगियों को अपने सर्वाङ्ग में आत्म-प्रदेशों में सम्पूर्ण विवेक बुद्धि में सम्यक् का कवच धारण करने की आवश्यकता है। किसी भी प्रकार से मित्याप्रवृत्ति से प्रभावित न हो जायें। तुम्हारा प्रभावित होना पूरे जैनत्व को प्रभावित कर देना है। किसी को मुनि बनने के परिणाम भी आ रहे हों तो कपड़े उतारना सरल है, पंथ व मिथ्यात्व का राग उतरना बहुत कठिन है। ऐसा ही है। जो जिस प्रान्त देश का साधु बन गया, यदि उसे ही अपनाये रखे, तो आगम गौण हो जायेगा, उसके प्रान्त/प्रदेश की क्रियायें प्रधान हो जायेंगी। और इतने प्रभावित हुये कि श्रावकों जैसे हर्ष के अतिरेक में आ करके हर्ष की हिंसा की। सोचो। आज सोचने को तुम्हारा मन काम कर रहा है, समझने को मस्तिष्क काम कर रहा है, बुद्धि काम कर रही है। सुन लो। नहीं तो, विश्वास मानो, न तुम्हारे पास सुनने को समय है, न सुनानेवाले के पास समय है।

विषाद की हिंसा की व्याख्यायें कोटि-कोटि व्याख्याकारों ने की हैं, पर हर्ष की हिंसा की व्याख्या करिये। भारत की भूमि पर दार्शनिक पक्ष के राग में कितनी भूमि रक्त से रंगी गई है। इतिहास उठा कर देखो। जिनको सम्प्रदाय से राग था, दूसरे सम्प्रदाय को नाश करने के लिये खड़े हो गये थे, यह सम्प्रदाय के हर्ष में किया। भारत की भूमि में विचरण कर रहे चौदह सौ पिच्छीधारियों को चिन्तन करना पड़ेगा। यदि विशुद्धसागर के संघ के राग में अन्य संघ का विरोध कर रहे हैं तो इनके भावहिंसा की किञ्चित् भी कमी नहीं है। संघ के राग में तुम्हारी तीव्र भावहिंसा चल रही है। कहीं वचन खिर गया, कहीं दूसरे भड़क गये, तो तुम्हारे मुख से द्रव्यहिंसा भी खड़ी हो गई।

साधु से कहा गया कोई तलवार भी मार कर चला जाय और प्राण बचे रहें तब भी कहना कर्म का विपाक था, निकल गया। क्यों? मेरा धर्म 'अहिंसा परम ब्रह्म' है। उसी के लिये मैं साधु बना था। मुख से निकल गया कि अमुख व्यक्ति ने तलवार मार दी है, तो ये धर्म का राग गुरुभक्ति का राग इतना प्रबल होता है वह चार को लेकर पहुँच जायेगा और भैया को पता नहीं क्या कर देगा। मुनिराज! वहाँ तुम्हारा मौन श्रेष्ठ था, बोलना श्रेष्ठ नहीं था। आपके निमित्त से आपके बोलने मात्र से इन जीवों का यदि घात हो जाता है तो तुम्हारे महाव्रतों का उसी क्षण अभाव हो जायेगा। प्रवचनों की भाषा बदलिये। जो भी सुनने आते हैं, मात्र जिनवाणी सुनने आते हैं, उसी में गद्गद् होते हैं। कषाय सुनने कोई भी नहीं आता। जितने श्रोता यहाँ आते हैं, किसी को एक भी इनाम नहीं दी, न मैंने इनको इनाम दिलाई। कमेटी चाहती है कि जैसा जगत् में परिणमन हो रहा, महाराज! कभी-कभी तो कुछ करा दिया करो। परन्तु ध्रुव सत्य है कि ये ऊपर ही ऐसा बोलते हैं, भीतर इनको गद्गद् भाव ही आता है। जब चर्चा चलती है तो शान्ति से बैठकर अनुभूति तो ले लेते हैं।

हर्ष की हिंसा सुनो! तीर्थंकर वर्द्धमान का निर्वाण महोत्सव तुम मनाओगे, उन बेचारे प्राणियों ने क्या दोष किया है, जब तुम्हारे घर के द्वार पर धमाके फूटेंगे तब उनका क्या होगा? उनका निर्वाण हुआ है, तुम पापों का निर्माण कर रहे हो। ये

समाज को बोध होना चाहिये। श्रावको! आज ये नियम तो कर लो कि इस बार दीपावली में जीवों की रक्षा करेंगे, किसी भी प्रकार की फुलझड़ियाँ भी घर में नहीं आने देंगे।

मैं सीधे कहता कि छोड़ दो तो एक भी छोड़ने वाला नहीं था। जो धन जीवों के घात को इकट्ठा किया था उसे सम्मेदशिखर भेज दो, गिरनार भेज दो, प्राणी की रक्षा में लगा दो। ज्ञानियो! इस धन का दुरुपयोग नहीं होना चाहिये। विश्वास मानों, आज आपका लाखों का द्रव्य बच चुका है, क्योंकि सामग्री बहुत कीमती हो चुकी है। हर्ष में हिंसा, पटाके क्यों फोड़ रहे थे? हर्ष में हिंसा। सोचा ही नहीं था, ये हर्ष किस बात का था? हिंसानन्दी रौद्रध्यान। कह रहे थे धर्म, लेकिन चल रहा था पाप। जहाँ लोगों के सोच कुण्ठित हो चुके हैं, लोगों के चिन्तन नष्ट हो चुके हैं, वहाँ जिनशासन का चिन्तन प्रारम्भ होता है। नहीं—तो महाराज! आप पटाके की बात कर रहे हो, वहाँ तो साक्षात् जीवों को तोड़कर फेंक दिया जाता है धर्म के नाम पर। जब-जब दर्शनशास्त्र पढ़ता हूँ, तब लगता है कि द्रव्यहिंसा तो बहुत दिन बाद आती है, वैचारिक हिंसा प्रारम्भ हो जाती है। वैचारिक हिंसा एकांत पक्ष होता है। ज्ञानी! समय पर यदि नहीं सम्हल पाये भारत के मुनिगण और विद्वान् तो इनकी नियत दुर्गति है, निश्चित दुर्गति है। **द्रव्यहिंसा बहुत समय बाद होती है, वैचारिक हिंसा प्रारम्भ हो चुकी होती है।** पढ़ो न्यायशास्त्र। आप तो पार्टियों में विपक्षियों के बारे में क्या-क्या सोचते रहते हो? मानसिक हिंसा जारी है। जब भाषण देने खड़े होते हो तो दूसरी पार्टी के बारे में क्या-क्या बोलते हो? वैचारिक हिंसा चल रही है। ऐसे ही यदि पर्याय समाप्त होने के पहले तक ये श्रमणगण अपने विचारों में साम्यभाव नहीं रख सके, तो समाधि के बारे में सीमन्धर स्वामी से पूछने जाना पड़ेगा। वहाँ जाने की सामर्थ्य नहीं है तो 'मूलाचार' जी में पढ़ लो, समाधि कैसे होगी? 'भगवती आराधना' से पूछ लो, समाधि कैसे होगी? धर्म का राग समाधि मिटा देगा तो पंथ का राग समाधि कैसे दिलायेगा? आचार्य को आचार्यपद इसलिये छोड़ना पड़ता है कि संघ का राग भी समाधि भंग करेगा। वैचारिक हिंसा। न मैं कह रहा कि तू मेरा है। कण-कण स्वतन्त्र है। ये योगियों की सामायिक

में आना चाहिये। तिल-तुष-मात्र भी मैं नहीं ले जा पा ऊँगा। मैं चातुर्मास करने मात्र ही आया हूँ, मैं आपको अपना बनाने नहीं आया हूँ। आप भगवान् की भक्ति करो, जिनशासन में जिओ, विशुद्धसागर में मत जियो। जगत् में जितने श्रमण हैं, उनकी आराधना करोगे तो उसमें विशुद्धसागर भी आ जायेंगे। अन्यथा **आपके मन में एक मुनि के प्रति भी कुभाव आ गये तो श्रमण-हत्या का दोष लगेगा।** जीव जब-जब ठण्डा होगा, तो उसे सत्य समझ में आयेगा। जब रावण का मस्तिष्क ठण्डा होता था, तब लंकेश भी कहता था कि एक सती को मैंने कष्ट दिया है। इतना सबकुछ होने के बाद भी वह राम को नहीं भूल रही है। और राम ने मेरा क्या बिगाड़ा? वो सज्जन पुरुष है। हनुमान, अंगद, सुग्रीव इन लोगों ने तो फिर भी मेरा कुछ बिगाड़ा है, राम ने तो मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा। मैं तो राम को आधा राज्य दूँगा और सीता को भी वापस कर दूँगा। बस, एक बार विजय हो जाय। बस, अहंकार। मुझे मालूम है जगत् में जितने कषायी/क्रूरपरिणामी होते हैं, वे सब चौबीस घण्टे कषायी नहीं रहते। कषाय अन्तर्मुहूर्त में बदलती है। जब वे ठण्डे होते हैं, तो उनको भी पता चलता है कि मैं अमुख व्यक्ति के बारे में गलत सोच रहा हूँ, पर क्या करूँ? एक बार कह आयी, सो कैसे बदलूँ? इसमें शङ्का मत करना। जीव समझता है कि ये सरलस्वभावी जीव है, इसको मैंने क्यों सताया? दोष तो मेरा ही है? रावण कह रहा है कि इनकी पत्नि का हरण तो मैंने किया है। राम ने क्या बिगाड़ा? दोष तो मेरा ही है ना? क्या करूँ ? लोक में मैं प्रतिनारायण हूँ, त्रिखण्डपति हूँ। **ये खण्ड का स्वामित्व परिणामों को खण्ड-खण्ड कर देता है, भावों की विशुद्धि को खण्ड-खण्ड कर देता है। मित्रो! खण्ड-खण्ड तो मिल जायेंगे, परन्तु परिणामों की विशुद्धि तुम्हें जगत् में मिलने वाली नहीं है। वह निज के भीतर ही है।** ये शब्द नहीं बोल रहे, हृदय बोल रहा है। आज लोगों ने धर्म कहना बन्द कर दिया है, सम्प्रदाय कहना प्रारम्भ कर दिया है। वस्तुस्वभाव की व्याख्या धर्म की व्याख्या है कि सम्प्रदाय की व्याख्या है। सिद्धि विनिश्चय, न्याय विनिश्चय पढ़ रहा हूँ। ये राग कहो कि मन ही नहीं करता कि मैं इस न्यायग्रन्थ को छोड़ूँ। जब लोगों ने न्याय पर अन्याय करना प्रारम्भ कर दिया, तब भट्टअकलंक

स्वामी को न्याय विनिश्चय ग्रन्थ लिखना पड़ गया। ये समय की पुकार है। नय, प्रमाण, प्रवचन इन तीन की व्याख्या 'न्याय विनिश्चय' में है। आप तो सब खा-पीकर सोने में समय गवाँ रहे हो। एक बार इन ग्रन्थों को उठाकर निहारो तो मालूम चले कि हमारे आचार्यों ने जैनत्व की रक्षा कैसे की है। **आज श्रमण ही श्रमण के घात के लिये बैठे हैं। यह अच्छा संकेत नहीं है।** अकलंक स्वामी ने क्या अपनी रक्षा के लिये यह ग्रन्थ लिखा है? नहीं, यह अकलंक शासन निष्कलंक चलता रहे, इसलिये अकलंक स्वामी ने 'न्याय विनिश्चय' ग्रन्थ लिखा है। जो नमोऽस्तु जिनशासन है, वही अकलंक शासन है। जिसमें किसी प्रकार का कलंक नहीं है, वह निष्कलंक शासन है। इसलिये अकलंक ने निकलंक शासन को स्थापित किया है। आपको नये-नये शब्द लग रहे हैं, लेकिन कोई नये शब्द नहीं हैं। स्वाध्याय नहीं है, इसलिये हर शब्द नये-नये लगते हैं। आगमिक एक-एक शब्द मन्त्र है। आप लोग यहाँ क्यों शान्त हो जाते हो? अभिमन्त्रित हो जाते हो? घरेलू भाषा अलग होती है, कोर्ट की भाषा अलग होती है, डाक्टर की भाषा अलग होती है, राजघराने की भाषा अलग होती है, तो श्रमणों की भाषा अलग क्यों नहीं होनी चाहिये? ग्रामीण भाषा, चकार-मकार की भाषा का आगम में निषेध है। किसी भी योगी के मुख से हिंसक शब्द नहीं निकलने चाहिये। 'मूलाचार' में लिखा हुआ है। मूलाचार तो बहुत बड़ा ग्रन्थ है, आप तो 'पुरुषार्थ सिद्धिउपाय' ग्रन्थ पढ़ लो, संसार की सारी शंकाओं का समाधान होता है। विषाद की हिंसा से प्रबल हिंसा हर्ष की हिंसा है। हिसानन्दी रौद्रध्यान, हर्ष की हिंसा। जरा-सा पैसा तेरे पास बढ़ गया, सो कैसा लगता है? आहा.....। परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान। **बेटी की शादी में आपने सबकुछ खिलाया। हर्ष में हिंसा। अभक्ष्य खिलाया, रात्रि में भक्ष्य भी अभक्ष्य ही है। रात्रि में पानी का गिलास भी रक्त तुल्य है, अभक्ष्य ही है। दिन में बनाये लड्डू रात्रि में खा रहा है, अभक्ष्य ही है और रात्रि में बने लड्डू दिन में खा रहा है, अभक्ष्य ही है।** करो धर्म की व्याख्या। अब मैं श्रावकाचार ही तो बोल रहा हूँ, तब भी तुम्हें नहीं पचता तो अब कौन-सा श्रावकाचार लेकर आऊँ? पंचास्तिकाय, समाधितन्त्र, अष्टसहस्री तीन ग्रन्थों ने तो पूरा जीवन बदल दिया। आपको अपनी

प्रज्ञा को प्रशस्त निर्मल करना है, तो इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करो। इनको समझने के लिये पहले कई ग्रन्थ पढ़ना पड़ेंगे। नहीं—तो आप 'अष्टसहस्री' लेकर बैठ जाओ। उस दिन जैसा हो जाये कि वह भील-सम्राट गाय ले गया, उसको पता ही नहीं था कि इससे दूध-मलाई मिलती कैसे है? उसने तो कोपर रख दिया 'दो, गाय! दूध दो। दो, गाय! रबड़ी। उसने तो गोबर कर दिया। अष्ट सहस्री ग्रन्थ पढ़ने के पहले आपको कई ग्रन्थ पढ़ना पड़ेंगे, तब वह कष्टसहस्री तुम्हारे अन्दर बड़े कष्ट से प्रवेश करेगी। जैनकुल में जन्मे हो, भारत की भूमि में जन्मे हो। यदि अष्टसहस्री, समयसार का स्वाध्याय किये बिना चले गये, तो तुम्हारा जीवन अधूरा ही गया। मित्र! अहिंसा के बारे में समझना हो तो पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय। देखो, हमारे ग्रन्थों की नकल कैसे हुई है? श्वेतपट्ट आम्नाय के विद्वानों ने दिगम्बर आम्नाय के ग्रन्थों को सामने रख करके उतार डाला। ऐसा ही है। अकलंक, समन्तभद्र, विद्यानन्द का न्याय भद्रबाहु सूरि आदि ने उतार कर रखा है। अहिंसा की व्याख्या आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी कर रहे हैं, तो सूरि ने सावयपण्णत्ति में उतार कर रख दिया। स्वाध्याय तो करना पड़ेगा। शान्ति से स्वाध्याय न करें तो ये तत्त्व कहाँ से लेकर आयेंगे? मेरा कुछ भी नहीं है। ये ध्रुव सत्य है, भले ही समझ में नहीं आता हो, पर आनन्द इसी में है। इतना तो समझ में आता है कि समझ में नहीं आता। इतना ही बहुत है। हर्ष की हिंसा, विषाद की हिंसा तो बहुत कम है। हर्ष में इतनी हिंसा कर डाली। चोरी कर रहा है, उसमें भी हर्ष मना रहा था। बिजली के मीटर में तार फँसा दिया और प्रसन्न हो रहा है कि मैंने इतनी बचा ली। चोरी में आप हँस रहे थे। हर्ष की हिंसा। पूरे टैक्स तो भरते ही नहीं होंगे। हर्ष की हिंसा। माता-पिता ने तो एक के साथ शादी की थी, लेकिन बन्द आँखों से तू कितनों के साथ मानसिक असंयम का सेवन कर लेता है। बोलो, कितनी हिंसा? परिग्रह का तो क्या कहना? झुपड़िया तो है नहीं, भीख माँग रहा है, अट्टालिकाओं की सोच रहा है कि यह भी मेरे पास होता, यह भी मेरे पास होता। कभी-कभी लगता है कि ये कैसा निर्ग्रन्थ जीवन है? ज्ञानी! साधु बनना तो ध्यान रखना कि जो तुझे बनवाना हो, अभी बनवा लेना। घर में बोल देना कि मुझे मन्दिर बनवाना है, भगवान् विराजमान करना है।

लेकिन महाराज बनकर बस पिच्छी कमण्डल और आत्मा। सारे जगत् की चिन्ता से मुक्त जीवन दिगम्बर मुनि का जीवन है। उसी में लग गया तो क्या किया? **चौबीस घण्टे शान्ति का जीवन है तो दिगम्बर साधु का जीवन है। दुनियाँ के लोग आयें, आते जायें, कहते जायें, सुन लो, लेकिन उनकी बिल्कुल नहीं मानना। मानो उतनी, जो तुम्हारी साधुचर्या के अनुकूल हो और अनुकूल नहीं है तो उस जीव को ठेस भी न लगे, उसकी भावना सुन लो और सुन करके ॐशान्ति।** 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' ज्ञानियो! नहीं तो स्वानुभूति कब करोगे? जीवन का एक समय ऐसा आना चाहिये कि जगत् के सुखों को देखना भी शान्त कर लो और जगत् के दुखों को भी देखना शान्त कर लो। अध्यात्म विद्या है। यदि तू अपने वर्तमान के सुख का वेदन करना चाहता है तो पड़ौसी दुःखी दिख गया तो उसके दुःख को दूर करने का जो प्रयास हो सो कर देना, परन्तु उसको दुःखी देखकरके स्वयं दुखी होने का विकल्प मन में नहीं लाना, नहीं-तो तेरी निज की पर्याय का आनन्द क्या होगा? कोई इसलिये आया कि महाराज! मैं गरीब हूँ, मेरे पास फीस के पैसे नहीं हैं। कोई इसलिये आया कि महाराज! मेरी चोरी हो गई। अब करो सबकी इच्छा की पूर्ति। ये सब घर में होता था। यदि यही सबकुछ करना था तो एक घर और बसा लेता, तो कम-से-कम परिवार तो चलता। **दुनियाँ के दुःख को देखकरके दुःखी होना बन्द करो। यदि दुनियाँ के दुःख को देखकर के दुःखी हो रहे हो, ये भी बन्धदशा/राग दशा है। करुणा दुःखी होना नहीं है, दया दुःखी होना नहीं है। दुःख तो असातावेदनीय कर्म के आस्रव का कारण है। दया/करुणा साता का कारण है। दया, करुणा, अनुकम्पा इससे साता का आस्रव होता है। इसलिये जगत् में किसी के दुःख को देखकरके आँसू मत गिराना। सामर्थ्य हो तो उसके दुःख को दूर कर देना।** व्यवहार मृत नहीं होगा, सम्यक् होना शुरू हो जायेगा।

माना कि महाराज जी का आपके घर प्रथम ग्रास में अन्तराय हो गया, तो आपने रोना चालू कर दिया और कहते हैं कि मेरा तो आज भोजन का त्याग है। मित्र! इस क्रिया से क्या महाराज का पेट भर जायेगा? वे तो कर्म के सताये भूखे, तुम

बुद्धि के सताये भूखे रहोगे। अरे! घर जाकर अच्छे से आहार करके आओ और बढ़िया घी मथ कर लाओ और अच्छी वैयावृत्ति करो। तुम ही भूखे बैठ जाओगे तो वैयावृत्ति कौन करेगा? विवेक होना चाहिये।

आज मेरा कर्म टल गया, जैसे ऋण सिर पर रखा हो तो ईमानदार व्यक्ति को चुकाने में हर्ष होता है। जिनागम की व्याख्या करते समय जैनमुनि को ऐसी भाषा बोलना चाहिये जिससे किसी को अँगुली उठाने का अवसर न मिले। ईर्ष्या में कोई कुछ भी बोल दे, पर तत्त्व में अँगुली उठा कर दिखाओ? जो है, सो है। विद्वानो! इन ग्रन्थों को पढ़ो। आगमविरुद्ध हो तो बताओ, शुद्धि करो, इसीलिये ये गोष्ठियाँ की जाती हैं। अन्तराय आ जाये तो आपको यह सोचना चाहिये था कि मेरा दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम था, अच्छा नहीं था, इसलिए विघ्न आ गया। लेने वाले का लाभ-अन्तराय का क्षयोपशम कमजोर था, सो ले नहीं पाया। लेकिन चलो, मेरा एक कर्म टल गया। पुनः न आये, तो आहार-पानी करके माला फेर लो, साधु की सेवा कर लो और दान दो, इससे कर्म कट जायें। रोने बैठ जाओगे सो असाता का और आस्रव-बन्ध होगा। व्यवहार बचा कि नहीं? अरे! सम्यक् व्यवहार बचा। और कुछ नहीं, भैया! चाहे हाथ की रोटी बनाओ, चाहे बेलन की रोटी बनाओ, रोटी तो रोटी है। बस, दोनों का स्वाद अलग है। हाथ की रोटी में मिठास होती है, लेकिन हाथ धोकर बनाना, नहीं—तो सारा मैल रोटी में आ जाये।

वस्तुस्वरूप ऐसा है।

अनन्तसुख को चाहते हो, निर्वाण को प्राप्त करना चाहते हो, तो इन ध्यानों का अभ्यास करो, चारित्र को धारण करो, आत्महित का साधन करो। निजात्मा ही शरणभूत है

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परमपद मोक्ष प्राप्ति"

यथा सङ्गपरित्यागस्तथा कर्मविमोचनम्।
यथा च कर्मणां छेदस्तथाऽऽसन्नं परं पदम्॥ सा. स. 228॥

अन्वयार्थ—यथा सङ्गपरित्यागः = जैसे-जैसे परिग्रह का ममत्व छोड़ा जाता है **तथा कर्मविमोचनम्** = वैसे-वैसे कर्मों की निर्जरा होती जाती है और **यथा च कर्मणां छेदः** = जैसे-जैसे कर्मों का क्षय होता है। **तथा परं पदम् आसन्नं** = वैसे-वैसे परमपद् अर्थात् मोक्ष समीप आता जाता है।

भावार्थ—हे भव्य! जैसे-जैसे परिग्रह के ममत्व का त्याग किया जाता है, वैसे-वैसे कर्मों की निर्जरा होती है और जैसे-जैसे कर्मों की निर्जरा होती है, वैसे-वैसे परम पद समीप आता जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में संयमित साधना की विवेचना करते हुये समझा रहे हैं कि अहो मुमुक्षु! अन्तरङ्ग की विशुद्धि का घात बहिरङ्ग के द्रव्यों ने किया है, यह निमित्ताधीन दृष्टि है। ध्रुव सत्य है कि परद्रव्य तेरे भीतर प्रवेश को प्राप्त हुआ नहीं, परद्रव्य ने तेरे अन्तरङ्ग में प्रवेश नहीं किया है, परन्तु परिणाम किसने घात किये हैं? चिन्तन का कर्ता तू है और चिन्तन में फल का भोक्ता भी तू है। मस्तिष्क में जैसा चिन्तन चल रहा था, दर्शन भी वैसा ही हो रहा था। बन्द आँखों के सामने चित्र झलक रहे थे। तत्त्वज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव को तीर्थराज सम्मेद शिखर का चित्र झलकता है। किसी को गिरनार, पावापुर झलकता है तो किसी को विशाल जिनालय झलकता है, तो किसी अज्ञानी के मस्तिष्क में वेश्यालय झलकता है। न वहाँ जिनालय था, न वहाँ वेश्यालय था। परन्तु जैसी तेरी दृष्टि थी, वैसे चित्र तेरे सामने आ रहे थे। **वस्तु में विकार नहीं, वस्तु में अविकार नहीं। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। दृष्टि तेरी जैसी है, परिणति तेरी वैसी है। पर वस्तु को बदलने का प्रयास मत करो। बदलने का प्रयास करना है तो अपनी दृष्टि को बदलने का प्रयास करो। दृष्टि बदल दो।** अन्तरङ्ग दृष्टि

ही बदलना पड़ती है। जब राग की दृष्टि को मोड़ दिया जाता है तो वहाँ से आँसू गिरना बन्द हो जाता है। जितने पौंछने वाले मिलेंगे, उतने और गिरेंगे। आज तक किसी व्यक्ति ने किसी के आँखों के आँसू को बन्द नहीं किया। महापुरुष भी किसी दूसरे के आँखों के आँसू को बन्द करने की सामर्थ्य नहीं ला सके। श्री राम से पूछो, लक्ष्मण के शरीर को छः माह लिये घूमते रहे। कितने लोग समझाने वाले आ गये, क्या आँख के आँसू को पौंछ सके? आँखों के आँसू जब बन्द हुये, तो ज्ञान की शक्ति भेदविज्ञान से बन्द हुये हैं। जब तक भेद में अभेददृष्टि है, तब तक आँखों में आँसू हैं। भेद में भेददृष्टि हो जायेगी, आँख का आँसू बन्द हो जायेगा।

भेद में अभेददृष्टि, आपका और आपके मित्र का आपस में भेद है कि अभेद है? आप भिन्न हो कि अभिन्न हो? पृथक् हो कि अपृथक् हो? एक हो कि अलग हो? तेरे बेटे की माँ तेरे से भिन्न है कि अभिन्न है? भिन्न है।

श्री राम को जब तक सीता में अभेद दिखता रहा तब तक राम आँखों को सुजाये जंगल में घूमते रहे और जिस दिन राम को भेद में भेद दिख गया, उस दिन दिगम्बर मुनि बनकर खड़े हो गये। हे राम! विदेही के पीछे विदेही को भूल गये। और जिस दिन विदेही याद आ गई उस दिन वैदेही को भूल गये। वैदेही यानी जानकी, सीता। जानकी के पीछे वैदेही को भूल गये, निज आत्मा को भूल गये। जब विदेही (आत्मा) की याद आयी, तब वैदेही (सीता) को भूल गये। जब तक आपको भेद में अभेद दिख रहा है, तब तक बहिरात्मदृष्टि। जब अभेद में अभेद देखोगे और भेद में भेद देखोगे तो अन्तरात्मदृष्टि। भेद अभेद देखने की दृष्टि का ही नाम वियोग होता है। विकल्प का अभाव है। परमात्मदृष्टि परमात्म दशा। इसलिये विकल्प समाप्त करो। भेद में भेद देखो और निज स्वभाव में अभेद देखो जितने मूर्छित होंगे, तनावयुक्त होंगे, सब भेद में अभेद देख रहे हैं। मैं आपके बिना रह नहीं सकता हूँ, रागियो! सब झूठी भाषा है। आप सबके बिना रह सकते हो, इच्छाओं की पूर्ति के बिना नहीं रह सकते हो, इसलिये आप उनसे कह रहे हो कि मैं आपके बिना नहीं रह सकता। जिस जीव से इच्छा पूर्ति की सम्भावना नहीं दिखती है, उसको दूर होने में देर नहीं लगती। आप यदि भगवान् के चरणों

में भी कोई आकांक्षा लेकर आये हो किसी ने कह दिया है कि तुम्हारी आकांक्षा की पूर्ति यहाँ हो जायेगी, तो आप दिन में दस बार आओगे और पचास श्रीफल लेकर आओगे। यदि आपकी इच्छा की पूर्ति नहीं हो सकी, तो यहाँ कह कर जाओगे कि अब भगवान् में भी शक्ति नहीं बची। अपने स्वार्थ के पीछे तुम भगवान् की शक्ति को निहार रहे हो। वीतरागी को सरागी देखना चाहते हो। मुमुक्षु! अपने पाप के उदय को क्यों नहीं देखते हो? तुम्हारे पाप का उदय इतना तीव्र है कि परमात्मा के चरणों में भी उसकी शान्ति नहीं हुई है। पर को दोष देना बन्द करो।

सुख शान्ति चाहिये है तो पर को दोष देना बन्द करो। एक वृद्ध पुरुष पोते को गाली दे रहा था कि ये मुझे सहारा भी नहीं दे सकता। दादा! पोते को गाली देने की जगह उतने शब्दों का प्रयोग णमो अरिहंताणं बोलने में कर देते तो कोई तुमको धर्मात्मा मान करके अपरिचित भी सहारा देने खड़ा हो जाता। पर जब तुम गाली दे रहे होगे, किसी का मन भी कर रहा होगा, तो कहेगा कि इनकी भाषा ठीक नहीं है। जब भाषा ही ठीक नहीं है, तो भाव क्या ठीक होंगे? वृद्धों से मेरा कहना है कि पोते को गाली देने से कुछ नहीं होगा। जब तुम्हें बुरा लग रहा था कि मुझे सहारा क्यों नहीं दे रहा है, मेरे मित्र! तुमने सहारा दिया होता तो तुमको नियम से सहारा मिलता। चत्तारि शरणं पव्वज्जामि। यदि आपने चार का सहारा ले लिया होता, तो आपको लाखों सहारा देने आ जाते। इन दिगम्बर मुनि को देखो। बच्चे से लेकर बूढ़े तक कहते हैं—हे महाराज! हे महाराज! पधारो-पधारो। कितने श्रावक खड़े हैं? जिसने चार का सहारा लेलिया, इसको लाखों सहारा देते हैं। जिसने चार का सहारा नहीं लिया, उसे एक का भी सहारा नहीं दिख रहा। चत्तारि शरणं पव्वज्जामि। अब किसी से सहारा लेने की बात मत करना। **तन का सहारा देने वाले कोटि-कोटि मिल भी जायेंगे, परन्तु मन को सहारा देने वाले जिनदेव होंगे, जिनगुरु होंगे। ये तभी सहारा देंगे, जब भीतर का गुरु प्रशस्त होगा। आत्मगुरु शान्त नहीं है तो जगत् के गुरु कुछ नहीं कर सकते। आज से किसी के द्वार पर सहारा माँगने मत जाना। सहारा चाहिये है तो चत्तारि शरणं पव्वज्जामि।** पुनः कहता है कि जिसको जन्म दिया, वह देख भी नहीं रहा। मेरे

मित्र! ध्रुव सत्य यह है कि जिसको तुमने जन्म दिया, वह ही देख रहा है। देखता होता तो वृद्ध अवस्था में गिर भी पड़ रहा है, कोई देख नहीं रहा है। अरे! वही तो देख रहा है, तू समझ नहीं रहा है। ये समझ तेरी है कि समझ नहीं रहा है। जिसने तुझे जन्म दिया है, वही समझ रहा है। अरे! ये अज्ञानता है कि तू बेटे को कह रहा कि मैंने इसे जन्म दिया है। उसने तो अपने पुण्यकर्म से जन्म लिया है। उसका आयुकर्म का उदय था, उच्च गोत्रकर्म का उदय था। तूने जिसे जन्म दिया है, वह तो काम-विकार था, अशुभभाव था, वहाँ कर्मबन्ध था, वह तुझे देख रहा है, तू बूढ़ा हो गया है। जैसे भोग-भोगे थे, वैसे भोग भोग। मेरे मित्र! सबकी यही दशा है। तब भी दूसरे को देख रहा है। जिसने जन्म दिया, वह देख नहीं रहा है। अरे! जिसे जन्म दिया, वही तो देख रहा है। तेरे अन्दर बेटे का जन्म हुआ था, कि विकारों का जन्म हुआ था? श्री जिनालय में बैठे हो, सत्य बोलना, शुद्ध सोचना। क्या तेरे भावों में पर के भव का जन्म हो सकता है? कभी-कभी लगता है कि आप लोग बहुत पुण्यात्मा हो, क्योंकि जो शब्द मुझे भी सुनने को नहीं मिले थे, वो आपको सुनने को मिल रहे हैं। क्या किसी के भावों में किसी के भव का जन्म हो सकता है? पर के भावों में पर के भव का जन्म नहीं होता, निज के भावों में पर के भाव का जन्म होता है। और निज के भावों से निज के भव का प्रादुर्भाव होता है। तो तेरे भावों में पुत्र का भव कैसे जन्म ले लिया? तेरे भावों में तो तेरे अशुभ भावों का ही जन्म हुआ था। अब क्यों कह रहे हो कि जिसे जन्म दिया वह देख नहीं रहा है?

जिसने पुण्य को जन्म दिया था, वह वृद्ध-अवस्था में भी राज्य-सुख को देखता है। जिसने पाप को जन्म दिया था, वह राजपुत्र होकर भी, सम्राट होते हुये भी नाली का कीड़ा बनते देखा जाता है। जैसा कर्म किया, वैसा उदय में नियत आयेगा। उसमें सन्तान का क्या दोष? सन्तान के दोष को देखोगे तो तुम्हारा जो समय सनातन धर्म की आराधना में जाना चाहिये था, वह सन्तान के द्वेष में जायेगा। वह कितना आभागा जीव होगा, कितना क्षीण पुण्य-पुरुष होगा जिसने सन्तान के राग में माता-पिता को गाली दी, दुतकारा। इस क्षीण पुण्य-पुरुष

की बात सुनो। सन्तान के राग में वृद्ध माता-पिता पर ध्यान नहीं दिया। और यहाँ तक हुआ कि वृद्ध पिता से बोल रहा है तुम बैठे ही तो हो, बच्चे को स्कूल छोड़ आते। माँ से बोल रहा है, तुम उसको स्नान नहीं करा देती। सन्तान के आगे माता-पिता से ईर्ष्या की। जब स्वयं बूढ़ा हो गया, तो सन्तान ने तुझे नहीं देखा, तो अब तू सन्तान को कोस रहा है। सन्तान के आगे माता-पिता से द्वेष किया, आज स्वयं बूढ़ा हो गया तो तन के राग में सन्तान को गाली दे रहा है। तेरी पर्याय नियम से अशुभ दशा में खड़ी हुई है। मुझे मत देखो, अपने परिणामों से पूछो, ऐसा नहीं किया क्या? नहीं किया तो बहुत अच्छे हो, किया है तो तुम बहुत अच्छे हो रहे हो। किसके लिये क्या किया? नेत्रों के सामने सब होते दिखता है। होता वही है, जो होता है। ध्यान दो, जरा चिन्तन करके सुनो, चित्त स्थिर करके सुनो, ग्रन्थि खोलकर सुनो। आज के लिये मत सुनना। आप बहुत सारा पैसा आज के लिये नहीं कमा रहे हो। आज तो खाने को मिल ही रहा है। बहुत सारा पैसा तुम अन्तिम समय के लिये रखते हो, क्या पता कब कैसा दिन आ जाये? **ये जिनवाणी आज के लिये मत सुन, अन्तिम दिन के लिये सुन। आज तो मेरा चित्त निर्मल है, आज तो मेरा ज्ञान काम कर रहा है, आज तो गुरु सामने सुना रहे हैं। जिस दिन मेरे सामने गुरु न हों, प्रभु न हों, श्मशान मुझे याद कर रहा हो, उस समय श्मशान पहुँचने के पहले हे भगवती माँ जिनवाणी! तुम मेरे कान में गुंजायमान हो जाना।** अब राग मत कर। जो है सो है। ये आप आज के लिये नहीं सुन रहे आज सुन रहे हो, उस दिन के लिये सुन रहे हो, जिस दिन हमारी अन्तिम बेला होगी। जन्म के लिये मत सुनना, जन्म-मरण से रहित होने के लिये सुनना। भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि ऐतिहासिक नगरी आगरा में श्री जिनमन्दिर में पंचमकाल के कितने सारे जीव (मनुष्य) श्रुत की आराधना कर रहे हैं। ये तुम्हारी पुण्य पर्याय, ये तुम्हारे पुण्य परिणाम, पुण्य भाव बिना पुण्य-उदय के नहीं मिले। इस काल में कहीं आयुबन्ध हो जाये तो नियम से उत्कृष्ट आयु का बन्ध होगा। कहीं मृत्यु हो जाये तो नियम से सल्लेखना मरण होगा। भावों की ऐसी विशुद्धि कहाँ मिलती है? ज्ञानियो! कोटि-कोटि द्रव्य के खर्च करने पर गीत

सुनने को मिल सकता है, परन्तु भावों की विशुद्धि नहीं मिल सकती। इसलिये पर्याय के क्षणों को अब पर्याय को भी मत दो। वह तो बचने वाली है नहीं। उसे समय मत दो। जो अविनाशी है, उस चैतन्य प्रभु को समय दो। **जो आयुकर्म के निषेक अवशेष हैं, इन पर्याय के क्षणों को पर्याय को भी मत दो। ज्ञानीपुरुष पर्याय के क्षणों को पर्याय को भी नहीं देता। ज्ञानीपुरुष पर्याय के क्षणों को मात्र परिणामों की विशुद्धि के लिये देता है।** योगियों के पास एक क्षण ऐसा आता है। साधना के काल को हे मुनीश्वर! अब साधना को भी मत दो। साधना को ही देते रहोगे तो साध्य की अनुभूति कब करोगे? साधना को समय देना बन्द कर दो, अपने साध्य की अनुभूति लो। कैसे? तीर्थवन्दना करना है, क्यों? परिणामों की विशुद्धि के लिये। तीर्थ बने कौन थे? यदि ये समझ में आ गया तो तुम किसी पर्याय में सच्चे मुनि बन सकते हो। तीर्थवन्दना से तीर्थ नहीं बने। रत्नत्रय तीर्थ में लीन होने वाले के चरण जहाँ पड़े, वे स्थान तीर्थ बन गये। हे योगीश्वर! रत्नत्रयभूत तीर्थ आप ही तो हो। आप अपने तीर्थ में लीन हो जाओ। अपने रत्नत्रय तीर्थ को देखोगे तो तुम परम तीर्थ बन जाओगे। तीर्थवन्दना करते रहोगे तो मात्र स्वर्ग ही जा पाओगे। अपने तीर्थ को समय दे दोगे तो तीर्थंकर केवली भगवान् बन जाओगे। इतनी सामर्थ्य नहीं है तो तीर्थवन्दना मत छोड़ देना। ध्रुव सत्य यह है कि परमात्मा तभी बनोगे, जब रत्नत्रय तीर्थ में लीन हो जाओगे। साधना में ही समय मत दो। जो साधना में ही समय लगाता है, वह उस रसोइये के समान है जो मात्र पकाता है, खाता नहीं है। **साधना की अनुभूति लेते हुये साधना करो। उपशम भाव का वेदन करते हुये साधना करो। साधना के राग में यदि उपशम भाव का घात हो रहा है तो वह साधना 'साधना' नहीं है, वह 'विराधना' है।** कैसे? भगवान् तीर्थंकर जिनदेव की वन्दना करने खड़ा था और कोई एक श्रावक भगवान् की पूजा तल्लीनता से कर रहा था उसे मालूम नहीं था। कि आप खड़े हैं। जो दर्शन करने आया, उसे भगवान् के दर्शन करना भी एक साधना थी। यदि मैं किञ्चित् भी हलन-चलन करता हूँ, तो उसकी पूजा में विघ्न होगा। वह प्रभू की आराधना में तल्लीन था, अब उसके अन्दर द्वन्द्व चल जायेगा कि चलो, महाराज जी आये

हैं, दूर हो जाओ। उसकी एकाग्रता में विघ्न आया। शायद वह नियम लेकर खड़ा हो कि मैं हिलूँगा नहीं तो उसका नियम भी भंग होने वाला है। उसकी दृष्टि में पंचपरमेष्ठी पूज्य हैं। वह तो सबकी विनय करेगा। परन्तु जोर से बोल दिया, अरे भाई! तुझे पता नहीं है, मुझे दर्शन करना है। स्वामी! दर्शन ही तो करना थे। पर दर्शन करके दर्शन करना, लेकिन दर्शन मिटाकर दर्शन नहीं करना, दर्शन भंग करके दर्शन नहीं करना। यहाँ आपने स्वयं की समता को भंग किया, सामने वाले का दर्शन भंग किया, अब तुम दर्शन किसका करना चाहते हो? अब मूर्ति का दर्शन करोगे, मूर्तिमान तो तुम्हारा भंग हो गया। साधक की साधना भंग कर दी। जो समता लेकर आये थे, यहाँ श्रावक पर बरस गये 'दूर हटो, मुझे दर्शन करना है।' चाहिये क्या था? ऐसे दर्शन कर लेते कि उसको पता ही नहीं चलता। श्री जिनालय में और भी वेदियाँ थीं। जब तक वह पूजा कर रहा था, तब तक आप दूसरी वेदियों में दर्शन कर लेते। हो सकता है कि वह देख लेता तो अपने आप खिसक जाता। ऐसे निकलते कि उसको पता ही नहीं चलता। कभी-कभी जीव कहता है कि मैंने तो किसी को अन्तराय डाला ही नहीं है तो फिर मुझे अन्तराय कैसे आ रहा है? जब चिड़िया चुन रही थी दानें, आप वहाँ से निकल रहे थे। इतनी रफ्तार से निकले कि वह भयभीत होकरके उड़ गयी। उनके भोजन में अन्तराय पड़ा कि नहीं पड़ा? ध्यान दो, जिनवाणी क्या कह रही है?

तीव्र-मन्द-ज्ञाताऽज्ञात-भावाऽधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्त-द्विशेषः ।त.सू.।।

भाव अच्छे थे। ज्ञानी ने कहा कि अभी थोड़ा रुक करके कमण्डल में पानी भरना। क्यों? अभी हमारे चौके में देरी है। तूने दानान्तराय का भी बन्ध किया और भोगान्तराय का भी बन्ध किया। दूसरे के चौके तो तैयार हो चुके थे, अपना तैयार नहीं हुआ था, कोई पानी लेकर जा रहा था, तूने कमण्डल में देरी से भरवाये, तूने कालातिक्रमण कर दिया है। उमास्वामी महाराज कह रहे हैं कि तूने दानान्तराय कर्म का बन्ध कर लिया, लाभान्तराय कर्म का भी बन्ध कर लिया। महाराज जी! भाव तो अच्छे थे। लेकिन काल का अतिक्रमण किया है तो भाव अच्छे नहीं थे, तेरी स्वार्थी दृष्टि थी। बन्ध तो होगा। ये माँ अपनी बहू से कहती है कि जब काम

निपटा लेना, तब भोजन कर लेना। 'ये तो घर की व्यवस्था है।' हाँ! घर की तो व्यवस्था है। तेरे घर की व्यवस्था है, यहाँ कर्म की व्यवस्था है। आप अपना काम करो, कर्म अपना काम कर रहे हैं। माँ! यह मत सोचना कि बहू को भोजन से रोकने पर कर्म का बन्ध नहीं होगा। उससे भी आस्रव होगा। घर में पशु आदि भी पालते हो, उनको समय पर भोजन-पानी नहीं देना हिंसा ही है। अन्न-पान निरोध। सोचना, जीवन भर क्या किया? कर्मबन्ध होता है, उदय में भी आता है, फल भी भोगने को मिलता है। अब सोचो, मेरे साथ क्या होगा? ज्ञाता-दृष्टा, जानो-देखो। जितने अधिक कर्ता बनोगे, उतने अधिक भोक्ता बनोगे। हर विषय में तुम्हारी कर्ताबुद्धि है तो हर विषय में भोक्ताबुद्धि भी रहती है। जहाँ कर्ताबुद्धि रहेगी, वहाँ भोगने के विषय में नहीं भी सोचोगे, तब भी मिलेगा। टेंसन वहीं है, जहाँ कर्ताबुद्धि है। जहाँ कर्तृत्व दृष्टि है, वहाँ दु:ख-प्रवृत्ति है। एक व्यवस्था हाथ में लेने पर कानों में जिनवाणी नहीं पहुँच पाती है। **यदि व्यवस्था छोड़ दो तो हर वस्तु व्यवस्थित मिलना प्रारम्भ हो जाती है। सारे जगत् की व्यवस्था छोड़ देगा तो अपने आप व्यवस्था बनना प्रारम्भ हो जायेगी। जो व्यवस्थायें करते हैं, उनको विवश रहना पड़ता है। जो व्यवस्थायें छोड़ दिया करते हैं, उनके आगे-आगे व्यवस्थायें चलती हैं।** राग की दृष्टि बन्ध की दृष्टि। द्वेष की दृष्टि बंध दृष्टि कर्तादृष्टि बंध दृष्टि। कहीं दु:ख नहीं है। लोक में दु:ख नाम की वस्तु है ही नहीं। कुछ लोग सोच रहे होंगे मैं साधु बन कर दु:खी बैठा हूँ। कुछ लोग बोल नहीं पाते, मैं बोल लेता हूँ।

विशुद्धसागर के आगे-पीछे तो कोई है नहीं। आनन्द में जी रहे हैं। लोक में कष्ट नाम की कोई वस्तु नहीं है। ये कितने लोग अपने बेटों से कह कर आये होंगे? कितने अपने घर में अनादर सह कर आये होंगे? कितने अपनों को पीट कर आये होंगे। कितने पैसों के सताये आये होंगे? सब यहाँ बैठे होंगे। लेकिन फिर भी मैं कह रहा हूँ कि लोक में कष्ट है ही नहीं। लोक में कष्ट हो जायेगा तो सिद्ध भगवान् कहाँ हैं? लोक में ही। **यदि लोक में दु:ख होता, तो अनन्तसुख का भोक्ता अशरीरी सिद्ध परमेश्वर दु:खी हो जायेगा। लोक में कष्ट होगा**

तो अरहन्त भी दुखी हो जायेंगे। लोक में कष्ट होगा तो निर्ग्रन्थ योगी दुःखी हो जायेंगे। ये मुस्कराते दिखने वाले मुनि इनकी आँखों से आँसू टपकते दिखेंगे। मुमुक्षु! लोक में कष्ट नहीं होता है। दुःख कहीं है तो तेरे कर्माधीन है, अकांक्षाधीन है। सुख कहीं है तो तेरी तटस्थ बुद्धि के भीतर है।

ज्ञानी! तू कपड़ा बदलेगा, धोयेगा, पानी चाहिये पड़ेगा, सुखायेगा, फिर रखना भी पड़ेगा। यदि तू कपड़े पहनना बन्द कर दे, तो तेरा कपड़े धोने सम्बन्धी कष्ट, सुखाने सम्बन्धी कष्ट, सारा समाप्त हो जायेगा। आज मुझे कोई चिन्ता नहीं सता रही कि किसके गीले, किसके सूखे? कुछ नहीं। इतना कष्ट दूर हुआ कि नहीं? 'हुआ।' पक्का? 'हाँ।' कष्ट दूर करना चाहते हो क्या? 'समय आने पर।' ज्ञानी! ये तेरी ही दशा नहीं है, ये सारे जगत् के मोही कर्ताबुद्धि जीवों की दशा है। ये कहते हैं कि कष्ट है, कष्ट है। यदि इनसे कहो कि दूर कर लो, तो पता नहीं क्यों नहीं करना चाहते हैं? सब झूठी बातें हैं, कोई दूर नहीं करना चाहता। यदि दूर करने की इच्छा है, तो कोई आगे न पीछे। दूर करने की इच्छा है तो कौन किससे बन्धा है? तेरे राग में ही तेरे राग का बन्धन है, किसी अन्य प्रकार का बन्धन है ही नहीं। कम-से-कम आप सत्य को सुन तो रहे हो, समझ तो रहे हो। आचार्य यही समझा रहे हैं। शास्त्रों का अभ्यास करते-करते बहुत दिन हो गये, अब शास्त्रों का अभ्यास भी बन्द करो। ग्रन्थ पलटते-पलटते बहुत समय व्यतीत हो गया, अब ग्रन्थि पलट लो। अस्त्र-शस्त्र, शास्त्र ये तेरी आत्मा का धर्म नहीं है। ग्रन्थ पलटना बन्द कर दो। यदि ग्रन्थि पलट गई, तो ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि ग्रन्थि नहीं पलट पा रहा है, तो पलटते रहो ग्रन्थि पलटने का अभ्यास किया जैसे तूने श्वासों का अभ्यास किया, ऐसे ही **हे जीव! अपनी आत्मा में विनय का अभ्यास करो। जिसके भीतर विनय का अभ्यास हो गया है उसके लिये मोक्ष का द्वार खुल गया।** नल से पानी भरते समय बर्तन को टोंटी के नीचे रखना पड़ता है। तुझे कुछ नहीं करना पड़ेगा, मात्र नीचे रख देगा, अपने आप भर जायेगा। ऊपर रखेगा तो तू कुछ भी कर ले, वह भरने वाला नहीं है। **विनय का अभ्यास कर, जिनवाणी अपने आप तेरे भीतर भर जायेगी। विनय नहीं है तो ज्ञान**

आने वाला नहीं है।

विनय के बिना तेरी सारी विद्यायें निष्फल हैं। इसलिये पंचपरमेष्ठी की अविनय कभी मत कर लेना। यथार्थ बताऊँ, मैं तो अपने गुरुमहाराज के यहाँ भी जाता हूँ तो जितनी आवश्यकता उतना ही मात्र उनके कमरे में जाता हूँ। स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, हुआ, प्रायश्चित लेना हुआ, तब गये। आप अपने कक्ष में विराजो, मैं तो दूर से आपको देखूँगा। ये जिनमन्दिर है, यहाँ मात्र उतना ही बैठना जितना उपदेश चल रहा है, भक्ति कर रहे हो, पाठ कर रहे हो। ज्यादा नहीं बैठना। कहीं झपकी ले ली, अंगड़ाई ले ली, तो जिनालय में आसादना हो गई। सत्रह दोषों से रहित होकर मन्दिर जाना चाहिये। 'कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा' ग्रन्थ में लिखा है कि तुमने मन्दिर में अंगुली भी चटका ली तो पाप का बन्ध कर लिया। और-तो-क्या मन्दिर में शरीर की गैस भी पास हो गई तो प्रायश्चित किया करो। अभी तक जो भूलें की हैं, वे भूलें होगई, लेकिन आज तो समझ में आ गया। कुछ नहीं तो नौ बार णमोकार पढ़ लिया करो। जब इतनी सूक्ष्म व्याख्या है। मैं तो घर की बातें भी मन्दिर में कर लेता हूँ, उस समय भक्ति-आराधना चल रही है कि आसादना? भगवान् की भक्ति, साधना, आराधना, ध्यान, तपस्या को छोड़करके अन्य कोई चर्चा का स्थान नहीं है। कोई दूसरा बातें कर रहा तो? टोकना भी नहीं। कहीं उसने नहीं सुनी, तो तुम्हारे परिणाम वहीं खराब हो गये। अथवा क्या मालूम कोई बहुत जरूरी बात होगी, कर लेने दो। लेकिन ध्रुव सत्य कि है **गूँगे-बहरे वे ही होते हैं जो जिनालय में पर की निन्दा, आलोचना आदि बाहर की बातें सुनते हैं, करते हैं।** पूज्यपाद स्वामी ने तो लिख दिया—

शास्त्राभ्यासो जिनपित-नुतिः, संगति सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगण—कथा, दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे।
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः॥स.भ.॥

शास्त्रों का अभ्यास हो, जिनेन्द्र के चरणों में मेरी श्रुति हो और 'दोष वादे च मौनं' मेरा दूसरे के दोष कहने में मौन है। संगति आर्य लोगों की करना, सत्पुरुषों

की संगति करना। जिनके पास बैठने से दो अच्छी बातें सुनने को मिलें, अच्छे गुण मिलें, उनके पास बैठना। जहाँ निजके ही गुण विगलित होने लग जायें, वहाँ जाने का विचार ही मन में मत लाना। भावों की विशुद्धि बने वहीं ठहरना। ये पंचमकाल है, इसमें तो क्षण-क्षण में पाप के साधन दिखाई देते हैं। पल-पल में, प्रदेश-प्रदेश में दिखते हैं।

मित्रो! महाराज तो कभी-कभी मिलते हैं। जिनदेव तुम्हारे पास हैं, माँ जिनवाणी तुम्हारे पास है। माँ की गोद में तुम आनन्द लूटो। कुछ लोग कह रहे थे, 'महाराज जी! हम लोगों की एक दिनचर्या बन गई है। संघ का विहार हो जायेगा, फिर हम लोग क्या करेंगे?' कुन्थलगिरि में आचार्य शान्तिसागर महाराज की सल्लेखना चल रही थी। पण्डित जगन्मोहन लाल शास्त्री कटनी वाले वहाँ पहुँचे और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे—स्वामी! जब भी मन करता था तो मैं उत्तर भारत से दौड़ा-दौड़ा आता था दक्षिण में। आपके चरणों में आकर धर्म की बातें सुनकर आनन्द लूटता था। मुझे तो आपका ही सहारा है। अब स्वामी मेरा सहारा कौन होगा?

आचार्यभगवन् बहुत ही सुन्दर बात कहते हैं—पण्डित जी! आपका सहारा मैं हूँ, तो मेरा सहारा कौन है? चत्तारि शरणं पव्वज्जामि, धम्मं शरणं पव्वज्जामि। आपका शरण तो धर्म है।' पण्डित जी! जो मेरा शरण है, वही सारे विश्व का शरण है। उसी की शरण में रहना दुनियाँ की शरण में मत जाना। जो तुम्हारी दिनचर्या बन चुकी है, जब प्रवचन सुनने में मन लगने ही लगा है, तो अब क्या करोगे? श्री जिनालय में जिनवाणी विस्तारना और स्वाध्याय करना। उतना समय स्वाध्याय को देना, यहाँ-वहाँ मत देना। फिर देखो क्या आनन्द आता है। समता अपने आप आयेगी, विषमता अपने आप जायेगी।

शास्त्रों का सतत् अभ्यास करना चाहिये। परन्तु शास्त्र 'शास्त्र' ही होना चाहिये। वीतरागी अरहन्त की वाणी होना चाहिये। ऐसा नहीं कि किसी पत्रिका को खोलकर बैठ गये। कहीं इसकी निन्दा छपी थी, कहीं किसी विद्वान् की निन्दा छपी थी। इन पत्रिकाओं को पढ़कर परिणामों को खराब मत करना। मात्र जिनवाणी पढ़ना। ज्ञानीजीव को पता है कि जो जिनवाणी में लिखा है, वही सत्य है। अब मैं अलग से लिखूँगा तो जिनवाणी नहीं होगी। जिनवाणी लिखूँगा तो वह पहले से ही है।

जीवन में इतना ध्यान रखो, तुम्हारा लिखने का मन भी करे तो वही लिखना जो पूर्व से चला आया है। अपने मन का लिखोगे तो कल कोई दूसरा लिखेगा। जो स्वाध्याय के नियम लिये हैं, वे किसी पत्रिका को खोलकर मत बैठना, आगम ग्रन्थ खोलकर बैठना। कदाचित् तुमने कुछ पढ़ लिया, जितनी विशुद्धि तुम बना पाये थे, एक दिन में तुमने सब खो दिया। यदि रक्षा करना है तो परिणामों की विशुद्धि की रक्षा करो। ये सबको पता है कि कोई बचने वाला नहीं है। सात दिन में सब चले जायेंगे। यदि बचाना है तो अपने परिणामों की विशुद्धि को बचाना। इसलिये आत्मा में विनय का अभ्यास करो, ज्ञान का अभ्यास करो।

जो विषयों से पराङ्मुख है, ज्ञान में लीन है, विनय गुण से युक्त है, ऐसा यति शीघ्र ही अपनी आत्मा को परमात्मा बना लेता है।

श्री जी की प्रतिमा छैनी से बनी या शिल्पकार के हाथ से? देखने वाले कहते हैं कि छैनी से बनी हाथों से बनी। तेरे हाथ में छैनी है, बनाकर दिखा? प्रज्ञा न होती तो प्रतिमा कैसे बनी? ऐसे ही पिच्छी, कमण्डल, **मुद्रा तभी कार्यकारी है जब भावों की प्रज्ञा निर्मल है। शिल्पकार प्रज्ञा से परमात्मा बनाता है, तो निर्ग्रन्थ योगी अपने परिणामों से निज आत्मा को परमात्मा बनाता है।** प्रज्ञा की छैनी है। प्रज्ञा होगी, छैनी नहीं होगी, तब भी प्रतिमा नहीं बनेगी। नहीं-तो मुमुक्षु कहेंगे कि मैं मुनि नहीं बनूँगा, मैं तो भावों से भगवान् बन जाऊँगा। तीन काल में बनने वाले नहीं हो। शिल्पकार को कितना ही ज्ञान हो, यदि छैनी नहीं चलायेगा, तो प्रतिमा नहीं बनेगी। ऐसे ही आपको छैनी भी चाहिये, हाथ भी चाहिये, पर प्रज्ञा भी चाहिये। बहिरङ्ग निमित्त भी चाहिये, अन्तरंङ्ग निमित्त अनिवार्य है। घर जाकर किसी को मत सम्हालना, सम्हाल सको तो अपने परिणामों को सम्हालना।

ये जीव जैसे-जैसे परिग्रह का त्याग करेगा, वैसे-वैसे ममत्व का त्याग होगा और जैसे-जैसे ममत्व का त्याग होगा, वैसे-वैसे कर्मों का विमोचन होगा। जैसे-जैसे कर्मों का क्षय होगा, वैसे आत्मा परमात्मा हो जायेगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"पण्डित/विद्वान् कौन?"

यत्परित्यज्य गन्तव्यं तत् स्वकीयं कथं भवेत्।
इत्यालोच्य शरीरेऽपि विद्वान् तां च परित्यजेत्॥ सा. स. 229॥

अन्वयार्थ—यत् परित्यज्य = जिस शरीर को छोड़कर **गन्तव्यं** = जाना पड़ेगा, **तत् स्वकीयं कथं भवेत्** = वह शरीर अपना कैसे हो सकता है **इति आलोच्य** = ऐसा विचार कर **विद्वान्** = भेदविज्ञानी पण्डित **शरीरे अपि** = शरीर से भी **तां च परित्यजेत्** = उस ममत्वभाव को छोड़ देते हैं।

भावार्थ—अहो भव्य! जिस शरीर को छोड़कर जाना पड़ेगा, वह शरीर अपना कैसे हो सकता है? ऐसा भद्र-विचार करके भेदविज्ञानी विद्वान् अपने शरीर में भी आसक्ति (ममत्वभाव) को छोड़ देता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मोक्षपद के निकट/पास पहुँचने की भूमिका की बात कर रहे हैं। जहाँ संघ है, वहाँ संयम है। जहाँ संघ है, वहाँ है रत्नत्रय धर्म। जिस आत्मा में रत्नत्रय धर्म का संबल है, समूह है, ऐसी आत्मा का समुदाय ही संघ है। जिन आत्माओं के अन्तस् में रत्नत्रय धर्म का समूह नहीं है, ऐसी आत्माओं का समूह संघपने को प्राप्त नहीं है। परिग्रह का अर्थ है संग और चतुर्विध संघ (ऋषि, मुनि, यति, अनगार ये चार प्रकार का संघ) मुनि-संघ है। वह मुनिसंघ कहाँ है? जहाँ रत्नत्रय का संग है। रत्नत्रय सम्भव नहीं है, तो मात्र संग। मोक्षमार्ग संग में नहीं है, मोक्षमार्ग संघ में है। आज तक हमने क्या ध्याया? जिसको तुमने आँखों से देखा है, वह संग देखा। निर्ग्रन्थ योगियों की पहचान, निर्ग्रन्थ योगियों का लांछन, निर्ग्रन्थ योगियों का चिह्न निर्ग्रन्थता ही रहने देना, निर्ग्रन्थ योगियों का चिह्न परिग्रह मत बनाना। श्रमणों की पहचान परिग्रह से मत करना। श्रमणों की पहचान परिग्रह से कर लिये तो जगत् के परिग्रहियों की पहचान किससे होगी? उनकी पहचान मत छीनो। जो मठों में आसक्त हैं, जो आश्रमों में आसक्त हैं, जो श्री व स्त्री से सम्पन्न हैं, ऐसे मठाधीशों की पहचान को आप मत छीनो।

निग्रन्थों की पहचान तो मात्र दिगम्बर मुद्रा है, रत्नत्रय धर्म है, पिच्छी-कमण्डलु है और गात्र मात्र परिग्रह है।

धण्णा ते भयवंता। वे भगवन्त धन्य हैं जिनको सिर का बाल भी भार लगता है। वे श्रमण धन्य हैं जिनको रोम-कूप भी परवस्तु नजर आती है। वे श्रमण धन्य हैं जिनको यह देह भी भारभूत लगती है। निज की देह का ममत्व हमारी विदेही दशा में बाधक है। पर की देहों का राग तुझे मोक्ष कैसे ले जायेगा? हे श्रावको! नियोग है, वस्तुस्वरूप को समझ लो। जिससे अनन्त काल से परिचित हो, उसके परिचय के लिये आप प्रश्न मत करना। जिससे परिचित नहीं हो, उससे परिचय की बात करना। मेरे मित्र! कभी दिगम्बर मुनि के पास इसलिये मत जाना कि ऐसा कोई तन्त्र-मन्त्र बता दो जिससे मेरे घर में श्री बढ़ जाये। हे ज्ञानी! तू पूछने भी गया तो क्या गया? इस परिग्रह को तो चीटियाँ भी जानती हैं। चीटियों के घरों में भी दाने रखे मिल जायेंगे। पीले धान्य भरूँ कि काला धान्य भरूँ, सरसों भरूँ कि मूँग भरूँ कि चना भरूँ। हे सुधी श्रावको! धिक्कार हो। दिगम्बर मुनि के चरणों में तुम व्यापार की बात करने जा रहे हो और उसको तुम चमत्कार कह करके आत्मा की वंचना कर रहे हो। व्यापार ही करना था तो तुम घर छोड़ कर चले क्यों? कृत, कारित, अनुमोदना। 'षट्काय जीव न हनन तें, सब विधि दरव हिंसा टरी।' यह वही आगरा है जहाँ विद्वान् मुनि तो नहीं बन पाया, परन्तु मुनिस्वरूप की जो व्याख्या की, उस पर तो ध्यान दो। आगरा की भूमि पर तो कम-से-कम निर्ग्रन्थों के निर्ग्रन्थ स्वरूप की व्याख्या होनी चाहिये है।

जीव छह काय के हैं और आपने षट्काय के जीवों की द्रव्यहिंसा का पूर्ण प्रत्याख्यान किया है। जिसकी द्रव्यहिंसा का ही त्याग नहीं है, उसके भावहिंसा का त्याग होता ही नहीं है। यह दिगम्बर आम्नाय है। जिसका द्रव्यहिंसा का त्याग हो चुका है, उसका भावहिंसा का त्याग हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। जिसके द्रव्यहिंसा का त्याग नहीं है, उसकी भावहिंसा का त्याग नहीं हो सकता। देह से जीव मार रहा हो और कहे कि मेरे भाव नहीं हैं, हे मिथ्याभाषी! आप तो कपड़े पहने नहीं हो, वह तो देह में पड़े हैं। हे जीव! इस मिथ्या मत का आचार मत फैलाना। बिना बुद्धि तेरे शरीर पर चढ़ कैसे गये? बिना बुद्धि के रंगबिरंगे

कपड़े बदल कर कैसे आते हैं? वस्त्र रंगे हैं रंग से, तेरा चित्त रंगा है राग से। बिना राग के रंगे ये रंग-बिरंगे वस्त्र धारण कर ही नहीं सकता। वस्त्र की जो नाना रूपता दिख रही है, ये वस्त्रों के रूप नहीं हैं। वह तो अपने रूप में हैं। ये प्रमाण वस्त्र है कि तेरे रागों का रंग इतने रूप है। जितने छींट के कपड़े हैं, उतने छींट के तेरे भाव हैं। जितने छींट के वस्त्र हैं, उतने छींट तेरे अन्दर है।

साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानं।प.मु.सू.।

बिना अग्नि के धूम नहीं निकलता। धूम दिखाई दे रहा है, इसका तात्पर्य है कि कहीं अग्नि होना चाहिये। साधन से साध्य का ज्ञान होना, इसका नाम अनुमान है। रंगबिरंगे वस्त्र दिखाई दे रहे हैं, ये साधन है, साध्य मेरे भीतर कितना रंगबिरंगा होगा? नीति-न्याय के साथ प्रवचन कीजिये। नीतिन्याय के साथ वस्तु-व्यवस्था की व्याख्या कीजिये। यहाँ ये नहीं चलेगा कि भाव नहीं थे। क्या भाव नहीं थे? बिना अग्नि के धूम निकलता कहाँ से है? जो बिना अग्नि का धूम होता है, वह धूम नहीं होता है, वह बादल की वाष्प हो सकती है, नदी का किनारा हो सकता है, मौसम का कोहरा हो सकता है, परन्तु धूम तो अग्नि का ही होता है। आप कह सकते हैं कि ठण्डियों में मेरे मुख से भी धुआँ निकलता है। जो मुख से धुआँ निकलता है, उसका ज्ञान करो। जठराग्नि के प्रभाव से मुख से धुआँ निकलता है। जिसकी जठराग्नि मन्द पड़ गई, उसका भोजन पचना बन्द हो गया। अब उसको गरिष्ट भोजन करना बन्द कर देना चाहिये एवं भोजन भी कम कर देना चाहिये। यदि लम्बे समय तक जीने की इच्छा है तो। जल्दी जाना है तो भोजन खराब करो और प्राणों का नाश करो। हर व्यक्ति को स्वयं के बारे में ज्ञान होना चाहिये।

जब सामने नजर आ रहा है कि छींट के कपड़े शरीर पर पड़े हुये हैं, हे जीव! कपड़े तेरे ऊपर पड़ने नहीं आये। दुकान पर तू गया था कि कपड़े तेरे पास आये थे? जब खरीदने गये थे, कितने थान पटकवाये थे? तू खोज रहा था, कपड़ा नहीं खोज रहा था। तू राग खोज रहा था। 'माँ! मैंने जीवन में कोई पाप ही नहीं किया।' तुझे पता नहीं है। पाप नहीं तो क्या पुण्य था? एक घण्टे कपड़े आँखों से देखता रहा, वहाँ वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम नष्ट किया, ज्ञानावरणी कर्म का क्षयोपशम नष्ट किया, आयुकर्म के निषेक नष्ट किये। हे अभागे! यदि इतने समय परमात्मा

का ध्यान किया होता तो कर्म का क्षय होता, न कि पुण्य का नाश होता। इसलिये दिगम्बर योगी बिना कुछ किये, कोई विशेष तपस्या भी नहीं कर रहे, तब भी उनकी कर्म की निर्जरा अनवरत चलती है। क्यों? ये व्यर्थ का राग तो नहीं किया। दूसरे की दुकान पर खड़ा हो करके इन पटों (वस्त्रों) में आपने अपनी पटुता (प्रज्ञा) को नष्ट किया। सोचो, जिस समय पटुता में वस्त्र देख रहे थे, उस समय तुम क्या थे? ये पुण्य चल रहा था क्या? दिगम्बर भेष के नाश के लिये तू वस्त्रालय गया था। दूसरे को छलने के लिये तू वस्त्रालय गया था। किसी को मत देखना, मात्र भावों से मिलिये। अपनी चोरी को छिपाने के लिये वस्त्रालय गया था। निर्वस्त्र रहूँगा तो मेरी वासनायें दिख जायेंगी, वस्त्र ओढ़ लूँगा तो वासनायें दिखेंगी नहीं। डाका डालने के लिये तू वस्त्र खरीदने गया था। स्वीकार तो कीजिये। आप ग्रहस्थ हो, मैं मानता हूँ, लेकिन ग्रहस्थ होने का यह मतलब नहीं है कि पापों से तुम्हारा समझौता है। ग्रहस्थ होने का मतलब यह भी नहीं है कि ग्रहस्थों के द्वारा किये गये पाप 'पाप' नहीं हैं। योगियों के श्रीमुख से तो पापों के समझौते की बात निकलनी ही नहीं चाहिये। हे योगीश्वर! आप तो निर्वाण मात्र का मार्ग दिखाने वाले नेता हो, आप संसारमार्ग के नेता नहीं हो। संसारमार्ग की बात निर्वाण मार्ग का नेता दिखाने लग जायेगा, तो निर्वाणमार्ग की बात मैं किससे पूछने जाऊँगा? दुनियाँ के गण्डा-ताबीज आदि की बात पूछने साधु के पास जा रहे हैं, ये साधु से गलत मार्ग पूछने जा रहे हैं। ग्रह उतारने आदि की कोई बात पूछने जा रहे हैं, ये गलत बात पूछने जा रहे हैं। तुम को ग्रह उतारने की बात पूछना है तो 'परिग्रह कैसे उतरे' यह पूछना चाहिये। परिग्रह उतर गया तो सारे ग्रह अपने आप उतर जायेंगे। फिर नहीं पहनने पड़ेंगे काले कपड़े, नहीं लगानी पड़ेगी लाल कपड़े की ध्वजायें। सब उतर गये। जब तक सप्त भय भीतर भरे हैं, तब तक सप्त रङ्गों में अपने ग्रह-निवारण दिखेंगे। यदि सप्त भय उतर जायेंगे, उसे कोई रंग की आवश्यकता नहीं दिखेगी। ध्रुव सत्य है, जगत् के जितने व्यन्तर हों, भूत हों, भय हों, उनसे कह देना कि विशुद्धसागर से मिलो, क्योंकि मुझे मालूम है कि वे मेरे पास आयेंगे नहीं। पानी भी वहीं भरता है, जहाँ गड्ढा होता है। मेहमान भी वहीं रुकता है, जहाँ भोजन मिलता है। तू कहीं तीन दिन रुकने के उद्देश्य से गया था, उसने पानी के लिये

भी नहीं पूछा। किसी को भगाना हो, तो उससे भागने की मत बोलना। उसे आदर मत देना, वह अपने आप भाग जायेगा। जब व्यवस्था ही नहीं देगा, तो विवश होकर भाग जायेगा। ऐसे ही कर्मवर्गणायें आयें तो कर्म आकर चले गये। पाप की क्रियायें सामने खड़ी रहें, तुम उनको सम्मान मत देना तो पाप अपने आप दूर भाग जायेंगे। सम्यग्दृष्टि जीव पापों के लिये व्यवस्था ही नहीं देता तो उनको विवश होकर भागना पड़ जाता है। इसलिए व्यवस्थायें देना बन्द करो। जो जीव राग में रंगा हुआ है, वह पापों के लिये व्यवस्था देता है तो फिर उन पापों को विवश होकर बन्धना पड़ता है। व्यवस्था कौन देता है? व्यवस्था आपने दी है, आप निहारिये। श्रावक बहुत सारे विषयों को पाप नहीं मानता। तत्त्वनिर्णय के अभाव में निर्ग्रन्थ मुनि भी बहुत सारे विषयों को परिग्रह ही नहीं समझता, पाप नहीं समझता। आचार्य वादीभसिंह स्वामी को 'क्षत्र चूड़ामणि' ग्रन्थ में स्पष्ट लिखना पड़ा **'तत्त्वज्ञानविहीनानां निर्ग्रन्थमपि निष्फलम्।'**

तत्त्वज्ञान के अभाव में निर्ग्रन्थ मुनि बनना भी निष्फल ही है। छिलके उतार कर रख दिये और छिलके ही देख रहा है। चावल के लिये धान्य कूटा जाता है, छिलके के लिये धान्य नहीं कूटा जाता। जो श्रमण-दीक्षा को प्राप्त करके 'श्रावको! ये अनाज खरीद लो, ये चना मसूर खरीद लो, तुमको लाभ मिल जायेगा', इस प्रकार की शिक्षा दे रहे हो, हे श्रमण! तुम कर क्या रहे हो। वमन करके चाटने के लिये क्यों खड़े हो? इनको श्री कमाने की विद्या मत सिखाओ। चार संज्ञाओं को जीव अनन्त काल से जानता है। पाँच पापों को अनन्त काल से जानता है। परिग्रह कैसे कमाया जाता है, ये मेरे से मत पूछो। उसके लिये तो आप ही प्रोफेसर हो, प्राचार्य हो, डीन हो। मायाचारी कैसे करनी पड़ती है, तीन के तेरह कैसे करने पड़ते हैं, ये आप सब (श्रावक) अच्छे से जानते हो। इन श्रावकों को यह सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है कि पैसे कैसे कमाना चाहिये। ये कमाना जानते हैं। इनको यह सिखाइये कि हे मित्र! धन व धरती से भेद रहित होकरके निज भगवान्-आत्मा को कैसे पहचानना चाहिये। यह निर्ग्रन्थों को बताना चाहिये। आनन्द तो पैसे में भी आता है। यदि पैसे में आनन्द नहीं आता होता, तो तू कमाना छोड़ देता। विश्वास मानो पैसे में बहुत आनन्द आता है। परिग्रहानन्दी रौद्रध्यान ही है।

उसमें आनन्द आता है। अन्दर से गुदगुदी छूटती है। परवस्तु के मिलने पर इतना आनन्द आता है तो निज वस्तु के मिलने पर कितना आनन्द आयेगा? आज आगरा से किसी का बालक मुनि बन जाये तो मुझे मालूम है आगरा वालों को कितना आनन्द आयेगा। तो उस परिवार वालों को, उस पिता को कितना आनन्द आयेगा। पिता तो मुनि बना ही नहीं है, उससे पूछो जो बना है, उसे कितना आनन्द आयेगा? यदि वैरागी है तो। नहीं-तो मुनि बन कर रोयेगा—'अमुख महाराज जी आये तो भीड़ लगी थी, मैं आया तो कोई आया ही नहीं।' सो बैठ कर रोयेगा।

मोक्षमार्ग में आनन्द मात्र उसी को मिलता है, जिसके पास वैराग्य है। यदि वैराग्य नहीं है, तो मोक्षमार्ग में कोई आनन्द नहीं है, मात्र कष्ट-ही-कष्ट है। यहाँ- जैसा आनन्द जगत् में कहीं नहीं है। यहाँ-जैसा आनन्द रागियों को कहाँ आयेगा? बेचारे कुटपिट कर सो भी नहीं पाते। बेचारे को शान्ति से नींद भी नहीं आती। राग है, तो वैरागी को आनन्द नहीं और रागी को वैराग्य है, तो रागी को आनन्द नहीं। घर में रागी है और हो गया वैराग्य, परिपूर्ण सम्पत्ति से भरा हुआ है, तब भी उसको आनंद नहीं आ रहा है। क्यों? राग से वैराग्य का मिलन होता ही नहीं है। एक समय में दो मौसम कभी नहीं होते। जैसे दो मौसम एकसाथ नहीं होते, वैसे ही दो भाव एक साथ नहीं होते। वैराग्य भी है और राग भी है, यह ढोंगियों की भाषा है। ज्ञानी एक समय में एक ही भाषा बोलता है। **वैराग्य में राग कहाँ और रागी को वैराग्य कहाँ? जो वस्त्र खरीदने जा रहा है, वह अपनी वासनाओं की बात को बताने जा रहा है।** अब जो है, सो है। मैंने पूछा दहेज माँगने ससुराल कितने लोग नहीं जायेंगे? तो सबने हाथ उठा लिया। इसका मतलब यह हुआ कि ये ब्रह्मचारी बनने वाले नहीं हैं, इन्हें शादी करनी ही है। एक बात तो अच्छी बोली कि दहेज माँगने नहीं जायेंगे, लेकिन शादी तो करायेंगे। ऐसे ही तुम वस्त्र खरीदने जा रहे हो, यह अच्छे शब्दों का प्रयोग कर रहे हो, लेकिन यह भी सत्य है कि तुम्हारे भीतर कुछ और भी छिपा हुआ है। क्यों खरीद रहे हो? ठण्डी-गर्मी से बचने के लिये? चेहरा शरीर का सबसे नाजुक अंग होता है, उसको तू न ठण्डी में ढकता है, न गर्मी में ढकता है। इसको भी ढका करो? तू ठण्डी-गर्मी तो सहन करना जानता है, लेकिन लज्जा और वासना की ठण्डी-गर्मी सहन करना नहीं जानता,

इसलिए वस्त्र देखना पड़ते हैं। हे योगी! बिना राग के तत्त्व-उपदेश नहीं होता, तो बिना राग के परिग्रह का उपदेश कैसे हो गया? मैं प्रवचन कर रहा हूँ, यह भी राग है। सत्य को सत्य कहो।

रस लेते रस ले रहा था। रसना इन्द्रिय के रस के साथ भीतर मानकषाय का रस ले रहा था और एक जीव रस छोड़कर रसले रहा है। ज्ञानी ने छह रस छोड़ दिये। अब कहता है—सातवीं प्रतिमा वालो! मैं तो कोई रस नहीं लेता हूँ, मैं तो बिल्कुल नीरस करता हूँ। ये कह क्यों रहे हो? करते हो तो करो। अरे! लोग सुन लेंगे तो रस आयेगा। धन्य हो। ज्ञानी! तूने ग्रहस्थ होकरके षट्रस का त्याग कर दिया, धन्य हो तेरी साधना। अब तुझे रस त्याग का आनन्द नहीं आ रहा, अब रस छोड़ने से जो मान बढ़ रहा है, उसका रस आ रहा है। ये रस छोड़कर रस ले रहा है। धन्य हो रसालु। सारे रस सूख जायें, लेकिन एक रस बहुत तगड़ा है, वह नहीं सूखता। इतना तगड़ा रस है कि रात्रि के बारह बजे भी रस ले लेता है, उसका परहेज ही नहीं है। यदि कोई किसी की निन्दा करने लग जाये, तो तू रात्रि के बारह बजे भी सुनने के लिए उठ कर बैठ जाता है। इन निन्दा रसालुओं को तो किसी रस का ज्ञान ही नहीं है, ये निन्दा का रस ले रहे हैं। कुछ लोगों को तो भोजन ही नहीं पचता जब तक निन्दा रस का पान न कर लें। निंदा रस का पान करने से नीच गोत्र का आस्रव होता है। रस लो, रस बदलो, और रंग बदलो। रस लेते भी रस नहीं लोगे तो ही तू तपस्वी है और रस नहीं लेकर भी रस लेगा, तब भी तू तपस्याविहीन है। मैं नयी बात नहीं सुनाता हूँ। यदि नयी बात सुनाऊँगा तो वह जिनवाणी से बाहर चली जायेगी। जिनवाणी से बाहर चला जाऊँगा तो मिथ्यादृष्टि हो जा ऊँगा। नयी बात और नयी वस्तु आज तक जगत् में न हुई, न होगी। जिसको ज्ञात नहीं होता, उसके लिये वह नयी होती है। जिसको ज्ञात होता है, उसे वह पुरानी होती है। केवली के लिये कोई बात नयी, नहीं पुरानी नहीं। जो है, सो है। जिसके प्रति अज्ञान है, उसका ज्ञान होने पर नयी हो जाती है। परन्तु वस्तु नयी नहीं है, वस्तु तो त्रैकालिक है। त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं। तीनों कालों में छह द्रव्य शाश्वत हैं और छह द्रव्यों के बारे में बात बताई जाती है, इसलिये कोई भी बात जगत् में नयी नहीं है और कोई वस्तु नयी नहीं है। पर्याय का परिणमन

चल रहा है—यह भी सत्य है।

आजकल लोगों को मानसिक रोग से पीड़ित कर दिया गया है। वैद्य चाहे तो रोगी को बिना दवाई के आधा ठीक कर सकता है और वैद्य चाहे तो दवाई देकर मार सकता है। किसी बेचारे को जरा-सा कुछ हो गया। बहुत शीघ्र इलाज कराओ और कह नहीं सकते कि बचेंगे कि नहीं बचेंगे? उसकी धड़कन पहले कम धड़क रही थी, अब और धड़कने लग गयी। आजकल आई.सी.यू. में पटक दो, अब न किसी से मिलने दो, न कुछ। घर में जो सम्पत्ति रखी है, उसे यहाँ पटक दो। तब तक पटकवा रहा है जब तक अन्तिम श्वास न निकल जाये। तब कहेगा ले जाओ। ऐसे वैद्य को कह देना यमराज का दूत।

जैन आयुर्वेदशास्त्र 'कल्याणकारकम्' में लिखा है वैद्य का लक्षण। वैद्य गुरु इन के चेहरे पर चमक होना चाहिये। बनावटी यानि मायाचारी वाली मुस्कराहट नहीं, अन्तरङ्ग में गद्गद् भाव। कुछ लोगों के चेहरे देखकर ही मन प्रसन्न हो जाता है, वहीं रोग ठीक होना शुरू हो जाता है। रोग कम होते हैं, तनाव ज्यादा होता है। वैद्य को यह बोलना चाहिये कि कुछ नहीं, घबराने का कोई विकल्प ही नहीं है। आप अभी ठीक होते हो। भावना बदलते ही उसके हार्मोन्स बदल जायेंगे। निमित्तज्ञान से, अनुमान ज्ञान से वैद्य जान रहा है कि यह बचेगा नहीं। तो क्या करना चाहिये? बोलेगा—भाई! तुम चिन्ता मत करो। मैं करता हूँ दवाई, तुम करो भगवान् की जाप, माला फेरो। उसे माला देनी चाहिये और उपचार करना बन्द कर देना चाहिये। सामान्य रूप से देख लो, उपचार बन्द कर दो, जब देख लो कि तेरे साथ धोखा नहीं अब दवाई साथ नहीं देगी तो चतारि शरणं पव्वज्जामि।

ऐसे गुरु मिलें सबको कि न श्री का लोभ दिखायें, न श्रीमती का लोभ दिखायें। परिग्रह से दूर रखें। जिसे तुमने अनादि से जाना है, पहचाना है, उसे जानने के लिये मेरे पास मत आयें। जाननहारे को जानना है तो मेरे पास आओ। हमने आपको किसमें सन्तुष्ट किया? पाप में ही तो किया है। धर्म में कम किया। एक व्यक्ति अच्छे मोटे-मोटे कपड़े पहने हुये है। वह व्यक्ति एक-एक कपड़ा उतारना प्रारम्भ करे तो उसको शान्ति मिलना प्रारम्भ होती है, ठण्डक महसूस होना प्रारम्भ होती है। ठण्ड का मौसम था, आपने बहुत स्वेटर कोट पहन लिये और फिर सम्मेदशिखर

का पहाड़ चढ़ने लगे। वैसे ऊनी वस्त्र पहन कर सम्मेद शिखर को जाना ही नहीं चाहिये। शास्त्रसभा में नहीं आना चाहिये। **जो ऊनी वस्त्र पहन कर शास्त्र बाँचते हैं वे घोर पापी हैं। मनुष्य या तिर्यंच आदि का एक बाल भी जमीन पर पड़ा हो, वह क्षेत्र अशुद्ध है, वहाँ स्वाध्याय नहीं हो सकता।** जो कम्बल ओढ़ कर गद्दी पर बैठें, उन अभागों से क्या शास्त्र बनेगा? बुरा तो नहीं लग रहा? लग जाये, इसलिये कह रहा हूँ। जो है, सो है। जिनवाणी में यह लिखा हुआ है कि तिर्यंच या मनुष्य का एक बाल भी जिस स्थान पर पड़ा हो, उस भूमि पर स्वाध्याय न करें। सूत के वस्त्र पहन कर के स्वाध्याय करना चाहिये। सोले के कपड़े से स्वाध्याय करना चाहिये। जैसे अरहंत की प्रतिमा को छूने के लिये सोला पहनते हो, सही मार्ग यह है कि देव-शास्त्र-गुरु के लिये उतनी ही पवित्रता रखनी चाहिये। पेंट-शर्ट वाले शुद्ध रहते क्या? ओ बाबू जी श्वानवृत्ति से काम करके आते हो, छींटे पड़ते हैं कपड़ों पर, फिर जिनवाणी उठाकर पढ़ते हो, यह मत करना। महाराज! इतना कठिन? इतना कठिन नहीं सुनोगे, तो आप इतना भी करने को तैयार नहीं होगे। भीड़ कोई धर्म का परिचय नहीं है। वस्तुव्यवस्था धर्म का परिचय है। गद्दी पर पेंट-शर्ट पहनकर मत बैठना। **जब ठण्डी के मौसम में कपड़े पहनकर पहाड़ चढ़ने लग गया, तो एक-एक कपड़े का उसको वजन लगने लग गया। जैसे एक-एक खोलता चला जायेगा, धीरे से कहेगा भैया! जरा ले लो। जैसे पहाड़ चढ़ने पर दूसरे को देने का मन करता है, ऐसे ही गुणस्थान चढ़ने पर सब छोड़ने का मन करता है। जिसका छोड़ने का मन नहीं करता, वह गुणस्थान नहीं चढ़ता।** वन्दना के लिये यदि टार्च लेकर जाता है तो ऊपर उसे वह टार्च भी वजनदार लगती है। वह भी दूसरे को कहने लगता है कि तुम पकड़ लो। यहाँ तक कि चावल की थैली भी वजनी लगती है। हर वस्तु छोड़ने का मन करता है। ऐसे ही सच्चे वीतरागी मुनि जब गुणस्थान की श्रेणी का आरोहण करते हैं, तो उनको हर परिग्रह वजनदार लगता है और वह उसको दूर करते हैं। जब तक वजन नहीं लगता है, तब तक आरोहण नजदीक नहीं है। छोड़ने पर आनन्द आता है।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि जैसे-जैसे वजन घटता जाता है, वैसे-वैसे आपको शान्ति मिलती है। ऐसे ही जैसे-जैसे साधक परिग्रह छोड़ता जाता है, वैसे-वैसे कर्मों की निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है। जैसे-जैसे कर्म का क्षय होता है वैसे-वैसे जीव को निर्वाण की प्राप्ति होती जाती है।

इस शरीर को छोड़कर जाना पड़ेगा। कोई यदि केस लेकर आये तो धीरे से कहना, 'ज्ञानी'! तू जीत तो जायेगा, लेकिन लेकर क्या-क्या जायेगा?' वह भी ज्ञानी होगा तो कहेगा, 'तू जिता तो देगा, लेगा क्या? और लेकर क्या जायेगा?'

जब तेरा शरीर ही यहीं छूट जायेगा, जब स्वकीय शरीर ही तेरे साथ में नहीं जायेगा, तो दूसरे द्रव्य तेरे कैसे हो गये, वे तेरे साथ कैसे जायेंगे? जितना तुम कमा रहे हो, सम्प्रदान शक्ति का चिन्तन करो, किसके लिये? सब सम्पन्नता है, सब बढ़िया है, किसके लिये? कमा लो, कमालो, किसके लिये? ये भवन अपना ही है, अपना सबकुछ है। बेटे से पूछना, इस भवन का कौन-सा कोना होगा तेरे संस्कार के लिये? बेटा कहेगा, 'भूल जाओ तुम कि श्मसान यहाँ बनाऊँगा। वहाँ गंगा के किनारे ले जाऊँगा। घर जाकर इतना तो पूछ ही लेना बेटा! मैंने तुम्हें इतना सब कमा कर दिया है, क्या घर के एक कोने में तू मेरे संस्कार कर देगा? कितने बेटे करेंगे? कोई नहीं। क्या है यह सब? छोड़ो-छोड़ो पागलपन भाग आओ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परिग्रह के दुष्परिणाम"

नूनं नात्मा प्रियस्तेषां, ये रताः सङ्गसंग्रहे।
समासीनाः प्रकृतिस्थाः, स्वीकर्तुं नैव शक्यते॥ सा. स. 230॥

अन्वयार्थ—ये सङ्गसंग्रहे रताः = जो परिग्रह के संचय करने में रत हैं, **समासीनाः** = सुख से बैठने वाले हैं, **प्रकृतिस्थाः** = कर्मों के उदय के आधीन हैं **तेषां नूनं आत्मा प्रियः न** = उनको निश्चय से आत्मा की ओर प्रेम नहीं है। **स्वीकर्तुं नैव शक्यते**=ये कभी भी आत्मा की सत्ता स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! जो परिग्रह के सञ्चय करने में रत हैं, सुखपूर्वक विषयों में बैठे हुए हैं, कर्मों के अधीन हैं, उनको निश्चय से आत्मा प्रिय नहीं होता और वे आत्मा की सत्ता स्वीकार भी नहीं कर सकते।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा की ध्रुव दशा की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। अहो मुमुक्षु! ध्रुव निहारने की आवश्यकता है। जिस अध्रुव के राग में तू सत् को भूल रहा है, वो सत् चित् है, आनन्द है। जो चित् है, उसमें ही आनन्द है। जो चित् है, वो सत् है। जो सत् है, वो सत्ता है। पर्याय के राग में सत् को भूल रहा है। विनशनेवाले पर नशा किस बात का? जितने नशे हैं, ये विनशने वाले पर हैं। ज्ञानियो! जो सत् है, वो विनशनेवाला नहीं है। वो द्रव्य है। विनशने वाला पर्याय है। पर्याय 'पर' है, सत् 'पर' नहीं है।

'सत् है, वो सत्य है।'

ज्ञानियो! जिसे देख रहे हो, वो तो सारे विश्व के प्राणियों का विषय है; पर जो देख रहा है, वह योगियों का विषय है। जिसे आप देख रहे हो, उसे चिड़िया भी देख रही है, उसे बन्दर भालू भी देख रहे हैं। जिसे तुम देख रहे हो, उसे नारकी

भी देख रहा है। जिसे तुम देख रहे हो, उसे सप्तव्यसनी भी देख रहा है। पर जो देखनहारा है, उसे मात्र निर्ग्रन्थ योगी देख रहा है। दिखनेवाली वस्तु को देखने में जो समय दिया है, वो समय देखनहारे को दे देते, तो आज ये वर्तमान की पर्याय तुम्हारी संसार में न दिखाई देती। समझ में आ रहा है? विनाशी पर दृष्टि है, सत् को देखने पर भी सत् को नहीं देख रहा है।

ब्रह्माण्ड में कितने ऐसे मनुष्य हैं जो मनुष्य ही रहेंगे। इस पर्याय में कितने दिन तक रहोगे? मित्रो! जाना तो होगा, निश्चित है। जब जाना निश्चित है, तो जितना तुम राग कर रहे हो पर्याय के सम्बन्धियों से ये सब तुम्हारे साथ जायेंगे क्या? नहीं जायेंगे। तू दु:खी क्यों है? क्योंकि तू वर्तमान की पर्याय को भी नहीं पहचान पा रहा है और वर्तमान की पर्याय के निवासस्थान बनाने के लिए इतने निवास बनाने की भावना रखता है, जबकि तुझे मालूम है कि आयु के बहुत सारे क्षण जा चुके हैं, और जाने वाले हैं। सौ वर्ष की आयु लेकर आया तू, तो सोच तेरा सौ वर्ष का नहीं, हजारों वर्ष जीने का है। परन्तु सत्य सबको पता है। भैया! किसी की मृत्यु आज तक नहीं देखी?

बड़े विवेक के साथ समझना। ज्ञानी! मस्तिष्क में अंधकार भरा हुआ है, उसे निकाल दो। अंधेरा यदि है, तो बगल में मोती रखा हुआ है, आप उसे नहीं देख पा रहे हो और दृष्टि को कक्ष के चारों ओर ले जा रहे हो। मेरे मित्र! ये परेशानी किस बात की है? क्योंकि अंधकार है, इसलिए तुझे आँख का व्यायाम अधिक करना पड़ रहा है। अगर प्रकाश होता, तो हेतु बिल्कुल सामने है।

मुझे लग रहा है, अंधकार इतना गहन हो चुका है कि लोक की मृत्युओं को देखते हुए भी व्यक्ति को मृत्यु का बोध नहीं है। जबकि वो फल तुम्हारे सामने हैं। अरबपति, खरबपति पुरुष, कई एकड़ भूमि का स्वामी, वो तेरे देखते-देखते गया है, कुछ भी लेकर नहीं गया है। सब यहीं पर रखा रह गया है। जो उसके साथ हुआ, वो तेरे साथ होगा कि नहीं होगा?

पदार्थ नहीं ले जायेगा। पर्याय नहीं ले जा पायेगा, लेकिन पदार्थ और पर्याय के राग में कर्म के बन्ध को लेकर अवश्य जायेगा। जीव को बन्ध-व्यवस्था का बोध नहीं है, बन्ध-व्यवस्था के व्याख्यान का बोध है, पर निज के जन्म-मरण पर विश्वास नहीं, ऐसा लगता है।

जन्म-मरण के यथार्थ पर दृष्टिपात करो। मित्रो! जन्म भी होता है और जन्म व मृत्यु के बीच में जो तुमने किया है वो तुम्हारे साथ होता है। इन दो के बीच के समय कोई दूसरा है क्या? बोले महाराज! अब में मुनि तो बन नहीं सकता, अब मैं त्यागी तो बन नहीं सकता। बस, महाराज! मेरी मृत्यु सुधर जाये।

हे ज्ञानी! गेहूँ का दाना जमीन में है, वह अंकुरित होता है तो उसकी जड़ जमीन में होती है। वस्तुस्वरूप का चिन्तन कीजिए। जड़ जमीन में है, अंकुरण हो रहा है और बाल कहाँ पर है? जड़ और जमीन के बीच अन्तराल है कि नहीं? जड़ जमीन में है, बाल आकाश में है और बीच में पौधा है कि नहीं? डंठल है। डंठल को नष्ट कर दिया तो बाल किसमें होगा? यदि बाल को सुरक्षित रखना चाहते हो तो बीच के डंठल को सुरक्षित करना पड़ेगा। मृत्यु को सुधारना होगा, तब मृत्यु सुधरेगी, वैसे मृत्यु सुधरने वाली नहीं है। बहुत सारे लोग सन्तुष्ट हो जाते हैं। जीवन जी रहा हूँ, अन्तिम समय सुधार लूँगा। ज्ञानी! अन्तिम समय तभी सुधरेगा, जब मध्य का समय सुधरेगा और यदि मध्य का समय विकृत हो चुका है, तो अन्तिम समय कैसे सुधरेगा? जिन-जिन को अन्तिम समय सुधारना हो, अन्तिम क्षण के लिए जो सल्लेखना की भावना रखते हों, उनको आज से अपना जीवन सुधारना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

भव सुधारने की दृष्टि है तो भाव सुधारना प्रारम्भ कर दीजिए। यदि भाव नहीं सुधार पाओगे, तो भव सुधरने वाला नहीं है। पर्याय पर दृष्टि है, जीवन को पर्याय पर चला रहे हो और लक्ष्य रखते हो कि मैं परमात्मा बन जा ऊँ। ज्ञानी! पर्याय में जीने वाला परमात्मा नहीं बन सकेगा। पर्याय में रहते हुए द्रव्य पर लक्ष्य रखे हुए है, वही परमात्मा बनेगा।

कमल पानी में उगता है, पर कमल पानी में रहता नहीं है। कमल पानी में खिलता अवश्य है, पर कमल पानी में ऊपर ही होता है, कमल पर पानी होता नहीं है। कमल पर पानी होगा, पानी में कमल होगा, तो कमल सड़ जायेगा। द्रव्य होने पर भी परिणाम पर्याय में ही रहे हैं ज्ञानी फिर भी पर्याय में परिणाम नहीं रखता।

ज्ञानी पर्याय में होकरके पर्याय में ही लीन हो जायेगा, तो कमल की भाँति सड़ जायेगा। समझो, चिन्तन बढ़ाइये। कमल के लिए पानी चाहिए, पर कमल

को पानी में नहीं होना चाहिए।

कमल जब भी खिलेगा तो पानी चाहिए। बिना पानी के कमल नहीं खिलेगा। पर कमल को पानी के ऊपर होना चाहिए। यदि पानी के ऊपर नहीं होगा, तो कमल सड़ जायेगा। ऐसे ही मुमुक्षुओ! योगी भी पर्याय में होता है, भोगी भी पर्याय में होता है, पर पर्याय में होने पर भी पर्याय में नहीं होना चाहिए। पर्याय में रहकर पर्याय में हो गया तो "पज्जय मूढा परसमया"। कमल पानी में होने पर भी पानी में नहीं होता। बस, यही योगी की दृष्टि है।

पर्याय में होने पर भी पर्याय में नहीं होता, वह योगी है और पर्याय में रहकर पर्याय में लीन हो गया, वह भोगी है। रुष्ट होना, ये ज्ञानी का काम नहीं। रुष्ट होनेवाले के प्रति प्रज्ञा को नष्ट करना, ये ज्ञानी का काम नहीं है। रुष्ट होने वाले के प्रति रुष्ट क्यों हो रहे हो? आचार्यभगवन् यही कह रहे हैं। हे मित्र! मेरा देह नष्ट हो जायेगा। मेरा शरीर मेरा साथ नहीं देगा। जिसके साथ मैं निवास कर रहा हूँ, वह भी मेरे से भिन्न हो जायेगा, तो जो पहले से भिन्न है, उनमें अभिन्नत्व क्यों देख रहा हूँ ? भिन्न में अभिन्नत्व देखना ही अज्ञानधारा है। कितना अंधकार है? यदि चिन्तन नहीं कर पाये, तो कम-से-कम मेरे साथ चिन्तन कर लो।

इस नगरी में इतने लोग हो चुके हैं और कई सम्राट यहाँ राज्य करके जा चुके हैं। सबके मन में था कि मैं आगरा नहीं छोडूँगा। पर आगरा इतना निर्मोही था कि उसने किसी को नहीं रखा। फिर भी ऐसे मोही आये कि आगरे को अपना कहते रहे, एक हाथ से ताली बजाते रहे, परन्तु आगरा ने किसी को स्वीकार नहीं किया। ये भूमि क्वारी कन्या है। क्वारी कन्या को देखकर कोई अभागा ये कहे कि मैं इसका पति हूँ, तो वो व्यभिचारी तो हो सकता है, लेकिन पति नहीं हो सकता, क्योंकि कन्या ने स्वीकारा ही नहीं है।

हे स्वामियो, हे भूपतियो! एक बार जिसका पति बनने की बात तू कर रहा है, उस कन्या से पूछ कर तो आओ कि तूने मुझे स्वीकारा कि नहीं? जिसने स्वीकारा ही नहीं, तब भी तू बलात् कहता है कि मैं इसका पति हूँ। यानि पर का पति कौन कहलायेगा? हे भूपतियो! अब कहो अपने हृदय से कि हे व्यभिचारियो! जब

जिसने मुझे स्वीकारा ही नहीं, फिर भी मैं उसका पति बन रहा हूँ, उसका नाम बिना व्यभिचारी के होता नहीं। निवास कर रहे हो, सो करो, पर विश्वास रखना, निवास ही है, वास नहीं है। हे प्रवासियो! ये प्रवास है। प्रवास जितने समय का है, रह लो, लेकिन इसे वास स्थान मत मान लेना। आपको यहाँ से जाना ही होगा। इस सत्य को क्यों नहीं समझ रहे हो? इस सत्य को समझ लोगे तो आज ही राग कम हो जायेगा और राग कम हो जायेगा तो बन्ध कम हो जायेगा। ज्ञानियो! मैं भी तो आपके आगरा में रह रहा हूँ, चार महीने हो गये। पर विश्वास रखना, आगरा के राग का अंश लेश मात्र भी बन्ध नहीं हो रहा। क्यों? मुझे पूर्व से ज्ञात था कि प्रवास है। मुझे रहना नहीं है। जो यहाँ हो रहा है होने दो। जो है, सो है। जो पूर्व में निर्णय करके आया है कि मेरा तो प्रवास है, तो वह राग-द्वेष मोह में लिप्त नहीं होगा। ज्ञानी! गृद्धता नहीं होना चाहिए। कमल को निहारो। जल में रहकर भी जल से भिन्न है। आसक्ति कम करो। वस्तुव्यवस्था, कर्मसिद्धान्त को समझो। कुलभद्राचार्य कह रहे हैं कि

"ये सङ्गसंग्रहे रताः" हे ज्ञानियो! जो मानव परिग्रह के एकत्र करने में लगे हुए हैं, परिग्रह-सेवन में रत हैं, परिग्रह में ही सुख मानकर आनन्द मान रहे हैं, **"प्रकृतिस्थाः"** कर्मों के उदय के आधीन हैं, **"तेषां नूनं आत्मा प्रियः न"** उनको निश्चय से आत्मा की ओर प्रीति नहीं है, **"स्वीकर्तुं नैव शक्यते"** ऐसे परिग्रह के पराधीन मानव कभी भी आत्मा की सत्ता स्वीकार नहीं कर सकते हैं।

हे भव्य! परिग्रह में एकत्व भाव को छोड़कर निजात्मा की ओर दृष्टिपात करो। आत्मा की शरण ही श्रेष्ठ है, आत्मा की प्रतीति ही शरणभूत है। संसार से पार उतरना चाहते हो तो निजात्मा की शरण को प्राप्त करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"शरीर अशरण अनित्य है"

शरीर मात्र सङ्गेन, भवेदारम्भवर्धनम्।
तदशाश्वतमत्राणं, तस्मिन् विद्वान् रतिं त्यजेत्॥ सा. स. 231॥

अन्वयार्थ—शरीर मात्र सङ्गेन = स्त्री, पुत्र, मित्र, धनादि का और परिग्रह न होते हुए भी शरीर मात्र के परिग्रह से **आरम्भ वर्धनम् भवेत्** = शरीर के लिए आरम्भ की वृद्धि हो सकती है। **तत् अशाश्वतं** = यह शरीर अनित्य है **अत्राणं** = अशरण है इसलिए **विद्वान्** = विद्वान् पुरुष **तस्मिन्रतिं त्यजेत्** = इस शरीर में से आसक्ति छोड़ देते हैं

भावार्थ—हे ज्ञानी! शरीर मात्र परिग्रह से आरम्भ की वृद्धि होती है। यह अनित्य है, अशरण है, अतः विद्वान् पुरुष इस शरीर में आसक्ति छोड़ देते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा की ध्रुव सत्ता का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। जगत् में जो भी पुण्य और पाप की व्याख्या है, ये तभी सार्थक है जब आत्मा की त्रैकालिक सत्ता को स्वीकार किया जा रहा है। जो स्वीकार कर रहा है कि जब तक मैं जी रहा हूँ तब तक ही जीवन है, जो सत् का ही विनाश मान रहा है, उसके लिए पुण्य और पाप की व्याख्या की आवश्यकता ही क्या है?

ज्ञानियो! आत्मा विनाशी नहीं है, आत्मा अविनाशी है। जो मरण है, वो आत्मा का नाश नहीं है। जो पर्याय का परिणमन है, वह नष्ट होने वाला है, लेकिन जिसमें परिणमन चल रहा है, वो त्रैकालिक है। आत्मा त्रैकालिक है।

यदि आपने वर्तमान की पर्याय में श्रेष्ठ कार्य किये हैं, तो भविष्य की पर्याय आपको श्रेष्ठ मिलेगी और वर्तमान की पर्याय में श्रेष्ठ नहीं कर सके हो तो भविष्य की पर्याय की श्रेष्ठता का चिन्तन छोड़ देना।

आचार्य महाराज कह रहे हैं ज्ञानियो! आत्मप्रिय बनो, पर्यायप्रिय मत बनो। पर्याय की प्रियता में आत्मा को बिलखा दिया कष्ट में डाल दिया है।

यदि वर्तमान की पर्याय से तुमने अशुभ किया है, तो अशुभ फल भोगने के लिए भविष्य की पर्याय मिलेगी।

वर्तमान पर्याय में अशुभ किया हो और आपको दीर्घ भविष्य समझ में नहीं आये तो किसी वृद्ध के पास वर्तमान की पर्याय की वृद्धावस्था को देख लेना। वृद्ध का शरीर वृद्धावस्था में कष्ट की तीव्रता को प्रदान कर रहा है और वो ही देता है तीव्र कष्ट, जो युवावस्था की धारा को अत्यन्त आसक्तचित्त होकर विषयों में नष्ट कर चुका था। **जिसने युवावस्था को संयमित जिया है, उसकी वृद्धावस्था सुखमय निकलेगी और जिसने असंयमित जिया है, उसकी वृद्धावस्था समय से पहले आयेगी और तीव्र वेदना देकर जायेगी।** जिनसे युवा बैठे हैं, बड़े विवेक के साथ समझना। किसी को नली पड़ी हुई है, किसी को कफ में वृद्धि हो रही है, किसी की नेत्रों की ज्योति जा चुकी है, किसी के कानों से सुनाई नहीं पड़ रहा है। ये वृद्ध-अवस्था की पीड़ा है। बेचारा मरण को प्राप्त नहीं हुआ, पर मरने से पहले तीव्र वेदना को जीते-जी सहन कर रहा है।

'अर्धमृतक-सम बुढ़ापनो' ये वृद्ध-अवस्था किसी के पास न आये। जिन द्रव्यों से ग्लानी आया करती थी, वे द्रव्य आज तेरे शरीर से झर रहे हैं। कभी तू दूसरे के सड़े शरीर को देखकर नाक सुकोड़ता था, आज स्वयं के शरीर से सड़ान आ रही है।

मित्रो! कभी किसी के पीड़ित, क्लेशित, सड़ित शरीर को देखकर नाक मत सुकोड़ना। सबके दिन एक-से नहीं होते। चमकती काया कब मलिन हो जाये, नियत नहीं है। चमकती काया कब सड़ जाये, कोई नियत नहीं है।

ज्ञानियो! शरीर की चमक को देखकर आत्मा की चमक को (भावों की विशुद्धि

की चमक को) मत खो देना।

सेव फल को देखकर आपकी आँखें दौड़ रही हैं, मन मचल रहा है। टोकनी में रखे फल को उठाने का मन कर रहा है। मेरे मित्र उठाकर खा तो लेगा, पर तुझे फल की सत्यता का बोध नहीं होगा।

उस फल को उसी टोकनी में रखा रहने दो, मात्र चार-पाँच दिन दे दो। समय दो, सारी समस्या का समाधान होता है। जिस फल को देखकर के खाने के परिणाम हुए, जिस फल को देखकर चोरी के परिणाम हुए, जिसफल को देखकर के असत्य जीवन के परिणाम हुए, उस एक सेव-फल ने तुझे कितना पाप करा दिया? एक तो पर पर दृष्टि गयी, सो अब्रह्म हुआ। उठाने के भाव हुए, तो चोरी हुई, खाने के परिणाम हुए, तो असत्य जीवन हुआ और उठा करके जेब मैं रखने के भाव हुए, तो परिग्रह हुआ।

यानि पाँचों पाप उस सेव के फल को देखकर हो रहे थे। मेरे मित्र! उस सेव के फल को पाँच दिन तक टोकरी में रखा रहने दो, छठवें दिन तू देखेगा तो कहेगा—सुनो, भाई! इस कचरे को यहाँ से अलग करो। हे मित्र! सेव वही है जिसे तू उठा कर खाना चाहता था, आज तू फेंकने की बात कर रहा है।

सेव फल धीरे से बोलता है—हे मुमुक्षु! सबके दिन एक-से नहीं होते। कल तू जब चमक देख रहा था तो उठाने के भाव कर रहा था, आज मैं सड़ गया तो फेंकने की बात कर रहा है। मेरे मित्रो! ये युवावस्था चमकता सेव फल है। जब वृद्ध हो जायेगा, सड़ जायेगा, तो तेरे द्वारा जन्माई द्वारा तेरी ही सन्तान कहेगी कि एक किनारे बैठे रहो, हल्ला मत करो, शान्त रहो।

ज्ञानी! फल सड़ने लगा है, लोगों की आँखें फिरने लगी हैं, क्योंकि आँखें फिरने का समय आ गया है। जब आँखें फिरने का समय आता है, तो मन की आँखें फिर जाती हैं।

मुमुक्षु! सबके दिन एक-से नहीं होते। आँखें फिरें, इसके पहले आँखें फेर लो। पर की आँखें मेरे तन से फिरें इससे पहले अपनी आँखें पर के राग और बन्ध की कथाओं से फेर लो। जो आँखें फिरने से पहले आँखें नहीं फेर पाते, उनको

कोई देखने नहीं आता। मुमुक्षु! सबके दिन एक-से नहीं होते। आकर्षण कहीं नहीं है।

मित्रो! तुम किसी को देखने लग जाओगे तो वो तुम्हें देखना बन्द कर देगा और तुम किसी को नहीं देखेगो तो दुनियाँ तुझे देखना आरम्भ कर देगी। ये सत्य है। नेत्र बन्द होने से पहले नेत्र बन्द कर लो। ये आँखें बन्द हों, इससे पहले इन आँखों को देखना बन्द कर दो। जितने लोग अपने नयनों से आपके नयनों को देख रहे हैं, वे अभी सुन्दर सेव फल को देख रहे हैं। ये लावण्य ये सौन्दर्य शाश्वत नहीं है। जब तक देह में लावण्य है, तब तक ऐसा पुरुषार्थ कर लो कि देहातीत हो सको। जब तक देह में दृष्टि है, तब तक वृद्ध-अवस्था के कष्ट का वेदन करने वाले का वेदन नहीं हो सकता है।

यदि स्वर्ग और मोक्ष पर आपकी दृष्टि नहीं है, वर्तमान की पर्याय छूटने पर भविष्य की पर्याय का यदि तुम्हें ध्यान नहीं आ रहा है, तो कम-से-कम एक क्षण को वर्तमान की युवावस्था को देखकर वृद्धावस्था का ही ध्यान कर लो। क्या भगतजी युवा नहीं थे? आप तो ये मानिये कि ये वृद्ध पूर्व में इतना संयमित जीवन जीया होगा और पुण्य का बन्ध करके आया होगा कि अस्सी वर्ष की उम्र में भी ये जीव दौड़ करके जिनवाणी सुनने आता है, गुरुओं को दान दे रहा है, अरिहन्त की पूजा कर रहा है। ये ही इसका पुण्य है और जो असंयमित जीवन जी रहे हैं, वे अस्सी देख भी पायेंगे? कि नहीं देख पायेंगे? **अति आसक्ति से भी आयुकर्म का क्षय होता है। संक्लेशता से आयुकर्म का क्षय होता है। अति भोजन आसक्ति से शरीर दुर्बल होता है। तीव्र कामवासना से बुद्धि भ्रष्ट होती है।**

ज्ञानियो! जिनके अन्तस् में विवेक नहीं है, संयम नहीं है, साधना नहीं है, वे शरीर ही सुरक्षित नहीं रख पायेंगे तो वे मोक्षमार्ग क्या सुरक्षित रख पायेंगे? जो शरीर सुरक्षित नहीं कर पा रहे हैं, अपने मन को ही सुरक्षित नहीं कर पा रहे हैं, वे धर्म को क्या सुरक्षित रख पायेंगे? यदि आपको धर्म से राग नहीं है तो कम-से-कम एक क्षण को तन से ही राग करके देख लो। यदि असंयम से बचोगे तो तन सुरक्षित रहेगा। असंयम से बचोगे तो धर्म सुरक्षित रहेगा। तुम तन की सुरक्षा की दृष्टि से अभक्ष नहीं खाते हो, असंयम का सेवन नहीं करते हो, तो कभी आपका मन

सुधर गया तो तन की रक्षा से तुम संयम पाल रहे थे। वो तब धर्म की रक्षा में भी जा सकता है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि आत्मप्रिय बनो। ज्ञानी! **शास्त्रों में लिखा समझ लेना बहुत सरल है, पर आस्था में आ जाना बहुत कठिन है।** व्यक्ति की आयु बढ़ती जा रही है तो उम्र घट रही है कि बढ़ रही है? उम्र घट रही है और आसक्ति बढ़ रही है। पैसे पर जीव की दृष्टि है, आयु ही नहीं बचेगी तो श्री का भोग कौन करेगा?

ये भैया ने एक करोड़ रुपया बैंक में रखा है। ये आपसे क्या बोलता है? पता नहीं, भैया! ये महीना कितना बड़ा हो गया है? ये मेरा ब्याज आने वाला था, यदि जल्दी-जल्दी समय निकले तो जल्दी-जल्दी पैसा आये।

मेरे मित्र! जल्दी-जल्दी समय निकलेगा, जल्दी-जल्दी पैसा आयेगा, तो तू जल्दी मरेगा कि नहीं मरेगा? जल्दी तू ऊपर जायेगा, तो उस पैसे का होगा क्या, ये तो बताकर जा। जीव की सोच देखो, जीव की बुद्धि देखो। आयुकर्म नष्ट होने की चिन्ता नहीं है, पर आँखों के सामने पैसे दिख जायें। तभी तक ज्ञान है, तब तक विज्ञान है, तभी तक विद्वत्ता है, जब तक लोभ नहीं सताया। लोभ के आते ही तुम्हारी सारी विद्वत्ता फेल हो जाती है। जब दे दो शब्द सामने आ गया तो ज्ञानीजीव क्षणमात्र में भिखारी हो गया।

सिर ऊँचा तभी तक है, जब तक किसी के द्वार पर माँगने का भाव नहीं आया। विश्वास मानिये, सिर ऊँचा तभी तक है, जब तक 'दे दो' का भाव नहीं आया। मुमुक्षु! अपने सम्मान को, अपनी शान को और धर्म की वृत्ति को सुरक्षित रखना चाहते हो तो किसी के द्वार पर माँगने मत जाना। एक बार माँगने गये, तो देखो बेचारे कैसे बैठे हैं? चाहे तुम घोड़े पर बैठ कर गये हो, चाहे तुम बग्गी पर बैठ कर गये हो, चाहे तुम पालकी पर बैठ कर गये हो, पर ऐसे माँगने गये तो बेचारे देखो कैसे बैठे हैं? पीठ टूट रही है, चकरी-सा घूम रहा है। अपनी पत्नी के पिता के घर में तू माँगने गया था, आज देख तेरी क्या हालत हो रही है। माँगने नहीं

गया होता तो आज तू ऐसे ऊँचे सिंहासन पर होता। हे तात्! तुम मेरी माँ को माँगने गये थे मेरे नाना के घर में, उस दिन तुम मुस्करा कर गये थे। आज देखो क्या चेहरा हो गया। सत्य है कि नहीं? जब कभी घर में क्लेश होता है, उस दिन देखो। बेचारा सर पकड़ कर खुजाता है, 'हे भगवान्! कहाँ से कहाँ फँस गया। हे पिता! जब जा रहा था, तभी मिल लेता भगवान् से। अब कहता है कि क्या करूँ महाराज। हे मित्र! आत्मा की त्रैकालिकता को स्वीकार करो, तभी तुम्हारा पुण्य-पाप कार्यकारी होगा। यदि आत्मा की त्रैकालिकता को नहीं समझ पा रहे हो, तो कोई धर्म की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है।

मेरा बेटा ही मेरी बात को नहीं सुन रहा है, मेरी पत्नी ही मुझे दुत्कार रही है, तो लोकप्रिय कहाँ से हो गया? और आत्मप्रिय क्यों नहीं है? क्योंकि पत्नी के पीछे पड़ा हूँ। आत्मप्रिय होता तो मुनि बन गया होता। ज्ञानी! इसका तात्पर्य क्या हुआ? धिक्कार हो ऐसे जीवन के लिए। बेचारा आत्मप्रिय नहीं बन पा रहा है। दलदल में फँसा क्यों है?

सत्य तो ये है कि जब ये जीव सारे जगत् को समझने की दृष्टि समाप्त कर लेता है, तब उसको समझना प्रारम्भ होता है। जब तक सारे जगत् को समझने-समझाने की चेष्टा करते रहोगे, तब तक समझ में नहीं आयेगा कि मैं लोकप्रिय हूँ कि आत्मप्रिय हूँ।

कम-से-कम आज चिन्तन कर लेना कि मैं लोकप्रिय हूँ कि आत्मप्रिय हूँ? लोक तुझे प्रिय नहीं माने, पर तू लोक को प्रिय मान रहा है इसलिए घर में बैठा है। आपको लोकप्रिय नहीं मानते, पर आप लोक को प्रिय मानते हो, इसलिए लोक में लिप्त हो। **जिस दिन आत्मप्रिय हो जाओगे, आत्मलोक का अवलोकन करोगे, तो शेष लोक को छोड़ दोगे। वे ही परिग्रह का संग्रह करते हैं, जो आत्मप्रिय नहीं होते हैं। वे ही लोक में परिचय बढ़ाते हैं, जो आत्मप्रिय नहीं होते हैं।**

जब कोई रत्न मिल जाये, भैया! आप चौराहे पर बैठ कर नहीं देखोगे, मेरा विश्वास है। चौराहे पर खड़े होकर देखे, तो कोई छुड़ाकर ले जाये, तो क्या होगा?

इसलिए चौराहे पर नहीं देखेगा। उस हीरे को ले जाकर अन्दर तिजोरी में रखोगे। कमरे के अन्दर कमरे में रखोगे। फिर वहाँ जाकरके निहारोगे, चौराहे पर हीरे को नहीं देखोगे। मुमुक्षुओ! जिस द्रव्य में तुम्हारी तीव्र प्रीति है, उस द्रव्य को कितना सुरक्षित रखते हो, कहाँ जाकर देखते हो? ऐसे ही जिसको आत्मप्रियता आ जायेगी, वो विषयों के चौराहे पर खड़ा नहीं हो सकता है।

जिसको आत्मप्रियता आ जायेगी वो कषाय के चौराहे पर खड़ा नहीं हो सकता है। जिसको आत्मप्रियता आ जायेगी, वो मान-सम्मान के चौराहे पर खड़ा नहीं हो सकता साधुभेष बहुत बाद में बनाना चाहिए, सर्वप्रथम साधुभाव बनाना चाहिए। साधुभाव बनेगा तो साधु चेहरा बनेगा और साधु-चेहरा बनेगा, फिर तुम साधु-भेष बना लेना। साधु-चेहरा अलग दिखता है। लालिमा नाम की कोई सामग्री साधु के चेहरे पर नहीं होना चाहिए। कालिमा नाम की कोई वस्तु साधु के चेहरे पर नहीं होना चाहिए। लालिमा क्रोधादि कषाय है। कालिमा विषयासक्ति है। इन दोनों से रहित जो है, साधु-चेहरा, साधुभाव और साधुस्वभाव है। उस जीव को आत्मा प्रिय नहीं है। बहुत सारा विषय हमारा संस्कारवश चलता है और बहुत सारा विषय हमारा कुल-परम्परा से चलता है, बहुत सारा विषय हमारा संगति से चलता है।

संगति, कुल-परम्परा और संस्कार इन सबसे भिन्न होकरके जो आत्मा पर दृष्टि है, उसका नाम धर्म है। उपदेश सुनने भी आयें तो ज्ञानी! इस दृष्टि से नहीं कि चलो, समय है, बैठकर आता हूँ। ज्ञानी! इस दृष्टि से आओ कि चलो, समय है, थोड़ी शान्ति की अनुभूति लेकर आता हूँ। ये भ्रम निकाल देना चाहिए कि मैं तभी स्वाध्याय करूँगा, तभी उपदेश सुनूँगा, जब में संयमित जीवन जीने लगूँगा। ये बहुत बड़े वक्ता एक प्रकार से नास्तिक तरीके से जब व्याख्या करते हैं तो लोगों के अन्दर शुष्कता आती है कि तुम कुछ पाल कुछ नहीं रहे हो तो सुनने से क्या फायदा, स्वाध्याय करने से क्या लाभ? ये बहुत बड़ी भूल है वक्ता की। पण्डित जी साहब! शास्त्री जी! इस भाषा का प्रयोग कभी मत करना। मैं इतना बड़ा, देश की उच्च क्वालिटी का वक्ता, तुम चार लोग सुनने आये हो? मुझे आपने समझा नहीं है।

मैं देश का एक मुख्य वक्ता हूँ और आप चार लोग आकर बैठ गये हो। आप मुझे सुनना नहीं जानते हो। आप मुझे समझ ही नहीं पा रहे हो। मेरे मित्र! जो नहीं आये हैं, उनका विषय था। मैं तो सुनने भी आया हूँ, समझने भी आया हूँ, लेकिन नहीं आने वाले के राग में तुम मेरे समय को बर्बाद क्यों कर रहे हो?

तुम क्या जानते हो? ये बताओ कि मेरी आत्मा का कल्याण कैसे हो। सभी को बदलने की आवश्यकता है। आज साधक वर्ग, विद्वान् वर्ग पूछते हैं कि भीड़ कितनी है? साधु से कहना स्वामी सोच को बदलिये, आपको जो लोग सुनने नहीं आये उनके नहीं आने से विकल्प में, मैं उपस्थित हुआ हूँ 'मेरे समय को बर्बाद क्यों किया जा रहा है? मैंने कौन-सा अपराध किया है कि आज मुझे इस सभा में दूसरे की डाँट सुनने को मिल रही है, जबकि जिनवाणी सुनने को मिलना चाहिए थी।

एक व्यक्ति ने गलत कर दिया हो और व्याख्याता ने एक घण्टे तक उसकी व्याख्या की, तो कहना 'हे ज्ञानी! मैं पर की निन्दा सुनने नहीं आया था। मैं तो अपने परिणामों की निर्मलता के लिए आया था। आपने क्या किया?' कदाचित् किसी पुरुष ने प्रश्न कर दिया और प्रश्न उसका व्यक्तिगत है, तो श्रेष्ठ वक्ता को चाहिए कि इनके प्रश्न का उत्तर देने न बैठे। इनको प्रेम से कहे कि वो भी एक जीव है। भैया! आपके प्रश्न का समाधान इस सार्वजनिक सभा में नहीं दे रहा हूँ। मित्र! तुम्हारा प्रश्न माना कि सैद्धान्तिक कठिन है, वो विषय सबको समझ में आने वाला नहीं है और आपके एक प्रश्न के उत्तर में अनेक का समय व्यर्थ में जायेगा। ज्ञानी! आप अपना व्यक्तिगत प्रश्न कर लेना। समझदार प्रश्नकर्ता भी होते हैं। भाई! मैं समझ रहा हूँ कि मेरा प्रश्न विषय से विषयान्तर है। उसे आप विषय को देखकर हल करो। ज्ञानी वक्ता के अन्दर बहुत विवेक होना चाहिए। नास्तिक दृष्टि से मत सोचिये कि आप इतने ही आये हो, मैं कैसे प्रवचन करूँ? ज्ञानी! तीर्थंकर महावीर का जीव सिंह की पर्याय में अकेला था और मुनिराज दो थे। वक्ता दो थे और श्रोता एक था। उपदेश हुआ कि नहीं हुआ था? हुआ था और इतना कार्यकारी उपदेश हुआ कि एक श्रोता को दिये गये उपदेश ने

कोटि-कोटि/अरबों-खरबों जीवों को उपदेश दिया, वही तीर्थंकर महावीर बना। किसान एक-एक दाने की कीमत न करके यूँ ही फेंक दे कि ये तो एक दाना है इसकी क्या कीमत है? एक दाना की कीमत नहीं है, पर एक दाना जमीन में न होता तो बोरे कहाँ से भरे होते? एक-एक दाना ही तो जमीन में डाला था, उससे बोरे भर गये, गोदाम भर गये। इस तरह एक-एक श्रोता को एक-एक दिया गया सूत्र ही भविष्य का केवली भगवान् बनायेगा। आप यदि प्रवचन करने बैठ गये तो कदाचित इस शब्द का प्रयोग मत करना कि कितने लोग सुधर गये महाराज? मेरे मित्र! तूने किसान को खेत में बीज डालते भी देखा है। बड़े वृक्ष के नीचे गेहूँ के दाने नहीं पनपते। उसके नीचे सूखा ही मिलेगा। न वहाँ धनिया उगेगी, न गेहूँ उगेंगे, कोई धान नहीं उगता। बड़े वृक्ष के नीचे उस स्थान को देखकर क्या तुम पूरे खेत में बीज नहीं बोओगे? बाकी के कुछ कदम दूर देखो, लहलहाती फसल दिखाती है। ऐसे ही तीव्र कषाय के अन्दर जिनवाणी नहीं पनपेगी, लेकिन इसका मतलब ये नहीं है कि तुम सभी को कषायी घोषित कर दो। जिसका पुण्य क्षीण है, तीव्र पाप का उदय चल रहा है, उसके अन्तस् में जिनवाणी की फसल नहीं उगेगी। पर शेष खेत में तो उगेगी। यदि आपके उपदेश को एक जीव ने भी धारण कर लिया तो तुम्हारा उद्देश्य सफल हो गया। और आवश्यक नहीं धारणकर ले कुछ भी धारण नहीं किया फिर भी इस पंचमकाल में लोग कितने टेंशन में जी रहे हैं। यदि एक घण्टे बैठकर शान्ति का जीवन जी लिया इन्होंने तो विश्वास मानो, उन्होंने बहुत कुछ प्राप्त कर लिया है।

एक पण्डित बहुत लोभी था। उसकी देवी परेशान हो गयी। कहा, 'जाओ महाराज जी आये हैं उपदेश सुन आओ।' पण्डित बोला—नहीं, दुकान का समय है। वो बोली 'मन्दिर के दर्शन कर आओ।' बोला, 'नहीं दुकान का समय है।' पण्डितानी होशियार ज्ञानी थी। उसने सोचा दुकान का समय है, इसका मतलब ये है कि स्वामी जी को श्री से प्रयोजन है, श्री जी से प्रयोजन नहीं है। चलो, बहुत अच्छा है। इनको श्री से प्रयोजन है, हम व्यवस्था किये देते हैं। मन्दिर के बागवान को पढ़ाया पण्डितानी ने और कहा, भैया! सुन, मैं तुझे पाँच का नोट दूँगी। अलग से ये हजार-हजार

के नोट हैं। जब पण्डित जी मन्दिर आयें, तू दूर से देख लेना, मन्दिर की देहरी पर छोड़ देना, इतना-सा काम है। तू चिन्ता मत करना।

इधर पण्डित से पण्डितानी ने कहा स्वामी! एक दिन तो आओ। हो सकता है कि तुम मन्दिर गये और इतना पुण्य तेज आपका हो गया कि वहीं तुमको पैसे मिल जायें। बोला, 'ठीक है। बहुत दिन हो गये। चलो, एक दिन इसकी मान ही लेता हूँ।' ऐसा करके पण्डित जी मन्दिर चले गये। जैसे ही पण्डित जी को दूर से देखा, बागवान ने धीरे-से नोट बिखेर दिये। पण्डितजी को श्री जी से तो प्रयोजन था ही नहीं, उसने सबसे पहले नोट बटोरे और जेब में रखे। कहता है—भैया! चलो, अच्छा हुआ। इतना तो मैं दिन भर कमा पाता। वह तो मिल ही गया। अब भगवान् के अच्छे से दर्शन किये लेता हूँ। दर्शन किये, घर आ गया मुस्करा कर। देवी को तो पता था कि बात क्या है। बोले, 'मैं कल भी जाऊँगा! तू चिन्ता मत कर।'

पण्डितानी जी ने व्यवस्था बनाकर रखी थी। बोली कि जायेंगे, पर पैसे तो हमारे घर पर ही वापस आयेंगे। जाना शुरू किया, रोज उनको पैसे मिलते गये। अब एक दिन महाराज जी के प्रवचन चल रहे थे बगल में, तो सोचता है कि कोई बात नहीं, अब महाराज जी के प्रवचन और सुन लेता हूँ।

प्रवचन के उपरान्त मुनिराज ने सबको नियम दिये। अब सेठ (पण्डित जी) बेचारा फस गया बोला, इसलिए तो मैं जाता नहीं था। बोला, कोई बात नहीं है। बोला महाराज जी ये कह रहे थे कि जिन को जो नियम लेना हो अपनी इच्छा से ले लो। पण्डित बड़ा चतुर था, ज्ञानी था। बोला, 'महाराज! मैंने नियम लिया कि मैं आज से पत्थर नहीं खाऊँगा।' बड़ा चतुर जीव था, उसने सोचा पत्थर खाता कौन है। महाराज अपने आप को ज्ञानी मानते होंगे। पर दीर्घ दृष्टि से महाराज मुस्कराये, आशीर्वाद दे दिया, बोले, जाओ ठीक है, आज से तुम पत्थर मत खाना। अच्छा नियम लिया। तो वो भी चिन्ता में पड़ गया। बोला नियम क्या लिया? कुछ भी तो लिया नहीं। फिर भी महाराज जी ने आशीर्वाद दे दिया। गुरु तो गुरु होते हैं, तुझे पता नहीं है। घर जा, तब पता चलेगा। जैसे ही घर पहुँचता है और पण्डितानी से कहता है सुन, ज्ञानी! आज मैं तेरे महाराज को चरा कर आ गया। महाराज ने

कहा नियम लो, तो मैंने नियम लिया है कि मैं पत्थर नहीं खाऊँगा। पण्डितानी बोली, पहले ही दिन में आप इतना बड़ा नियम ले लिये हो। अब वो भी सोचता है कि महाराज तो गम्भीर थे, ये भी गम्भीर हो रही है, बात क्या है? बोली, स्वामीजी! तुमने तो इतना बड़ा नियम लिया, मैंने तो जीवन भर में नहीं लिया। बोले, क्या मतलब? पत्थर कौन खाता है? बोली पत्थर नहीं खाते, लेकिन चक्की का खाते कि नहीं खाते हो? जब चक्की से आटा पिसता है, तो थोड़ा पत्थर तो उसमें पिस ही जाता है। अब कैसे खा पाओगे ? अब तो पण्डित चिल्लाकर बोले, 'तूने भेजा था। मैं तो इसलिए मन्दिर जाता नहीं था। अब बता, क्या खाऊँगा मैं' अब तो लगता है कि मर ही जाऊँगा। मर जाऊँगा, मेरा क्या जाता है, तेरी माँग छूटेगी। इतनी लम्बी बात बोल गया, तो वो बोली, स्वामी जी! घबड़ाओ मत, धैर्य रखो। आप तो ऐसा करो कि तैयार होकर आओ। मैं आपको भोजन कराती हूँ। नियम पालन मैं कराऊँगी, चिन्ता मत करो। उसने खल्लड़ में कूटकाट कर बढ़िया मधुर हलुआ बना दिया। अब जैसे ही खाने बैठा, बोला अरे। इतना सुन्दर भोजन आपको बनाते बनता था, अभी तक क्यों नहीं बनाया इतना मधुर? बोली, स्वामी! मैं तो बनाना जन्म से जानती थी, लेकिन तुमने अभी तक नियम नहीं लिया था, इसलिए नहीं बनाया।

कुछ भी कहो, मोक्षमार्ग में (धर्मसभा में) वक्र होकर आयेगा, कितना ही कुटिल होगा, लेकिन कहीं-न-कहीं मोक्षमार्ग में लग ही जायेगा। नहीं मानो मेरी बात तो रावण से पूछो। रावण बड़ा चतुर होकर गया था महाराज के पास, पर उसकी चतुराई ने काम बना दिया। सीता के शील की रक्षा जो हुई है, रावण की चतुराई से हुई है। ज्ञानी! इस बात को आप मानते कि नहीं? सीता के शील की रक्षा यदि हुई है तो रावण की एक चतुराई से हो गयी। जब मुनिराज ने (केवली भगवन्त ने) कहा था। सभी लोग संयम धारण कर लो, तो रावण कहता है कि स्वामी! मैं तो अपने जीवन में कुछ भी धारण नहीं कर सकता हूँ, लेकिन एक नियम अवश्य लेता हूँ उसने भी सोचा था कि मैं त्रिखण्डपति, मैं सुन्दर, पतिनारायण। जगत् में ऐसी कौन-सी नारी होगी जो मेरे लिए नहीं चाहेगी? उसने बड़े विवेक से नियम

लिया कि स्वामी! मैं आज से नियम लेता हूँ, जो स्त्री मुझे स्वयं नहीं चाहेगी, मैं उसे बलात् प्रेरित नहीं करूँगा। इस एक चतुराई से क्या हुआ, उसे नहीं था मालूम कि जगत् में सती होगी जो तुम्हें कुछ भी नहीं समझेगी। उसका नाम था सीता। कुछ भी कहो, उसी जीव ने अन्तिम श्वास तक उस नियम का पालन किया। उस एक नियम के पालन का संस्कार ये है कि ज्ञानी भविष्य का तीर्थंकर बनेगा। इसलिए **हर समय जीव की पाप पर्याय मत देखो। समय बदलते देर नहीं लगती। कल यहाँ धूप थी, आज यहाँ बादल हैं। ज्ञानी! सब दिन एक-से नहीं होते और सबके दिन एक-से नहीं होते। आत्मप्रिय बनो और मैं आपसे यह नहीं कह रहा कि आप आज ही बन जाओ। अन्तिम श्वास तक सोचना कि मैं आत्मप्रिय हूँ कि नहीं?** अन्तिम श्वास तक भी निर्णय नहीं कर सको, तो अगले भव में निर्णय करना। मित्र! जब तक संसार में हो, तब तक एक बार निर्णय कर लेना। मैं लोकप्रिय हूँ, कि भक्तप्रिय हूँ?

'शरीर मात्र सङ्गेन'। श्रावको! जब हम शरीर मात्र परिग्रह पर ध्यान रखते हैं, तो **'भवेदारम्भवर्धनम्'** आरम्भ की वृद्धि हो जाती है। शरीर को देखते ही आरम्भ की वृद्धि हो जाती है। लगता है कि कितनी दृष्टि में लिखा गया यह ग्रन्थ है। निर्ग्रन्थ बनने के पहले ग्रन्थ क्यों खोलना चाहिए। ज्ञानी! सुबह जागते ही तूने शरीर को देखा तो तुझे स्वयं का शरीर मलिन दिखा। स्वयं के मुख में से दुर्गन्ध आ रही थी, उसे तू सहन नहीं कर सका, सो बुरुश लेकर बैठ गया। हड्डी पर हड्डी घिसना प्रारम्भ कर दिया।

मुमुक्षुओ! ध्रुव सत्य है, वृद्ध अवस्था आयेगी और मेरे में मृत्यु देकर जायेगी। अब आप समझ लो जिन-जिन की वृद्ध-अवस्था आ चुकी है, वे नजदीक आ चुके हैं। ऐसे तुम यह करो कि जब वृद्धावस्था तुझे मृत्यु की भेंट देने आये, इसके पहले तुम उस वृद्धावस्था से कह देना कि रत्नत्रय धर्म की भेंट ले। तो फिर मृत्यु नहीं आयेगी, यानि समाधि मरण होगा। ज्ञानियो! अपने जीवन में, ध्रुव सत्य को समझना **'अशाश्वतमत्राणं'** अशाश्वत् है, सुरक्षित रहने वाला नहीं है। **तस्मिन् विद्वान् रतिं त्यजेत्।** ऐसे शरीर से हे विद्वानो! तुम राग करना छोड़ दो। जिसकी

राख होना है, उसका राग किस बात का? आज सोचना जिसकी राख होना है, उस पर राग कैसा?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परिग्रह ही दु:ख की परम्परा है"

सङ्गात् सञ्जायते गृद्धिर्गृद्धौ वाञ्छति सञ्चयम्।
सञ्चयाद् वर्धते लोभो, लोभाद्-दु:ख-परम्परा॥ सा. स. 232॥

अन्वयार्थ—सङ्गात् गृद्धिः सञ्जायते = परिग्रह की मूर्छा होने से विषयों की लोलुपता पैदा होती है **गृद्धौ सञ्चयम् वाञ्छति** = लोलुपता होने से धनादि परिग्रह के एकत्र होने की इच्छा करता है **सञ्चयात् लोभः वर्धते** = और उस धनादिके संचय करने से लोभ बढ़ता जाता है तथा उस **लोभात् दु:ख-परम्परा** = लोभ से दु:खों की संतति बढ़ती जाती है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! परिग्रह से गृद्धि (आसक्ति) उत्पन्न होती है और गृद्धि-विषयों की लोलुपता से धनादिक संचय की इच्छा होती है। धन के संचय से लोभ और लोभ से दु:ख की परम्परा बढ़ती जाती है।।

॥ सद्-देशना॥

जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति, वीतराग नमोऽस्तु शासन। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में लोभ के दुष्प्रभावों की व्याख्या कर रहे हैं।

ज्ञानियो! परिग्रह ही दु:ख का कारण है। जितना-जितना परिग्रह होगा, राग भाव होगा, उतना-उतना कर्मों का बन्ध करेगा।

ज्ञानियो! वस्तुतत्त्व को समझो। मेहमान घर में आया, उसका सम्मान अधिक है, जबकि आपको ज्ञात है कि इसका सम्मान-ही-सम्मान है, पर इससे मिलना कुछ नहीं है। घर में मेहमान आ जाये तो उसका सम्मान बराबर होता है, खर्च भी होगा, पर मेहमान देकर क्या जायेगा? मेहमान के आने पर समय अपना नष्ट होगा, खर्च अपना होगा, पर मिलता कुछ भी नहीं। समझो, समझो जैनसिद्धान्त की गूढ़ता को। बड़ी गहरी बात है।

भैया! मेहमान का सम्मान क्या रहा है? कितने दिन तक है? मुहूर्त काल तक भी आया, उसका सम्मान बहुत किया और ज्ञात है कि आने के उपरान्त जानेवाला

है, तब भी उसको सम्मान बहुत किया और आने दे रहे हो। मेरे मित्र! **जैसे तुम मेहमान का सम्मान करते हो, वो कितना खुश होता है। आप भी खुश होते हो। यदि ऐसे ही परिवार का सम्मान करने लग जाओ तो तुम्हारे परिवार में दस चूल्हे क्यों रखे जायें? एक ही चूल्हे पर, सब एक साथ बैठ कर भोजन करेंगे, संक्लेशता दूर होगी और संक्लेशता दूर होगी तो रोग समाप्त हो जायेंगे।**

आने वाले का सम्मान कितना और रहने वाले का कोई सम्मान नहीं। जितना मामा का ध्यान रखता है, उतना पिता का ध्यान रखे तो बेटा कभी पिता की छाँव से दूर नहीं हो पायेगा। **मुमुक्षु! तू अपने बेटे की माँ के भैया का जितना सत्कार करता है, उतना ही अपनी माँ के बेटे का सत्कार करने लग जाय, तो घर में कोई विसंवाद नहीं हो सकता।** ये भाई तेरा दीर्घ समय तक रहनेवाला है, पिता तेरा दीर्घ समय तक रहने वाला है। मेहमान जाने वाला है। पर्याय का सम्मान, पर्याय का सत्कार, पर्याय के प्रति ललक, मेहमान है, विनाशी है। विनाशी का सम्मान क्यों? अविनाशी भगवान्-आत्मा है, इस पर दृष्टि चली जाये। पर ज्ञानी! आने-जाने वालों को अनन्त भव बीत गये देखते-देखते। अविनाशी है, निज के लिए है। पर सत्कार किसका कर रहे हो? तिलक तो मेहमान को लगता है, पर घर वाले को कुछ नहीं है।

मेरे मित्रो! चन्दन की कीचड़ मेहमान को लगा दो, पर रत्नत्रय की कीचड़ नहीं। रत्नत्रय तिलक निज भगवान्-आत्मा को लगा दो, ये तेरे घर का मेहमान है। सारी मुस्कराहट आने-जाने वालों को सौंप दी। सारी प्रसन्नता आने जाने वालों को सौंप दी। सारी खुशियाँ दूसरों को दे दीं। मेरे घर से दूसरा दुःखी होकर न जाय, पर घर वाला रोता रह जाय। पर्यायों के खुश करने में तूने पूरे जीवन के पूरे निषेक नष्ट कर दिये। परिणामों को सुधारने का समय दे देता, तो पर्याय अपने आप सुधर जाती। पर परिणाम नहीं सुधार सका, पर्याय को सब कुछ दे डाला है। मुमुक्षु! सबके दिन एक-से नहीं होते। वे दिन भी नहीं रहे। पर जो आनन्द उसमें था, इसमें नहीं है। उसमें विरक्ति थी तुझे, कि कुछ नहीं है। दीवार गिर रही है, गिरने दो, कौन मेरा है। किराये के मकान में वैराग्य रहता है और घर के मकान

में राग हो जाता है। यानि इसे किराये पर ही रहना था। गिरता है, तो गिरने दो। मालिक जाने, मुझे तो रहना है नहीं।

ज्ञानियो! जैसे पर के भवन में राग नहीं है, वैसे इस देह में राग नहीं करो। पर जितनी-जितनी वस्तु बढ़ेगी, उतना-उतना दुनियाँ से राग बढ़ेगा। नियत है। उतनी दृष्टि फैली। घनत्व में शक्ति अधिक है, विरलन में शक्ति क्षीण हो जाती है।

विरलन क्षेत्र घेरता है। घनत्व क्षेत्र कम घेरता है लेकिन शक्ति को अधिक देता है। दुग्ध एक लीटर होगा तो कितने बर्तन को घेरेगा और घृत उसी के अन्दर होगा, स्थान कम घेरेगा। पर शक्ति किसमें अधिक है? मुमुक्षुओ! द्वैत भक्ति, अद्वैत भक्ति में यही अन्तर है।

जैन दर्शन कोई स्वतन्त्र दशा नहीं है। जो स्वतन्त्र दशा है विश्व की, वो ही जैन दर्शन है। लोगों को मत बनाने पड़े, लोगों को मंच बनाने पड़े, लोगों को सम्प्रदाय को जन्म देना पड़ा। पर जगत् के सारे मंच नष्ट हो जायें, जगत् के सारे भेष समाप्त हो जायें, जगत् के सारे मत समाप्त हो जायें, जो बचेगा उसका नाम जैनदर्शन है।

जैसे परमाणु जब तक स्कन्ध है, तब तक परमाणु नहीं है, विभाग होते जाय, पुद्गल के जब विभाग होना बन्द हो जायें, अविभागित शब्द सामने खड़ा हो जाये, उसी का नाम परमाणु है। ऐसे ही **विकृति हटती जाय, जो प्रकृति का भेष बचेगा, उसका नाम दिगम्बर धर्म है। यही जैनधर्म है।** सबके दिन एक-से नहीं होते। व्यक्ति का भौतिक विकास पुण्याश्रित है। व्यक्ति का मानसिक विकास पुण्याश्रित के साथ पुरुषार्थ पर आश्रित है।

भौतिक विकास मेहमान है, आत्मविकास घर का समधी है। **भौतिक विकास मुस्कान (खुशी) देकर चला जाता है, आनन्द नहीं देता। जादूगर खुशी देकर जाता है, स्वाद देकर कहाँ जाता है?**

मिठाइयाँ चाहिए, लड्डू चाहिए, पेड़े चाहिए और भारत की राष्ट्रीय मिठाई जानते हो? रसवन्ती जलेबियाँ। जादूगर दिखा देगा, पर मेरे मित्र! थोड़ी देर बाद अपना बर्तन भी खाली रख देगा कि आप इसमें डालो। जब तेरे पास सबकुछ बनता है,

तो भीख माँगने की क्या आवश्यकता है? मेरे मित्र! ये मात्र दिखाने के थे, खाने के लिए नहीं थे।

जादूगर की मिठाइयाँ मुस्कराहट देती हैं, पर आनन्द नहीं देती हैं। पर तेरे घर की मिठाई चाहे काली-कलूटी क्यों न बने, पर खाने को मिलती है, आनन्द देती है। ऐसे ही मेरे मित्र! ये पर्यायों की मिठाइयाँ मुस्कराहट देती हैं, पर अन्दर का आनन्द नहीं देती हैं। आनन्द चाहिए है कि प्रसन्नता चाहिए है? जो प्रसन्नता है, वो त्रैकालिक है। आनन्द त्रैकालिक है।

दो द्रव्यों (पदार्थों) के मिश्रण से तीसरी पर्याय बन जाये, इसी का नाम रसायन है। हल्दी में चूने को डालने से, चूने में हल्दी के मिलने से न हल्दी बचती है न चूना बचता है। रंग कोई दूसरा ही होता है। फिर भी न हल्दी नष्ट हुई है न चूना नष्ट हुआ है। मात्र रंग बदला है।

हल्दी तो हल्दी है, चूना तो चूना है। पर दोनों के मिश्रण से तीसरी पर्याय का उदय हुआ है, ज्ञानी ऐसे ही तेरे परिणामों की धारा है। रसायन है क्यों? सुनो, कुछ क्षण पहले इस भवन में बहुत हलचल थी, अब मौसम बदल गया है। चेहरे बदल चुके हैं। ये चेहरे क्यों बदल गये? क्या हो गया? वक्ता शब्दों को गम्भीरता से बोलता है तो श्रोताओं के चेहरे दूर से गम्भीर होते हैं। वक्ता प्रसन्न होकर बोलता है, तो तुम्हारे चेहरे प्रसन्न होने लगते हैं। बोलनेवाला एक है, सुननेवाले हजारों होते हैं। एक बोलनेवाले की आवाज को सुनकरसुनने वाले के परिणाम ऊपर-नीचे हो रहे हैं, ये हो क्या रहा है?

मुमुक्षुओ! एक से दूसरे को प्रभावित किया जा रहा है। यही रासायनिक क्रिया है। धर्म को आपने सम्प्रदाय में रखा, इसलिए लघु हो गया। भगत जी या पण्डितजी नाम से आप पूरे देश के हो जाओगे और आपके सामने अध्यक्ष शब्द जुड़ गया, तो आप इस मन्दिर मात्र के हो गये। मित्र! पिता शब्द जुड़ जायेगा तो तू घर का हो जायेगा, मात्र बेटों के बीच का और पति शब्द जुड़ गया, तो मात्र पत्नि का। **जहाँ सम्बन्ध होते हैं वहाँ व्यक्ति छोटा हो जाता है और जहाँ सम्बन्ध हट जाते हैं, वहाँ व्यक्ति विशाल हो जाता है। सम्बन्ध का जुड़ना ही लघुता है। जो**

सम्बन्धातीत हो जाता है, वह विश्व का परमात्मा हो जाता है। सम्बन्धों में लीन हो जाता है, वो घर के कोने का एक सदस्य ही रह जाता है। अब बोलिये, विशाल होना है कि छोटा होना है? ज्ञानी! विशाल होना है तो विषय छोड़ दो। घर छोड़कर बहुत सारे घूमते रहते हैं, वे विशाल नहीं हो पायेंगे। विशाल होना है तो विषय छोड़ो। घर छोड़ने से विशालता नहीं होती, विषयों को छोड़ देगा तो अपने आप विशाल हो जायेगा। जो सम्बन्धों में जुड़कर रहेगा, छोटा हो जायेगा। उसे कोई छोटा करने जायेगा नहीं। यदि सम्बन्ध हटा देगा, तो विशाल हो जायेगा। स्कन्ध-स्कन्ध समूह होता है, तबतक एक स्थान पर होता है। जब स्कन्ध का विघटन प्रारम्भ हो जाता है और परमाणु सम्बन्ध छोड़ देता है, तो स्कन्ध का एक परमाणु एक समय में चौदह राजू गमन करता है। कैसे कहते हो धर्म की भाषा कठिन है? सत्यता यह है कि धर्म की भाषा को धर्म में नहीं समझाना चाहिए। धर्म कठिन क्यों हो गया? क्योंकि धर्म की भाषा को तुमने क्रियाकांड में समझाना प्रारम्भ कर दिया।

धर्म की भाषा को धर्म में समझाइये। एक द्रव्य का परिणमन दूसरे द्रव्य में कैसा होता है? रसायन की क्रिया कैसे होती है? धर्म को धर्म में समझाया। धर्म को ढोंग में समझाया तो तू मांत्रिक हो गया, तान्त्रिक हो गया और ढोगों में चला गया। इसे ही तार्किक दृष्टि से समझाता हो मन्त्र भी होता, तन्त्र भी होता और वस्तुस्वभाव की व्याख्या होती।

रंग बदलते ही देखने वाले की दृष्टि बदलेगी कि नहीं? नेत्रों पर प्रभाव पड़ा कि नहीं पड़ा? नेत्रों पर प्रभाव पड़ा तो नेत्रों पर प्रभाव पड़ा। आँख पर प्रभाव पड़ा तो आँख पर प्रभाव पड़ा। आँख यानि आँख, आँख यानि आत्मा। अक्ष पर प्रभाव पड़ा। रंग देखते ही आपके देखने का ढंग बदल गया। गोरे आदमी को कैसे देखते हो और साँवले आदमी को कैसे देखते हो? भैया! देखना देखने की दृष्टि। ज्ञानी, जब तू छोटे की माँ को देखने गया था, वो जीवद्रव्य था कि नहीं? देखने की दृष्टि क्या थी? पूरे आत्मप्रदेश चंचल थे, भावों में खुशी थी, आनन्द नहीं था। तीर्थंकर की प्रतिमा को देखा। उन्हीं आँखों से प्रसन्नता नहीं थी, आनन्द था।

विषय-कषाय में खुशी होती है, विषय-कषाय में प्रसन्नता होती है। वीतरागता में आनन्द होता है। ये रसायन की क्रिया है। प्रातः होते-होते मन्दिर में पहुँचे, भगवान् की वन्दना की और भगवान् को देखते ही भाव बदल गये। दो प्रकार से परिणमन होता है।

स्थूल द्रव्यों का एक दूसरे में मिश्रण किया जाता है तो जितने सूक्ष्म परमाणु होते हैं उतना दूर से ही परिणमन होता है। जो-जो दिखे, उससे ही परिणमन नहीं होता। जो न भी दिखे, उससे भी परिणमन होता है। मैं बोल रहा हूँ, आप सुन रहे हो, शब्द कहाँ दिख रहे हैं।

मैं हाथ पकड़ कर सिर हिलाऊँ तो एक ही हिल पायेगा और बिना हाथ पकड़े बात ऐसी कहूँ जिससे हजारों के सिर हिल रहे हैं। ये हो क्या रहा है? इसलिए तन्त्र उतना काम नहीं करता, मन्त्र उतना काम करता है। तन्त्र में वस्तु रखी जाती है और मन्त्र में रखा नहीं जाता, स्मरण किया जाता है।

ये जिनवाणी तन्त्र नहीं, महामन्त्र है। तन्त्र में हल्दी-चूना रखना पड़ेगा, तन्त्र में नमक-मिर्च लगानी पड़ेगी, तन्त्र में नीबू लटकाना पड़ेगा। पर सत्य ये है कि कुछ भी नहीं है। ये जैन आगम में धर्म के रहस्य को समझो। ज्ञानियों ने इतना गूढ़ कर दिया कि सब-का-सब गूढ़ कर दिया। ये भेष देखो, ये तन्त्र है, आप मान लो मेरी बात को। भैया! नहीं है क्या? ये जैन श्रावक है, धर्मात्मा जीव है, साधुओं के चौका लगाता है, लेकिन फिर भी तन्त्र है। छड़ी वाले बाबा। ये जीव छड़ी है क्या ? अरे! कुछ भी न हो, तन्त्र तो है। छड़ी देखते ही छड़ी वाला बाबा याद आ गया। छड़ी वाला बाबा, भैया! दूर रहना, कुछ कर न दे। उन्होंने छड़ी उठाई, ये तन्त्र है।

आचार्य विमलसागर महाराज बहुत बड़े ज्योतिषाचार्य हुए। मान्त्रिक, निमित्तज्ञानी। निमित्तज्ञान प्रबल था। एक नगर में विहार हो रहा था। उनका विशाल संघ था। युवा भी थे, वृद्ध भी थे, प्रौढ़ भी थे, आर्यिका माता भी थीं। एक आचार्य का दायित्व है कि ईर्यापथ का शोधन कर रहे हैं आगे बढ़े और पीछे भी दृष्टि रखें कि संघ कैसे चल रहा है। युवा अशुभ वचन का प्रयोग कर रहे थे और जो आर्यिका माता

थीं उनके सामने वो जाकर खड़े होने की चेष्टा कर रहे थे। आचार्य महाराज ने देखा। देखो, उनका तन्त्र कुछ नहीं किया। कमण्डल से पानी निकाला, अंजुली में लिया। 'आप यहाँ से जा रहे कि नहीं जा रहे?' हाथ में क्या था? पानी नहीं बचा। देखो, पानी (जल) अंजुलि में आते ही मंत्र बन गया। उसकी संज्ञा बदल गयी। अभिमन्त्रित जल है। इसलिए स्थान खाली हो गया। नहीं तो आप भाग जाते। क्या रास्ता बदलने की जरूरत थी, उन्होंने ऐसा किया, पूरे रास्ते खुल गये। ज्ञानी! ये क्या था? मन्त्र नहीं था, ये तन्त्र था।

कुछ काम तन्त्रों से होते हैं, कुछ काम मन्त्रों से। पर सत्य यह है कि होता कुछ भी नहीं। पर होता है। यह रहस्य सुनना। ढोगों से हटकरके ढंग पर दृष्टि डालनी है। अच्छा बताइये भैया! मैं इस भेष में न होता, तो विश्वास रखना ये आगरा वाले, ये बेचारा सीढ़ियों पर बैठ कर चला जाता, कोई देखता नहीं कि कौन आया, कौन चला गया। पूरी बात सुनो भाई। लेकिन जैसे ही भेष बनाकर कोई जीव आया—भाई! आने दो। तुरन्त आपने स्थान खाली कर दिया—बैठो, भाई। ये क्या था? ये भेष का तन्त्र था। बिना भेष के तन्त्र के किसी का मन्त्र लागू हो ही नहीं सकता।

पण्डित जी! तुझे विधान, पर्युषण आदि विशेष काम करने पड़ते हैं, तब तुझे कोई सुनने पहुँचता है, बुलाना पड़ता है। वहीं साधु आकर बैठ जाये तो लोग अपने आप इकट्ठे हो जाते हैं। ये दिगम्बर भेष का तन्त्र है। बिना भेष के तुम किसी भी सम्प्रदाय की चर्चा नहीं कर सकते। हर दर्शन ने अपना भेष चुना, हर दर्शन ने अपना चिह्न चुना। कुछ भी नहीं था, मात्र तन्त्र था कि लोगों को कैसे बैठाया जाय। यदि आपके घर के सामने कोई उपद्रव करे, कोई परेशान करे, आप कुछ नहीं करना, आप तो पत्थर उठाना, सिन्दूर पोत कर रख देना, वहीं श्रीफल के खण्ड करके बिखेर देना, और एक-आध टूटे काँच (चूड़ियाँ) फेंक देना। फिर देखो आप।

ज्ञानी! तू नींबू निचोड़ कर पी जाता है तो कुछ नहीं होता भूत नहीं लगते और सिन्दूर डाल दिया तो क्या हो गया? ज्ञानी! सुनो, धर्म के व्याख्यान को सुनो, धर्म के मर्म को सुनो, समझो। ज्ञानियो! आज से न नीबू टाँगो न मिर्च लटकाओ। पुण्य

टँगा है प्रबल, तो जगत् में न मिर्च काम करेगी न नीबू काम करेगा और पापकर्म तीव्र है, तो नीबू भी काम करेगा, मिर्च भी काम करेगी। नीबू को टाँग कर तू सुखा रहा है। किसी बेचारे को पिलाता तो उसे शान्ति तो आती। ज्ञानी क्या सोच रहा है? निमित्त, नैमित्तिक सम्बन्ध है इसे कैसे अनुभव किया जाये, इसकी विद्या तन्त्र-मन्त्र में है। तन्त्र-मन्त्र रासायनिक क्रिया है। ये तो भैया! भौतिक तन्त्र की बात हो गयी। समाधितन्त्र ये भी एक तन्त्र है।

सबके हाथ खुले हैं, कुछ भी समझ नहीं आया। मुट्ठी बन्द कर लो, अभी समझ में आता है। नहीं तो हाथ रगड़ लो, आपके हाथ गरम हो जायेंगे, उष्मा आ जायेगी ठण्डक समाप्त हो गयी। ये कैसे आयी है? ये गर्मी आयी नहीं है। विरलन हो गई थी। पर जब तुमने घनत्व कर दिया है, संग्रह कर लिया है, ऐसे ही मित्रो! मोक्षमार्ग है, साधना है, जो तुम्हारा चित्त बिखरा हुआ है, तो द्रव्य में वो बिखरा चित्त तुम्हारी शक्ति को क्षीण कर रहा है। उसे रत्नत्रय से संग्रहीत करके, योग को साध करके जब ज्ञानी ध्यानस्थ हो जाता है, तो वही समाधि-तन्त्र हो जाता है। घनत्व करना सीखो। भैया! कुछ नहीं सीखना है। घनत्व करना सीखो। ज्ञानियो! आप देख रहे हैं इन आँखों से। तेरी आयु जा रही है, शक्ति क्षीण हो रही है। आँखें बन्द कर लो, तो तेरी शक्ति तेरे भीतर रहेगी। मत सुनो, मत देखो, मत बोलो। तो क्या करो? **'अप्पा अपम्मि रओ।'** आत्मा को आत्मा में लगा दो।

ढक्कन बन्द करो। बन्द ढक्कन में चाय जल्दी पक जाती है। खुले ढक्कन में वाष्प बाहर निकल जाती है। ज्ञानियो! ढक्कन बन्द करो। जितने ढक्कन बन्द होंगे, वाष्प अधिक होगी, उतना मोक्ष तेरा जल्दी होगा। भौतिक द्रव्यों की सिद्धि के लिए जीवद्रव्य का उदाहरण लाते हैं और जीव की सिद्धि के लिए अजीव का उदाहरण लाते हैं। ये जैनाचार्यों की शैली है। मेरे मित्र! सत्य बताऊँ? कभी-कभी जितना गहरा आता है, उतना गहरा बोल नहीं पाता हूँ। सबके दिन एक-से नहीं होते। जितना गहरा आता है, पर मुख तक आते-आते ये आँखें आपको देख लेती हैं तो तुरन्त अन्दर चला जाता है। क्यों चला जाता है?

आपके घर में बहुत कुछ होता है। द्रोणगिरि पर श्री जी विराजमान कर सकता

है, इतना दान दे सकता है। मेरे मित्र! तो क्या तू चार भूखे आदमी को भोजन नहीं करा सकता? करा सकता हूँ, महाराज! लेकिन भोजन कराने के भाव आते हैं और जैसे ही सामने वाला मेरे द्वारे पर आता है तो मेरे भाव नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि उस व्यक्ति का पुण्य वैसा नहीं है, जिससे परिणाम मेरे देने के हो जायें। भैया! घर में मेहमान, सगा रिश्तेदार, यहाँ तक कि तुम्हारे ही चार दामाद एक साथ घर पर आये, चारों एक साथ घर पर आये, पर चारों को भोजन परोसने में तुम्हारे भाव भिन्न हैं। जबकि चारों बेटियाँ तुम्हारी दी हुई हैं। एक गरीब कुल में, एक अमीर, एक मध्यम और एक सामान्य। तिलक करने की शैली में अन्तर होता है। एक के हाथ में ग्यारह थमाये तो एक के में पाँच, एक के में सवा, एक के में हजार। भाव तुम्हारे क्यों बदल रहे हैं?

लोक कहता है कि द्विभाँत कर रहे हैं, लेकिन सत्यता कुछ-और ही है। द्विभाँत इसलिए की जा रही है कि सामने वाले का पुण्य ही इतना है, तो परिणाम मेरे ऐसे हो रहे हैं, मैं क्या करूँ? आज इस ज्ञानी के द्वार पर कोई भिखारी आ जाये, तो बेटे से कहेगा कि अपनी माँ से बोल दे, चम्मच में आटा ला और इस भिखारी को डाल दो। यदि मुनिराज आ जायें तो कहेगा माँ! सबको बुला लो। धरती के देवता मुनिराज आये हैं। स्वामी! नमोऽस्तु। जो थैला लटकाये आया है, उसको चम्मच भर करके और जो थैली नहीं, अंजुलि लगा कर आया, उसके लिए घर खुला हुआ है। सबके दिन एक-से नहीं होते। वस्तुस्वभाव जो है, सो है। इसलिए ये रोना-धोना बन्द करो, वस्तुस्वतन्त्रता पर दृष्टिपात करो। जैसा पुण्य होगा, उसके लिए वैसे परिणाम होंगे। यानि लगता है, लोक में कहा जाता है, कि सेठों को देखकर ऐसा और गरीब को देखकर ऐसा। अरे! तू मेरे से मत कह कि सेठों को देखकर ऐसा, गरीबों को देखकर ऐसा। तू स्वयं सोच ले। तू गरीब है, क्यों और ये सेठ है, क्यों? ज्ञानी! तेरा छोटा भाई कह रहा है कि महाराज श्री! क्या करूँ? मेरे पिताजी मुझे आगे कभी नहीं करते, बड़े भैया को आगे कर देते हैं। बेटा! तू क्यों रो रहा है? गलती न बड़े भैया की, न पिता की। गलती तेरी है। पहले तू आया क्यों नहीं? पीछे क्यों आया? तू छोटा क्यों हुआ? यदि ऐसा सम्यक् सोच आ

जाये, तो कभी किसी के प्रति अशुभ भाव नहीं आ सकते। अशुभ भाव क्यों आ रहे हैं? क्योंकि हम अपने द्रव्य को नहीं देखते, पर के द्रव्य को ग्रहण करने के भाव रखते हैं। चींटी भी वजन खींचती, कि नहीं खींचती? चुम्बक वजन खींचता, कि नहीं खींचता? मित्रो! जब चुम्बक के शक्त्यांश अधिक हैं, लोहा छोटा-छोटा है, तो खींच लेती है चुम्बक और यदि लोहा वजनदार है, तो खिंच जाती है चुम्बक।

जिसकी शक्ति अधिक होती है, वो अपनी ओर खींच लेता है। लाखों-करोड़ों के बीच में एक साधु सबको खींच लेता है। ज्ञानी! यदि तेरी शक्ति क्षीण है, तो साधु भी असाधु में बदल जाता है।

आत्महत्या करने वाला एक दिन में आत्महत्या नहीं कर लेता। वो वर्षों से सोचता है, तब इतना दृढ़ हो जाता है कि अपने मरने से नहीं डरता है। जो व्यक्ति फाँसी लगाने में दृढ़ होता है, वो ही मोक्ष जाने में दृढ़ होता है। जिसने इतना तय कर लिया कि मुझे मृत्यु से डर नहीं है, जिसने इतना तय कर लिया कि मुझे जन्म-मरण से भय नहीं है, मुझे तो कल्याण करना ही है, जन्म-मरण का नाश करके रहूँगा, तो तुरन्त घर छोड़कर भाग जाता है। जिस दिन दृढ़ता आ जायेगी उस दिन तू मेरे से पूछने नहीं आयेगा कि महाराज! अणुव्रती बनूँ कि महाव्रती बनूँ? और जिस दिन तेरी चुम्बक बन जायेगी, उस दिन तू अपने आप खिंचा चला आयेगा। आवश्यकता है संकल्प और दृढ़ता की। **संकल्प और दृढ़ता शक्ति ही जीव को महान् बनायेगी।** रस्सी का बन्धा छूट सकता है। खूँटे से बँधे को बाँध कर नहीं रखा जा सकता है। जो संकल्पशक्ति से बँधा होगा, वो ज्ञानी स्वयं में ही बँधा होता है। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं कि महाराज! आप अपनी बात कहते रहते हो। कौन तुम्हारे दर्शन करने आये हैं? मुझे तो आगरा में आफिस का काम था, सो आया हूँ। सोचा, कर लो दर्शन। ज्ञानी! भले ही अपने काम से आया हो, काम तो उसका वहीं निपट चुका, यहाँ थोड़े-ही हो रहा है। उसका काम यहाँ होना था, कि वहाँ होना था? फिर यहाँ क्यों आया? ये भीतर की श्रद्धा लेकर आयी है। ज्ञानियो कभी भी नास्ति रूप में मत सोचिये, अस्ति रूप में सोचिये। भैया! एक अन्तिम बात समझना। जगत् में शरीरिक निरोगता, मानसिक निरोगता, सच्ची निरोगता

चाहिए है तो, अस्ति रूप सोचना प्रारम्भ कर दो। जितना नास्ति रूप चिन्तन कर रहे हो, उससे तुम्हारा उल्टा हो रहा है। एक सज्जन मुझसे बोले महाराज! अमुक आपसे ऐसा बोल रहे थे। मैंने कहा, ज्ञानी! मैं तो आगरा में हूँ। बोलनेवाला बहुत दूर है। उसने ही तो भाव किये, उसके ही तो वचन थे, उसका ही तो परिणमन था, मेरे में तो उससे कुछ भी नहीं हुआ है। जो गाली देगा, वो अपने में ही कर रहा है। पर में पर का परिणमन होता नहीं है। त्रैकालिक सूत्र है। सुन्दर चेहरे को देखकर आपकी आँखों में परिणमन होने लगा है। वो तेरी आँखों में हुआ है, उसमें नहीं हुआ है। इस सत्य को भी समझो। ठीक है? **भैया! मांत्रिक शक्ति तुम्हारे पास है। तान्त्रिक शक्ति तुम्हारे पास है। प्रभुत्व शक्ति तुम्हारे पास है। मुझे तीनों शक्ति वालों से कहना है कि अपनी शक्ति का प्रयोग क्षेत्र में, अपनी भाषा में, जिनवाणी की भाषा में करो। जिस क्षेत्र में आप हो, वहाँ जैनत्व झलकना चाहिए।** मेरे मित्र! पुनः मेरा कहना है, जब आपको मुख्यमन्त्री बगल में बैठाये और रात्रि में कहे जैन साहब! नाश्ता कर लो, उस समय बिल्कुल मत करना।

मैं अधिकारी हूँ, मैं हूँ, मेरा धर्म अधिकारी नहीं है। मैं नौकर हूँ, मैं हूँ, मेरा धर्म नौकर नहीं है। आपकी सेवा में सामने बैठा हूँ, धर्म बेचने नहीं बैठा हूँ। उनके सामने रात्रिभोजन करना ही नहीं है। उसको समझ में आयेगा कि सच्चा जैनी है।

पूरी समाज बैण्ड बजाकर उतनी प्रभावना नहीं कर पायेगा संसद भवनों में पहुँच करके वहाँ छन्ना लगाकर पानी पीयेगा, तो प्रभावना हो जायेगी।

ज्ञानियो! तुम गरीब के बेटे भी क्यों न हो, तुम्हारे पास पैसा न हो, पर इतना तो तुम्हारे पास है कि नाक पोंछने को रूमाल खरीद सकता है। धिक्कार हो, नाक पोंछने के लिए रूमाल खरीद सकता है, लेकिन पानी छानने के लिए कपड़ा नहीं खरीद सकता, इतना गरीब कब से हो गया?

यहाँ लोगों ने, बुलउआ (भजनों) में छन्ना बाँटे कितना अच्छा काम किया। ऐसा कुछ दो जिससे धर्म की प्रभावना हो। जब भी मेहमान आयें, टीका करो, साथ में छन्ना जरूर दिया करो। बोलो, 'पकड़ो इसे, पानी छान कर पीना। ये जैनत्व

की रक्षा करता है।' तुम शादियाँ करते हो, दहेज देते हो, साथ में छन्ना जरूर दिया करो और उससे बोलना, ज्ञानी! अन्य सामग्री तो राग की है, ये जिनशासन की रक्षा के लिए इसे साथ में लेकर जाना। बैण्डों में पैसा खर्च कर सकते हो, सच्चे जैनियो! नियम ले लो, घर में कोई भी मेहमान आयेगा तो सबसे पहले छन्ना हाथ में पकड़ा दो। ये क्या है? ये धर्म का चिह्न है। कनक कलउआ छन्ना, ये जैनी के चिन्हा।

जब भी कोई जैनी बाहर जाये तो कनक (राशि), आटा (कलुउआ), छन्ना। बस, अपने हाथ में छन्ना लेकर जाना। पानी छान कर ले जायेगा तो अपने आप लोग समझ जायेंगे कि ये 'नमोस्तु शासन' को मानने वाला सच्चा जैनी है।

कुलभद्राचार्य कह रहे हैं कि जैसे-जैसे परिग्रह बढ़ेगा, वैसे-वैसे गृद्धता बढ़ेगी। पहले सोचता था कि इतना ही होता, अब सोचता है कि इतना और हो जाये। बांछा करता है, फिर संचय करता है। जब पैसा, बढ़ जाता है, फिर लोभ बढ़ जाता है। जैसे ही लोभ बढ़ा तो दु:ख की परम्परा प्रारम्भ हो चुकी है। पुण्य के नियोग से 'श्री' बढ़ने लग जाये तो 'श्रीजी' के कार्य में लगाना प्रारम्भ कर दो।

ज्ञानी! जो मिला है, तेरे कमाने से नहीं मिला है। सत्य है, गरीबी के दिनों में तूने बहुत कुछ छोड़ा, लेकिन भगवान् के दर्शन नहीं छोड़े, ये उसका फल है। इतनी सम्पत्ति मिले तो अपने जीवन में अरिहन्त की प्रतिमा जरूर स्थापित कर लेना।

जितना पुण्यशाली पुरुष हो, उतनी विशाल प्रतिमा विराजमान करना। महाराज! सब जगह आप ऐसा क्यों बोलते हो? रहस्य है। आज जमीन में महावीर स्वामी की प्रतिमा निकली, चाँदनपुर में, महावीर जी में, किसी श्रावक ने विराजमान की थी कि नहीं की थी? शुष्क भूमि में जिनशासन को पुन: स्थापित किया। एक अरिहन्त की प्रतिमा की स्थापना नहीं है, ये जिनशासन की स्थापना है। जब-जब भूमि से निकलेगी, तब-तब ज्ञानी जिनशासन जयवन्त होगा।

तुम चाहो कि सन्तानें नाम करायेंगी, तो कोई भी सन्तान नाम नहीं कराती है। ये इस ज्ञानी से पूछो, अपने बेटे का नाम कितनी बार लेता है, पिताजी का लेता है क्या? बोलो भाई! जितनी बार अपने बेटे का नाम लेते हो, पिताजी का नाम

लेते हो क्या? नहीं लेते। यदि तू ही अपने पिता का नाम नहीं ले पा रहा है, तो तेरा बेटा तेरा क्या नाम लेगा? नाम की ही भूख है तो चामुण्डराय से पूछो। एक भी बेटे दिखाई नहीं देते हैं, पर सारे विश्व में चामुण्डराय का नाम लिया जाता है। उसने गोम्मटेश बाहुबलि की स्थापना की। आप सभी आज निर्णय करके जाना मन में, जीवन में अन्तिम श्वास के पहले-पहले तक एक अरिहन्त की प्रतिमा जरूर विराजमान करेंगे।

ज्ञानी! अरिहन्त की प्रतिमा जरूर विराजमान करके जाना। मेरे मित्र! तेरे घर की सुरक्षा कोई नहीं करेगा, हास्पिटल की सुरक्षा कोई नहीं करेगा; परन्तु प्रतिमा विराजमान रहेगी, कुछ दिन बाद पुरातत्त्व में चली जायेगी तो भारत सरकार सुरक्षा करेगी और जब तक यह रखी रहेगी, जब तक जैनदर्शन जयवन्त होगा। आज भारत के अन्दर जैन साहित्य और जैन पुरातत्त्व हटा दिया जाये तो भारत खोखला। सम्पूर्ण देश के म्यूजियमों में जाकरके देखो, सबसे अधिक प्रतिमा किस की मिलेगी? जैन प्रतिमा! उस शक्ति के बल पर ही तुम जी रहे हो, क्योंकि भारत सरकार को पुरातत्त्व के माध्यम से बहुत लाभ होता है।

आज खजुराहो के मन्दिर खड़े हुए हैं तो पूरे विदेशी आ रहे हैं कि नहीं आ रहे हैं? ये तो भौतिक बात है। एक और बात है। एक प्रतिमा को देखकरके किसी एक का मिथ्यात्व चला गया, ज्ञानी! करोड़ों की कोई कीमत नहीं। श्री जी पर दृष्टि रखना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"शरीर का ममत्व ही दु:ख की परम्परा है"

ममत्वाज्जायते लोभो, लोभाद्रागाश्च जायते।
रागाच्च जायते द्वेषो, द्वेषाद्दु:खपरम्परा॥ सा. स. 233॥

अन्वयार्थ—ममत्वात् = परपदार्थों के ममताभाव से **लोभो जायते** = लोभ पैदा होता है **लोभात् राग: च जायते** = तथा लोभ से राग पैदा होता है **रागात् च द्वेष: जायते** = राग से द्वेष उत्पन्न होता है, **द्वेषात् दु:खपरम्परा** = द्वेष से दु:ख की सन्तति चल पड़ती है।

भावार्थ—हे भव्य जीव! शरीर के ममत्व से लोभकषाय उत्पन्न होती है। लोभ से राग और राग से द्वेष उत्पन्न होता है तथा द्वेष से दु:ख की परम्परा चलती रहती है।

॥ सद्-देशना ॥

ज्ञानियो! हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्राचार्य जी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में रागद्वेष के दुष्परिणामों का व्याख्यान कर रहे हैं। हे भव्यात्मन्! लोभ से राग उत्पन्न होता है और राग से द्वेष तथा द्वेष से दु:ख की सन्तति चलती है। अत: लोभादि का परित्याग करो।

ज्ञानियो! **धर्म निजात्मा का स्वभाव है। आत्मा का जो स्वभाव है, वही तो धर्म है।** बाह्य प्रपंचों में किंचित् भी धर्म नहीं है। स्वभाव दृष्टि निश्चय दृष्टि। भाई! तेरा दया धर्म नहीं है, मिशन है। मित्र! तू गाय-रक्षा की बात तो कर रहा है, पर प्राणीरक्षा की बात नहीं कर रहा है। जब तू बम पटकेगा, वहाँ तो तेरा मिशन है, मात्र ख्याति नाम की दृष्टि है। दया है, तो प्राणीमात्र की रक्षा का परिणाम होना चाहिए। एक चिंगारी से तो तेरा पूरा शरीर झुलसता है और जहाँ तू अग्निपिण्ड फेंकेगा, वहाँ क्या होगा?

भैया! एक चिंगारी पड़ जाये ऊँगली पर, कितनी पीड़ा होती है? मित्रो! चिंगारी अँगुली पर गिरने पर तन में पीड़ा है, पर तू जो अपने आप में कषाय की चिंगारी छोड़ता है, सर्वार्थ प्रदेशों में तू आग लगाता है, उस पीड़ा से तू क्यों नहीं बचना चाहता है?

जो रुच-रुच कर भोजन कर रहा है, उसका सारा भोजन उसके शरीर को स्वस्थ करता है। रस बन रहा है, सप्तधातु उसकी पवित्र हो रही है, क्योंकि रुच-रुच कर भोजन कर रहा है। यदि नाक सिकोड़-सिकोड़ कर भोजन कर रहा है, तो वह भोजन बिगाड़ रहा है, समय नष्ट कर रहा है और शरीर को भी कोई लाभ मिलने वाला नहीं है। जब तक भोजन शरीर में रहेगा, तब तक उसके अशुभ परिणाम आयेंगे।

मन्दिर में तुम्हारा मन नहीं लगता तो कम-से-कम भोजन की थाली पर ही मन लगा लिया करो। शान्ति से बैठ कर भोजन कर लिया करो। मेरा विश्वास है कि जब भोजन की थाली पर शान्ति से बैठेगा, तो भोजन अन्दर जायेगा सद्गुणों का, वो नियम से तुझे मन्दिर लेकर आयेगा। मन्दिर में मन उनके नहीं लगते हैं, जिनके घरों में चौबीस घण्टे क्लेश होते हैं। क्योंकि भोजन तो वही रखा है पेट में, अब मन्दिर में मन कैसे लगेगा? क्या कह रहे हैं? रुचिकर भोजन करता है कोई जीव, तो स्वस्थ रहता है। ऐसे ही आचार्य कुलभद्र स्वामी रुच-रुच कर व्याख्या कर रहे हैं। ज्ञानी! रुच-रुच कर की गई व्याख्या ही सुरुचि को उत्पन्न करा रही है। बड़ी सहजता में कह रहे हैं। जितने भी जीव आज तक अपने-आप को जो गरीब मानते हों वे बड़े ध्यान से सुनना। आज से हीनभावना को निकाल कर फेंक दो। मेरे पास पैसा नहीं है, इस हीनभावना को निकाल दीजिए, क्योंकि संसार में सबसे बड़ी कोई अशान्ति है, उसका नाम हीनभावना है।

अपने आप को महान् पुण्यात्मा मानो। जितनी सम्पत्ति होगी, उतने विकल्प होंगे, उतनी विपत्तियाँ घेरेंगी, उतनी विषमताएँ आयेंगी। तू तो सौभाग्यशाली है, तेरा धर्म दिगम्बर है। जब कुछ भी न बचे, तो पीछी-कमण्डल तो है, वे कितने पुण्यात्मा जीव हैं जो बहुत जोड़ कर रख लिये हैं, उनको छोड़ने में बहुत विकल्प होगा,

कि अब कैसे छोड़ूँ, क्या होगा, कौन सम्भालेगा, किसको दूँ। भैया! जिसके पास कुछ है ही नहीं तो फिर आनन्द है। अपन को कोई चिन्ता ही नहीं है। जो है, सो है।

कुछ दिन पहले जो मन्दिर में बैठे दिखते थे, वे आज वर्षों से मन्दिर नहीं आये। क्यों? क्योंकि जब मन्दिर में होते थे, तब उनके यहाँ कोई काम नहीं था, सो अपना समय मन्दिर में निकाल लेते थे। अच्छी भक्ति उसने की, तो इतनी जल्दी उसका पुण्य उदय में आ गया कि सम्पत्ति से भर गया, और सम्पत्ति से क्या भरा, उसने तो परमात्मा को ही छोड़ दिया। क्यों छोड़ दिया? अब बेचारे के पास समय नहीं है मन्दिर आने के लिए उसको और-अधिक मन्दिर आना था, क्योंकि पुण्य के योग से सम्पत्ति मिली है। लेकिन आज उसने मन्दिर आना छोड़ दिया। पूछा, भाई! मन्दिर क्यों नहीं आ रहा है? महाराज! क्या करूँ? अब समय नहीं मिलता।

धिक्कार हो तेरी परिणति को। भगवत् भक्ति के प्रसाद से तेरा पुण्य का उदय हुआ, पुण्य से तुझे साता के उदय से सम्पत्ति मिली हुई है और उस सम्पत्ति को प्राप्त करके तू श्रीजी को ही भूल गया।

ज्ञानियो! आज इस सभा में बैठकर करके, तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी के चरणमूल में बैठकरके, इतना नियम ले लेना कि मैं नोट वाला ही क्यों न सही, मैं नोटों पर ही क्यों न छप जाऊँ, लेकिन तब भी अरिहंत के मन्दिर की वन्दना करना नहीं छोड़ूँगा।

कितने लोग इस बात पर ध्यान देंगे? भैया। लाखों लोग तेरे पीछे घूमने लग जायें, देश का मुख्यमन्त्री/राष्ट्रपति/प्रधानमन्त्री बन कर बैठ जाये, तब भी ज्ञानी! सबसे पहले आपकी गाड़ी भवनों की ओर न जा करके, जिनभवनों की ओर जाये। लोकसभा न दिखे, मात्र जिनदेव की सभा दिखे। सम्पत्ति के मिलने पर, यश मिलने पर निज को और भगवान् को याद रख पाना, ये बड़े-बड़े तपस्वियों के शील का विषय नहीं बन पाता। ये सिंहासन से सिंहासन नहीं लगा, ये शील के आसन पर बैठने से सिंहासन लगा है। यदि सिंहासन पर बैठ करके शील-आसन खो दिया, तो तुम्हारा सिंहासन खोखला है।

कितनी करुणादृष्टि, कितनी तीव्र चिन्तन की धारा है आचार्य भगवान् की कि जीव के अन्दर तत्त्व को परिपूर्ण प्रवेश करा दे। देखा जाता है कि वे दिन भी थे जब नमक-मिर्च को रोटी पर रखकर खाकर आ जाते थे। तब तुमने माँ को नहीं डाँटा, पत्नि को नहीं पीटा! पर जबसे घर में कुछ आ गया, तेरे भोजन करने की शैली बदल गयी, भाषा बदल गयी। मेरे मित्र! घर बदल जाये, बदल देना, पर भावों के घर को मत बदलना। झोपड़ी में रहने के पूर्व महलों में पहुँच गये हो। ये देह महलों में पहुँच जाये, पर भावों की झोपड़ी पर भी ध्यान रखना, कि तुम्हारी औकात क्या थी?

जो अपनी सीमा को देखकर नहीं चलता, वो कभी भी असफल हो सकता है। इसलिए सीमा को देखकर चलना है। तुम पैदल चलते थे, तब तुझे जमीन का ज्ञान था। तुम गाड़ी में पहुँच गये हो, मित्र! ध्यान रखना! गाड़ी में आप हो, पर गाड़ी जमीन के ऊपर नहीं है, वो जमीन पर ही है। पैरों पर चलते आप गाड़ी को नहीं देख रहे, आप जमीन को देख रहे थे और जमीन को देखकर चलते थे तो आप जीवों को देखकर चलते थे। तुम गाड़ी में पहुँच गये हो, तो मेरे मित्र! जीवों को देखना बन्द मत करना। अभी तक आप भूमिका में जी रहे थे, अब तत्त्व की गवेषणा में प्रवेश करो। मेरे मित्र! तेरे मन की रुचिकर-रुचिकर सारी सामग्री थाली में आ जावे, फिर पूछना इस ज्ञानी से, श्रीमान् जी! हाथों में क्या होगा, मुख में क्या होगा, और दृष्टि में क्या-क्या होगा?

भैया! एक वस्तु रुचिकर आये तो शान्ति से भोजन कर लेना। जिस दीर्घ-कालीन भूखे आदमी को भरी थाली दिख जाये तो कुल की परम्परा का विवेक भी भूल जाता है। कैसे भोजन करता है पुरुष, उसके **भोजन की शैली से व्यक्ति के पूरे जीवन की धारा का बोध होता है कि ये कुलीन है कि कुलीनता से शून्य है, सद् पुरुष है कि असद् पुरुष है। व्यक्ति की भोजनशैली से व्यक्ति के भविष्य का, भूत का और वर्तमान का बोध हो जाता है।** व्यक्ति के भोजन करने मात्र से ज्ञानी पुरुष तो उसके भविष्य की घोषण कर देते हैं कि कौन क्या हो सकता है। भोजनशैली और बोलने की शैली, इन दो में निहित है तेरा भूत, भविष्य, वर्तमान।

उपदेश की गहराइयों में अनेक-अनेक गूढ़ रहस्यों को समझते चलो।

भैया! ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं। ये आपका द्वादशांग आगम बोल रहा है। भोजन करने मात्र से यही तो होता था। बेटी की शादी करना है तो बेटे के पक्ष के लोग आया करते थे, तो परोसना देखते थे कि बेटी परोसती कैसे है और चल कर कैसे आ रही है। उसकी चाल को देखकर समझ लेते थे कि इसके पैर कहाँ चल रहे हैं। ये मेरा घर चलायेगी या घर उजाड़ देगी।

बेटी के पक्ष के लोग बेटे को बुलवाते थे। सत्यता क्या थी, इसको समझिये। उसको भोजन कराना है और भोजन करते समय बुजुर्ग लोग बैठ गये। इसके मुख में से आवाज आ रही है क्या? इसके भोजन की शैली क्या है? और भोजन के समय बोलता क्या है? बस, समझ लो। यदि भोजन की शैली नहीं है, तो उसे अपनी बेटी मत दे देना। क्या रहस्य है कि भोजन की परोसने की शैली, भोजन को करने की शैली देखकरके सम्बन्ध टूट गये। सम्बन्ध नहीं करना, बोले क्यों? कुन्दकुन्द स्वामी, वट्टकेर स्वामी कह रहे हैं कि संसार की वधु से शादी का सम्बन्ध टूट सकता है, तो मुक्ति वधु से सम्बन्ध कैसे हो सकता है? वट्टकेर स्वामी 'मूलाचार' जी में लिखते हैं, यदि साधु को देखना, तो क्या देखना। लगता है कि ये योगियों की वृत्ति से श्रावकों की चर्चा की जा रही है, कि श्रावकों की वृत्ति से योगियों की चर्चा की जा रही है।

कोई मूलगुण की व्याख्या नहीं की, कि कौन-सा मूलगुण देखो साधु में। वो तो मालूम है। क्या कह रहे हैं?

भिक्खं वक्कं हिययं सोधिय जो चरदि णिच्च सो साहू।

एसो सुट्ठिद साहू भणिओ जिणसासणे भयवं॥ 1094 मूलाचार॥

ये गाथा तो प्रत्येक मन्दिर की दीवार पर लिखी होनी चाहिए। क्यों जब जब निर्ग्रन्थ योगी पधारें, उस गाथा को पढ़ते रहें। गाथा क्या कह रही है? जैसे श्रावक बेटा-बेटी के शादी के समय भोजन पर ध्यान देता है, ऐसे ही 'मूलाचार' जी ग्रन्थ में कहा जा रहा है कि साधु के और—कुछ मत देखना। यही कारण आप समझो। सारे जगत् में कितना ही बड़ा आदमी हो, उसके भोजन को देखने कोई नहीं आता।

पर दिगम्बर जैन परम्परा में जब भी साधु आहार लेने जाता है, तो भीड़ उमड़ती है। भोजन कराते समय, साधु को आहार कराते समय, श्रावक के भावों की विशुद्धि तो देखो। जैसे उसको साक्षात् परमात्मा मिल गये हों। गद्गद् भाव। वट्टकेर स्वामी 'मूलाचार' जी में यही तो कह रहे हैं। साधु के अन्दर दो ही गुण देखते हैं आप। भद्र पुरुष की दो से पहचान होती है। उसकी कुलीनता की दो से पहचान होती है।

ज्ञानियो! कौआ और कोयल की पहचान भी दो से ही होती है। कोयल का भोजन और कौऐ का भोजन, कोयल की वाणी और कौए की वाणी। कोयल की वाणी, कौऐ की वाणी। योगी का भोजन, योगी की वाणी। भोगी का भोजन, योगी की वाणी। यानि दोनों की पहचान दोनों से ही होती है।

भोजन देखकर साधु की साधुता का बोध होता है कि दृष्टि कहाँ है, रुचि कैसी है। बहुत सारी सामग्री भर कर आ गयी थाली में। ज्ञानी मुख में एक ही ग्रास रखेगा, गाल में दूसरा रहेगा, पर दृष्टि कैसी मचल रही है कि ये भी खाऊँ, वो भी खाऊँ बस, **जैसे-जैसे वस्तु बढ़ती है, गृद्धता बढ़ती है।** इसलिए योगी लोग भरी थाली से भी निकलवा देते हैं। जिससे मेरे भावों में विकार खड़ा न हो जाये और शान्ति से आहार भी ले सकूँ। इसलिए जो अत्यन्त आवश्यक है, उतना शेष, बाकी अवशेष हटा दो। भक्ष को ही ग्रहण करते हैं, पर भक्ष में भी मर्यादा कर लेनी चाहिए। यम में भी नियम होना चाहिए और नियम में भी नियम होना चाहिए। गृहिता शब्द का प्रयोग कर रहे हैं। भोजन प्रणाली जिसकी पवित्र है, आदमी अच्छा है। फिर तुम्हारा मन करता है कि इससे बात कर लो। बात करने से पहले मेहमान को भोजन ही तो कराते आप। फिर चर्चा करते हैं, चर्चा में फिर पकड़ते हो कि जैसी मिठास भोजन में थी, वैसी वाणी में है कि नहीं। यदि वाणी में मिठास नहीं है, भोजन मात्र में मिठास थी, तब भी सम्बन्ध टूट जाता है।

दूसरी परख दें वचनप्रणाली। वचनों में ग्रामीण भाषा न हो, गाय-भेड़ चरानेवाले की भाषा न हो। पशुशाला में कार्य करने वाले जैसी भाषा न हो। घुड़शाला में

कार्य करने वाले लोगों जैसी भाषा न हो। ऐसा क्यों कहा जा रहा है? क्योंकि वहाँ दो ही तो शब्द होते हैं, चल हट। कभी आगे, कभी पीछे करता, चल हट। ब्रह्मचारियो! ध्यान देना, **सारी क्रियायें तुम्हारी अच्छी हैं, पर वाणी में माधुर्य नहीं है तो जीवन में कुछ नहीं है। तुम तभी तक शोभा दोगे, जब तक मौन लिये रहोगे। जब बोलने बैठोगे तो लोग सुनने वाले उठकर चले जायेंगे। जो साधना तुम्हारी इन्द्रियों पर नियन्त्रित के लिए चल रही है, वो ही साधना तुम्हारी वाणी नियन्त्रित करने पर चलनी चाहिए। अक्षर मन्त्र भी बनते हैं, गाली भी बनते हैं।** उपयोगकर्ता की दृष्टि कैसी है, रुचिकर या अरुचिकर? गाली को भी मधुरता में दिया जा सकता है और मधुर विषय को भी गाली के रूप में पेश किया जा सकता है।

ज्ञानी पुरुष किसी को डाँटते भी हैं तो बड़ी मधुरता के साथ। धर्मसभा में गद्दी पर हाथ रखकर बैठना अच्छा नहीं लगता। तू तो ऐसे बैठा है जैसे शोक में बैठा हो। सिरपर हाथ रखे है। ज्ञानी लोग तो प्रसन्न होकर बैठते हैं। क्या हुआ? सबके हाथ हट गये। देखा, भैया! हाल हट गये। ओ हो! तुझे शर्म नहीं लगती, धर्मसभा में सिर पर हाथ रखे बैठा है? अरे! बात तो दोनों एक ही थी, लेकिन तुम्हारे कहने की शैली में बड़ा अन्तर आ गया। एक तो पता नहीं चला, हाथ भी हट गये और आनन्द के साथ प्रवचन भी हो गये। दूसरे में तुमने डाँट दिया।

मन्त्रित रखो अपनी वाणी को। ज्ञानियों, योगियों को इसलिए कम बोलना चाहिए, क्योंकि श्रावकों की जो आस्थाएँ हैं, वे योगी के वचनों को प्रवचन कहते हैं इसलिए हँसी-मजाक ये तो श्रावकों के चेहरे पर कभी नहीं आना चाहिए। कभी भी नहीं आना चाहिए, क्योंकि आपकी हर प्रवृत्ति को लोग प्रवचन कहते हैं। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने तो कह दिया कि बोलनेवाले प्रवचन तो योगी घण्टों-घण्टों करते हैं, पर अबोले प्रवचन मुनिराज चौबीस घण्टे करते हैं। जिन्होंने वचन का तो विसर्जन कर दिया है, जिनका सर्वांग तत्त्व-उपदेश दे रहा है, ऐसे वीतरागी तपोधन निर्ग्रन्थ मुनिराज होते हैं। जिनका शरीर ही मोक्ष मार्ग का निरूपण कर रहा है।

जैसे कामिनी को देखकर कामी पुरुष के सारे शरीर में रोमांच होता है, ऐसे ही योगी को देखकर प्राणीमात्र को रोमांच हो जाये उसे मुक्तिवल्लभा दिखने लग

जाये, उसका नाम दिगम्बर मुनि है। धन्य हो यशोधर महाराज। हे स्वामी! नमोस्तु आपके परिणामों की विशुद्धि को, कि पाँच सौ शिकारी कुत्ते छोड़ दिये राजा श्रेणिक ने लेकिन मुनिराज ने कुछ भी नहीं किया। श्वान इंसान बन कर बैठ गये, राजा श्रेणिक देखता रह गया, कि ये खूँखार श्वान शान्त कैसे हो गये?

ये मुनिराज ने शान्त नहीं किये, ये मुनिराज की तपस्या के प्रभाव से शांत हुए। तप की तप्तमान वर्गणायें पुण्यभूत थीं, इन वर्गणाओं ने अशान्त श्वानों को भी शान्त कर दिया। यही साधु की पहचान है। एक श्रावक आया। भैया कुछ दिन पहले बहुत दु:खी था। अजैन बन्धु थे। उनके बेटे की मृत्यु हो गयी। गोबरधन में गया था, तालाब में डूब गया, खत्म हो गया। पिता बहुत क्लांत और दु:खी था। समाज के किसी श्रावक से कहा, मुझे महाराज के दर्शन करना है। एक दिन दर्शन करने आये। लगभग एक महीने बाद पुन: आये। उस व्यक्ति का वो चेहरा नहीं था। जब प्रथम दिन आया था, चेहरा बेचारे का दु:खी था, लटकाये था। उसको मैंने कुछ नहीं बोला, 'समाधितन्त्र' ग्रन्थ उसको दे दिया, भाई! इसको आप पढ़ो, परिणामों को निर्मल करो, यही एक आलम्बन है। कल शाम को फिर आये तो बोले, अब तो महाराज! मेरा बेटा वो ग्रन्थ ही है। पूछा, क्या हो गया? स्वामी! ऐसा मुझे नहीं था मालूम कि इतना गूढ़ ग्रन्थ है। अभी तक तो मैं गीता पढ़ता रहता था, अपने आप को संभालने के लिए जब से आपने मुझे 'समाधितन्त्र' अनुशीलन ग्रन्थ दिया। महाराज! मेरे विकल्प ठण्डे पड़ चुके हैं। मैं दो बार पढ़ चुका हूँ और पुन: शुरू कर दिया है। पता नहीं जिनवाणी का कौन-सा सूत्र आपको अजर-अमर का बोध करा दे। अध्यात्म की आत्मा को समझना है, तो जीवन में एक बार समाधितन्त्र ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य कर लेना।

ज्ञानियो! **वस्त्र के जीर्ण हो जाने पर देह जीर्ण नहीं होती है। ऐसे ही देह के जीर्ण हो जाने पर आत्मा जीर्ण नहीं होती है।** ऐसे ध्रुव सिद्धान्तों की व्याख्या की है। मुझे बड़ा आनन्द आया कि चलो, जिनवाणी के एक सूत्र को पढ़करके एक भटकता तड़फता जीव अपने परिणामों को संभाल पाया।

मित्रो! जब जगत् में तुम्हें कोई मित्र न मिले, तो मित्रों की मित्र जिनवाणी है। दु:ख के काल में किसी के घर में मत जाना कि मैं दु:खी हूँ। दु:ख के काल में माँ जिनवाणी के आँचल में जाकरके बैठ जाना, वो ही सम्भालेगी। दुनियाँ के लोग तो हँसी करनेवाले हैं। भैया! मत जाना। मैंने देखा है। जब तुम्हारा बना होता है, तब सब बुलाते हैं और जरा-सा बिगड़ जाये तो हँसी करने वाले मिल जायेंगे, लेकिन सम्भालने वाले नहीं मिलेंगे, जब भी सम्भलोगे तो जिनवाणी ही सम्भालेगी, कोई अन्य नहीं सम्भालेगा। सारे जगत् में देख कर आ आजो। **जब तुम्हारा पुण्य का सूर्य चमक रहा है, तब सारे लोग तुमको देखेंगे। पुण्य क्षीण होने पर जगत् हँसी करने तो आयेगा, पर सम्भालने के लिए माँ भगवती जिनवाणी ही होगी।** भगवती प्रज्ञा, भगवती ज्ञानशक्ति, भगवती माँ जिनवाणी इन तीन का आलम्बन लेना। जगत् में कोई नहीं है अपना। जिनबिम्ब हैं, उनको अपन निहार सकते हैं। जब मन अत्यन्त विचलित हो तो अध्यात्म के जो ग्रन्थ हैं, एकांत कक्ष में बैठकर उनका स्वाध्याय करना। सब भीतर जायेगा, समझ में आयेगा।

समझ में आयेगा कि अब मेरा यहाँ कोई नहीं है। अपने आप को अकेला महसूस कर रहे थे, आपका अकेलापन समाप्त हो जायेगा और अपने में ही सब कुछ दिखायी देना प्रारम्भ हो जायेगा। आप सुखमय जीवन प्रारम्भ कर दोगे।

मुमुक्षु! संकट के दिनों में किसी के घर मत जाना। ससुराल तो भूल कर मत जाना। विपत्ति के काल में मत जाना **'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि'**। आज याद आ रहा है **'केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।** उस दिन याद कर लेते जिस दिन परिग्रह बढ़ रहा था। तब तुम संभल गये होते, गृद्धता न बढ़ा पाते। मुख में फोले, पेट में अपच उसी के होता है, जो खाते समय विवेक नहीं रखता है। मुख में फोले, पेट में अपच हो गया, वादी हो गयी, क्यों? खाते समय ध्यान नहीं रखा। ज्ञानी! **द्रव्य मिलता है पुण्य के योग से, पर द्रव्य को भोगना विवेक से। जो विवेक से नहीं भोगता है, उसको समय से पहले आयु नष्ट करके ऊपर जाना पड़ता है।** कहा जाता है कि ऊपर गया है, लेकिन जाता तो नीचे है। अशुभ करके ऊपर जायेगा क्या? सुनो दादा! ये गुरुभक्ति ही तुझे तारेगी। यही गुरुभक्ति तेरी

समाधि का कारण बनेगी। जो गुरु-भक्तिहीन है, वह असमाधि का कारण बनेगी। चलती बिरिया है, निकट घड़ियाँ हैं। इसलिए गृद्धता का विसर्जन करना है। धन से भी गृद्धता हटाओ, भोजन से भी गृद्धता हटाओ, परिवार से भी गृद्धता हटाओ और मिलने-जुलने वालों से भी गृद्धता हटाओ, यदि सल्लेखना की इच्छा है तो। जब अन्तिम श्वास का समय आया और उस समय मित्र का राग सता गया, तो मेरे मित्र! मित्र तो मिल जायेगा, पर सल्लेखना-मित्र से मिलन नहीं हो पायेगा। बहुत सम्बन्ध रखना बन्द करो। जब गृद्धता बढ़ती है तो फिर सम्पत्ति का संचय करता है। फिर नहीं रखता विवेक कि दिन है कि रात, भाई है कि मित्र, भतीजा है कि पुत्र। व्यक्ति पैसे के लिए सबसे छल करता है, ये मेरे से मत पूछना, आप लोग तो डिग्री प्राप्त हो। ये तो आपको अच्छे से पता है।

सबसे छल करता है पैसे के लिए। जिसको तूने चाबियाँ सौंप दी हैं, वो भी तेरी जेब से पैसा निकाल ले जाती है, तेरी देवी। ओ हो! आप लोग तो नहीं करते हो ऐसा? हे माँ! माँग लिया करो, पर जेब से मत निकाला करो। वो तड़पता है। बेचारा कमाकर आखिर रखेगा कहाँ? आपको ही तो देगा। मत डालो डाका।

जब तुम पति को ही नहीं छोड़ रही हो तो दुनियाँ को क्या छोड़ोगी? धिक्कार हो, तुम कैसे पागल हो? जब तुम पत्नि से ही नहीं बच पा रहे हो, तो किससे बच पाओगे?

धन संचय हो जाता है तो फिर क्या होता है? फुटकर पैसा हो, आदमी लुटा भी दे तो कोई टेंसन नहीं होता। सौ का नोट हो, पच्चीस पैसे चाहिए, तो परम दु:खी, तीव्र कष्ट में आ गया कि अब कैसे तोडूँ? पच्चीस पैसे के पीछे नोट तोड़ दूँ? तो दूसरे से माँगने तक चला जायेगा, ऋणी बन जायेगा, क्योंकि नोट नहीं तोड़ना चाहता। यानि संचय हुआ, तो गृद्धता बढ़ी। धिक्कार हो।

ऐसा तुम्हारे सबके साथ हुआ। मेरी ओर मत देखो, मैं तो सब छोड़कर आया हूँ। मैं नहीं कर रहा हूँ, ऐसा शास्त्र में लिखा हुआ है। संचय होने पर लोभ बढ़ता है।

कई जगह धार्मिक अनुष्ठान मन्दिरों में बहुत अच्छे-अच्छे होते रहते हैं जिन मन्दिरों में पैसा कम होता है और जिन मन्दिरों में श्री बढ़ जाये, फिर तुम खजांची

से कहो—भाई! उपदेश होना है, पाण्डाल लगाना है, क्यों लगाना? खजांची कहेगा, मैं तो नहीं निकाल सकता, मेरे यहाँ तो फिक्स है। देखो, मैं अपनी मन्दिर की व्यवस्था तो भंग नहीं कर सकता।

वहीं क्लेश प्रारम्भ हो गया। जहाँ सीमित ही आ रहा है उतना ही मन्दिर में लग रहा है तो उस मन्दिर में तल पर तल बनते चले जा रहे हैं और जहाँ फिक्स कर दिया, वहाँ मन्दिर की दीवारों पर श्वान घूम जाये, लोग इ ँटें उठा ले जायें, लेकिन जो रखा है, उसको निकाल करके व्यक्ति लगाना पसन्द नहीं करेगा। हाँ, ये कह देगा कि तुम दान दो, मैं अभी लगा दूँगा। ज्ञानियो! मैं गम्भीर बात कह रहा हूँ, इसको ध्यान से सुनना। तूने मन्दिर का पैसा बैंक में रखा है, ब्याज दे रही है बैंक, क्या वे पागल लोग हैं जो तुमको पैसा दे रहे हैं?

हे श्रावको! यदि तीर्थों या मन्दिरों में धन बढ़ जाय तो जो गरीब क्षेत्र है उनका सहयोग कर दो, पर बैंक में रख करके हिंसा केन्द्रों को बढ़ावा मत दो। मुर्गी पालन केन्द्र, मछलीपालन केन्द्र को जो पैसा दिया जा रहा है, वो कहाँ से आता है? जो तुमने जमा करके रखा है, उससे सब हो रहा है। वो तुम्हारे द्रव्य का दुरुपयोग हो रहा है। खाओ ब्याज का। बोले, मैं कोई पाप नहीं करता, मैं तो ब्याज का खाता हूँ। लेकिन ब्याज पर जो लेकर गया है, वो कर क्या रहा है? भो ज्ञानी! तुझे पता होना चाहिए। बेटा पाप कर कमा कर लाये, तो दोष तुझको लगेगा कि नहीं लगेगा? तो ऐसे पैसा तेरे बेटे के समान है। क्योंकि व्यक्ति बेटे को छोड़ सकता है, पर पैसे को नहीं छोड़ सकता है। आप जाओ कोर्ट में, पता कर आओ कि ऐसे कितने केस हैं जिसमें माँ और बेटे के झगड़े हों और ऐसे कितने केस हैं जिसमें पिता-पुत्र के झगड़े हुए हों, पति-पत्नि के झगड़े हुए हों। किसके पीछे हुए हैं? आपने पैसा जमा कर रखा है, किंचित् भी आपमें जैनत्व होगा, तो आज ही बैंक से सब पैसा निकाल लेना, धर्मक्षेत्र में लगा देना। नहीं-तो विश्वास रखो, ज्ञानी! उस पैसे से ये दुरुपयोग हो रहा है। भैया! समझ में आ रहा है? अब जैसा आपको लगे, वैसा करना।

जो है सो है। अभी तक तो ज्ञानी मुस्कराता था कि मेरा तो बैंक में जमा है

पर आज से मुस्कराना बंद। जीवन में बड़े-बड़े कारखाने लगाने का विचार मत करना कभी।

जब भी कोई पुराण उठाया जाता है तो अवन्ति देश, मालवा प्रान्त, उज्जैन नगरी का नाम आता है। वो उज्जैन ही उज्ज्वल जैनियों की नगरी थी। उस नगरी में आज भी जाओ तो लगता है, कि यह ऐतिहासिक नगरी है। भगवान् महावीर स्वामी की तपोभूमि है, तपस्थली है। क्षिप्रा का तट जहाँ वर्द्धमान खड़े होकर ध्यान कर रहे हों उपसर्ग करने वाले थे, उपसर्ग भी किया, पर वीर प्रभु हिले नहीं। वहीं से देवाधिदेव वर्द्धमान महादेव महावीर हो गये। उस उज्जैनी में बड़े-बड़े कारखाने थे, लेकिन वे सब नष्ट पड़े दिखाई देते हैं। वहीं एक श्रावक से मैंने पूछा, भैया! ये तो बताओ कि इतनी विशाल भूमि पर जो मील लगा हुआ था, इसका क्या हुआ? बोला, महाराज श्री! बीस-बीस तीस-तीस हजार मजदूर इसमें कार्य करते थे। ये सब जैनियों की मीलें थीं। आज कुछ नहीं बचा।

ध्रुव सत्य है कि विशाल पुण्य लेकर आया जीव, तब इतना बड़ा मिल लगा पाया। पर **मिल में कोटि-कोटि जीवों की हिंसा एक दिन में होती है, तो पूरा का पूरा पुण्य झुलस जाता है। मिल लगाने वालों का पुण्य तुरन्त समझ में आता है। दस पन्द्रह साल में सब नीचे उतर गये। ईंट के भट्टे, हलवाई की दुकान, आटे की चक्की और ट्रक का व्यापार तो कभी जैनी को स्वप्न में भी नहीं करना चाहिए।**

एक बार तुमने वाहन को चलाया तो बारिश के मौसम में कोटि-कोटि जीव पिस गये। उधर जीव पिस रहे थे, इधर तेरा पुण्य पिस रहा था।

ट्रक वाले देखो कुछ दिन के बाद पता चल जाता है, कहाँ से कहाँ पहुँच गये। ज्ञानी! तुम्हें पता है, ऐसा काम कभी भी नहीं करना। म्लेच्छों का व्यापार नहीं करना। अशुद्ध व्यापार करने वाले की भाषा भी बिगड़ती है और भोजन भी बिगड़ता है।

आपको महाजन कहा जाता है। महाजन को महाजनी का ही कार्य करना चाहिए। सबसे महाजन कोई कार्य है तो पीछी, कमण्डल, दिगम्बर मुद्रा। इससे बड़ा कोई महाजन का कार्य नहीं है।

'लोभात् दुःख-परम्परा।' पच्चीस पैसे चाहिए थे और सौ का नोट था, अब बेचारा तोड़ रहा है नहीं। दुःख-परम्परा अब ये दुःखी हो गया है कि क्या करूँ? ऐसा करूँ, कि वैसा करूँ? यानि क्लेश-ही-क्लेश।

जो रागी हैं, वे सब दुःखी हैं। दुकान के पीछे, पैसे के पीछे साधु भी नहीं दिखते। तीर्थंकर भी निकल जायें जीव कहेगा कि तनिक रुको, आज व्यापार का मौसम शुरू हो गया। कितने तीर्थंकर निकले होंगे इस भूमि से अब समझ में आ गया कि सारे जीव तीर्थंकर के होते हुए कल्याण क्यों नहीं कर पाये।

ऐसे ही नहीं कर पाये, जैसे आज कोई मुनिराज आ जायें नगर में, तो वो सोचता है कि कल चलूँगा, अभी तो महाराज जी हैं। अभी तो व्यापार कर लो महाराज के दर्शन बाद में कर लूँगा। ऐसे ही जब महावीर स्वामी विचरण करते थे, तब भी लोग सोच-सोच कर रह गये बेचारे कि कल चलूँगा। अब तो नजदीक हैं, कभी भी चला जाऊँगा। मालूम पड़ा कि समवसरण ही चला गया और तुम कभी नहीं जा पाये। यही हुआ आज तक।

ध्रुव सत्य है, यदि भाषा सुधर जाती है तो नियम से भव सुधर जायेगा। भव को बिगाड़ने वाला भाव है और भाव को बिगाड़ने वाली भाषा है। ज्ञानी! अच्छी भाषा बोलो। मुख मिला है, वचन बल मिला है, तो क्यों अशुभ बोलो? अच्छा बोलो, मधुर बोलो। कटुक बोलने का कोई काम नहीं है। भैया! पाण्डव और कौरवों में युद्ध क्यों हुआ?

मेरे मित्र! धैर्यपूर्वक जीना ही श्रेष्ठ है। तुम कितने ही बना कर चले जाना, तुम्हारे दादा-परदादा ने कितना ही ऊँचा उठाया कुल को, फिर भी संभल कर रहना। पता नहीं किस कुल में कौन-सी अभागी सन्तान जन्म ले ले, पूरे कुल को क्षत-विक्षत करके चली जाय। पानी में डुबाकर रोटी खा लेना, बेटा! रोटी भी न मिले तो पानी पीकर सो जाना, यदि पानी भी न मिले तो णमोकार मन्त्र पढ़कर जीवन जी लेना, लेकिन जिस कुल में निर्ग्रन्थ गुरुओं के चरण घर में पड़ते हों, जिस कुल में अरिहन्त का अभिषेक होता है, जिस कुल में जिनवाणी का वाचन होता हो, उस कुल में

कलंक का टीका मत लगने देना। यदि माँ कहलवाने की आकांक्षा है तो, भोजन परोसते समय बेटा-बेटियों को उसी समय सुनाना—मेरे लाल, मेरी बेटियो! इतना ध्यान रखना, मैं उस कुल का हूँ जिस कुल में निर्ग्रन्थों को दान दिया जाता है, अरिहन्तों की पूजा होती है और जिनेन्द्र की वाणी सुनी जाती है। उस कुल में तुम कलंक का टीका मत लगा देना।

जिस कुल में शान्ति, कुन्थु, अरह तीन तीर्थंकर हुए हों, विष्णुकुमार जैसे महान् मुनि हुए हों, ऐसे कुल में दुर्योधन उत्पन्न हो गया, जिसने कुल का सत्यानाश कर दिया। किसके राग में? भूमि। बस दो ही तो मुख्य वस्तु हैं झगड़े की—श्री और स्त्री। जितने युवा बैठे हैं, ध्यान से सुनना, तुम्हारी देवी कितनी ही महान् क्यों न हो, पर उसकी बातों में आकरके अपने भाई से मत लड़ना। उसका तो काम ही ये है कि दो लड़ जायेंगे तो हम स्वछन्द हो जायेंगे।

ओ हो! कैसे पागल लोग हो? एक पेट से जन्मे, उससे तुम लड़ रहे हो जो पर के पेट से जन्म के आयी उसके राग में?

देखो माताओ। बुरा मत मानना। जो है, सो है। क्या कर सकते हैं? लेकिन ये भी महान् हैं, मैं कब मना कर रहा हूँ? ब्राह्मी व सुन्दरी प्रथम आर्यिका बनीं इस युग की। तीर्थंकर को जन्म देने वाली माँ ही तो हैं, लेकिन क्या करूँ तीर्थंकर का गमनागमन, आहार-विहार, देशना सहज होती है, जैसे आपकी मायाचारी सहज होती है। अब मैं क्या करूँ? जो है, सो है। बुरा तो नहीं लग रहा आपको? यदि बुरा लग रहा है, तो आज से स्त्री-स्वभाव को छोड़ दो और आर्यिका दीक्षा लेकर, स्त्रीलिंग का छेद करके, पुरुषलिंग प्राप्त कर के, पुनः दीक्षा लेकर, निर्वाण को प्राप्त करो।

अभी भी आपको खुशी नहीं है तो रहो नारीपर्याय में। पर मार्ग यही है। देखो, मैं तो दीक्षा दूँगा नहीं। किसी गणिनी-आर्यिका के पास जाकर दीक्षा लेना ठीक है। गणिनी के पास ही दीक्षा लेना। मूल व्यवस्था तो ये ही है, माताओं को माताजी ने पास ही दीक्षा लेनी चाहिए।

लोभ से राग उत्पन्न होता है। जहाँ लोभ होगा, वहाँ नियम से राग होगा। जहाँ राग होगा, **रागाच्च जायते द्वेषो**। यदि कौरवों को राज्य से राग न होता, तो विश्वास रखना, पाण्डवों से द्वेष नहीं होता।

रावण को वास्तव में राम से द्वेष नहीं था, लक्ष्मण से द्वेष नहीं था, उसको तो सीता से राग था। सीता में राग के कारण राम से द्वेष हुआ, लक्ष्मण से द्वेष हुआ। ऐसे ही तो आपके साथ हो रहा है। भाई का भाई से कभी झगड़ा नहीं होता। पिता पुत्र से कभी झगड़ा नहीं होता। राग उत्पन्न करने वाली जो सम्पत्ति रखी रहती है उसे देखकर क्या से क्या नहीं हो जाता?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"मोक्ष का बीज"

निर्ममत्वं परं तत्त्वं, निर्ममत्वं परं सुखम्।
निर्ममत्वं परं बीजं, मोक्षस्य कथितं बुधैः॥ सा. स. 234॥

अन्वयार्थ—निर्ममत्वं परं तत्त्वं = ममता रहित होना परम तत्त्व है **निर्ममत्वं परं सुखं** = ममता रहित होना परम सुख है **निर्ममत्वं मोक्षस्य परं बीजं** = ममता रहित भाव मोक्ष का श्रेष्ठ बीज है, **बुधैः कथितं** = ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! ज्ञानियों ने कहा है कि निर्ममत्व ही परम तत्त्व है, निर्ममत्व ही परम सुख है और निर्ममत्व ही मोक्ष का परम बीज है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सब विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में मोक्ष का बीज निर्ममत्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। जहाँ ममता है, वहाँ बन्ध है। वहाँ कषाय है, जहाँ ममता है, वहाँ निश्चित विषमता है। जितनी विषमता है, ये सब ममता के कारण। ममता पलायन कर जाये तो जगत् के सारे कष्ट समाप्त हो जायेंगे। जिस-जिससे ममत्व है, वो निश्चित आपको वेदना देकर जायेगा।

जगत् में पदार्थ अपने आप में तटस्थ हैं, पर ममता आपको तटस्थ रहने नहीं देती। कोई किसी से बंधा है, तो वह रस्सी है ममता। ऊपर-नीचे चिन्तन हो रहा है, उसका मुख्य बिन्दु ममता है। ममता के आते ही समता पलायन कर जाती है। किसी व्यक्ति के चेहरे को देखो, उसमें ममत्व भाव आते ही भीतर से समता का जाना प्रारम्भ हो चुका है। जितने आज तक निज के वैभव से लुटे हैं। वे ममता के लुटेरों से लुटे हैं।

जितने आज तक आत्म धर्म रत्न को लुटा चुके हैं, वे ममता के लुटेरों से ही

लुटा चुके हैं। जैसे ही ममता ने जन्म लिया यानि कषाय का जन्म हुआ। कषाय का जन्म हुआ तो नयनों में ममता, भावों में असमता।

जो आपको आज अच्छा लग रहा है, ज्ञानी! वही बुरा है। **मोक्षमार्ग से भिन्न जो भी अच्छापन है, वो सब बुरा ही है। रत्नत्रय धर्म से भिन्न जो भी अच्छा है, वो सब बुरा ही है। सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र से भिन्न जो भी जगत् की अच्छाइयाँ हैं, वे सब बुराइयाँ ही हैं। क्या अच्छा है? जो बन्ध के कारण हैं, वे अच्छे कैसे? जो दुर्गति में ले जाने के हेतु हैं, वो अच्छे कैसे?** बन्ध के हेतु अच्छे कैसे?

राग होते ही द्वेष का जन्म। जिसमें राग हुआ, वो न दिखे, तो निज में ही द्वेष उत्पन्न हो जाता है। जिनमें राग किया, वो अनादर करने लग जायें, तो निज को निज से ही क्लेश प्रारम्भ हो जाता है कि सामनेवाला मुझे देखना पसन्द नहीं करता, मैं पीछे पड़ा हूँ।

ओ हो! ज्ञानियो! लोक में ऐसे लोग हैं जो दुत्कार को प्राप्त हो रहे हैं, फिर भी पीछे जा रहे हैं।

पर से असम्मान मनुष्य के लिए प्राण हरण से ज्यादा दुःखमय है। जो कष्ट मनुष्य को प्राणों के वियोग पर होता है, वो मनुष्य को अपने असम्मान में होता है। यदि निज के असम्मान से रक्षा करना है तो ममता से रक्षा करो। यदि तू किसी से राग कर बैठा है, तो रागी वहाँ जायेगा। और उसको मालूम चले, कि मेरा रागी है, वो कहेगा कि-रस्सी से बंधा आदमी तो रस्सी तोड़ना चाहता है, खूँटे से बंधा पशु खूँटा तोड़ना चाहता है, राग से बंधा आदमी राग तोड़ना नहीं चाहता।

नारियों से अपमानित हुए हैं लोग। नारियों की ममता ने पूरे विश्व का नाश कर दिया (विषमता खड़ी करी है)। महापण्डित था रावण। अन्दर में स्त्री का राग छा गया, तो देखते-देखते लंका का विनाश हो गया। ज्ञानियो! **जब तक तेरा पाप मुट्ठी में बन्द है, तब तक तू अच्छा दिखेगा। जिस दिन पाप खुल गया, उस दिन तेरी कोई कीमत नहीं होगी।**

महापण्डित लंकेश का क्या हुआ? एक नारी की ममता ने पूरी लंका को भष्म कर दिया। ज्ञानी रस्सी का बन्धन तोड़ सकता है, पर ममता के बन्धन को नहीं छोड़ पाता। भैया कोई हाथ में लाल मिर्च ले ले और फूँक दे तो मिर्च के कण आँखों में जायेंगे तो आँसू आयेंगे। **लाल मिर्च के कण तेरी आँखों में गये तो अश्रुपात होगा, पर ललनाओं के राग आँखों में जाते ही आँसू आते हैं। ये राग की महिमा तो देखो,** कहाँ तड़प रहा है?

हे जीव! एक दिन के राग ने, एक दिन की ममता ने, एक मुहूर्त की ममता ने तुझे कहाँ गिरा दिया है? ज्ञानी! अब तू तपस्वी बन सकता है, साधु बन सकता है, पर इस पर्याय में तू बाल-ब्रह्मचारी लिखने की क्षमता नहीं रख सकता है। ओ हो! एक मुहूर्त की ममता ने जीवन में 'बाल' शब्द को हटा दिया। **'निर्ममत्वं'** बड़ी गहरी बात कर रहे हैं आचार्यभगवन् कि हे जीव! दुःख की परम्परा से अपने आत्मा की रक्षा करना चाहता है तो ममता से अपनी रक्षा कर। **जो ममता से अपनी रक्षा नहीं कर पा रहे हैं, वे दुःख की परम्परा से मुक्त नहीं हो पा रहे हैं।**

जिससे तेरा राग होता है, करोड़ों किलोमीटर दूर क्यों न बैठा हो, तब भी ज्ञानी यहाँ बैठा-बैठा सिसकियाँ भरता है। सिसकियाँ भरता है, मुस्कराहट छोड़ता है। क्या बंध के स्थान बढ़ चुके हैं, बंधस्थान वृद्धिमान हो चुके हैं। भैया! समझ में आ रहा है? मैं क्या कह रहा हूँ, बंध के स्थान बढ़ चुके हैं। जितने भौतिक साधन हैं, सब बंध के स्थान हैं। अब तुम कहीं भी बैठकर कभी अपने रागी से दूर ही नहीं हो पाओगे। आज के युग में मोबाइलों पर ही एक दूसरे के चेहरे दिखने लग गये हैं। तुम राग से दूर नहीं हो सकते। पुराने समय में जब व्यक्ति तीर्थवन्दना को जाता था तो उतने दिन घर से दूर हो जाता था। पर आज तो ज्ञानी घर को जेब में रखकर ले जाते हैं। **जो श्री जिनालय में मोबाइल लेकर आ रहा है, तीर्थक्षेत्र पर मोबाइल लेकर जा रहा है, वो तो तीव्र ममत्व से ग्रसित पापीजीव है। उसको तो उतना चैन नहीं है कि भगवान् का नाम भी शान्ति से ले सके।**

सम्मेद शिखर पर भगवान् पारसनाथ स्वामी की टोंक पर सुवर्ण भद्रकूट पर ज्ञानी अर्घ चढ़ा रहा था, जेब में डिबिया बज गयी, पता चला कि किसका समाचार

आ गया। समाचार सुनने के लिए डिबिया उठायी, अब बता, भगवान् को देख रहा है कि घर में पहुँच गया? एक क्षण का राग मिटाने गया था, तीर्थभूमि पर देह से चला गया, पर वचन का व्यापार तो जारी है। ममत्व भाव से युक्त रागीजीव को राग से युक्त किसी रागी के समाचार मिल जायें, तो शरीर में ऐसा रोमांच होता है, जैसे किसी ज्ञानी जीव को वीतरागी योगी के दर्शन हो रहे हों, कितना हर्षित हो रहा है। जो रोमांच तेरा राग में हो रहा है, वह रोमांच तेरा वीतरागी चरणों में हो जाये, तो कर्मों का छार-छार हो जाय। शरीर में रोमांच हो रहा है, ऐसा रोमांच भगवान् को देखकर हो जाय, तो मेरे मित्र! तू ही भगवान् बन जाये।

परमात्मा के पादमूल में एक क्षण की मुस्कराहट असंख्यात-गुणश्रेणी कर्म-निर्जरा करा रही है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि तू भगवान् पारसनाथ के चरणों में रावण जैसा अट्टहास करने लग जाय, कि आओ ज्ञानी! हँसें भगवान् के सामने। ज्ञानी! तीव्र कर्म का बन्ध करके जायेगा।

परमात्मा के पादमूल में हँसी मजाक करेगा, उनको निहार कर हँस रहा है, ममता के बढ़ाने वाले दृश्यों को देखकर हँस रहा है, तो वहाँ कर्म बन्ध ही करेगा।

महाराज! आप ही तो कह रहे थे कि भगवान् के चरणों में जरा-सी मुस्कराहट हो जाये तो असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है।

मेरे मित्र! भगवान् के चरणों में भगवान् को देखकर आनन्द आये, तो होगी। और तू भगवान् के चरणों में किसी नारी को देखकर मुस्करा रहा है, तो बन्ध ही होगा, निर्जरा नहीं होगी। नहीं तो तू खुश हो गया कि चलो, आज तो बहुत अच्छा हो गया। समझ रहा है न मुमुक्षु? ये पंचमकाल के जीव हैं, ये उल्टा जल्दी समझ लेते हैं। यदि घर में तेरी आँख से आँसू गिर गया तो मेरे मित्र! तुझे असंख्यात लोक प्रमाण कर्मास्रव-बन्ध हो गया। हे जीव! परमात्मा के चरणों में निज की निन्दा कर, निज की आलोचना कर। हे स्वामी! मैंने कैसे-कैसे पाप किये हैं? लोग मुझे क्या निहारते और मैं क्या कर रहा था। हे नाथ! मेरे दुष्कर्म मिथ्या हों। आप ही मात्र आलंबन हो, जगत् में मेरा और कोई शरणभूत नहीं है। ये निन्दा करते समय आँख से आँसू गिर गया, तो असंख्यात-गुणश्रेणी कर्मों की निर्जरा होगी।

पर के लिए बहुत रोया, एक दिन निज के लिए रोकर देख ले। किसी की सम्पत्ति नष्ट हो गयी, सो रो रहा है। किसी की पत्नि चली गयी, सो रो रहा है। किसी का बेटा चला गया, सो रो रहा है। पर मेरे मित्र! तेरी समता चली गयी, उसके लिए क्यों नहीं रो रहा है? जो मेरे भीतर का नहीं गया, उसके लिए तू रुदन कर रहा है और जो मेरे भीतर का चला गया, उसके लिए तू रो ही नहीं रहा है।

सत्य बताना, समता के लिए कितने दिन रोए हो? माँ का हाथ तेरे शीश पर होता था, तो प्रेम से दूध का कटोरा पीता था, निश्चिंत जीवन जीता था और माँ के साथ खड़े होकर मुनियों का पड़गाहन करता था। आज तू पत्नि को डोले-डोले दुनियाँ में घूम रहा है। हे मित्र! कभी तूने सोचा कि मैंने माँ के साथ मन्दिर जाने की अनुभूति ली थी, वे दिन कहाँ चले गये? उसके लिए आँसू गिराया क्या? आज जो युवा धर्म में लगे हुए हैं उन युवा मित्रों से कहना है, भैया! सुनो आज के दिन को हमेशा अपनी गाँठ में बाँध कर रखना। युवाओ! आज तुम साधुओं के चरणों में बैठे हो, जिनवाणी सुन रहे हो, अरिहन्त की वन्दना कर रहे हो। हे मित्रो! हे ज्ञानियो! इस दिन को आप बड़े सम्भाल कर रखना। और उस दिन तुम याद करना जब एक बेटा एक कान खींच रहा हो, दूसरा बेटा तेरा दूसरा कान खींच रहा हो और तीसरा नाक खींच रहा हो। फिर सोचना कि वे दिन कहाँ चले गये जब में युवा-अवस्था में निश्चिंत होकरके निर्ग्रन्थों के पास बैठता था। गाँठ जब से बन्ध गयी, तब से समता मेरी नष्ट हो गई। बहुत सारे लोग अन्तस् में यह सोच कर आँखों में आँसू भर लेते हैं। पर बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। माँ समझाये तो बेटा तुम कुपित हो जाते थे, आज पत्नि समझाने आ जाये तो तुम क्या करोगे? माँ डाँटे, पिता डाँटे, तो कम-से-कम आँसू टपका कर ठंडा तो हो जाता था। आज पत्नि तुझे डाँट रही है तो आँख के आँसू भी नहीं निकाल पा रहा है। वो कैसा उस जीव का अशुभ दिन होगा? भैया! मैं आपसे नहीं कर रहा हूँ, आप ही से कह रहा हूँ। ज्ञानी! उस जीव का कैसा अशुभ दिन होगा जब स्वयं का बेटा उसको समझा रहा होगा 'बूढ़े! शान्ति से बैठ जा।' आयुकर्म ही प्रबल होगा जो कि रोक रखे है, पर पिता का विशुद्ध भाव तो मरण को प्राप्त हो चुका है। बेटे! इतना ध्यान

रखना, अपने वृद्ध पिता को कभी डाँटने मत जाना। उसका तुम समाधिमरण नहीं करा सको तो कोई विकल्प मत करना, पर आप डाँट करके उसका कुमरण मत करा देना।

सिर फोड़ देना उतना कठिन नहीं है, पर ममता का सिर तोड़ देना बहुत-बहुत कठिन है। जगत् में तेरे कोई बचे या न बचें, और बचा भी नहीं पाओगे। आप मेरी पर्याय को बचा सकते हो क्या? मैं आपकी पर्याय को बचा सकता हूँ क्या?

जब घर में अथवा मुनिसंघ में सारे-के-सारे लोगों का वियोग होने लग जाये, तब देखना और जानना। क्योंकि जगत् की पर्यायों को तुम नहीं रोक पाओगे। पर लोगों की पर्याओं के जाते समय अपने परिणामों की समता को रोक लोगे तो तुम परमात्मा बन जाओगे। आती सम्पत्ति को लोग नहीं जान पाते, जाती सम्पत्ति को भी लोग नहीं जान पाते, कि कब सम्पत्ति आ गयी घर में और कब सम्पत्ति पलायन कर गयी घर में। ऐसे लोग बैठे हैं जो दोनों अवस्थाओं को देख चुके हैं। आप लोग ऐसे नहीं हो क्या? मित्रो! तुम सम्पत्ति को रख नहीं पाओगे। सम्पत्ति-विपत्ति के काल में यदि तुम कुछ रख सके तो समता को अपने पास रख लेना, बाकी सब चला जाने देना। समता को बचा कर रखना, ममता को चले जाने देना।

वृहद् प्रतिक्रमण मुनियों का, जिसमें आचार्यभगवन् कहते हैं '**ममत्वं वोस्सरामि।**' चाहे रसगुल्ले खाओ या बालूसाई, चाहे नुक्ति खाओ, चाहे पेड़े खाओ, भैया! तुम प्रातः क्या करके आते हो? उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट व्यंजन (पकवान) खानेवाला भी सुबह छोड़ कर आता है, विसर्जन करके आता है, फिर उसे कहाँ देखते हो?

हे ज्ञानियो! जैसे मल को छोड़कर नहीं निहारते हो, ऐसे ममत्व को छोड़कर मत निहारना। वही मोक्षमार्गी है और जो छोड़कर पुनः देखता है, वो संसारमार्गी है। 'भो स्वामी! मैं ममत्व का विसर्जन करता हूँ।' यही सामायिक है। एक लकड़ी में भी ममत्व हो गया तो उसके टूटने पर तुमको रोना पड़ेगा और जिसने सत्खण्ड महलों से ममत्व छोड़ दिया है, उसके गिरने पर देखेगा-जानेगा। ज्ञानी भैया! विश्वास रखना आँख से आँसू यदि गिरते हों तो मात्र ममत्व में गिरते हैं। ममत्व नहीं तो कोई आँसू नहीं है और ममत्व है तो रोना-ही-रोना है। भाई! जिसको रोने का शौक

है, रोओ। रोने का शौक नहीं है तो आज से ममत्वं वोस्सरामि।

लोगों के न आगे न पीछे, फिर भी ममत्व में बंधे बैठे हैं। अब कोई कहे 'बेटा! ये कक्ष कितना सुन्दर सजा कर रखा तेरे लिए' तो कहना 'हे जननी! ममत्वं वोस्सरामि।

ममत्वं वोस्सरामि, निर्ममत्वं उवसंपज्जामि। ममत्व का विसर्जन करता हूँ और निर्ममत्व स्वीकार करता हूँ, परमात्मा की शरण के बाद यदि दूसरी कोई शरण पकडूँगा तो निर्ममत्व उपसं-पज्जामि। जगत् में इस आत्मा को कोई परम शरण है तो निर्ममत्व भाव ही है। निर्ममत्व भाव जिसके पास है, जगत् में क्लेश नाम की कोई वस्तु उसके पास नहीं है। सड़ी वस्तु का ममत्व भी चारित्र में सड़ांध पैदा कर देता है।

सड़ी-गली, रक्त-पीव-माँस-मज्जा से भरी, मल की पिटारी इस देह के ममत्व ने कितनों बेचारों को बर्बाद कर दिया। एक युवा राजकुमार था। युवा सेठ पुत्री को निहार करके वह काम के वाणों में बिंध गया। उसकी आँखों में उसका रूप-लावण्य चुभने लगा। प्रतिक्षण/प्रतिपल उसकी दृष्टि थी कि एक मृगनयनी मेरे नयनों में बस गयी है, इसे कैसे प्राप्त करूँ? तभी तक लज्जा है जब तक विकारों से पुरुष नहीं भरा, जबकि विकारी पुरुष लज्जाविहीन हो जाता है, लज्जाशून्य हो जाता है। जो पिता के सामने सिर नीचा करके बात करता हो, वो अपने पिता सम्राट से कहता है, 'हे तात्! मुझे सेठपुत्री से शादी करना है।

राजा कहता है कि वो कन्या कैसे मिल सकती है? सेठ जैनधर्मी है। वो विधर्मी को नहीं दे सकता। 'नहीं, पिताजी! कुछ भी हो। लेकिन मुझे तो सेठपुत्री चाहिए है।'

ज्ञानियो! ममता देखो। सेठ के यहाँ राजा ने सूचना भेजी कि आपकी बेटी के साथ मैं आपने पुत्र की शादी करना चाहता हूँ।

सेठ ने कन्या से कहा 'कैसे सम्भव हो सकता है?' पुत्री कहती है, 'पिताजी! चर्म को धिक्कार हो। राजकुमार ने चर्म की पर्त को देखा है। वस्तु स्वभाव को नहीं देखा। पिताजी! चमड़े की चादर की चमक को देखकरके अनेक चमार मर गये। शरीर में उलझ करके कितने चर्मकार बन गये। बुरा तो नहीं लग रहा चर्म को वही पहचानते हैं, जो चर्मकार होते हैं। हे तात्! आप सम्राटपुत्र को सूचित कर

दो कि मेरी पुत्री आपको चाहती है, लेकिन शर्त ये है कि आपको सात दिन बाद आना होगा। आज नहीं आओगे। सेठ ने बेटी की बात को राजा के यहाँ ज्यों-का-त्यों सूचित कर दिया, कि राजन्! मेरी पुत्री आपके बेटे के साथ शादी करने को तैयार है, लेकिन उसने कहा है कि एक सप्ताह चाहिए।

ममत्व किसमें है? सेठपुत्री ने जुलाब ले लिया और जितना मल विसर्जन हुआ, घड़ों में भर दिया। घड़ों को स्वच्छ कमरों में रख दिया उस पर मखमल का वस्त्र ढँक दिया। जिस द्वार पर राजकुमार ने प्रथम बार देखा था, उसी द्वार पर वो कन्या जाकर बैठ गयी। निश्चित समय पर सात दिन के बाद राजकुमार मुस्करा कर आता है कि आज से सेठपुत्री मेरी पत्नि बनने वाली है। भवन के द्वार पर कन्या बैठी हुई थी, नहीं पहचान सका, पूछता है, 'क्यों बहन! कन्या के शरीर में एकदम करंट जैसा व्याप्त हो गया। विद्युत का संचार हो गया। चमक में विकार है, रूप में विकार है, लावण्य में विकार है, इसलिए त्यागियों को शृंगार का त्याग है। अरे! ये वही तो है जो मुझे पत्नि बनाने आया था, वो मुझे बहन कह रहा है।

'क्यों बहन! सेठपुत्री कहाँ है?' देखो भाई! नियत मान कर चलना, नारी का शृंगार पति मात्र के सामने होता है। शेष काल में बाजार में घूम रही है शृंगार करके, किसके लिए? यदि आपके शरीर को देखकर किसी के मन में अशुभ भाव आ रहे हैं, तो हे माँ-बहनो! तुम्हारा शृंगार दूसरे के व्यभिचार को खड़ा करने के लिए है और तुम्हारा शृंगार उसके शील को भंग करने के लिए शिकार है।

कन्या क्या कह रही है? वस्तुस्वरूप आज समझ में आया। उसने यह नहीं कहा कि सेठपुत्री यहाँ है? राजकुमार! चलो, कक्ष में है।' कुमार मुस्करा कर चल देता है। जिसमें वे घट रखे हुए थे जिनमें उसने जुलाब करके मल भरकर रखा हुआ था, वो मखमल ढका हुआ था, धीरे-से पुत्री कहती है, 'मेरे मित्र! सुन, इन घटों के अन्दर है, आप जरा उघाड़ कर तो देखो, खोलो। जैसे ही खोला, उसको वमन हो गयी। बदबू आ रही थी, दुर्गन्ध आ रही थी मल की। तुरन्त कक्ष के बाहर हो गया। बोलता है 'बहिन! ये क्या है? ममत्व। जिसे तू देखकर गया था, जिसे तू बहन कह रहा है, वो मैं ही हूँ। जिस पर तू रीझा था, इन घटों के अन्दर

है। अब उससे मुख लगा।

समय की बलहारियाँ, पति का वियोग हो चुका है, तब भी षट्रस का भोजन चल रहा है, शरीर को चमका कर रखा जा रहा है। धन्य हैं वे नारियाँ, पति के वियोग होने पर नदी के फेन के समान सफेद साड़ी में रहती थीं। नारी विहीन भी नीरस भोजन कर रहे हैं। अब किसके लिए सरसता?

ये देश के विद्वान् बेचारे, कुछ कहने को नहीं बचता। महाराज! कहूँ तो क्या कहूँ ? निज के भावों पर ही विश्वास नहीं। भवनों की चमक ने, ईंट-चूने की दीवारों ने आज तत्त्व की गवेषणा को बन्द कर दिया है। भैया! नहीं है ऐसा क्या? आठ दिन में एक दिन प्रवचन हुआ तो प्रोजेक्ट सामने दिख रहे हैं। ईंट चूने की दीवारों के बढ़ाने में पूरा एक घण्टे का समय लगा दिया। पर मेरे मित्र ये चारित्र की दीवारें गिर रही हैं। इन पर तेरा लक्ष्य ही नहीं जा रहा है। सोचना पड़ेगा।

पूछता है कुमार, 'सत्य बताओ, बहन! आप वोही हो क्या?' राजकुमार! ध्रुव सत्य है। जिस पर तुम्हारा ममत्व था, वो मैंने सात दिन के अन्दर घट में भर दिया है। जिसे तुम बहन कह रहे हो, मैं सत्य तेरी बहिन हूँ। अब बोलिये, तुमको राग किससे है? राजकुमार नीचे झुकता है, सेठपुत्री के चरण स्पर्श करता है और कहता है, 'बहन! आज तो मैं भिखारी बन कर आया था, विकारी बनकर आया था और आज से मैं भिक्षु बनने जा रहा हूँ और तू मेरी गुरु है। मुझे नहीं था मालूम, राग किसमें था? मल के पिण्ड की चमक में राग था। मल बाहर निकल गया, तन मुरझा गया। पिंडखजूर जैसा शरीर छुआरा हो गया। किसमें ममत्व है? इसलिए भोजन का नियन्त्रण, भावों का नियन्त्रण करो।

निमित्त-नैमित्तक दृष्टि पर दृष्टि रखना। भोजन का नियन्त्रण, भावों का नियन्त्रण। जो भोजन पर नियन्त्रण नहीं कर पा रहे हैं, वो भावों पर क्या नियन्त्रण रखेंगे? ज्ञानी! ऐसा ही है। न किसी की दीवार को मिटाइये, न किसी दीवार को उठाइये। ममत्व को हटाइये। विश्वास मानो, मुमुक्षु! वस्तुधर्म की पहचान के लिए बहुत समय चाहिए। देह के वस्त्रों मात्र को उतार देना साधुता नहीं है, जब तक निर्ममत्व भाव नहीं आया।

यदि एक पंक्ति पढ़कर के, एक पंक्ति सुनकरके भीतर का भगवान् जग जाये,

विश्वास रखना, कोटि-कोटि ग्रन्थ पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि भीतर का ममत्व नहीं टूट रहा है, तो कोटि-कोटि ग्रन्थ पढ़ने से कोई प्रयोजन नहीं। जिनवाणी के गूढ़ रहस्य सामने आते हैं तो भैया! ममत्व भरा चेहरा भी पिघलने लगता है। इससे लगता है कि योगियों को विद्वानों को भाषणबाजी बन्द कर देना चाहिए, मात्र प्रवचन देना चाहिए। भीतर गद्गद्पना आये और चेहरे पर विरक्ति झलके जिस वाणी से वही तो जिनवाणी है। वक्र-से-वक्र सरल हो जाय, रागी-से-रागी विरक्त हो जाये, कठोर-से-कठोर सरल हो जाये, मृदुल हो जाये जिसको सुनकर, उसका नाम जिनवाणी है। भैया! कितने लोगों की हृदय की मिट्टियाँ ऋजु हो चुकी हैं। ज्ञानी! जब भी कहीं मौका मिले, जिनवाणी रखकर प्रवचन करना, भाषण नहीं करना। एक सूत्र बोलो, एक गाथा/श्लोक बोलो, उसकी व्याख्या करो। छोड़ो कहाँ क्या हो रहा है, कौन क्या कर रहा है, किस श्रावक की क्या वृत्ति है, किस संघ में क्या हो रहा है। इससे तुझको कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। 'परदृष्टि नरकेश्वरा, परादृष्टि महेश्वरा।'

आश्चर्य करोगे आप, कितने बाहर के बहन-भैया आये और प्रायश्चित्त लेकर गये। महाराज! प्रायश्चित दे दो। क्यों ? हमसे बहुत बड़ी भूल हो गयी। सीधे-सीधे तो नहीं बोल पा रहा था जीव। क्या हो गया? न अभिषेक करने का पात्र, न पूजा करने का पात्र, न मुनिराज को आहार देने का पात्र हूँ। ऐसा दोष मेरे से हो गया। प्रवचन हो रहे थे आगरा में और लोग अपने घरों में बैठे सुन रहे थे। जब से सुना, तब से जीवों के भाव बने कि प्रायश्चित्त लेना चाहिए।

भ्रूणहत्या करने वाले कितने जीव प्रायश्चित लेकर गये हैं। मैंने कहा कि प्रायश्चित तो ठीक है, साथ में प्रतिज्ञा—और करो और छोड़ो आज से जीवन में ऐसा कभी नहीं करना। मुस्कराकर ताली पीटने वालों के हृदय कभी नहीं पिघलते। जादूगर के यहाँ भीड़ तो पहुँचती है। मन्दिर में भीड़ हो या न हो, लेकिन श्रद्धा और चारित्र देख कर जाया जाता है। ज्ञानी! आगम क्या कह रहा है और आप दृश्य क्या देख रहे हो? युवा पीढ़ी धर्मात्माओं से क्यों दूर हो रही है? यथार्थ मानिये दूसरे की सन्तान नहीं, युवा आपके ही हैं। इनके भीतर श्रद्धा भरी हुई है। जब आप ही अपने बेटे की माँ से झगड़ रहे होंगे, बेटा कहेगा कि सब पागल लोग

हैं। इनसे दूर रहना ही पसन्द करता हूँ।

जो माता-पिता अपनी सन्तान के सामने लड़ते हैं, तो बेटा सोचता है कि जब मैं बड़ा हो जाऊँगा तब इन दोनों से दूर रहूँगा। चौबीस घण्टे मेरी समझ में ही नहीं आया कि मैं जीव हूँ कि नहीं हूँ। घर के बाहर रहना ज्यादा पसन्द कर रहा है बच्चा, कारण, दोनों की कलुषित वर्गणायें। मेरे मस्तिष्क को उद्वेलित कर रही हैं। इसलिए बच्चे घर पर रहना पसन्द नहीं करते हैं। इसलिए आपके अन्दर किंचित् भी करुणा/दया हो, श्री जी और धर्म तुम्हारे भीतर बैठा हो तो, माताओ! आज से नियम ले लो कि बच्चों के सामने कभी पति से नहीं लड़ोगी। पक्का? और आप भी ध्यान रखो कि बेटे-बेटियों के सामने पत्नि से नहीं लड़ोगे। पक्का? उपवास कर लेना सरल है। बिना खाये-पीये सम्मेदशिखर की वन्दना करना सरल है, पर नियम ले लो कि बच्चों के सामने नहीं लड़ोगे। ये तुम्हारी बहुत बड़ी तीर्थ यात्रा है। बालक—जैसे मैं हूँ। जैसे कोई मुनिराज मुझे लड़ते दिख जायें, तो मैं निराश होकर लौट जाऊँगा वापस, कि इनके बीच में क्या रहना। कोई त्यागी आपस में विसंवाद करता हो तो मैं क्या सोचूँगा? मोक्षमार्गी नहीं है। जिसमें सरसता ही न हो, समरसता ही न हो, मोक्षमार्गी कैसा?

ये बन्दर अच्छे। कम-से-कम एक दूसरे की खाज तो खुजाते रहते हैं। मित्रो! बात गहरी समझो। घर में जहर न घोलना हो, तो आज से प्रीतिपूर्वक रहो। लोग लड़ रहे हैं कि मुझे दान देने को मिल जाये। बात समझो, अन्दर की आस्था है, यथार्थ मान कर चलना। धर्म मार्ग को पकड़ कर नहीं सिखाना चाहिए, धर्म को श्रद्धा से भरना चाहिए। शाम को टार्च लेकर घर-घर में जाने वाले लोग भी यहाँ हैं, कि भैया! नगर में महाराज जी आ रहे हैं, कोई चौका लगायेगा क्या?

एक भैया कह रहा था कि सवा सेर खून बढ़ गया मेरा। कभी नहीं सोचा था कि गुरुओं को देखकर भी आनन्द आता है। मेरे मित्र! निर्ग्रन्थों को देखकरके इतना आनन्द आता है, तो अरिहन्तों को देखकर कितना आनन्द आता होगा? निर्ममत्व-धारियों को देखकर जब इतना आनन्द आता है, जब तू स्वयं निर्ममत्वपने को प्राप्त होगा, तब कितना आनन्द आयेगा? इसलिए यहाँ पर आचार्य महाराज कह रहे हैं **'निर्ममत्वं परं तत्त्वं'** निर्ममत्व ही परम तत्त्व है।

'निर्ममत्वं परं सुखं', निर्ममत्व ही परम सुख है। एक बात कहूँ आपको, भैया! आपके जमाने में कान छिदते थे। स्कूल भेजा बच्चे को। सोने की बाली पहले हुए है। अब माता-पिता को टेंशन किस बात का? कि कोई उतार न ले। बच्चे को भी महाटेंशन, कि जरा भी स्कूल में कोई झगड़ गया और उसने कहीं बाली पकड़ ली, तो कान गया। एक तनिक-सी सोने की बाली अनेक लोगों को कष्ट दे रही है। माता-पिता को सोना दिख रहा है, बेटे को कान दिख रहा है।

हे मुमुक्षु! वो तनिक-से तार को बाहर निकाल कर रख दो, तो दोनों का कष्ट समाप्त। माता-पिता का भी, बेटे का भी हो गया।

जब एक तनिक-सी बाली उतारने पर इतना आनन्द आया, तुम तन-से कपड़े पहन कर बैठे हो, ये सब उतार कर देखो, कितना आनन्द आता है। 'निर्ममत्वं परं सुखं' निर्ममत्व में परम सुख है। यथार्थ मानो भैया! आज चाबियाँ सब छोड़कर देखो, हल्के हो जाओगे। **'निर्ममत्वं परं बीजं' ये निर्ममत्व परं बीज है।** मोक्षस्य कथितं बुधैः' मोक्ष का कोई परम बीज है तो निर्ममत्व है। बुद्धिमानों ने, ज्ञानियों ने कहा है। मुमुक्षुओ! मोक्ष का कोई बीज है तो निर्ममत्व भाव है। जहाँ ममत्व भाव है, वहाँ कपड़े तो उतर जायेंगे, पर कषाय नहीं उतरेगी। निर्ममत्व ही सदा सुख देने वाला है। संसार की स्थिति का भेदन करनेवाला कोई है तो निर्ममत्व भाव है। परम उत्कृष्ट आत्मतत्त्व में स्थिर होकर ज्ञानी परमसुख को करने वाला वेदन कर है। आनन्द देनेवाला कोई है, तो निर्ममत्व है। इसलिए ज्ञानियो! ममत्वं वोस्सरामि! माँ कहे कि बेटा! कुछ कमा कर तो ला, ऐसे ही घर में बैठा रहता है। दुकान नहीं गया, महाराजों जैसे घूमता रहेगा क्या?

माँ जब-जब कुछ बोले कहना 'ममत्वं वोस्सरामि'। पर मुझे पता है कि नारी का हृदय कितना मोटा होता है। वो तुरन्त कह पड़ेगी कि ऐसा तुझे वैराग्य हो रहा है तो चला क्यों नहीं जाता? हाँ, जननी! सुन, आप का पैर कहाँ है? पैर छूना और कहना, 'माँ! निर्ममत्वं पव्वज्जामि। बोले 'कहाँ जा रहा है?' बोलना, 'जहाँ तूने कहा, वहाँ जा रहा हूँ। अब तू देखती रह, मैं जाता हूँ। यदि ऐसा सबके घरों में हो जाये, तो पूरे नगर का मुनि-संघ बन जाये। आनन्द कहीं है, तो यर्थाथ मानना,

निर्ममत्व दशा में। ममत्व में तो दु:ख-ही-दु:ख है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"परमोत्कृष्ट पद की प्राप्ति"

निर्ममत्वे सदा सौख्यं, संसारस्थितिभेदनम्।
जायते परमोत्कृष्टमात्मनः संस्थिते सति॥ सा. स. 235॥

अन्वयार्थ—निर्ममत्वे आत्मनः संस्थिते सति = सर्व परपदार्थों से ममता छोड़कर अपने आत्मा में स्थिति को प्राप्त कर लेने पर **संसार-स्थिति-भेदनं** = संसार की स्थिति को भेदने वाला **परमोत्कृष्टं सौख्यं** = परमोत्कृष्ट सुख **सदा जायते** = सदा अनुभव में आता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! परपदार्थों की ममता से रहित होकर आत्मा में स्थिरता प्राप्त हो जाने पर सदैव संसारस्थिति के छेदक परम-सौख्य का अनुभव होता रहता है।

"अनर्थों का मूल है धन"

अर्थो मूलमनर्थानामर्थो निर्वृत्तिनाशनम्।
कषायोत्पादकश्चार्थो दुःखानां च विधायकः॥ सा. स. 236॥

अन्वयार्थ—अर्थः अनर्थानां मूलं = यह धन अनर्थों का मूल है **अर्थः निर्वृत्तिनाशनम्** = और यह धन निर्वृत्ति का (मोक्ष का) नाशक है **अर्थः च कषायोत्पादकः** = और यह धन ही लोभादि कषायों का उत्पादक है **दुःखानां च विधायकः** = तथा दुःखों का विधायक है, लाने वाला है।

भावार्थ—हे भव्य! यह धन अनर्थों का मूल है। यह धन मोक्षमार्ग का नाशक है यह धन ही लोभादि कषायों का उत्पादक है और दुःखों का विधायक है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञशासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्य कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा के वैभाविक दशा से स्वाभाविक दशा में गमन करने की विधी की व्याख्या कर रहे हैं।

प्राणी परद्रव्य में इतना लीन हो गया कि निज चैतन्य प्राणों से निर्मोह हो गया और धन को ही प्राण कहना प्रारम्भ कर दिया। धन और धरती के राग में निज के धर्म को भूल ही गया।

मुमुक्षुओ! धन और धरती इनमें तेरा अत्यंताभाव है। न धन साथ जायेगा, न धरती साथ जायेगी, पर धन और धरती के राग में ज्ञानी आत्मधर्म को खो गया।

एक-एक सिक्के के राग में मन में कितना विकल्प कर लिया है। एक-एक धागे के राग में कितनी पीड़ायें हैं। धन्य हैं वे योगीश्वर, धरती के देवता, जिन्होंने आत्मा की पीड़ा को पीड़ा समझा, आत्मा की वेदना को वेदना समझा और वेदना का वेदन करते हुए, परम सत्य को निहारते हुए, अपने शरीर से धागे मात्र का विसर्जन कर दिया। असिधार से तन का भी घात हो सकता है, पर धागे के राग से चारित्र-धर्म का घात होता है

चाहे धारण करो, चाहे धारण कराओ, चाहे धारण की अनुमोदना करो। नव कोटि से उन्होंने परित्याग किया है। **सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ कोई है तो उसका नाम है परिग्रह। हे मुमुक्षु! यदि शान्ति चाहिए, तो धन से दृष्टि को हटा लो। चाहे वो धन चेतनभूत हो चाहे अचेतनभूत हो, दोनों ही से कष्ट होगा। ज्ञानी! कमाने के भाव जब आते हैं, तो पीड़ा और जब मिलता है, तो लालसा। घर में पहुँच जाये तो भय कि कोई चुरा न ले जाये। जिसके आने में दुःख, रक्षण में दुःख, ऐसे धन पर राग कैसा?**

जगत् में वे ही आनन्द से जीते हैं, जिन्होंने ओढ़ने-बिछाने का ही त्याग कर दिया है। न लपेटना का, न धोने का, न रखने का विकल्प है। ऐसे विकल्पों से शून्य विश्व में कोई है, उसका नाम दिगम्बर मुनि है।

शीत की लहरों में भी जो भीतर ध्यान की गर्मी में लवलीन हैं। शीत की लहरें चल रही हों, ओस की बूँदे गिर रही हों, मावठा का पानी गिर रहा हो, तब भी नदी के किनारे बैठे हैं। नमस्कार हो स्वामी! आपकी चारित्ररूपी पावन चर्या को और आपकी पावन आस्था को। **जिसको संसार से भय होगा, वह चारित्र के प्रति प्रतिक्षण जाग्रत होगा।**

संहनन की कमी हो सकती है, काय के दोष हो सकते हैं, पर फिर भी श्रद्धा में कोई दोष नहीं हो। मान सकता हूँ कि इस खोटे काल में नदी के किनारे नहीं बैठ सकते हैं, तब भी शीत में बिना हीटर के रह सकते हैं, इतनी शक्ति तो आज भी है। ग्रीष्म में बिना कूलर-पंखे के रह सकते हैं, इतनी तो सामर्थ्य आज भी है।

ज्ञानी आचार्य महाराज कह रहे हैं। कि अर्थ जो है, वो अनर्थों का मूल है। परिग्रह जो है, धन जो है, वो अनर्थों का मूल है।

विश्व में जितने अनर्थ हुए वे अर्थ से हुए। महाभारत किससे शुरू हुआ? अर्थ से अनर्थ हो गया। नियति मानिये। जब तक तुम्हारे हाथ में कोई श्री नहीं है, तब तक श्रद्धा में श्रीजी तो हैं। जिसके हाथ में श्री नहीं है, उसके हाथ में श्रीजी तो हैं। श्री आते ही पता नहीं श्रीजी की श्रद्धा कहाँ विलीन हो जाती है। ज्ञानियो! पुण्य के नियोग से धन मिल भी जाये, पर जिससे पुण्य मिला था, उस धर्म को मत भूल जाना। ज्ञानियो! पुण्य के नियोग से धन मिल जाये तो धन, धन से नहीं मिला है। पुण्य धन से नहीं मिला है, पुण्य तो धर्म से मिला है। उस धर्म को मत खो देना। गरीबों को जीते हुए भी देखा करो, भालू बन्दरों को भी निहारा करो, ज्ञानी! मार्ग में चलते इंसानों को भी देखा करो।

एक रोटी के पीछे बेचारे कितने दौड़ते हैं ? एक रोटी किसी के यहाँ से उठा ले जाये तो बेचारेको कितने डण्डे पड़ते हैं। हे मित्र! जिन्होंने मायाचारी की रोटियाँ खायी थीं, वे आज श्वान बनकर रोटी के पीछे डण्डे खा रहे हैं।

ज्ञानी! यदि तूने धर्म के क्षेत्र में आकरके मायाचारी की है तो तिर्यंच पर्याय के आने पर क्या होगा? हे प्रभु! जगत् में सल्लेखना स्वीकार है, लेकिन माया धर्म स्वीकार नहीं। समझ में आ रहा है? ज्ञानी धन के पीछे पुरुष सात समुद्र पार कर लेता है। धन के पीछे आकाश में उड़ लेता है विमान के माध्यम से। धन के पीछे जमीन पर चल लेता है। क्या-क्या नहीं किया? कभी फावड़ा उठाने की आकांक्षा मन में नहीं होती और कोई ये कह दे कि निर्मल सदन में जमीन में धन है तो रात्रि के बारह बजे खोदने पहुँच जायेगा। मित्र! पर के धन से तू सुखी नहीं होता और दगा से भी कमायेगा तो दगा किसी का सगा होता नहीं। मेहनत की कमाई का जीवन जीना। भैया! कभी मत सोचना कि पिता की सम्पत्ति मिल

जाय, ससुर की सम्पत्ति मिल जाय, भाई की सम्पत्ति मिल जाय। ये व्यर्थ का चिन्तवन करना ही नहीं कि जमीन में गढ़ा हुआ मिल जाये। भूमिगत धन का स्वामी सम्राट है।

धर्म स्थान के निमित्त से यदि कोई धन है तो वह धर्म क्षेत्रों के लिए ही है। उस पर न राजा का स्वामित्व, न सेठ का, न पिता का। किसी का स्वामित्व नहीं है।

पैसे के राग में ज्ञानी स्वयं की दुकानें किराये पर दे सकता है, पर मन्दिर की दुकान खाली नहीं करेगा। क्यों, वो तो धर्म की है, कौन मैं पाप का खा रहा हूँ, धर्म का खा रहा हूँ। हे जीव! निर्माल्य खाने वाले की छाया भी पड़ जाये, उस पानी को मत पीना। समझ में आ रहा है? **निर्माल्य खाने वाले के घर का पानी भी नहीं पीना। यदि निर्माल्य खाने वाले की छाया भी पड़ जाये, उसकी छाया पड़ा पानी भी नहीं पीना।** पूछना कुमार से कि अकृतपुण्य की पर्याय कैसे मिली? श्री जिनालय के धन का सेवन कर लिया राग में, सप्त व्यसनों में लगा दिया और ऐसा पाप का उदय आया कि अकृतपुण्य की पर्याय में गया, जहाँ हाथ लगाता,सब मिट्टी हो जाता।

जन्म लेते ही पिता की मृत्यु हो गयी। जन्म लेते ही माता-पिता की मृत्यु होगयी हो, धन का नाश हो रहा हो, विश्वास मानिये, ऐसा कोई अभागा अज्ञानी क्षीणपुण्य जीव आया है जिसने कभी धर्मस्थान (मन्दिर) के धन का भोग किया था उसका फल ये है कि जन्म लेते ही माता-पिता की मृत्यु हो गयी। ऐसे भी लोग होते हैं, ज्ञानी कोटि-कोटि सम्पत्ति का मालिक खाकपति हो गया। ऐसे भी बेटे जन्म लेते हैं जिसके जन्म लेते ही रत्नों की वर्षा होने लगी, उनका नाम तीर्थंकर है।

एक बेटे ने जन्म लेने पर, श्री, धी सबकुछ वर्द्धमान को प्राप्त हुई, वो तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी हैं, जहाँ ज्ञानी कोटि-कोटि रत्नों की वर्षा हो रही हो। एक वो संतान है कि जिसके जन्म लेते ही माँ का आँचल सूख गया, पिता की मृत्यु हो गयी, सारी सम्पत्ति नष्ट हो गयी। कुछ नहीं, भाई! तब भी उसका पालन करना, क्योंकि जन्म तुमने दिया है। पुण्य उसका क्षीण है, क्षीण-पुण्यात्मा को देखकर अपना पुण्य

क्षीण मत करना उसको नष्ट करके। समझ में आ रहा है कि नहीं आ रहा? एक जीव के आते ही हर्ष की लहर दौड़ जाती है और एक व्यक्ति ऐसा आता है जब हर्ष विषाद में बदल जाता है। जीव की भाषा एवं भाव वर्गणायें प्रभाव छोड़ती हैं। पूरे क्षेत्र के वातावरण को परिवर्तित कर देती हैं।

कुछ जीवों की वर्गणायें ऐसी निकलती हैं कि प्रसन्नता का माहौल, उसके बिना बोले ही शोक में, दु:ख में, क्लेश में बदल जाता है।

ऐसे भी जीव होते हैं कि कुछ भी नहीं बोले, तुम्हारे घर में आ जाये तो मंगलाचरण हो जाते हैं। तुम्हारे घर में मुनिराज आते हैं, तब तुम्हारे घर में मंगलाचरण होता कि नहीं होता? और कहीं तुम्हारा शत्रु तुम्हारे घर पहुँच जाये, वो भी मौन लेकर जाये, तब भाव कहता है कि कब यहाँ से चला जाये, कब यहाँ से चला जाये।

अपने अन्तस् में ऐसी शक्ति का संचार करो जिसके प्रभाव से आपको देखने वाले, रोने वाले मुस्कराने लग जायें। ऐसी संपत्ति मत संग्रहित करो कि मुस्कराने वाले देखकरके रोने लग जायें।

पुण्यात्मा जीव को देखकर दु:खी प्राणी भी मुस्कराने लगता है और पापी जीव को देखकरके सुखी जीव भी रोने लगता है।

धन के पीछे मत रोओ। यथार्थ मानिये, आपके चाहने से द्रव्य आता नहीं, यदि आपकी इच्छा से द्रव्य आता होता, तो ब्रह्माण्ड में, सारे विश्व में कोई गरीब आदमी नहीं होता।

कौन चाहता है कि मैं भीख मागूँ? कौन चाहता है मैं रोड़ पर झाड़ू लगाऊँ? कोई नहीं चाहता। हर व्यक्ति चाहता है मैं महलों में प्रसादों में निवास करूँ, हाथियों पर सवारी करूँ, गाड़ियों में घूमूँ। हर व्यक्ति की आकांक्षा होती है। लेकिन, ज्ञानी! तुम आकांक्षा ही कर सकते हो, तुम घूम नहीं सकते। उसका नाम पुण्य है कि कमाने की आकांक्षा नहीं है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो कमाना पसन्द नहीं करते हैं, पर दूसरे का हड़पना ही पसन्द करते हैं। हाँ, कुछ ऐसे भी लोग हैं। हृष्ट-पुष्ट शरीर फिर भी भीख माँग रहे हैं। उनकी बुद्धि कमाने में नहीं आती, भीख माँगने

में जा रही है।

सोचो आप, ये माँगने के भाव क्यों आ रहे हैं? जिन जीवों ने धर्म के नाम पर आये हुए धन का भोग किया था, साधुओं के नाम पर आहार का द्रव्य ग्रहण किया और उसका सेवन किया।

माताओ! कभी भी पंचायत का चौका मत लगाना। चन्दे का चौका मत लगाना कभी। विषय को समझो। आपके घर में माना कि शुद्ध भोजन बना हुआ है, ये कहता है कि चार सेब फल आप रख लो, साधु आये तो दे देना, उनको चला देना आप। आपने रख लिये, साधु का त्याग था, साधु ने नहीं लिये, देने वाला चला गया। ये बताओ, इन फलों का आप क्या करोगे? वो तो निर्माल्य है।

उसने ये कहाँ कहा था कि महाराज न लें तो आप खा लेना उसने तो कहा था कि साधुओं को चलाना। अब तुम दान की सामग्री कैसे खाओगे? वो तो साधुओं के निमित्त से देकर गया था। राजमार्ग यही है कि स्वयं चौका लगाइये, स्वयं द्रव्य लगाइये। दूसरे कोई द्रव्य देना चाहें तो कहना कि स्वयं आकर द्रव्य दे दो।

उनसे पूछना कि महाराज जी पधारें और उनने नहीं सेवन किया, तो फिर इनका क्या होगा? आप वापस लेने आओगे कि नहीं? वो कहे, भैया! मैं तो तीन प्रकार के पात्रों को दान देता हूँ उत्तम, मध्यम जघन्य। मैंने पात्रदान दे दिया है। यदि उत्तम पात्र न मिले तो मध्यम पात्र को दे देना, यदि मध्यम पात्र न मिले, तो जघन्य पात्र को दे देना। ज्ञानी! तुम्हारा बेटा भी मन्दिर जाता है, देव-शास्त्र-गुरु का भक्त है, उसको दे देना। समझ में आया? धर्मात्मा जीव का कभी चौका खाली जाता ही नहीं है। चौका खाली जाता है अज्ञानी अधर्मात्माओं का। क्यों? धर्मात्मा जीव को तो पात्र दिखाई देते हैं उत्तम, मध्यम, जघन्य।

उत्तम पात्र की भावना भाता है। उत्तम न मिले तो मध्यम पात्र की भावना भाता है। मध्यम न मिले तो जघन्य पात्र की भावना भाता है। ज्ञानी! इतने सारे लोग मन्दिर में पूजा करते हैं, धर्मध्यान करते हैं, क्या आपको कोई धर्म में नहीं दिखता? वो मन्दिर में पूजा कर रहा था श्रावक, उससे कहना भैया! आज मैं पात्रदान करना चाहता हूँ। उत्तम या मध्यम न मिले तो जघन्य सही, आप मेरे यहाँ भोजन

कर लो। विश्वास रखना, जब दूसरे को श्रद्धा से भोजन कराता है तो उसको उसमें भी आनन्द आता है। आपका वह पात्रदान भी मोक्ष का ही कारण है। पर दान का सेवन नहीं करना। न दान का सेवन करना, न दान का सेवन कराना।

चन्दा का चौका लगा कभी, तो साधु को आहार देना ही नहीं। कारण क्या है? कुछ लोग हर्ष से देते हैं, कुछ लोगों को आपको देते हुए देखकरके देना पड़ता है। ये सामाजिक व्यवस्था है। क्लेश होगा मन में कि ये दान मुझे देना पड़ रहा है, मेरी इच्छा नहीं थी। **दान वही है, जो स्वयं के द्वारा अर्जित सम्पत्ति का हो। जो विसर्जन है, उसका नाम दान है। धन की तीन गति। दान, भोग, नाश। दान व भोग किया नहीं, तो निश्चय होता विनाश।** अन्तिम गति तो नियत है। इसलिए जिनके घर में सम्पत्ति पुण्य के नियोग से बढ़ रही हो, आप तो शीघ्र-से-शीघ्र धर्म में लगा दो, उत्तम क्षेत्र में लगा दो। ये भी मत सोचो मेरे वंश का भविष्य क्या होगा? विश्वास रखो, तेरे भाग्य से तूने ये सम्पत्ति अर्जित की है, जो तेरे घर में जन्म लेगा, उसका भाग्य होगा तो वो भी कमा लेगा।

चक्रवर्ती का बेटा, चक्रवर्ती नहीं होता, कोई सामान्य पिता का बेटा चक्रवर्ती हो जाता है। ज्ञानी! उसका भाग्य होता है। चक्रवर्ती का या तो मरण हो, या दीक्षा को निकल जाये चौदह रत्न और नौ महानिधियाँ मालूम नहीं पड़ता किस समय विलीन हो जाती हैं। समझ रहे हैं? मालूम नहीं चलता किस समय विलीन हो गयी। इसलिए वंश और परिवार के राग में ज्ञानी! तू लोभ करके, धन का संग्रह करके, ऐसा करके मत जाना कि तेरी सन्तान लड़े। जिस पिता के कुछ भी नहीं था, वहाँ झगड़ा किस बात का होगा? और जो पिता बहुत सारा देकर गया है, जाने के बाद देखो घर की क्या हालत होती है।

अड़ौसी-पड़ोसी रिश्तेदार देखते हैं। जिस घर में प्रातः से मंगलाचार होते थे, उस घर में आज सुबह होते ही, सूर्य की पौ फटते ही, अरुणाई आते ही घर में गाली, धक्कामुक्की प्रारम्भ हो चुकी है।

किसके पीछे? धन के पीछे। क्यों, युवाओ ऐसा ही आप करोगे क्या? अपने घर में? ज्ञानियो! ऐसा ही आप करोगे क्या अपने घर में? प्रसन्न होकरके छोड़

देना, घर की देहरी से बाहर चले जाना, पर घर की देहरी पर खड़े होकर भाई-भाई से लड़ना मत।

घर छोड़कर चले जाना। घर छूट सकता है, पर भाग्य नहीं छूट सकता। वन में भी घर मिलेगा, तुम चिन्ता मत करना। ये मत सोचना कौन चला रहा है। कथन नहीं, वास्तविकता है। इतना धैर्य होना चाहिए। उन जीवों के निर्णय से पूछो जो बुद्धिपूर्वक शरीर के ऊपर एक धागा भी नहीं रखते, धन के नाम पर फूटी कौड़ी नहीं रखते, वाहन/विमान कुछ भी नहीं रखते, जिनको अपने भोजन तक की चिन्ता नहीं है।

अन्य सम्प्रदायों में तो कम-से-कम इतना होता है कि भोजन के बर्तन तो रखते हैं। हमारी श्वेताम्बर परम्परा में साधु भोजनपात्र रखते हैं। पर दिगम्बरों के यहाँ तो ये भी चिन्ता नहीं है कि कल मुझे भोजन मिलेगा कि नहीं मिलेगा।

धन्य है ऐसी वीतरागी मुद्रा को, निस्पृहवृत्ति को। बुद्धि के साथ विवेक पूर्वक छोड़ा है। पर ध्रुव सत्य है, कि नियोग और पुण्य प्रबल है तो जीवन का हर पल आनन्दमयी होता है।

जब कोई योगी किसी श्रावक से कहे 'चौका लगा कि नहीं?' तो ज्ञानी! सोचना। जगत् में सबसे निर्द्वन्द्व निर्विकल्प दशा की ओर ले जाने वाली कोई दशा है, तो वह वीतरागी मुद्रा है।

ज्ञानी! जब कभी तू मुनि बने, तो अपने भोजन के लिए व्यवस्था लेकर मत घूमना। श्रावक पहुँच जाये वो तेरा भाग्य है। देखो जंगल में मुनिराज ने नियम लिया कि जंगल में कोई आहार देगा तो आहार करूँगा अन्यथा उपवास करूँगा। वहाँ देने वाले मिले कि नहीं? माँ सीता रसोई तैयार कर श्रीराम से कहती हैं, स्वामी! जब अवधपुरी में थे, तो आहार देती थी, आज कोई मुनिराज नहीं हैं। लक्ष्मण कहते हैं, देखो भैया! भाभी का नियम पूरा हो रहा है, वो धरती के देवता वीतरागी तपोधन पधार रहे हैं। मुनिराज का नियम था कि जंगल में आहार मिलेगा तो करेंगे और सीता सोच रही थी कि आहार देकर भोजन करूँ।

विश्व में कोई भी सम्प्रदाय ऐसा नहीं मिलेगा, जो कि भोजनव्यवस्था से दूर रहता हो। एकमात्र जैनदर्शन में दिगम्बर आम्नाय ऐसी है। दिगम्बर साधु के कमरे

में मात्र जिनवाणी व पीछी-कमण्डल, इसके अलावा कोई सामग्री दृष्टिगोचर न हो, ये साधुओं का निवासस्थान है। इसलिए श्रावको! जीवन में कभी भूल मत कर देना, माना कि आप जयपुर, रायपुर भोपाल से कहीं से भी आये हो, अपना बैग, अटैची महाराज के कमरे में रख दिया, जीवन में ये भूल मत करना, स्वप्न में भी भूल मत करना कभी। दिगम्बर साधु के कक्ष में न वस्त्र टाँग कर जाना, न अपना सामान रख कर जाना।

डाक्टर की क्लीनिक देखी क्या? क्या स्वच्छ दिखाई देती है। मेरे मित्र! उसमें फिर भी औषधियाँ रखी हुई हैं, लेकिन दिगम्बर योगी के कक्ष में तो मात्र भगवान् जिनेन्द्र की वाणी औषधिभूत रहना चाहिए। मात्र शास्त्र होना चाहिए। अन्य द्रव्य होना ही नहीं चाहिए। कुछ भी नहीं होना चाहिए।

भोपाल की घटना आपको बताऊँ। भोपाल में चातुर्मास के बाद शीत समय चल रहा था ठंडियों का। वहाँ पर नारायन नगर में पूरा संघ एक धर्मशाला में रुका हुआ था। अचानक एक पाण्डया जी आ गये। संस्कृत विद्यालय के प्रोफेसर थे। आकरके प्रणाम किया, पाँच मिनट बैठे रहे। वो जीव बारबार इधर देखता उधर देखता, ऊपर देखता नीचे देखता, कमरे के कौने-कौने पर दृष्टि फेंक रहा था। मेरी चौकी पर समयसार जी विराजमान थे। वो नमस्कार करता है, कहता है ये अलौकिक ग्रन्थ है, महाराज! मैंने इस पर डाक्टरेट करके परीक्षा दी है। अलौकिक ग्रन्थ समयसार की प्रशंसा करने लगा। फिर धीरे-से कहता है, महाराज साहब! यहाँ कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। मैंने कहा, क्या देखना चाहते हो आप? बोले, चिलम हुक्का, गांजा, तम्बाकू वगैरह कुछ भी नहीं चलता क्या? ज्ञानी! ये दिगम्बर परम्परा है श्रवण परम्परा की। यदि कोई प्रशस्त और प्रकृष्ट परम्परा है, वो दिगम्बर परम्परा है। इसमें एक बार भोजन एक बार पानी होता है और विघ्न आ जाये तो न भोजन न पानी। महाराज ऋषभदेव के जाने के बाद भी आज श्रमणपरम्परा इतनी व्यवस्थित है, इसका कारण क्या है? यहाँ का आचारांग जो है, अत्यंत समुज्जवल है, पवित्र है। यदि आचारांग में शिथिलता आ गयी तो नमोस्तु-नमोस्तु बन्द हो जायेगा। मध्य काल में अनेक विषमताएँ आयी। उन सब विषमताओं को भी झेलकरके अपनी श्रमण संस्कृति पुनः सुरक्षित स्थान पर खड़ी हुई है। बीच में भट्टारक की परम्परा

आयी, वस्त्रधारी साधु बने, लेकिन तब भी उनने वस्त्र धारण नहीं किये, दिगम्बरत्व की रक्षा की। तब भी अपने आपको दिगम्बर-धर्मी तो कहा, पर अपने आपको दिगम्बर मुनि नहीं कहा। ये विशेष बात ध्यान में रखना। दिगम्बर तो आप भी हो, हो कि नहीं? दिगम्बर हो, पर दिगम्बर नहीं हो। आप दिगम्बर क्यों हो? क्योंकि तुम दिगम्बर वीतरागी अरिहन्त देव को मानते हो, इसलिए आप दिगम्बर हो, पर दिगम्बर क्यों नहीं हो? क्योंकि आप कपड़े पहने हो।

जो भट्टारक लोग थे, अपने आप को दिगम्बर ऐसे ही माना जैसे आप हो। तब उन्होंने अपने आप को ये नहीं कहा कि मैं दिगम्बर मुनि हूँ, क्योंकि दिगम्बर मुनि का जो रूप है वो तो निर्वस्त्र ही है। अनर्थों की जड़ है अर्थ। गोम्मटेश का अभिषेक था, भट्टारक चारुकीर्ति से मैंने पूछा, 'आपके भेष के बारे में आगम क्या बोलता है?' मुझे बड़ी खुशी हुई, उस जीव ने किंचित् भी मायाचारी नहीं की। बहुत खुशी हुई, बहुत प्रसन्नता हुई। उस जीव ने छल-कपट वाली कोई भाषा नहीं बोली।

स्पष्ट बोले भट्टारक चारुकीर्ति गोम्मटेश में। देखो, भाई! आगम में मेरे भेष की कोई चर्चा नहीं है। ये तो मध्यकाल की विषमता का परिणाम है। वस्त्र मैंने ही धारण नहीं किये, धर्म की रक्षा के लिए पूर्व आचार्यों ने भी धारण किये, उस समय ऐसी विषमता थी। और जैसे-ही विषमता हट गयी, देश में दिगम्बर मुनि विचरण कर रहे हैं कि नहीं कर रहे?

पूरे देश में वीतरागी मुद्रा विचरण कर रही है। आचार्य शान्तिसागर महाराज जी ने तो कितने-कितने उपसर्ग सहन किये हैं। राजाखेड़ा में कितना बड़ा उपसर्ग सहन किया था। दिगम्बरत्व में सूजा लगा दिया गया हो, रक्त की धार बह गयी हो, तब भी वे वीतरागी तपोधन ध्यान में लीन रहे।

आचार्य महावीरकीर्ति महाराज के ऊपर अज्ञानियों ने लाठियों से वार कर दिये, पुलिस आ गयी। उनसे कहा पुलिस के जवानों ने, 'महाराज! इन लोगों ने आपको बहुत कष्ट दिया है। आप जो आदेश करोगे वही मैं दण्ड दूँगा।'

मेरे आदेश को मानोगे न? 'हाँ, बिल्कुल, आपके आदेश को पूर्ण मानूँगा।'

मेरे मित्रो! मेरा आदेश है, कि इन बेचारे अज्ञानियों को तुम छोड़ दो। इन्होंने अज्ञानता में किया है। यदि ज्ञान होता, तो ये ऐसा क्यों करते? ये है दिगम्बर मुनि की क्षमा।

सोचो, ये थी योगियों की क्षमा। ये था धर्म। ये नहीं कहा था कि मेरे ऊपर उपसर्ग हो रहा है, तुम सब देख रहे हो, कुछ भी नहीं कर रहे हो।

ये साधु के वचन नहीं हैं। साधु के लिए कष्टों के काल में मौन लेना ही धर्म है। प्राण प्रिय नहीं है, योगियों को प्रण प्रिय है। **प्राण प्रिय नहीं होते योगियों को, योगियों को प्राणों से प्रिय कोई होता है तो उसका नाम प्रण है।** मुमुक्षु! कभी स्वप्न में मन करे कि मुझे दिगम्बर मुनि बनना है तो जिन प्रदेशों में धर्म न पल सके, उन प्रदेशों में विहार मत करना। चारित्र से विपरीत विहार मत करना, जिन प्रदेशों में नहीं है तुम्हारी सहनशक्ति शीत/उष्णता सहन करने की। उन प्रदेशों में तुम विचरण करना जहाँ न अधिक शीत हो न गर्मी है। उत्कृष्ट क्षेत्र कोई है तो कर्नाटक और महाराष्ट्र। ये ही कारण समझो गहरा, आगम में लिखा है कि अन्त में धर्म दक्षिण भारत में बचेगा।

धीरे-धीरे देखते जाना, मौसम विषम होगा, लोगों में भौतिकता अधिक बढ़ेगी। वहाँ पर मौसम जो है, अभी यहाँ शीत प्रारम्भ हो चुकी है, वहाँ कुछ भी नहीं होगा। जब यहाँ सब लोग रजाइयाँ ओढ़ें, वहाँ सब ऐसे-ही मिलेंगे। विहार किया, जो श्रावक छतरपुर के बिहार करा रहे थे गोम्मटेश बाहुबलि स्वामी के अभिषेक के समय, वो अपने घर में फोन लगाते थे मध्य प्रदेश, तो वहाँ सूचना मिलती थी कि यहाँ तो भैया बहुत ठण्डी पड़ रही और ये लोग बोलते कि हम तो भैया ऐसे ही घूम रहे हैं।

गर्मी बहुत नहीं पड़ती, समशीतोष्ण है। साधना के लिए यही कारण है। शक्तियाँ क्षीण हो जायेंगी, शक्ति कमजोर हो जायेंगी, तो साधु रहेगा वहीं तक धर्म टिकेगा। साधु के बिना धर्म चलता नहीं।

ये भैया कह रहा था हम लोग तो खाली-खाली से हो गये। ज्ञानी! अभी से अभ्यास कर ले। इस समय में खाली-खाली मत रहना। तुम ग्रन्थों को घर में रखो, इस समय तुम स्वाध्याय करना। स्वाध्याय करना, खाली मत रहना। आनन्द आता

है, ज्ञान में आनन्द है तो उस आनन्द को नहीं छोड़ना।

बिजली कब चली जाये, सो इनवरटर घर में रख लिये हैं। मेरे मित्र! ऐसे ही साधु कब चले जायें, इसलिए तुम जिनवाणी घर में रखना समय का दुरुपयोग नहीं करना, स्वाध्याय करना। मन्दिरों में गद्दी चलना चाहिए, युवाओं की अलग, माताओं की अलग और आप बुजुर्गों की अलग। फिर देखो मन्दिरों का माहौल कैसा बदलता है।

मुझे तो आश्चर्य हुआ जब दस-बारह युवाओं का ग्रुप दिल्ली से आया। नमोस्तु करके शाम को बोलते हैं—महाराज श्री! मुझे ग्रन्थ चाहिए।

मैंने पूछा, क्यों? आपको मालूम नहीं है, दर्शन तो मैंने पहली बार किये, लेकिन मैं आपसे बहुत साल पहले से जुड़ा हूँ। मैंने पूछा कि कब से जुड़े हैं भाई? बोले, मैंने आपका 'पुरुषार्थ देशना' पढ़ लिया। मैंने आपके कई ग्रन्थों को पढ़ लिया है। महाराज श्री! हम दो ने प्रारम्भ किया था, अब दस-पन्द्रह हो चुके हैं। पढ़ते-पढ़ते इतना आनन्द आता है कि दिल्ली में रहकर रात्रि के दस बजे स्वाध्याय करते हैं।

अब सोचो। ये भी आपको मानना पड़ेगा कि ये पारस और जिनवाणी चैनल ने धर्म की प्रभावना तो की है। स्वाध्याय में रुचि जगी है लोगों की। जो ग्रन्थ नहीं खोल पाते हैं वे ज्ञानी प्रवचन सुनने बैठ जाते हैं। लोग दुनियाँ के क्रियाकाण्डों को अधिक पसन्द नहीं करते। देखा, यहाँ पर भी सब सूख गये। सूखे नहीं हैं, ऊपर से सूखापन लगता है तत्त्व में, लेकिन भीतर से हरापन होता है। देखो, अभी तक कितने नाटक करवा लेते, पूजन-विधान करवा लेते, लेकिन एक भी युवा ने मेरे से ये नहीं कहा आज तक कि कुछ करवा नहीं रहे हो। क्यों? उन सबको समझ में आ रहा है। बल्कि कोई दो मिनट अधिक लगा ले मंच पर तो इनके चेहरे बिगड़ने लगते हैं। भैया! इसका तात्पर्य समझो कि जो भीतर का आनन्द है, वो कुछ है। इसका तात्पर्य ये मत समझ लेना कि तुम पूजन-विधान करना छोड़ दो। जिनकी जैसी योग्यता है वो ये भी करना वो भी करना। लेकिन सत्य ये ही है कि अन्त में आना पड़ा आपको यहीं।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं। हे जीव! अर्थों का कोई अनर्थ करानेवाला है तो

उसका नाम अर्थ है। माँ से पिता से न्यारा क्यों हो गया?

जगत् में वमन करके खाने वाला कोई जीव है तो एकमात्र श्वान है। मुख में ले जाता है और उल्टी कर देता है। वमन। फिर उसको चाटने लगता है। जो व्यक्ति छोड़ने के बाद भी धन पर आँख को ले जाये, तो उसका काम वमन को चाटने के समान है। ये धन अनर्थों का मूल है, ये धन मोक्षमार्गी के मोक्ष मार्ग का नाशक है और कषाओं को उत्पन्न करने वाला है। देखो ये तो सुनने की भी आवश्यकता नहीं है, आपको परिपूर्ण ज्ञान है। इसके बहुत बड़े प्राचार्य हो। कोई निश्चित बैठा हो, उसे पचास का नोट दे दो और कहना भैया! मैं तुझे सत्तर देने वाला था। अब वो पचास तो रख लेगा, पर बीस को पाने का विकल्प करेगा। जो आनन्दमय जीवन जी रहा था, उसको आपने ऐसा बोलकर दु:खी कर दिया। जिनको किसी को दु:खी करना हो, उसे थोड़ा-सा लोभ दे देना। समाज का अध्यक्ष बना देना, या दान दे देना अथवा कहना कि भैया मैं आपको एक लाख रुपया देना चाहता हूँ, आप जिस काम में हो लगा लेना। अभी निश्चिंत बैठा था, अब उसे चिन्ता हो गयी कि अब मैं एक लाख किस में लगाऊँगा? बेचारा हो गया पागल।

दो वस्तुएँ बुद्धि का नाश कर देती हैं। एक का नाम है श्री और दूसरी का नाम है श्रीमती। बुरा नहीं मानना। जो है, सो है। ऐसा नहीं है क्या? ज्ञानी! कहो या न कहो, लेकिन ऐसा ही है।

हे ज्ञानी! ये द्रव्य तुमने अनेक बार भोगा, अनेक बार कमाया। पुन:-पुन: करके उसी को कमा रहा है, कुछ अन्य नहीं कर रहा। वमन को कर-कर वमन को ही खा रहा है। अपने ही मुख का वमन अपनी ही थाली में आ जाये तो चेहरा बिगड़ता है। कोई कपड़ा पहन ले, तो तू उसे पहनता नहीं है, कोई माला गले में पहन ले तो तू उसको पहनना पसन्द नहीं करता। जिस थाली में कोई भोजन करे उस थाली के भोजन को पसन्द नहीं करता। कोई शूद्र हो, कसाई हो, चाहे कैसा भी पापी हो, उसकी जेब में रखकर आया पैसा (सिक्का) तू तुरन्त रख लेता है। कितना पवित्र है सिक्का? परमात्मा को कोई छू जाये तो शान्ति धारा करेगा, अभिषेक

करेगा। यदि किसी ने भगवान् की प्रतिमा को छू लिया हो तो तू शुद्धि करता है और नोट कितना महान् है कि किसी के भी हाथ से आया हो, तुरन्त रखता है जेब में। धन्य हो, लोग नाली का पड़ा रुपया तो उठा लेंगे, पर घर में पड़ा पिता सड़ता रहेगा, लेकिन पानी पिलाने नहीं जायेगा। बात मानो हमारी, इस जगत् के प्रपंच में मत पड़ो और किसी पर विश्वास तो करो ही मत। रहो सबके साथ प्रेम से वात्सल्य के साथ, पर अपने दम पर जीना। ये मत सोचना कि ये मेरा नाम करेगा, ये मेरा काम करेगा। न कोई नाम करेगा, न काम करेगा।

पुण्य-उदय हो तो शत्रु के घर में माला पड़ेगी और पाप का उदय है तो बेटा घर से भगा देगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"भोगी की दशा"

प्राप्तोज्झितानि वित्तानि, त्वया सर्वाणि संसृतौ।
पुनस्तेषु रतिः कष्टं, भुक्तवान्त इवौदने॥ सा. स. 237॥

अन्वयार्थ—त्वया = तूने **संसृतौ** = इस संसार में **सर्वाणि वित्तानि** = सर्व प्रकार के धन को **प्राप्तोज्झितानि** = प्राप्त करके बारंबार छोड़ा है, **भुक्तवान्त ओदने इव** = खाए हुए चावल को वमन किये हुए के समान, **तेषु** = उन्हीं संपत्तियों में, **पुनः रतिः** = फिर आसक्ति करता है यह, **कष्टं** = बड़े दु:ख की बात है।

भावार्थ—हे भव्य! तूने इस संसार में सर्व प्रकार के धन को प्राप्त करके चावल के वमन के समान बारंबार छोड़ा है। भोगकर छोड़ी हुई उसी सम्पत्ति में पुनः आसक्ति कर रहा है, यह बड़े दु:ख की बात है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

श्रमणपरम्परा में सनातन व्यवस्था है जिन प्रवज्या। जिन प्रवज्या का अधिकारी कोई है तो क्षत्रिय, ब्राह्मण और वैश्य। उत्तम कुल में जन्मा (उत्पन्न) हुआ पुरुष ही जिनदीक्षा का पात्र है। तद् योग्यताओं की प्राप्ति का होना, कुल शुद्धि का होना। ज्ञानियो! क्षेत्र का और काल का प्रभाव नियत है। हीन कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष उत्कृष्ट संयम का पालन करने में असमर्थ होता है।

जिसके शरीर में न्यूनता (विकलांगता) है, वो भी जीव परिणामों की विशुद्धि को प्राप्त नहीं हो पाता। क्षेत्र का प्रभाव भी होता है। तीर्थभूमि में व्यक्ति प्रवेश करता है, तो उसके परिणाम अलग होते हैं। श्मशान घाट के परिणाम अलग होते हैं, और वेश्यालय के परिणाम अलग हैं और मदिरालय के परिणाम अलग होते हैं और जिनालय के परिणाम अलग हैं। **जैसे क्षेत्र में प्रवेश करता है जीव, भावों पर वैसा प्रभाव पड़ता है।** श्री मण्डप में प्रवेश किया आपने, तो भाव बदल

गये। **द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव निमित्त-नैमित्तिक दृष्टि से द्रव्य पर पड़ता ही है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं है, इस शब्द का अर्थ निमित्त का अभाव नहीं है। शब्द का अर्थ समझिये। एक द्रव्य दूसरे द्रव्यभूत नहीं होता है, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं होता है। पर एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर निमित्त-नैमित्तिक प्रभाव पड़ता है।** सूर्य उदित होता है तो कमल खिला जाता है। चाँद आकाश में उदित होता है तो कुमुदिनी खिलती है। उपादान दृष्टि से कमल की अपनी योग्यता है, कुमुदिनी की आपनी योग्यता है। निमित्त दृष्टि से ग्रह, नक्षत्र आदि का भी परिणमन है। यही कारण है कि सत् पुरुषों की संगति, सत् क्षेत्रों का वास, सत् साहित्य का स्वाध्याय ज्ञानियो द्वारा किया जाता है।

युवाओं से कहना है कि तीन बातों का जीवन में ध्यान रखना। सत् पुरुषों की संगति, सत् क्षेत्रों की वन्दना, सत् साहित्य का स्वाध्याय। ये तीनों तुम्हारी सद्गति के साधन हैं। सन्मति के नियोग से जीव का उत्कर्षण-अपकर्षण होता है। साधुओं के पास बैठते हैं तो परिणाम वैराग्यमयी होते हैं और रागियों के पास परिणाम तद् अनुसार होते हैं।

जब त्यागियों की चर्चा होती है तो हर व्यक्ति के मन में भाव आता है कि वो दिन कब आये कि मेरे परिणाम भी साधु बनने के हों। पुण्यभूमि पर प्रवेश करने पर लगता है कि कैसे वे अशरीरी परमेश्वर सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं।

तीर्थंकरों की कल्याणक भूमि पर प्रवेश करने पर कल्याणभूत परिणाम होते हैं।

मुमुक्षुओ! जो वैराग्य कभी जीव को नहीं होता है, वो जिनवाणी को सुनने से होता है। भगवान् तीर्थंकर जो भी होंगे, उनको नियम से देशना देनी ही होगी। जब तक वो देशना नहीं देते, तब तक उनका तीर्थ प्रारम्भ नहीं होता और जब तक तीर्थ प्रारम्भ नहीं होता, तब तक तिरने वाले लोगों की संख्या नहीं होती। भैया! राजनीति के लिए मंच मत पकड़ना, समाज के लिए मंच मत पकड़ना, लेकिन धर्म के लिए आपको मंच पकड़ना पड़े तो पकड़ लेना। तीर्थंकर भगवान् को भी देशना देना अनिवार्य होता है। यदि आपकी किसी बात को सुनकर एक जीव का

भी कल्याण हो गया तो बस। ये बैठे मुमुक्षु लोग। एक भी मुनि को पकड़ने थोड़े-ही गया था घर में। ये तो निमित्त मात्र है। भैया विशुद्धसागर के नियोग से आये हैं। ध्रुव सत्य है, जितने यहाँ बैठे हैं साधक सब जिनवाणी सुनकर आये हैं। कोई दूर से सुन रहे, कोई पास से। कोई माँ को छोड़ने आये थे, तो कोई दादी को छोड़ने आये थे, सुनने नहीं आये थे। कान में पड़ गया शब्द, तो मन में भाव बन गये कि चलो, सुनो तो है क्या? जैसे पुत्र का होना वासना के लिए नहीं है, साधना के लिए है। हे श्रावको! तुम्हारे यहाँ सन्तान न होगी, तो तुम्हारी कुल-परम्परा और सनातन धर्म कैसे चलेगा और गुरु नहीं होंगे तो शिष्य नहीं होंगे, शिष्य नहीं होंगे तो सनातन धर्म की परम्परा कैसे चलेगी?

ज्ञानियो! शिष्य का अर्थ ही ये है कि **जो अनुशासन में जीता है उसका नाम शिष्य है। जो गुरु के अन्त में निवास करे, उसका नाम अन्तेवासिन है। वो विनयपूर्वक जीवन व्यतीत करता है, उसका नाम विनेय है। गुरु के पादमूल में छत के समान रहे, उसका नाम छात्र है। विद्या के लिए प्रतिपल प्रतिक्षण झोली फैलाये बैठा रहे, उसका नाम विद्यार्थी है।**

योगियों के गुणों का स्तवन करने से कर्मों की असंख्यात गुणश्रेणी निर्जरा होती है। जब भारत की भूमि पर तीर्थंकर वर्द्धमान का निर्वाण हुआ उसके उपरान्त अन्तिम केवली भगवान् अपने बीच के सेठ पुत्र जम्बू स्वामी हुए मथुरा में। अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी हुए। इसके बाद श्रुतपरम्परा और केवलीपरम्परा का विच्छेद हुआ। अनुबद्ध केवली के रूप में जम्बू स्वामी के उपरान्त भारतभूमि से कैवल्य स्रोत समाप्त हो गया।

श्रुतकेवली की परम्परा में भद्रबाह स्वामी हुए। भद्रबाहु स्वामी के उपरान्त अंग आदि क्रम से ह्रास होता गया और धरसेन स्वामी तक अंग का अंश मात्र बचा।

तीर्थंकरपरम्परा के बाद आचार्यपरम्परा प्रारम्भ होती है। श्रमणसंस्कृति को प्रवाहमान करने के लिए दोनों की आवश्यकता रही। जब तीर्थंकरपरम्परा का अभाव हो गया, तो जिनशासन को चलाने के लिए आचार्यभगवन् हुए।

कोई के मन में प्रश्न हो सकता है कि आचार्यों की क्या आवश्यकता? आपको मालूम होना चाहिए किस जीव का नियोग किस जीव के साथ निहित है और किसके माध्यम से किस का कल्याण हो जाये, इसलिए आचार्य होना कोई दोष नहीं है।

प्रमुदित होना चाहिए अपने आपको इस बात के लिए। एक आचार्य पूरे विश्व में तो नहीं घूम सकता है। जितने आचार्य होंगे उतने शिष्य बढ़ेंगे। शिष्य बढ़ेंगे, उतना जिनशासन जयवन्त होगा, नमोस्तु शासन जयवन्त होगा।

भैया! बाह्य रूप बताने वाले लोग बहुत हैं। लोगों ने विमलसागर जी के बाह्य रूप को देखा, पर विमलसागर जी की भीतर की साधना को नहीं देखा। विद्यानन्द महाराज जो दिल्ली में विराजते हैं, इनको भी दीक्षा देने वाला कोई महान् गुरु है तो महावीरकीर्ति महाराज हैं। सबसे पहले क्षुल्लक दीक्षा दी है आचार्य महावीरकीर्ति महाराज ने। मुनिदीक्षा देशभूषण महाराज जी ने। एक समय था जब श्रमण संघों में बड़ा मृदुल वात्सल्य भाव था। एक संघ के शिष्य दूसरे संघ में आते जाते रहते थे। परस्पर में ध्यान और अध्ययन होता था। सन्मतिसागर मासोपवासी, ये महावीरकीर्ति के शिष्य नहीं थे। ये आचार्य विमलसागर महाराज के शिष्य थे।

विजयमति गणिनी-माता जी विमलसागर की शिष्या हैं। पर देखो कितना समन्वय था, कितना आनन्द था। शिष्य कहता है मुझे दादागुरु के पास जाने का भाव है, तो उन्होंने स्वयं स्वीकृति दे दी, और आचार्य महावीरकीर्ति महाराज से अध्ययन करने के लिए सन्मतिसागर व विजयमती माताजी गये। विमलसागर महाराज का वात्सल्य, लघुता और करुणा को मैंने प्रत्यक्ष देखा। एक बार आचार्य विरागसागर से आचार्य विमलसागर महाराज का मिलन हुआ। बहुत भीड़ थी, मैं तो दूर खड़ा हो गया कि भैया! कौन धक्का खाये, क्योंकि श्रावक नहीं देखते। आचार्य विमलसागर महाराज ने दूर से पूछा विरागसागर जी को 'तुम्हारा छोटा महाराज कहाँ है?' और ऐसा कहकरके दूर से बुलवा लिया। वक्ष से लगा लिया और कहा 'जा बेटा! अच्छे से रहना। जहाँ होगा, वहाँ जय-जयकार होगा। यानि जो आचार्य महाराज के अन्तरंग में था वो कह दिया जो **साधक जितना मृदुल भाषाण करेगा, जितना मौन रखेगा, जितनी विशुद्ध चर्या करेगा, अश्लील भाषा का प्रयोग नहीं करेगा, आगमिक**

भाषा का प्रयोग करेगा, उस साधु को स्वतः वचनसिद्धि हो जाती है। अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। ये आचार्य विमलसागर, आदिसागर महावीरकीर्ति महाराज का परम वात्सल्य भाव इस श्रमणसंस्कृति के ऊपर हुआ।

आचार्य शान्तिसागर महाराज जी दक्षिण से चलकर उत्तर आगरा तक भी आये थे और उपसर्ग-परीषह को सहन करते हुए मुनिपरम्परा को प्रभावित किया। उस समय आदिसागर, शान्तिसागर (छाणी) और शान्तिसागर (दक्षिण) ये तीन आचार्य हुए और तीनों आचार्यों की परम्परा आज भारत की भूमि पर विचरण कर रही है। पर हर साधक के मन में एक ही सोच होनी चाहिए। अकेले विशुद्धसागर श्रमण परम्परा को आगे नहीं ले जा पायेंगे। जितने मुनिराज हैं, अपनी निर्दोष साधना करें और वात्सल्य के साथ तीनों परम्परा के साधु अपनी आत्म-आराधना करें और जिनशासन नमोस्तु शासन की प्रभावना करें। अंतरंग का वात्सल्य ही ज्ञानी उत्कृष्ट बनायेगा।

मैं इस गढ़ या गच्छ का हूँ—यह विकल्प काषायिक भाव है। मित्र! काषायिक भाव जो है वह कमनिर्जरा का कारण किंचित् भी नहीं है। श्रावको! ये भाव तो कभी मन में मत लाना, आप विद्या को सीखना। महाराज जी ने पूछा—कौन से संघ को मानते हो? बोले, महाराज जी! मेरे नगर में जो संघ आते हैं, मैं उसी संघ का हो जाता हूँ। मुझे दिगम्बर मुनि का पीछी-कमण्डल वीतरागी, मुद्रा दिखती है। मैं तो मुद्रा को पूजने वाला हूँ। न मैं संघों को पूजने वाला हूँ, न श्रमणों को पूजने वाला हूँ। ये समान दृष्टि है तो अन्दर वात्सल्य भाव जागेगा, विश्वास रखना, जिनशासन के लिए ये स्वर्णमयी समय चल रहा है। वर्द्धमान महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद, भद्रबाहु स्वामी के उपरान्त, कई सदियाँ निकल गयी। इसके बाद अब इतिहास रचा गया है कि भारत की भूमि पर एक हजार चार सौ पिच्छीधारी हैं इस वर्ष के चातुर्मास में दिगम्बर परम्परा में। ये एक हजार चार सौ पिच्छियाँ एकसाथ मिलकर, एक दूसरे के प्रति वात्सल्य के साथ रहें तो हमारी समाज दीपावली मात्र को दीपावली नहीं मनायेगी प्रतिदिन दीपावली मनायेगी।

सभी मुनिराजों ने जो साधना की है, उस साधना को साध्य की सिद्धि की ओर ले जायें। **दीक्षा जो है, आत्मशिक्षा के लिए है। दीक्षा जो है प्रवज्या, वह निर्वाण के लिए है, निर्माण के लिए नहीं है। कर्मों का निर्माण बन्द हो और मोक्ष यानि निर्वाण की प्राप्ति हो।** शुभ भावना के साथ अपने जीवन में जो व्रत आपने लिये हैं, बहुत बड़े तपस्वी बन सको या न बन सको, परन्तु ज्ञानी! जो व्रत लिये हैं उनमें कमी नहीं आनी चाहिए।

माँ से बेटे ने कहा, 'माँ! मुझे समरभूमि में जाना है।' माँ ने कहा, 'बेटा! अभी तू बालक है। अभी मत जा।' नहीं माँ! सिंह कितना ही छोटा हो, लेकिन गज के दाँतों को तो खींच ही लेता है। माँ धीरे-से कहती है, 'पुत्र! यदि नहीं मानते हो, तो जाओ। समरभूमि में जाना, वीरगति को प्राप्त हो जाना, लेकिन युद्धक्षेत्र से पीठ दिखाकर मत आना।

ऐसे ही माँ जिनवाणी कह रही है कि हे श्रमण! तुम समरभूमि में आये हो, सल्लेखना-मरण कर लेना, लेकिन पीठ दिखाकर घर की ओर मत आ जाना।

मुझे पता है '**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' किसी को याद हो या न हो। मैं इसलिए शिष्य बनाऊँ कि मेरा नाम चलेगा, तो मुझे मालूम है कि तीर्थंकर के बाद अनेक चौबीसियाँ हो गईं, उनके नाम नहीं चले, तुम मेरा क्या नाम चलाओगे? मेरा नाम नहीं चलाना। तुमने अपने जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए दीक्षा ली है। ज्ञानियो! न विशुद्धोदय बनाना न विशुद्धगिरि बनाना। तुम ने अपनी आत्मा के कल्याण के लिए दीक्षा ली है, उसी के कल्याण में लगे रहना।

एक लक्ष्य हो। मेरी भावना अंतरंग में यही है आप सब के प्रति कि बोधि की प्राप्ति हो समाधि की प्राप्ति हो। जो हमारे आचार्य मेहनत करके जिनवाणी लिख कर गये हैं उस श्रुत का प्रचार करना और निर्दोष संयम का पालन करना।

जैसे कि देश का तिरंगा नीचे न होने पाये, ये हर नेता से कहा जाता है, यही दृष्टि हमारी '**मोक्षमार्गस्य नेतारम्**' के लिए है। ये भगवान् तीर्थंकर ध्वज पीछी है, जिनमुद्रा है। इसकी शान नीचे न होने पाये, बस इतना ही ध्यान रखना। आशीर्वाद इतना ही है। ज्ञानियो! सभी भावनायें भायें कि धन्य हों वे माता-पिता जिन्होंने अपने

कुल में ऐसे सन्तान को जन्म दिया। कामपुरुषार्थ का फल भी जिनका धर्मपुरुषार्थ में बदल गया है।

माताओ! यदि तीर्थंकर को जन्म देने की सामर्थ्य पंचम काल में नहीं है तो ऐसे भाव बनाओ कि हमारे घर में भी एक-एक बालक मुनिराज बने। एक घर में रहे, तो एक भगवान् तीर्थंकर के शासन को चलाये। इनको देखकर कैसा लगता है? आपको बुरा लगता है क्या? अच्छा लगता है न? तो आज नियम ले लो कि अपने घर में भी एक-एक मुनि बनायेंगे। यानि घर-घर में मुनिराज हों, घर-घर में आर्यिकाएँ हों। जिनशासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

"धन परलोक में साथ नहीं जाता"

को वा वित्तं समादाय, परलोकं गतः पुमान्।
येन तृष्णाग्निसंतप्तः कर्म बध्नाति दारुणम्॥ सा. स. 238॥

अन्वयार्थ—कः वा पुमान् = कौन ऐसा मानव है जो **वित्तं समादाय** = धन को साथ लेकर **परलोकं गतः** = परलोक गया है। **येनं** = जिस कारण से **तृष्णाग्नि संतप्तः** = यह जीव तृष्णा की आग से जलता हुआ **दारुणं कर्म बध्नाति** = तीव्र कर्म बाँधता है।

भावार्थ—अहो ज्ञानी! ऐसा कौन मानव है जो धन साथ लेकर परलोक गया हो जिस धन के कारण यह प्राणी तृष्णा की अग्नि से जलता हुआ तीव्र कर्म बाँधता है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में कह रहे हैं कि यदि संसार में सबसे बड़ा अनर्थ करने वाला कोई है तो उसका नाम परिग्रह है। जहाँ-जहाँ विकल्प है, जहाँ विसंवाद है। जहाँ-जहाँ विवाद है, क्लेष हैं, उन सबका सुन्दर साधन है 'परिग्रह।' परिग्रह के राग में जीव इतना लिप्त हुआ है कि निज के प्राणों का भी वो विकल्प नहीं करता, प्राणों की भी चिन्ता नहीं करता है।

कहाँ-कहाँ जाकरके द्रव्य को खोज कर रहा है। द्रव्यदृष्टि होती तो दुनियाँ द्रव्यदृष्टि न होती। और जिसकी द्रव्यदृष्टि है, उसके पास कोई द्रव्यदृष्टि नहीं है।

एक द्रव्यदृष्टि आत्मद्रव्यदृष्टि, दूसरी द्रव्यदृष्टि यानि परिग्रह। कितने-कितने राजे-महाराजे हुए, मात्र श्री के पीछे पर्याय का नाश किया है।

लोभकषाय से प्रेरित ये परिग्रह संज्ञा एकन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के लिए क्लेश प्रदान कर रही है। एक इन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव के अन्तस् में परिग्रह संज्ञा विद्यमान है। और सबसे प्रबल कोई कषाय है, उसका नाम है लोभ।

प्रथम गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक चलनेवाली कोई कषाय है, उसका नाम है लोभकषाय। जगत् में किसी को भूत लग जायें तो उस भूत को भगानेवाले तन्त्रवादी मिल जायेंगे, लेकिन भूत भगानेवाले के अन्दर भी भूत लगा है, उसका नाम है लोभ।

वो कहता है कि मैं भूत भगाऊँगा, तुम मुझे कितना पैसा दोगे। मन्त्रवादी के पास भी भूत लगा है लोभ का, तन्त्रवादी के पास भी भूत लगा है लोभ का। दूसरे के शनिग्रह को उतारने के लिए यदि कोई जीव पहुँच गया है, उसको भी लगा है महाशनिग्रह लोभ।

ग्रह से पीड़ित लोग परिग्रह को छोड़ दें, तो सारे ग्रह अपने आप समाप्त होते हैं। कर्मसिद्धान्त को भूला प्राणी जगत् के ग्रह आदि के विकल्पों से बुद्धि को भ्रष्ट कर रहा है, कि अमुक ग्रह से ऐसा होगा अमुक ग्रह से ऐसा होगा। ज्ञानी! कर्मसिद्धांत पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है। संसार में चाहे अग्नि झुलसाये चाहे पानी बहा ले जाये, चाहे तूफान में तुम चले जाओ, चाहे कोई साँप काट ले, चाहे व्यन्तर लग जाये, सबके बीच में कोई महान् शक्ति है तो उसका नाम है कर्मोदय। कर्म उपशमन की विद्या का आपको बोध है तो जगत् में कहीं कष्ट नहीं है। जिसको कर्मसिद्धांत का बोध नहीं है, कर्म को हटाने की विद्या नहीं है, तो फिर आप सब जगह चले जाना, कहीं सुख नहीं है। कितने-कितने स्थानों पर जाकर आप आ चुके हो। भैया! कितने-कितने स्थानों पर जाकर भटक चुके हो।

प्रतिष्ठाचार्य जी! लोग आपको बुलाते हैं, तो भगवान् की प्रतिमा को भगवान् का मूर्तरूप देने के लिए भागवत् करने बुलाते हैं। उनका यही लक्ष्य होता है कि तुम अच्छे से भगवान् से भगवान् बना देना जिससे मेरे घर में श्री बढ़ जाये। मित्र! आपका लक्ष्य है कि ठीक है, मेरा क्या जाता है? तेरी श्री बढ़े या न बढ़े, मेरी थैली तो बढ़ेगी। मैं भी कर लेता हूँ, श्री बढ़ जायेगी। हे जीव! ध्रुव सत्य ये है, कि साता का उदय होगा, लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा, तो अपने आप श्री बरसेगी। श्री जी पर श्रद्धा है, तो आपको उनसे श्री माँगने की आवश्यकता नहीं है।

ज्ञानियो! तभी तक विद्वत्ता, विवेक, चारित्र है जब तक लोभकषाय से पीड़ित नहीं हुआ है।

तभी तक तुम्हारे जीवन में चारित्र है, तभी तक तेरे जीवन में संयम है, जब तक लोभकषाय से पीड़ित नहीं हो। जैसे ही लोभकषाय से पीड़ित होता है मनुष्य तो उसके सारे ज्ञान-विज्ञान समाप्त हो जाते हैं।

मुमुक्षु! धर्म के स्थान पर भी व्यापार कर लेता है। अरिहन्त भगवान् की भक्ति के उद्देश्य से आया पुरुष भी वहाँ पर व्यापार कर लेता है।

तटस्थ होकर सुनना और अन्तस् में प्रवेश कर जाओ। हे धन! तेरे राग में, हे लोभ! तेरे उदय में मैंने क्या-क्या अनर्थ नहीं कर दिये? जब लोभकषाय की तीव्रता होती है तो भगवान् की पूजा करने गया पुरुष भी चावल भी गिनती कर चढ़ाता है। आप विश्वास करना, एक बादाम के दो भाग करेगा। अखण्डित द्रव्य भी नहीं चढ़ा पाता है, खण्डित कर लेता है। लोभकषाय की महिमा तो देखो।

एक सुपारी के चार विभाग कर लेगा, अखण्डित फल भी नहीं चढ़ा पा रहा है। कल पुनः काम में आयेंगे। लोभ के उदय में आकरके जो अकरणीय कार्य हैं वो भी कर लेता है। अकरणीय कार्य को भी करने के लिए तैयार है जो तुम्हारे कुल में सम्भव होना ही नहीं चाहिए था। ऐसे लोग भी मिल जायेंगे जिनके घर के बाहर ब्यूटीपार्लर लिखा रहता है। ऐसे घर के द्वार भी मिल जायेंगे जिनके आगे कौन-कौन सी दुकान के नाम मिल जायेंगे। किसके राग में हो रहा है? ये लोभकषाय, अर्थ दृष्टि। क्या सारा पैसा लेकर जाओगे साथ में? विश्वास रखना, एक कफन का वस्त्र आयेगा वो भी तुम्हारे कमाये का नहीं होगा। जो तुम बनाकर रख गये, वो दूसरा यानि नया खरीद कर लेकर आयेगा। तुम्हारे कमाये का तो कफन भी लेकर नहीं आयेगा। किसके लिए कमा रहा है? दूसरा लेकर आयेगा कफन। इसलिए आचार्यभगवन् कह रहे हैं, हे जीव! **"को वा वित्तं समादाय परलोकं गतः पुमान्?"** ऐसा कौन-सा पुरुष है जो धन को साथ लेकर परलोक गया हो? मेरे मित्र! जीवन जीने के लिए बहुत नहीं चाहिए, जीवन दिखाने के लिए बहुत कुछ चाहिए। मकान के नीचे रहता है कि कंगूरे पर रहता है? कंगूरे बनाने का उद्देश्य क्या है? मकान

के अन्दर कमरे में रहता है कि बेलबूटों पर रहता है? पर उनको बनाने की आवश्यकता क्या है? बोले, महाराज! जब तक ये सबकुछ नहीं होगा, तो लोग कैसे समझेंगे कि ये जैन का भवन है।

मेरे मित्र! ये जितने कंगूरे बनाये हैं, ध्रुव सत्य है, आप उसके लिए अपनी व्यवस्था करके जा रहे हो। धन के तीव्र राग में आर्त्तध्यान से मरण हो गया तो कहीं पशु पक्षी बन गया, कौवा ही बन गया, तो मेरे घर की मुझे याद सतायेगी तो मैं कंगूरे पर बैठकर देखकर तो चला जाऊँगा। ये अपनी व्यवस्था करके जा रहा हूँ।

आगम के विषय को समझो। देश-प्रदेश का राग आत्मप्रदेश से भिन्न कर देगा। जिन-जिन को अपनी अन्तिम श्वास की चिन्ता हो, वे आज से ही निवास करने के लिए तो रहना, पर उसमें निवास करता रहे सो मत रहना। विहार करते रहना, विचरण करते रहना। क्षेत्र का भी ध्यान रखना। तीन लोक में ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहाँ इस जीव ने जन्म-मरण न किया हो। हे जीव! तूने एक-एक प्रदेश पर क्रमशः जन्म-मरण किया, क्रमविहीन हो गया तो गिनती के बाहर गया। ये क्षेत्र परावर्तन किया है तुमने। पर जीव की दृष्टि है कि जितना द्रव्य हो, सब मेरे पास हो। ज्ञानियो! कुछ भी नया नहीं है। जो तुमने भोगा है, वो बाहर आया है। जो बाहर गया है, वो पुनः परिवर्तित होकरके आपकी थाली में आया है। जगत् में कोई द्रव्य तुम्हें नया भोगने को मिला ही नहीं है, मिलेगा भी नहीं।

माँ ने बेटे से भी छल किया है, बेटे ने माँ से भी छल किया, पैसे के पीछे। पिता को भी धोखा दे दिया था पैसे के पीछे। क्या किया था? याद करो, जो फीस के नाम पर पैसे माँगे थे, उससे सिनेमा हॉल में बैठा था। मेरे मित्र! शान्त होकरके जीवन की धारा में चलो। कभी जीवन में प्रतिक्रमण भी कर लिया करो। क्यों ज्ञानी! जन्म देनेवाले पिता के साथ क्या मायाचारी नहीं है?

मेरे मित्र! ये मायाचारी तुझे तिर्यंच गति में नहीं ले जायेगी क्या?

भैया लोग यही समझते हैं कि विद्यार्थीजीवन का पाप ये कोई पाप नहीं होगा। क्या बच्चों का पाप 'पाप' नहीं होगा? क्या पिता से किया हुआ पाप 'पाप' नहीं

होगा? माँ! बेटे के साथ की गयी मायाचारी क्या पाप नहीं होगी?

स्वयं हृदय को टटोलो, निहारो, धन के पीछे मायाचारी का परिणाम कितने किये हैं। जब से तुमको समझ आयी है, तब से आज तक का चिन्तन करना।

नदी कभी स्वच्छ पानी से नहीं भरती और सागर भी स्वच्छ पानी से नहीं भरता। जो घर की नालियों का पानी नालों में पहुँचे, नालों का पानी नदियों में पहुँचे, उससे नदियाँ भरी हुई हैं। फिर नदियों का पानी समुद्र में पहुँचा, उससे समुद्र भरा हुआ है।

जितने धनपति आपको दिख रहे हैं, स्वच्छ पाताल तोड़ पानी से भरे हुए नहीं हैं। ये नदी,नालों का ही पानी है। स्वच्छ सरोवरों से सागर नहीं भरते। ज्ञानियो। स्वच्छ सम्पत्ति से अरबपति खरबपति नहीं बन पाते हैं। कितने छल-कपट करके तुम घर में लेकर आये हो। रख जाओ कमाकर, कहीं ऐसा नहीं हो जाये कि मधुमक्खी की अवस्था को प्राप्त हो जाये। करुणा आप पर इस बात की आ रही है कि दीनबन्धु कहीं मधुमक्खी जैसा हीन न हो जाये।

कई किलोमीटर दूर से पराग को खींच कर लाती है। नाना प्रकार की वनस्पतियों से, पुष्पों से पराग लेकर आती है और संग्रहीत करती है छत्ते के अन्दर। पर पराग के राग में प्राण भी जाते हैं। पहुँचा कोई बहेलिया, उसने छोड़ दिया पानी और फिर लगा दी आग, तो साथ में जला दिया, नष्ट भी कर दिया।

सात गाँव जलने पर जो हिंसा लगती है एक बूँद शहद का उपयोग करने वाले को उतनी हिंसा का दोष लगता है।

जीवन में कम-से-कम इतना ही नियम ले लो कि ऐसे द्रव्य का सेवन नहीं करेंगे। क्या उसमें आ रहा है? वो छत्ते को पकड़ कर निचोड़ देते हैं। जो मक्खियाँ थी, उन सबका कलेवर साथ में निचुड़ चुका है। आपकी सम्पत्ति को कोई छीन लेगा तो कैसा लगेगा? उनकी पूरी सम्पत्ति को आपने छीन लिया।

मनुष्य कितना स्वार्थी है। कितने आज से मधु का सेवन किसी भी प्रकार से नहीं करेंगे अपने जीवन में? किसी प्रकार से भी नहीं करेंगे, चाहे वो आई ड्राप क्यों न हो। पहले से त्याग है, बहुत अच्छी बात है। त्याग पर भी त्याग करो।

आपको मालूम है मुनिराज आहार करने के बाद तुरन्त प्रत्याख्यान कर देते हैं। लेकिन फिर भी कहीं जंगल में प्रवेश कर रहे हों, नदी को पार कर रहे हों, ऐसे समय सल्लेखना ले लेते हैं।

प्रत्याख्यान के भीतर प्रत्याख्यान। कहीं पानी के वेग में बह गया जीव तो सल्लेखनापूर्वक तो जायेगा। जंगल में खूँखार जानवर थे, किसी ने आक्रमण कर दिया तो मैं जाग्रत होकर जा रहा हूँ। शरीर को ही खा सकेगा, मेरा आत्मा को नहीं खा सकेगा। आज तो रोड़ पर विहार करते हुए भी प्रतिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यान करके चलना चाहिए। मित्रो! इतनी छोटी-सी बात मेरी मान लो, घर की देहरी से बाहर निकलो, तो पहले अपनी बेटा, बेटी, पत्नि से और माता-पिता से क्षमा माँग कर निकलना।

आ सका तो मिल लेना, नहीं आ सका तो जा रहा हूँ, क्योंकि आज पिता के पैर छूकर गया बेटा शाम को घर लौट कर आये, ये नियम नहीं है। विक्षत शरीर घर में पहुँच जायेगा। ये वाहन नहीं हैं, ये यमराज के विमान हैं। प्रतिदिन आप सुन रहे हो कि नहीं सुन रहे हो? **सत्पुरुष वही है, जो जाग्रत होकर जीवन जी रहा है।** ठीक है, रोड़ पार कर रहे हो तब भी संयम लेकर रोड़ पार करना और जहाँ तक हो घर में भोजन एक स्थान पर कर लेना और मुखशुद्धि करके तुरन्त त्याग कर देना। ये समाप्त करो कि चलते-चलते बकरियों—जैसे, पशुओं—जैसे चबाता रहे और उसी बीच में धक्का लग गया किसी वाहन का तो मालूम चला बेचारा खाते-खाते चला गया। जिस सामग्री को वो खा रहा था और लिप्सा में खा रहा था, उसी लिप्सा में तेरी मृत्यु हो गयी और आयुकर्म उसी अन्तर्मुहूर्त में हुआ, तो मालूम चला कि उसी भोजन में जाकर कीड़ा हो गया।

ये सिद्धान्त का नियम है। उसी भोजन में जाकरके कीड़ा हो गया। लिप्सा है, लिप्सा। क्या किया धन के राग में? पैसा चाहिए, दुनियाँ से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम जगत् से गरीबों से पेट का छीन-छीन कर ला रहे हो, चूस-चूस कर खा रहे हो और घर में रख जाओ, परन्तु भाग्य तेरा नहीं होगा, जैसे मक्खियों को प्राण भी गँवाने पड़ गये और द्रव्य भी गया। किसी ने डाका डाल दिया, वो प्राण भी

ले जाये धन भी ले जाय। तेरे साथ क्या गया? जो परिणाम उस दशा में थे वो तेरे साथ जायेंगे, बाकी तेरे साथ कुछ भी नहीं गया। ये सत्य है कि नहीं? मधुमक्खी—जैसी अवस्था हो गयी। पता नहीं कौन से क्षण बहेलिया आकरके छत्ते को तोड़ जायेगा।

ज्ञानी! मालूम नहीं, कब यमराज बहेलिया आ जाये और छत्ते को तोड़ कर चला जायेगा और तुम चले जाओगे, मात्र धन रखा रह जायेगा। जैसे शहद चखने वाले कोई दूसरे होते हैं और संग्रह करने वाली मक्खियाँ होती हैं, ऐसे ही सन्तान अपना वंश परिवार नगर के लोग पता नहीं कौन आकर चखेगा, तुम तो मात्र जोड़ कर रख जाओगे। रुक जाओ। ये किसी का विषय मत बनाओ, अपना विषय बनाओ। जब लोभकषाय तीव्र आती है, परिग्रह संज्ञा सताती है, उस समय व्यक्ति पूरा विवेक खो देता है। तत्त्व का निर्णय ठण्डे मस्तिष्क मात्र से ही होता है। सत्य का निर्णय ठण्डे मस्तिष्क से ही होता है। गर्म मस्तिष्क में, आवेग में आवेग किसी भी कषाय का हो, वो सत्य का बोध होने नहीं देगा।

मेरा विद्वानों से कहना है भैया! जब भी आप तत्त्व का निर्णय कर पायेंगे, बिल्कुल शांत मस्तिष्क रखना पड़ेगा। किसी भी विषय की संज्ञा सता रही है, नाम संज्ञा भी सता रही है, तब भी आपको सत्य का बोध नहीं होने देगी।

गहरे तत्त्वनिर्णय करना चाहते हो, तो बिल्कुल शान्तचित्त होकर के ही कर पाओगे। मस्तिष्क में कोई भी पक्ष घूमेगा, वहाँ सत्य गायब हो जायेगा। क्योंकि पक्ष में सत्य नहीं है। सत्य जो है, पक्षातीत है। जो पक्षातीत सत्य है, वो ही समयसार है। सत्य पक्षातीत है।

नदी का दायाँ तट पानी नहीं होता, नदी का बायाँ तट पानी नहीं होता। दायाँ-बायाँ तट से रहित जो मध्य में बह रहा है, उसका नाम पानी है।

यदि अपको विश्वास न हो तो यमुना नदी में जाकर देख कर आओ कि दायीं ओर का तट पानी है कि बायीं ओर का तट पानी है? मध्य में जो बह रहा है, उसका नाम पानी है। सत्य है, वो किसी पक्षों में नहीं होता है। पक्षातीत है, उसका नाम सत्य है। सत्य का अन्वेषण करना चाहते हो, तो सबसे प्रबल पक्ष जगत् में है, उसका नाम धन है। उस धन के पक्ष से दूर होना पड़ेगा।

क्या कारण है, आचार्यों के ग्रन्थों को ही क्यों प्रमाणित कहा गया? जो लोभी होगा, गृहस्थ होगा, वो लोभ में आकर कुछ भी लिख सकता है, राग में आकर कुछ भी लिख सकता है।

किसी ने कह दिया कि ऐसा लिख दो तो उतना मिलेगा आपको, तो हाँ, लिख सकता हूँ। आप अमुक व्यक्ति के विरोध में बोलें, मैं इतना दूँगा। हाँ, बोल सकता हूँ, लिख भी सकता हूँ।

यदि आपसे ऐसा नहीं होता, तो आप अपने प्राणों की चिन्ता रखना। धन के वेग में भयभीत पुरुष कभी सत्य नहीं बोल सकता। जिसने निर्णय कर लिया है कि मेरे जीवन की अन्तिम श्वास अरिहन्त के नाम के साथ निकलेगी, अब मुझे मृत्यु से डर नहीं है, वो ही सत्य बोल सकता है और जिसको मृत्यु से डर है, वो कभी सत्य बोल ही नहीं सकता।

ये जीवन में ध्यान रखना, मृत्यु से डरनेवाला सत्य नहीं बोल सकता। क्रोधी, लोभी, भयभीत पुरुष सत्य नहीं बोल सकता और राग/कषाय से युक्त सत्य नहीं बोल सकता है। इन सबका त्यागी होगा, निर्लोभी होगा, विकारी भावों से च्युत होगा, आकिंचन धर्म पर दृष्टि है, वो ही सत्य की प्ररूपणा कर सकेगा। जगत् में जितने पक्ष हैं, तट हैं, इन सारे पक्षों/तटों ने व्यक्ति को सत्य से दूर रखा है।

धन्य हो उन वीतरागी श्रमणों को जिन्होंने एक कमर के वस्त्र की गाँठ को बाँधने के समय को भी नष्ट समझा हो। समझ में आया? कमर के नाड़े की गाँठ बाँधने में जो समय हो, उस समय को बर्बाद समझा हो। मैं उस लफड़े से भी दूर हो गया हूँ। उस कपड़े को फेंक दो, क्योंकि गाँठ बाँधने का समय भी मेरा नष्ट न हो।

बटन लगाते समय जो समय तुम्हारा व्यतीत हो रहा है, वो समय है कि नहीं? सोचो, दिगम्बर मुनि का उद्देश्य क्या है? नंगे होकर रहना उद्देश्य नहीं है। शर्ट के बटन लगाने में जो समय नष्ट हो रहा था, वो समय की मैं रक्षा करना चाहता हूँ। वस्त्रों को शरीर पर धारण करने में जो समय नष्ट होने वाला था, मैं उस समय को भी नष्ट करना पसन्द नहीं करता हूँ। इतनी जागृति जिसकी हुई, वही वीतरागी दिगम्बर तपोधन होगा। कहाँ मठ, कहाँ मन्दिर, धर्मशाला? कुछ नहीं।

"को वा वित्तं समादाय"

ज्ञानियो! धन को ग्यारहवाँ प्राण कहा है आगम में। पण्डित! बड़े सँभल कर सुनना, क्योंकि आप लोग गृहस्थ हो, इसलिए आप जितने अच्छे से जानते हो उतने अच्छे से मुझे भी मालूम नहीं होगा। हे मुनिराज! किसी के दान देने भी बलात् प्रेरित नहीं करना।

बोलकर एक लाख आयेगा, दो लाख आयेगा तो साथ में सोचकर भी आयेगा कि इतना पैसा मैं कहाँ से निकालूँगा। तो कहीं-न-कहीं वस्तु में पानी मिलाना ही पड़ेगा।

ये तो दृष्टांत था। कहीं-न-कहीं दूसरे के लिए माँगने जायेगा। किसी की जेब को खाली करने जायेगा-ही-जायेगा। महाराज! सुनो, आपका बोलना हुआ तो उसने हाँ बोल दिया, विश्वास रखना, कहीं-न-कहीं से कमाकर जीव लायेगा। आप ये मत कहना मैं थोड़े-ही कुछ कर रहा था, मैंने थोड़े-ही आरम्भ-सारम्भ किया था। लेकिन जिस वस्तु की प्राप्ति बिना आरम्भ-सारम्भ के नहीं हो सकती है, उस वस्तु की आकांक्षा आप कर रहे हो, तो तज्जन्य दोष आपको नियम से लगेगा। जिनमुद्रा की व्याख्या कर रहे हैं तो, ज्ञानी! विषय ये है कि यदि स्वयं के लिए आवश्यकता नहीं थी, तो माँगा क्यों? ज्ञानी! सुखमय जीवन के लिए निर्ग्रन्थ दशा पर चिन्तन कर लिया करो।

निर्बन्धदशा पर चिन्तवन है तो जितने प्रकार के आस्रव के हेतु बनते हैं, उन सबसे ज्ञानी दूर रहें। मेरा तो उद्देश्य है, हर्ष में रहता हूँ। पण्डित जी साहब! जब योगियों के पास जाना, उनके चरणों में सिर टेकना, मित्रो! किसी प्रकार की भी अपेक्षा नहीं रखना उनके यहाँ, कि मेरे लिये बोल दो, कि मेरे लिए व्यवस्था बने। ये विषय यहाँ तक ही मत छोड़ना। जब-जब गोष्ठी में जाओ, मीटिंग में विषय को रखो। जिस मुद्रा को हम पूज रहे हैं, कहीं उस मुद्रा को भिखारी तो नहीं बना रहे हैं? ये भी एक विषय तुम रख सकते हो, कोई नाराज हो तो हो जाने दो, पर जो है सो है। पर विद्वानों के बीच में कहना, 'विद्वानो! जिस मुद्रा को तुम पूज रहे हो, निष्परिग्रही है, अयाचक है। अयाचकता के नाम पर तुम अर्घ चढ़ा रहे हो,

कहीं अपने स्वार्थ में हम उसको भिखारी तो नहीं बना रहे हैं?

एक भिखारी झोली फैला कर माँगने जाता है गाँव-गाँव में। तुम मुख से माँग कर मुझे दिलाओगे महाराज! अन्त में होगा क्या? तुम्हारी अयाचक वृत्ति का क्या होगा? जितने मैटल पेपर पर विद्वानों के परिषदों के सम्मान लिखे जाते हैं नई-नई रूपरेखा बनायी जाती है साल में, ये भी रूपरेखा में लिखा होना चाहिए कि मैं किसी महाराज को अपने सम्मान के लिए भिखारी नहीं बनाऊँगा।

माना कि ये भैया! आगरा से ग्वालियर गया कोई काम से। कमेटी ने इतना कह दिया भैया। ग्वालियर में कोई काम है मन्दिर का, कर के आना। मुस्करा दिया, 'बिल्कुल करके आऊँगा।' हे धन! धिक्कार हो तुझे। भैया ने जाकरके भोजनालय में भोजन किया, उसका बिल बनाकर उसने दे दिया मन्दिर कमेटी को। भाई! मैं यहाँ से गया था मन्दिर के काम से, इतना खर्च हुआ है।

मेरे मित्र! घर में रहता तो उपवास करता क्या? तू भगवान् के मन्दिर के लिए इतना भी न कर सका। एक गिलास पानी भी पिया, वैसे ज्ञानी नल का पानी पी लेता, लेकिन उस दिन उसने बोतल खरीदकर पानी पीया था और उस पानी का भी बिल दे दिया। मुस्कराता है, किस बात पर? क्योंकि अच्छा हुआ, कम-से-कम मेरा खर्च तो निकल आयेगा। ज्ञानियो! मन्दिर के काम से, मुनिराजों के काम से यदि आप मुनिसंघ की अगवानी के लिए पहुँचे, निमन्त्रण देने पहुँचे, क्या उस दिन आप घर में उपवास करते? नहीं करते। यदि आपने मन्दिर के बिल का जीवन में, स्वप्न में भी, भोजन किया हो मित्र! आज तुम्हारे पास शक्ति है, आँख बन्द होने से पहले वो द्रव्य दान में कर देना। आज तुम्हारे पास सामर्थ्य है, कल विवेक भूल गये, सामर्थ्य नष्ट हो गयी। ये आगरा की चर्चा नहीं चल रही है। वो ज्ञानी बैठा है, पारस चैनल देश में बताने वाला है। मालूम, भैया! इस पारस के माध्यम से कितने लोग प्रायश्चित लेकर गये मुझसे। बोले, महाराज! मुझे नहीं था मालूम। मैंने पारस चैनल पर सुना प्रायश्चित लेने आया हूँ। मैंने ऐसा दोष किया था, प्रायश्चित दे दो। पता नहीं था स्वामी! पाप पड़ता है। अभी भी देखना, आँख डबडबा रही हैं कि ऐसा तो बहुत सारे लोग कर चुके हैं। एक इलायची भी खाई है तो मन्दिर

के बिल में डाल दी है।

मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना जीवन में। धन को धिक्कार क्यों कहा जा रहा है? वो धन धिक्कार योग्य नहीं है, वो धन तो पुण्य से मिला है। हे ज्ञानियो! जैसे धन भरतेश चक्रवर्ती को पुण्य से मिला, उसने कैलाश पर्वत पर जिनमन्दिरों की स्थापना कर दी। चामुण्डराय को मिला, गोम्मटेश बाहुबलि स्वामी की स्थापना कर दी। उसका धन धन्यवाद का कारण बन गया। पापी का धन देखो, वो चूस-चूस कर लाया हो, विषय-कषाय में लगा दिया। धिक्कार हो ऐसे धन को।

आप हर जगह जाकर देखो कुलीन पुरुष की कुलीनता तभी तक है भैया! जब तक 'दे दो' शब्द नहीं होता। क्षत्रियपना तभी तक है, मेरे मित्र! जब तक 'दे दो' शब्द मुख में नहीं आया। जहाँ रसीद-कट्टा लेकर पहुँच गये तो लोग समझ जाते हैं कि आ गया भिखारी माँगने। चन्दा माँगने वालों का जितना अनादर होता है भावों से, वो जगत् में अन्य किसी का नहीं होता होगा। बोले, 'आ गया माँगने (लेने के लिए), अब देना पड़ेगा।' बोले, 'क्या करूँ?' भैया! **माँगन मरण समान है, मत माँगो कोई भीख। माँगन से मरना भला, यही सद्गुरु की सीख।** सुनाई पड़ रहा है, समझ में आ रहा है? दादा! ससुराल गये थे क्या? जीवन में ससुराल गये भी थे, रूठे भी थे। धिक्कार हो। भैया! अपने बेटे से कह देना, बेटा! मेरे कुल को कलंकित मत करना। वहाँ तुम भिखारीपन दिखाने मत जाना। बैठकर रूठ गया। क्यों, भोजन क्यों नहीं कर रहा है? धिक्कार होना चाहिए। सड़ी वस्तु के पीछे भोजन नहीं कर रहा है। सुन रहा है न ज्ञानी? ये पागलपन मत करना। माताओं की बातों में तो आना मत। उनकी बुद्धि छोटी होती है। छोटी-छोटी बातें सिखाकर भेजती, बेटा! वहाँ रूठना तुम। तभी ऐसा मिलेगा। यानि पूरे घर की कटा कर आ गया। भैया! सुनो, पुरुषबुद्धि से कर्म करो। कुलवन्त पुरुष की कुलीनता तभी तक जब तक 'दे दो' शब्द नहीं आता। साधु की साधुता तभी तक है, जब तक 'दे दो' शब्द नहीं आता है। मालूम आपको? दिगम्बर मुनि कभी भीख माँगने नहीं जाता, अंजुली लगाकर सिंह बन कर जाते हैं। अद्भुत मुद्रा होती है। कभी किसी से नहीं कहते कि डाल दो। बर्तन लेकर जाओ, कटोरा लेकर जाओ, भैया!

डाल दो। भरत कवि को भी लिखना पड़ गया 'पाणि-पात्र दिगम्बराः।' वे परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं, हे परमेश्वर! वो दिन कब आये जब मैं भी पाणिपात्र में आहार करनेवाला दिगम्बर मुनि बनूँ! **पाणि-पात्र दिगम्बराः।** जगत् में सबसे स्वाधीन मुद्रा।

अर्थ के पीछे अनर्थ। पर के साथ क्या छल किया? छल तो मैंने निज से निज के साथ ही किया है। कमाया तो बहुत था, पर ले तो कुछ भी न जा पाया।

'को वा वित्तं समादाय परलोकं गतः पुमान्।'

महाभारत के काल को, चाहे रामायण के काल को, चाहे ऋषभदेव के काल को निहारो। जितने-जितने महापुरुष भारत की भूमि पर हुए, सबको निहार लीजिए। जितना अर्जित किया था, उसमें से कितना साथ लेकर गये हैं?

इस वित्त को साथ में कौन ले गया? परलोकं गतः पुमान्! **हे ज्ञानी, हे मानव! ऐसा कौन-सा महामानव हुआ जो द्रव्य को साथ लेकर परलोक गया हो? कोई भी नहीं हो सकता है। जगत् में आज तक कोई नहीं ले जा पाया। सब मुट्ठी बाँध कर आये थे, हाथ खाली लेकर गये हैं।** लेकिन एक मैं ऐसा हूँ जो साथ लेकर जाऊँगा। विश्व में ऐसी किसी की ताकत नहीं है जो एक दाना भी लेकर जा सके। तृण मात्र भी लेकर जा सके। जब लेकर साथ नहीं जा पायेंगे, तो कम-से-कम सन्तोष के साथ जीना प्रारम्भ कर दो। दबाब किस बात का, टेंशन किस बात का, पागलपन किस बात का? **जो व्यक्ति अपने पुण्य से अधिक सोच लेता है, उसे ही तनाव या पागलपन होता है।**

ज्ञानी! आपकी माँ ने तुम्हें एक चादरा दिया और तेरे से कहा बेटा! सर्दी का मौसम शुरू हो गया है। मच्छर काटें तो भी उसका प्रयोग कर लेता है, सर्दी लगे तो भी उसका उपयोग कर लेता है। लेकिन तू इतना लम्बा है, चादरा छोटा था, ठण्डी लग रही, तू करेगा क्या? अच्छे से बोला। 'सिकुड़कर सो जाऊँगा।' गहरी बात है। चादरा छोटा है, ठण्डी का मौसम है और तू लम्बा है, तो सिकुड़ कर सो जाता हूँ। ऐसे ही मुमुक्षु! पुण्य तेरा छोटा है, इच्छायें बढ़ी हुई हैं, तो तू अपनी इच्छाओं

के पैरों को सिकोड़ ले तो सारे जगत् में तुझे कहीं विषय-कषायों की पापों की ठण्डी नहीं लग सकती है। कर्मों की ठण्ड से बच जायेगा।

विश्वास रखना, ज्ञानियो! हर व्यक्ति को अपना पुण्य समझ में आता है, हर व्यक्ति को अपना पाप समझ में आता है, हर व्यक्ति को अपना भाग्य समझ में आता है। भाग्य छोटा-सा है भावना इतनी बड़ी है। भावना इतनी हो नहीं पायेगी और भाग्य बढ़ा नहीं पाओगे, दुर्गति को प्राप्त हो जाओगे। प्रवचन की शैली को बदल दो, मानो मेरी बात।

ज्ञानी! सुना? कितना बढ़िया विषय है। **भाग्य छोटा है, भावना बड़ी है, भावना छोटी कर नहीं पा रहा है, भाव (भाग्य) बढ़ा पा नहीं रहा है, क्लेश करके आर्त्तध्यान प्राप्त करके दुर्गति को प्राप्त करेगा।**

विश्व में पागलों की संख्या मात्र इसलिए बढ़ गयी है, क्योंकि भाग्य छोटा है, भावनाएँ बड़ी हैं, भावना छोटी कर नहीं पा रहा है और भाग्य बढ़ा नहीं पा रहा है, सो बेचारा पागल हो रहा है। इच्छाओं को कम कर दो, इतना सीख लो, तो अभी भूत उतरता है पागलपन का। विश्वास मानो, उपेक्षा करना सीख लो। बहुत बड़ा मन्त्र सीख लो आज। क्या? उपेक्षा करना सीख लो। कल्याण तभी होगा, जब उपेक्षा करना सीख लोगे और उपेक्षा ही महासंयम है। बिना उपेक्षा के तो आप जी नहीं सकते हो। ज्ञान का फल क्या है? हान, उपादान, उपेक्षा।

हेय, उपादेय, उपेक्षा।

ये ज्ञान का फल है। ग्रही को ग्रहण करो, अग्रही को छोड़ दो और जो न ग्रहण है, न अग्रहण है, उसकी उपेक्षा कर दो।

आप यहाँ आ रहे थे, तो रास्ते में कितनी सामग्री दिखी थी तुझे। ज्ञानी रोते भी लोग मिले, हँसते भी लोग मिले। उन सबको तू देखना प्रारम्भ कर दे तो ज्ञानी! तेरी आँखें ही नहीं बचेंगी।

भैया! मैं जगत् को देखने लग जाऊँ, तो मेरी साधुजीवन की अनुभूति समाप्त हो जाये। क्योंकि जगत् में इतने दुःखी प्राणी हैं, सबके दुःख देखने बैठ जाओगे तो आप अपने सुख की अनुभूति नहीं ले पाओगे।

दया/करुणा करो, परन्तु उसमें रोने की आवश्यकता नहीं है। अपने सुख को अपने सुख में वेदन करो। ज्ञानी! दया भी करो, पर निज पर दया करके करो। करुणा करो, निज पर करुणा करके करो। ऐसा मत करो महाराज मैं बहुत कमाऊँगा, फिर दान करूँगा। ज्ञानी! क्या स्नान करने के पूर्व धूल में लोटने जायेगा? ऐसे ही वे जीव अज्ञानी हैं जो दान करने के लिए धन कमा रहे हैं। मुमुक्षु! कमाते-कमाते अन्तिम श्वास निकल गयी तो पाप कार्य में जायेगा। दान करने के लिए धन नहीं कमाना, जो तुमने कमाकर रखा है उसका दान कर देना।

जब अच्छी बोली लगाने आप खड़े होते हो, तो जिसके पास पैसा होता है वो तो मुस्कराता है। अन्दर की बात है। एक दिन बोली लगाने के पहले आप गरीब बन जाना। देश में जितने ट्रस्टी, मन्त्री, सन्तरी हैं सब ध्यान से सुनो। जो बोली लगाने जाता है, उसको पाप का आस्रव होता है। क्यों? बोली लगाने के पहले थोड़ा-सा गरीब बन जाइये। इतने गरीब बनना कि आप एक रुपये की बोली लगाने की सामर्थ्य नहीं रखते हो। पर मेरे मित्र! भावना यही है कि काश मैं भी पाण्डुकशिला पर श्री जी का अभिषेक कर लेता। ऐसी भावना होती है आपकी।

जब अमीर समाज कम बैठी हो और गरीब की संख्या ज्यादा बैठी हो, उस समय तुम बोली लगाओ। एक धनपति आकर बैठ जाये, विश्वास रखना, आप दृष्टि नीचे कर लेते हो क्या करूँ? काश मेरे पास पैसा होता आज मैं बोली लेकरके हाथी पर बैठ जाता। हीनभावना आयी है और उस हीन भावना से विशुद्धि का नाश हुआ है।

मेरे मित्र! वे वर्गणायें तुम्हें भी प्रभावित करेंगी। प्रभावित करती हैं। आप ये कहो कि मेरा उद्देश्य यह नहीं था। हाँ, आपका उद्देश्य नहीं था। एक उद्देश्य था कि मैं इन धनपतियों की भावना को उद्वेलित करूँगा तब पैसा आयेगा। विश्वास रखो, काययोग से भी आस्रव होता है, वचनयोग से भी आस्रव होता है, मनयोग से भी आस्रव होता है।

कितना सँभलकर जीने की आवश्यकता है, अपने आपको कितना समझाने की आवश्यकता है। आप सबसे मेरा कहना है कि कभी भी धार्मिक अनुष्ठान करो,

पर एक पक्ष अवश्य रखना, कि जिनकी सामर्थ्य न हो वे हमसे एकान्त में अवश्य मिल लें। कारण क्या है? ज्ञानी! सामूहिक कहोगे, ऐसी दया भी मत करना कि उनकी इज्जत ही नष्ट कर दो।

बहुत विवेक की आवश्यकता है। नहीं-तो तूने गरीब को भरी सभा में कहा कि मैं इस व्यक्ति को सहयोग कर रहा हूँ। मैंने आँखों से देखा है। एक पुरुष को एक नगर में हाथ-ठेला दिया गया। बेचारा जब सभा में आया, उसके दोनों आँखों से गंगा-जमुना की धार बह रही थी आँसुओं की। मैंने कमेठी से अकेले में कहा कि इसको तुम अकेले में भी दे सकते थे। महावीर-जयन्ती के दिन तुम सहयोग करने की बात कर रहे हो, बाहर का सहयोग हो गया, पर उसके अन्दर जो हीनभावना का उद्वेग हुआ था, उसको आप कहाँ समझ पाये?

चार गरीब माताओं को हाथ-सिलाई-मशीन दी। उसको भी तुमने बुलाकर के दिया है। क्यों न दीवान अमरचन्द बन जाओ एक दिन के लिए। जयपुर नरेश का दीवान अमरचन्द भेष बदल कर रात्रि में घूमा करता था। ठण्डी के मौसम में एक बुढ़िया साड़ी को फाड़करके बच्चे को लपेट रही थी। बालक भूख-भूख चिल्ला रहा था। 'मेरे राज्य में ऐसे गरीब भी हैं?' घर वापस गया, पोटली में अनाज और धन बाँधा, उसके अन्दर जवाहरात रख दिये और घर में रखकर आ गया और कहा माँ! सुबह इनको पीस कर के बच्चों को खिला देना।

माँ बुढ़िया ने जैसे-ही पोटली खोली उसके अन्दर हीरे-जवाहरात-मोती निकले तो बेचारी घबड़ा गयी, क्योंकि गरीब को कोई ये नहीं कहेगा कि कोई सहयोग कर गया है। हर कोई ये ही कहेगा कि कहीं डाका डाल कर आ गये हैं। बुढ़िया ने पीसा तो नहीं, पोटली को लेकर राजा साहब की सभा में पहुँच गयी, बोली—'महाराज! पता नहीं मेरे घर में कोई जवाहरात रख कर गया है। इतनी औकात कहाँ से थी?

राजा समझ गया कि कौन हो सकता है। वो हमारा दीवान अमरचन्द हो सकता है। ज्ञानी! देखो उस समय ऐसे महापुरुष हमारे देश में हुए। कोई बहुत पुरानी बात नहीं है।

यदि आपको सहयोग करना है समाज के अन्दर गरीबों की, तो ज्ञानी अमरचन्द बन कर करना। छपाने की भड़ास को निकाल दो। छिपाकर दान दे दो तो ज्ञानी! सिद्धशिला पर चले जाओगे तुम लोग। आज जरा-सा भी कोई कार्य होता है, बिना छिपाये तो कोई काम चलता ही नहीं है।

आप ही लोगों पर आँखें हैं देश की। मेरे मित्र! प्रतिष्ठाचार्य ऐसी वस्तु है जिसके हाथों में लाखों लोग रहते हैं। आप ऐसी ध्वनि गुंजायमान करो जिनवाणी की कि अरबपति-खरबपति बोली ले ले, पर साथ में अन्दर से विषय रखना भाई! गरीब शब्द मत बोलना, क्योंकि हीन भावना उसमें समाती है। इतना कम द्रव्य उनसे लेना, वे यह भी कहें कि मैं दान देकर इन्द्र बना हूँ। हीन भावना भी न आने पाये।

हर जगह व्यवस्था करो, क्योंकि आपके हाथ में है। कभी-कभी मालूम चला कि धर्म के स्थान पर कषाय की वृद्धि हो रही थी। ज्ञानी! मेरा नाम नहीं लिया आपने, अब मैं दान भी नहीं दूँगा। गरीब क्या कहता? भैया! अपनी सामर्थ्य नहीं है, चलो, बिना कुछ किये अपन तो गुल्लक में डाल कर आ रहे हैं।

पर मेरे मित्रो! देश में जितने जिनालय हैं, उन जिनालयों में जो गुल्लक रखी रहती है, कमेटी से बोलना, 'गोलक के पैसे का दुरुपयोग कभी मत करना। जो गोलक में पैसा आता है, वो चूसने वालों का नहीं होता है, वो उन लोगों का होता है जो कभी अहंकार की बोली नहीं लगा पाते हैं, भक्ति से डालकर आते हैं। उसका उपयोग श्री जी के मन्दिर में ही करो। कोई ढोलक-मंजीरे वाले माँसाहारी लोगों के लिए मत बर्बाद कर देना।

लोग ये जरूर कहते हैं कि महाराज! इतना बोल देते हो, क्या होगा? ज्ञानी! क्या होगा? कुन्दकुन्द स्वामी ने इतना बोला, तब लोग कितना पाल पा रहे हैं? इतिहास की पुस्तकें क्या आपने नहीं पढ़ीं? मैंने पढ़ी हैं, आपने भी पढ़ी होंगी इतना सारा तुम पढ़के जाते हो, तब लिखते कितना हो? विषय को समझो। हर विषय को श्री पर मत ले जाओ, श्रीजी की आस्था पर भी ले जाओ। भैया! इतना और ध्यान रखना, आप इतने भोले भी नहीं हो। तुमने इतना खर्च किया, कोई न

बुलाये तो दिक्कत सबसे बड़ी ये है। इतने भोले भी लोग नहीं। समन्वय बनाकर चलना पड़ेगा आपको।

ऐसा काम करना कि मन्दिर की व्यवस्था भी बनी रहे और अन्दर की व्यवस्था भी बनी रहे। ऐसा पुरुषार्थ करना।

सबकी भावना का ध्यान रखो, लेकिन भावना ऐसी हो कि कलुषित परिणाम न हो जायें। और उसमें क्या हो रहा है? कभी-कभी व्यवस्था भी आपको देखनी पड़ रही है क्या? जैसे-ही आपने ये कहा, फिर देखो शान्तिधारा के लोटों की क्या हालत होती है? जिस दिन आप बिना बोली के शान्तिधारा के लोटा को लेकर खड़ाकर दो, तो लोटा का पता नहीं क्या होगा, शान्ति तो भंग ही हो जाती है।

व्यवस्था समझना है, वही दृष्टि आपको समझना है, लेकिन व्यापार नहीं करना उद्योग नहीं करना। व्यवस्था तक सीमित रहो। वित्त को परलोक में कौन लेकर गया है? एक बहुत अच्छी बात समझना, धर्म के क्षेत्र में खिंचाव नहीं होना चाहिए। न सुधार के नाम पर खिंचाव लाओ, न बिगाड़ के नाम पर खिंचाव लाओ। कभी-कभी इतने सुधार में व्यक्ति चला जाता है कि अपने आप को खिंचाव में करके चेहरा उसका खिंच जाता है।

मैंने महाराजों को भी देखा है, विद्वानों को भी देखा है, सामान्य श्रावकों को भी देखा है, सुधार में इतने डूब गये कि ज्ञानी सुधार तो नहीं कर पाये, पर अपने आप में विचलित हो गये।

बहुत-बहुत समन्वय की आवश्यकता है। **आयुर्वेद की दृष्टि से कथन है कि जिसका कफ और पित्त का साम्य है, वे पुरुष समाज में, देश में राष्ट्र में शासन अच्छे से चला पायेंगे** और जिनका पित्त तीव्र है, जो मैंने कह दिया उसे अभी करो, उनका तो काम बिगड़ गया।

कफ-प्रकृति का जो पुरुष होगा, वो सुनने की क्षमता रखता है। इस बात को ध्यान में रखना। वो सुनने की क्षमता रखता है और सारे जगत् की सुनने के बाद फिर निर्णय लेता है।

वात प्रकृति से तो भगवान् बचाये। उसके पास एक ही विद्या है, मात्र

बड़बड़ा सकता है, कर कुछ नहीं सकता। प्रमादी होता है। पित्त प्रकृति जिसकी है, बुद्धि तीक्ष्ण होती है, मस्तिष्क बहुत तेज होता है, लेकिन किसी का प्रिय होकर नहीं रह पाता। क्यों नहीं रह पाता प्रिय होकर? क्योंकि उसका मस्तिष्क तेज रहता है, पर शीघ्र कोपित हो जाता है। इस विकल्प में बेचारे को कोई स्वीकार नहीं कर पाता।

इसलिए जैसे वात पित्त कफ इनका साम्य ही निरोग है, ऐसे ही सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र इनका साम्य ही मोक्षमार्ग है। इसलिए कह रहे हैं **'को वा वित्तं समादाय परलोकं गतः पुमान्।'** ऐसा कौन-सा पुरुष है जो वित्त को लेकरके परलोक गया हो? **'येन तृष्णाग्निसंतप्तः'** जिस धन के लिए तू तृष्णा की अग्नि में झुलस रहा है, ऐसे धन को ज्ञानी! तू कहाँ लेकर जा पाया? **'कर्म बध्नाति'**, मात्र कर्म ही बाँध सकेगा।

मेरे मित्र! यदि आप मुनिराज बनो, तो कभी झंझटों में मत पड़ना। इनकी व्यवस्था भंग होगी तो तुम्हारी व्यवस्था भंग कर देंगे। इसलिए पर व्यवस्थाओं से भिन्न होकर के 'जो है, सो है'।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सन्तोष की महिमा

तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति, हितं वा यदि वाहितं।
सन्तोषाञ्जन्मासाद्य, पश्यन्ति सुधियो जनाः॥ सा. स. 239॥

अन्वयार्थ—तृष्णान्धाः = जो मानव विषय-भोगों की व धन की तृष्णा से अन्धे हैं वे, **हितं वा यदि वा अहितं नैव पश्यन्ति** = न तो अपना हित विचारते हैं और न अहित को विचारते हैं, **सुधियः जनाः** = बुद्धिमान मनुष्य, **संतोषांजनंआसाद्य** = संतोष रूपी अंजन आँख में लगाकर, **पश्यन्ति** = अपना सच्चा हित देखते रहते हैं।

भावार्थ—हे भाव्यात्मन्! जो जीव तृष्णा से अन्धे हैं, वे हित और अहित को नहीं देखते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य ही सन्तोष रूपी अंजन लगाकर अपना सच्चा हित देखते रहते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मा के ध्रुव, परम शान्ति-संतोष धर्म की व्याख्या कर रहे हैं। यदि जगत् में कोई आनन्द है, तो मुमुक्षु! संतोष में है। जीव विस्तार में जितना जायेगा, उतना विकार में जायेगा।

जहाँ-जहाँ इच्छाओं का विस्तार है, वहाँ ज्ञानी! क्लेश का विस्तार है। जब भी अखण्ड शान्ति में प्रवेश करेगा, इच्छाओं को विराम देना ही होगा।

जितनी विशाल आकांक्षा है, उतनी विशाल असंतोषता है। असंतोषता का जनक यदि ब्रह्माण्ड में कोई है, तो आदमी की आकांक्षा है। निमित्तों को मत कहिये कि मुझे संक्लेशता का साधन हैं। संक्लेशता का वास्तव में कोई साधन है, तो वह तेरी आकांक्षा है।

किसी भी परनिमित्त का जन्म किसी की आत्मा में नहीं होता है। किसी में

नहीं होता है। किसी भी परनिमित्त का जन्म जीव के परिणामों में नहीं होता है। किसी भी परनिमित्त का जन्म हे जीव! तेरे अन्तस्करण में नहीं होता है। तेरे अन्तस्करण में जन्म हुआ है तेरी आकांक्षाओं का।

इस विषय को समझने की भी आवश्यकता है। जिसमें जिसका जन्म नहीं हो सकता, उसको उसमें उत्पन्न मान रहा है, ये तत्त्व की सबसे बड़ी भूल है। क्या तेरे अन्तरंग में भवन का जन्म होता है? क्या तेरे अन्तरंग में शत्रु का जन्म होता है? क्या तेरे अन्तरंग में मित्र का जन्म होता है?

आपके अन्तरंग में उत्पत्ति हुई है, मात्र कषायभाव की हुई है। उपादान दृष्टि को देखो। अन्तरंग जनक तेरा कौन है और तू किसका जनक है? जो जिससे उत्पन्न होता है, वो उसका जनक होता है। जो उत्पन्न हुआ है, वह सन्तान है। मित्र तू पर का जनक नहीं है, पर तेरे से हुआ नहीं है। तेरे भीतर जो उत्पन्न होता है, वह राग है, द्वेष है, क्लेश है, कषाय है।

तेरे भीतर जन्म किसने लिया है? बिल्कुल तटस्थ होकर समझना। आज तो जीव की यह भूल रही है कि मैंने पर को अपना कर्त्ता स्वीकार लिया है तो पर का मैं कर्त्ता बन चुका हूँ। इस कारण से आप निमित्तों को आँख उठाकरके अपनी आत्मा को आँच देते रहते हो।

इस आँच में आत्मा के विशुद्ध परिणाम झुलस रहे हैं। तूने दोष किसको दिया? **आत्माधीन दृष्टि ही नहीं गयी, निमित्ताधीन दृष्टि बनी रही। निमित्ताधीन दृष्टि ने क्या किया? मात्र क्लेश-ही-क्लेश उत्पन्न कराया है। आत्मशान्ति यदि चाहिए है, तो आत्माधीन हो जाओ और आत्मा में असंतोष उत्पन्न कराना है, तो निमित्ताधीन हो जाओ।**

वह धारा तुम्हारे पास है। अन्तरंग शान्ति चाहिए तो उपादान दृष्टि को निहारिये और संक्लेशता को प्राप्त करना है तो निमित्ताधीन हो जाइये।

ये ब्रह्मसूत्र है। इसे कोई टालकर व्यवहार कर नहीं सकता है। व्यवहार/लौकिक राग में, कषाय के राग में आप यह कह सकते हो कि निमित्त नहीं होता तो कैसे होता? मेरे मित्र! एक बार एक श्वास प्रमाण के लिए इतना चिन्तन कर लो कि

मेरे भीतर जन्म किसका होता है? फिर आगे की चर्चा प्रारम्भ करूँ। मुमुक्षु! तेरे भीतर जन्म किसका होता है? पैसे का जन्म होता है, कि लोभ का जन्म होता है? मेरे मित्र! तेरे भीतर जन्म पैसे ने लिया है कि लोभ ने लिया है?

हे जीव! तेरे भीतर लोभ नाम की वस्तु हट जाये, तो जगत् का कोई पैसा किसी काम का नहीं है। ज्ञानी! मेरे भीतर भूख नहीं है, द्रव्य सबकुछ अच्छे हैं, अन्तरंग में भूख नहीं है, तो सामग्री क्या करेगी?

जब भूख के अभाव में भोजनसामग्री कार्यकारी नहीं होती है, ऐसे ही लोभ के सद्भाव में मिट्टी का कण भी उसको परेशान करता है। पदार्थ का अभाव मत करिये, पदार्थ का अभाव कहीं नहीं हो सकता है। मेरे मित्र! विश्वास रखना, तू चाहे मैं निमित्तों का नाश करके रहूँगा तो तुम्हारे भीतर कषाय बैठी है। देश के किसी भी कोने में चले जाना, आपको वहाँ निमित्त मिलेगा।

देश के, विश्व के किसी भी कोने में चले जाना, जो भीतर भाव तेरे हैं, वो बैण्ड-बाजों की ध्वनि है। जब मन से बैण्ड बजता है, तो जैसा सोचो आपको वही आवाज सुनाई पड़ती है।

ऐसे ही जिस व्यक्ति के अन्तरंग में जो होता है, उसको वही लक्षित होता है। इसमें आप निमित्तों से दूर होने की बात मत करो। जिससे निमित्त प्रभावित हो रहा है और जिसे निमित्त प्रभावित कर रहा है, उस उपादान को ठीक कर लो।

जिस शरीर में तेल-मालिश नहीं है, धूल के कण क्या करेंगे? शरीर में तेल-मालिश नहीं है, अखाड़े में कूद जाना धूल के मध्य में, लेकिन धूल का एक भी कण चिपकेगा नहीं। तेल-मालिश करके जाओगे तो धूल चिपकना ही है। ऐसे ही जीव लोभकषाय की चिकनाई को हटा देगा तो जगत् का कोई परद्रव्य उसको चिपकने वाला नहीं है। लोभकषाय को लेकर चलेगा तो पग-पग पर जगत् का द्रव्य उसको सतायेगा।

सुखी होना चाहते हो तो आज से ऐसा भाषण करना बन्द कर देना कि महाराज श्री! सुखी होना चाहता हूँ। **मेरे मित्र! सुखी होने की आकांक्षा है, तो लोभकषाय को दूर कर दो, तो आज से ही तू सुखी हो जायेगा। आज ही सुखी है। चाहे**

सम्मान का लोभ हो, चाहे धन का लोभ हो, चाहे कुटुम्ब का लोभ हो, चाहे भोजन लोभ हो, चाहे आपको पंथ आम्नाय सम्प्रदाय का लोभ हो, जितने प्रकार के लोभ हैं, वे जीव को मात्र कष्ट देने वाले ही हैं।सुखी रहना चाहते हो, सुखी रहने की आकांक्षा है, तो लोभ छोड़ना ही पड़ेगा।

श्री के लोभ में महाभारत खड़ी करा दी। स्त्री के लोभ में रामायण खड़ी हुई है। रावण को स्त्री का लोभ नहीं होता तो क्यों राम से युद्ध होता? कौरवों को श्री से राग नहीं होता तो महाभारत (पाण्डवों से युद्ध) क्यों होता? आपके घर में कुछ हो रहा है, मैं आपकी बात नहीं कर रहा हूँ। जो है, सो है। सुनो आप ध्यान से। आपके घर में कुछ होता है विश्वास रखो, द्वन्द्व होते रहते हैं। श्री और स्त्री, ये दो आलम्बन छूट जायें तो आनन्द-ही-आनन्द है। लोभ दसवें गुणस्थान तक सता रहा है। लोभ (परिग्रह संज्ञा) जो है, वारहवें में नहीं पहुँचा और ग्यारहवें में पहुँच गया जीव तो उतनी ऊँचाइयों पर पहुँच करके नीचे आ जाता है।

प्रथम गुणस्थान से चतुर्थ गुणस्थान की प्राप्ति कितनी कठिन है? जिस जीव ने ग्यारहवें स्थान को प्राप्त किया हो, वो ग्यारहवें स्थान से नीचे गिर सकता है।

मेरे मित्र जब तक आँख खुली है तब एक बार मन भावों में लगा ले। भावों का वास्तु न बिगड़ जाये। मकान का वास्तु बिगड़ भी जाये तो कोई विकल्प नहीं है, पर भावना का वास्तु बिगड़ गया तो भव-भव में परेशान होना पड़ेगा।

भैया लोगों ने, विद्वानों ने ईंट-चूने के लिए तो इतने वास्तु बना कर रखे हैं, दुनियाँ के बहुत सारे साधन यन्त्र-तन्त्र सब सीख लिये हैं, लेकिन मेरे मित्र! एक बार भावों के वास्तु के लिए समाधितन्त्र लगा लो। जीवन में यदि आपको भावों का वास्तु ठीक करना है तो 'समाधितन्त्र' ग्रन्थ का स्वाध्याय कर लो। पढ़ने की दृष्टि से मत करना। जैसे प्रतिष्ठा शास्त्र आप इतनी लगन से पढ़ते हो कि कोई विधि न छूट जाये और विधि छूट जाये तो प्रतिष्ठाचार्य को नरक में जाना पड़ता है। आप लोग मत जाना। जो है, सो है। देखो, मैंने पहले प्रतिष्ठा ग्रन्थ पढ़ लिया, उसमें लिखा हुआ है, यदि लोभी प्रतिष्ठाचार्य है, कोई विधि छूट जाती है और यजमान

की धन-सम्पत्ति पाप का द्रव्य है, ऐसे प्रतिष्ठा करायेगा तो ज्ञानी! दोनों का काम बिगड़ जायेगा।

वे जीव धन्य हैं, जिनेन्द्र की एक प्रतिमा को विराजमान करते हैं। जब तक जिनबिम्ब रहता है, तब तक वहाँ जिनशासन रहता है। आज इस स्थान पर पारसनाथ जिनालय न होता तो आप लोग होते क्या? जहाँ जिनप्रतिमा स्थापित होती है, वहाँ जिनशासन स्थापित होता है।

जिस भव्य ने ये मन्दिर बनाया होगा, वेदी प्रतिष्ठा करायी होगी, वह कितना पुण्यात्मा जीव होगा। धन्य हों वे जीव जो बना गये अथवा बना रहे हैं। बढ़िया है।

ज्ञानी! हम बना न पायें कम-से-कम दर्शन करने ही चले जायें। भैया जीवन में कुछ न कर सके, तो जिनेन्द्र के चरणों में चले जाना। चौबीस घण्टे में एक बार भगवान् के दर्शन कर लेना।

भैया! टी. वी. के चित्रों से व्यक्ति प्रभावित हो जाता है, तो अरिहन्त के दर्शन करने से परिणाम नहीं बदलेंगे क्या? ऐसा होता नहीं है। दिन में एक बार तो आ जाओ, दर्शन करके चले जाओ। दर्शन करेगा तो भाव बदलेंगे। भाव बदलेंगे तो भव भी बदल जायेगा। ज्ञानी! श्रद्धा बढ़ाओ। किसी को नियम मत दो, स्वाध्याय कराओ। भैया! स्वाध्याय का परिणाम (भाव) एक बार जीव को लग जाये तो अन्दर भूख लगेगी कि सत्य को समझना तो है पर सत्य पर चल क्यों नहीं रहा है? **सत्य को समझना बहुत सरल है, पर सत्य पर चलना बहुत कठिन है। सत्य को समझना, ये श्रद्धा का विषय है। पर को सत्य समझाना, ये ज्ञान का विषय है और सत्य पर चलना, ये चारित्र का विषय है।**

समझाना सरल है, लेकिन सत्य पर चलना बहुत कठिन है। अभी इस ज्ञानी को खड़ा कर दो, ये भी प्रवचन कर देगा। सुन्दर उपदेश करेगा जीव, खूब तालियाँ भी बजेंगी। लेकिन मेरे मित्र! धीरे-से कहेगा 'ज्ञानी! लोभ कषाय क्या है?' **जैसे दूध में नीबू की बूँद पड़ने पर शीघ्र परिणमन होता है, ऐसे ही लोभ कषाय के आते ही भावों में तुरन्त परिणमन प्रारभ हो जाता है।**

गुड़ के ऊपर मक्खी बैठ जाये तो उसके पंख चिपक जायें। आप उसे देखकर

क्या कहते हो? अज्ञानी जीव, बेचारे के पंख चिपक गये, मृत्यु को प्राप्त हो रहा है।

हे ज्ञानियो! उन विकलेन्द्रिय जीवों को देखकर तुमको करुणा आ रही है कि बेचारे कैसे जीव हैं जो पंखों को चिपका बैठे हैं गुड़ में। फिर भी तुम कितने ज्ञानी जीव हो, लोभ के गुड़ में क्यों चिपक रहे हो? देह के लोभ में क्यों चिपक रहे हो, मान के लोभ में क्यों चिपक रहे हो?

ज्ञानियो! सत्य को ये जीव सुनना पसन्द नहीं करता है। असत्य को जीव सुन लेता है, किसके राग में? ये सम्मान नहीं चला जाये। सम्मान है कौन? कषाय सम्मान हुई कब? सूत्र को ध्यान रखना जीवन में। ये बहुत बड़ी भूल है आत्मा के भीतर। मेरा सम्मान न चला जाये। ये सम्मान किसका? मान का सम्मान। ये कषाय सम्माननीय हुई कब है? जो सम्माननीय है, वो किसी से अपमानित होती ही नहीं है। भैया! जो सम्माननीय है, वो किसी से अपमानित होती ही नहीं है। अपमान को प्राप्त होगी, मेरे मित्र! तेरे द्वारा ही होगी। कषाय की पुष्टि। पर से सम्मान प्राप्त हो जाना, यही आत्मा का अपमान है, आत्मा के द्वारा। दूसरा पुरुष तुम्हारे तन का अपमान कर सकता है, पर चेतन का अपमान तो तू ही करेगा। जितने जीव विराजते हैं, इनमें कौन-सा जीव ऐसा है, जो भगवान्-आत्मा नहीं है? मेरे मित्र! इनमें कोई भी ऐसा जीव नहीं है जो भगवान् आत्मा नहीं है। जिन/तीर्थंकर की प्रतिमा का तुम सम्मान कर रहे हो, अभिषेक कर रहे हो, पूजन कर रहे हो, वे कभी मेरे-जैसे जीव थे कि नहीं? हे जीव! द्रव्यदृष्टि से सभी भगवान्-आत्मा आप जैसे थे। ज्ञानी! अपनी सोच को विशाल करो। यदि घर में श्वान भी खड़ा हो, उसको डंडा मार कर मत भगाओ। मिथ्यादृष्टि जीव को भी गाली देना बन्द करो। मारीचि सम्यग्दृष्टि जीव था, कि मिथ्यादृष्टि जीव था?

तीर्थंकर के समवसरण से भाग घोर मिथ्यादृष्टि जीव, लेकिन यही जीव महावीर बना। तुम मारीचि को गाली दे रहे थे, कि भविष्य के महावीर को गाली दे रहे थे? तुम अपने भाई को गाली दे रहे, भविष्य के भगवान् को गाली दे रहे हो। तुम शत्रु को गाली दे रहे हो, भविष्य के भगवान् को गाली दे रहे हो। ज्ञानी! दूसरी

दृष्टि से, जीवद्रव्य है कि नहीं? जीव द्रव्य है कि नहीं? हे श्रावको, हे श्रवणो! यदि आपने किसी भी जीव का अशुभ चिन्तन किया है, आपने आज तक प्रतिक्रमण ही नहीं पढ़ा। किसी योगी के मन में, किसी श्रावक के मन में, यदि सम्यग्दृष्टि है, यदि किसी भी जीव के प्रति अशुभ भाव तुम्हारे आये हैं, आज तक आपने प्रतिक्रमण ही नहीं पढ़ा। किया तो है ही नहीं, पढ़ा भी नहीं है। यदि किया होता, तो विकल्प ही नहीं आते। पढ़ा ही नहीं है। क्यों? मुनि का आवश्यक कर्त्तव्य है प्रतिक्रमण।

जो जीव एकान्त से सम्पूर्ण द्रव्यों को एकत्वभूत परमात्म शक्तिमान कहते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परमात्म शक्तिभूत है, तो ज्ञानी! जीव-अजीव का अभाव हो गया। सभी जीव में हुआ, एक दृष्टि। दूसरी दृष्टि से निहारिये।

ज्ञानी! पीछे श्रावक आकर बैठ गये और आप वहाँ गये। कैसे हो, कौन हो, क्या हो और कहाँ से? भाषा एकदम वाणी संयम खो गयी। मेरे मित्र! कोई श्रद्धा से आपके यहाँ प्रवचन सुन रहा था, आस्था से तत्त्व उपदेश सुन रहा था, आप करोड़ों खर्च कर देना। एक जीव की श्रद्धा को तुड़वा दो, कोटि-कोटि पंचकल्याणक का फल एक किनारा और एक जीव को सम्यक् उत्पन्न कराना, एक किनारा।

एक लाख शिखरबन्द मन्दिर बनवाइये, इसके पुण्य को एक पल्ले में रख देना। एक जीव की श्रद्धा तुड़वा देना देव-शास्त्र-गुरु से, उसके पाप को एक पल्ले में रखना। उसका पाप वजनदार होगा।

मेरे मित्र! कोटि-कोटि यज्ञ कोटि-कोटि विधान कोटि-कोटि पंचकल्याणक, इनका उद्देश्य इनका करना नहीं है। इनके निमित्त से मिथ्यादृष्टि जीव भी जिनेन्द्र के चरणों में झुक जायें, उद्देश्य बस यह है। आपने विद्वानों को बुलाया, आपने श्रावकों को बुलाया, आपने जिनवाणी का विमोचन किया, इसका उद्देश्य क्या है? जिनके जीवन में श्रद्धा नहीं थी, वे श्रद्धा को प्राप्त हो जायें।

आपने बुलाकर उनको अश्रद्धा में डाल दिया। आपने कुछ नहीं किया, बेचारे को बुलाकरके गड्ढे में पटक दिया। हे जीव! इस कलयुग में, पंचमकाल में तुम बहुत बड़ी तपस्या न कर सको तो विकल्प मत करना, लेकिन श्रद्धा से अपने

आपको दूर मत कर लेना।

श्रद्धा से दूर मत कर लेना, विश्वास से दूर मत कर लेना।

जगत् में कह देना कि मैं सूख तो सकता हूँ, भूखे सो सकता हूँ, भीख माँग कर खा सकता हूँ, लेकिन मैं किसी के दबाब में आकर वीतराग मार्ग से दूर नहीं हो सकता।

धर्म अनन्त बार प्राप्त नहीं किया। धर्म अच्छी तरह से एक बार भी प्राप्त कर लिया होता तो इस कलिकाल में नहीं आना पड़ता।

ज्ञानी! जगत् के पुद्गल के टुकड़ों में अपनी पर्याय को प्रवाहित नहीं करना। जीवन में एक श्वास के कोटि-कोटि खण्ड कर दो, इस कालखण्ड में एक करोड़वाँ हिस्सा बचेगा, उतने काल-प्रमाण सच्चे धर्म में अच्छी श्रद्धा जग गयी तो नियम से निर्वाण को प्राप्त होगा।

काल की सबसे छोटे इकाई समय है। समय से कोई काम नहीं है। पलक ऊपर से नीचे हुआ, उसी में असंख्यात समय हो गये। एक समय-प्रमाण भी जीव को सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया, ज्ञानी! कितने ही भव भटक ले, नियम से जीव का निर्वाण होगा, उसे कोई टाल नहीं सकता है। भव्य जीव।

इसलिए मारीचि को गाली मत देना। असिद्ध को सिद्ध करना होता है। न्यायशास्त्र पढ़ो। जिसको व्याकरण व सिद्धान्त का बोध नहीं है, ज्ञानी अनर्गल भाषा का प्रयोग कर सकता है, पर तत्त्व व्याख्या नहीं कर सकता। भाषा का उपयोग नहीं कर सकता है। साध्य कोई सिद्ध नहीं होता है। असिद्ध को सिद्ध करना पड़ता है। साध्य असिद्ध होता है, उसे ही सिद्ध करना पड़ता है। आज हम असिद्ध हैं, इसलिए सिद्धि में लगे हुए हैं। साध्य असिद्ध होता है। माँ रोटी को रोटी बनाती है कि लोई को रोटी बनाती है। आपके यहाँ रोटी को रोटी नहीं बनाया जाता। रोटी सिद्ध है, लोई असिद्ध है। असिद्ध को सिद्ध किया जाता है। आप कहो कि कच्ची है, उसको फेंको। फेंक दो, फेंक दो। खोजना, पक्की कहाँ से आयेगी? ये तो कच्ची है। ऐसे कच्ची कह कर लोई फेंक दो, सबको पूरे आटे को फेंक दो। भाई! खाना क्या खाता है? हे जीव! कच्ची लोई जब रोटी आकार में आयेगी और सिकेगी तो रोटी फूल जायेगी,

तो फुलका कहलायेगी। लेकिन रोटी फुलका कहाँ से बने?

मिथ्यादृष्टि जीव नहीं हुए तो सम्यग्दृष्टि जीव की संख्या कहाँ से आयेगी? सम्यग्दृष्टि नहीं हुए, तो व्रती/महाव्रती कहाँ से आयेंगे? देशव्रती/महाव्रती नहीं होंगे तो भगवान् अरिहन्त कहाँ से बनेंगे? अरिहन्त नहीं होंगे तो सिद्ध कहाँ से आयेंगे? ज्ञानियो! बुद्धियाँ चोटियों पर चली गयी हैं। जिस दिन बुद्धि 'बुद्धि' नहीं रहेगी, उस दिन समझ में आ जायेगा। किसी की अवमानना मत करो, किसी की अवहेलना मत करो। भैया! जिसे तू डाँट रहा था, वही मुनि बन कर आ गया तेरे द्वार पर, उसे नमोस्तु करेगा कि नहीं? और जिस मुनि को तू 'ये' कह रहा था, तेरे देखते-देखते केवली बनकर बैठ गया, बता तू क्या करेगा? सिद्ध होने के लिए साध्य होना जरूरी है। न मे शत्रुः न च मे प्रियाः।

भैया! तेरे बेटे की माँ कुछ पूछे तो गुस्सा नहीं करना। वो गुस्सा कर भी रही हो तो तू सबसे पहले कहना 'हे भावी भगवन्त! जो गुस्सा कर रहा हो, उसको सबसे पहले यही बोलना 'हे भावी भगवन्त।'

न मे शत्रुः न च मे प्रियाः।

वर्तमान की तेरी पर्याय कुपित हो रही है। कल तू भगवान् बनेगा तो मुझे तेरे हाथ जोड़ने पड़ेंगे। मैं अभी तेरे हाथ जोड़ता हूँ। शान्त हो जा।

न कोई मेरा शत्रु है, न मेरा कोई प्रिय है। ज्ञानी! अन्दर बैठा मेरा द्वेषभाव मेरा शत्रु है और मेरा राग मेरा प्रिय बन जाता है। राग हटा और द्वेष हटा। फिर कौन बचा? बस, 'जो है, सो है।'

भैया! बोलो इन ज्ञानियों से। जितने विद्वान् लोग बैठे हैं, सबसे कहो 'हे जीव! भाषा बदलिये। लोगों के भावों पर जाकर प्रवेश कराओ। बहुत चर्चा हो गयी। ताली बजाने वाली बहुत चर्चा हो गयी। चित्त को प्रसन्न करने वाली और धन इकट्ठा करने की बहुत बातें हो चुकी हैं। **धन से धर्म नहीं होता है। धन व धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। धन के माध्यम से धर्म के स्थान तो स्थापित किये जा सकते हैं, धन के माध्यम से धर्म के आयतन तो खड़े किये जा सकते हैं, पर धन का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धन का धर्म से सम्बन्ध हो गया। तो**

जगत् में जितने वीतरागी मुनि हैं, सब अधर्मात्मा हो जायेंगे। क्योंकि ये तो कुछ भी नहीं रखते हैं और रखने लग गये तो मुनि नहीं कहलायेंगे। मित्र! दो धर्म हैं, शौच और अकिंचन्य। इन दोनों धर्मों की व्याख्या में धन का क्या सम्बन्ध है? दस धर्मों में एक भी धर्म ऐसा नहीं है मेरे मित्र! धन के राग में धर्म को मत भूल जाना। धन के माध्यम से धर्म के आयतन तो स्थापित किये जाते हैं, परन्तु धर्म उतना ही है जितनी तेरे भावों में विशुद्धि है।

भैया! ये क्रीम युग चल रहा है। समझ गये? आज तुमको शुद्ध क्या मिल रहा है? ये अन्दर सोचना पड़ेगा। आप जो बादाम खा रहे हैं, उसमें से भी ज्ञानी इंजेक्शन से सब तेल निकाल लेते हैं।

क्रीम युग से तात्पर्य समझो। ज्ञानी दूध पी रहा है और मशीन से उसमें से पहले ही क्रीम निकाल ली गयी, घी निकाल लिया गया है। ये दूध किस काम का? दूध संज्ञा ही होगी, इच्छा की पूर्ति होगी, लेकिन शरीर में क्या ताकत देगा? उसके तो सब तत्त्व निकाल लिये।

ऐसे ही मित्रो! पूजा करो, विधान करो, पंचकल्याणक गजरथ करो मन्दिर बनवाओ, कुछ भी करो, लेकिन विशुद्धि निकल गयी है तो घी निकला दूध ही है। ज्ञानियो! विशुद्धि निकल गयी तो घी निकला दूध है। पूरा घी तो निकाल चुके, अब तुम पीते रहो दूध।

डेरियों का दूध, उसमें पहले से ही मशीन से मक्खन निकाल लिया। अब क्या करेगा? ऐसे ही जिसका क्रियाभूत धर्म में विशुद्धि का अभाव है, घृत निकला हुआ दूध मात्र है। जिसके भीतर विशुद्धि है, धर्म कर रहा है, वह भैंस का शुद्ध दूध है। ज्ञानी! घी सहित दूध है तो विशुद्ध दूध है। ऐसे ही धर्म कर रहा है, मन्दिर भी बनवा रहा है, जिनबिम्ब स्थापित कर रहा है, तीर्थ स्थापित कर रहा है, उसका घृत सहित दूध है। जिसकी विशुद्धि निकल गयी, मात्र मेरा मान-मान-मान। कुछ नहीं है यदि क्रीम निकल गयी उसकी तो। अब चाहे तुम रोओ चाहे तुम हँसो। वस्तुव्यवस्था तो ऐसी ही है। इसलिए आचार्यभगवन् कह रहे हैं **'तृष्णान्धा'**। ये मैं नहीं कह रहा हूँ, ये ग्रन्थ में लिखा है। श्लोक में कह रहे हैं आचार्यभगवन्!

मित्र! तृष्णान्धा आँखों के अन्धे को मात्र बाहर की सामग्री नहीं दिखती, पर तृष्णान्धे को भीतर-बाहर की नहीं दिखती।

बुन्देलखण्ड में क्या कहते हैं? अरे धन्य कुमार! इनकी तो हिये की फूट गयी। अरे भैया! इसके तो फूट गयी। तात्पर्य क्या हुआ? इसके हृदय की फूट गयी यानि इसके विवेक की आँख फूट गयी है और तृष्णा से अंधा हो चुका है। आँखों के अन्धे को बाहर का द्रव्य नहीं दिखता, परन्तु जिस व्यक्ति को तृष्णा ने अन्धा कर दिया है, **'तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति'** याद कर लेना।

तुम दीपावली पर शुभ-लाभ लिखोगे। अरे भैया! देखना अब सिक्के पूजने वाले हैं। पता नहीं कौन-सा देवता है। वीर तेरस के दिन धनतेरस बना दिया। जिस त्रयोदशी के दिन तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने योग का निरोध किया था, उसे तुम भूल ही गये। उन्होंने तो काय योग का सम्पूर्ण निरोध कर दिया। आप लोग घर में लोहे-लंगड़ सब खरीद-खरीद कर रख रहे हो। आजकल पीतल-ताँबे तो बचे ही नहीं हैं। शुद्ध लोहा (स्टील) सब खरीद कर लायेंगे। परिग्रह और बढ़ा कर लायेंगे। क्यों? तृष्णान्धा। कितने प्रकार से? पूरे घर के कपाट खोल देंगे, उस दिन तो पूरे घर में रोशनी रहेगी कि हे भगवान्! आ जायें। मेरे मित्र! न पटाखे फोड़ने से आयेगी, न दीप जलाने से आयेगी। सम्पत्ति को आना है तो अरिहन्त की आराधना से आयेगी। भगवान् की आराधना करो तो साता का उदय होगा। ये भैया तो पता नहीं क्या-क्या खोलता होगा। मुमुक्षु! धन की आकांक्षा से धन नहीं आता। लोभ वृत्ति, तृष्णान्धा। वे तृष्णा में अन्धे हो रहे हैं। **'नैव पश्यन्ति'** वे नहीं देखते **'हितं वा यदि वाहितं'** किससे हित है, किससे अहित। इनमें कोई विवेक नहीं हैं। ऐसे-ऐसे व्यापार करने को खड़े हो जाते हैं जो तुम्हारी कुल-परम्परा, धर्म का नाश कर रहे हैं। भैया! बोलना सबसे, भूखे सो जाना अच्छा है, पर जो जैन कुल के विरुद्ध है, ऐसा व्यापार नहीं करना। बहु-हिंसक व्यापार मत करना। ज्ञानी! चरणपादुका बेच रहे हो, वे चाहे सोने की हों या चाँदी की हों, सिर पर रखो तो क्या कहलायेगी? इसलिए भैया! ऐसे खोटे व्यापार मत करना।

खाद की दुकान खोले बैठे हो। उसमें कीटनाशक दवाइयाँ प्रयोग करना समझा

भी रहे हो। इतना घोल कर ऐसा कर लेना। सकल्पी हिंसा का उपदेश दे रहा है। क्यों पैसे के पीछे उलझा हुआ है, क्यों अन्धा हो रहा है? भविष्य की पर्याय पर भी ध्यान दो। ये बात सभी से कह रहा हूँ। वकील, हे ज्ञानी! अब बहुत कमा लिया, अब कोट काला हो सो होने देना, लेकिन भाव काले मत होने देना। जो है, सो है। बुरा तो नहीं लग रहा आपको? यदि लग भी रहा है तो मेरा क्या? बुरा मत मानना। ठीक है? भैया। अपन को तो जितना कमाना था, बहुत कमा लिया है। अब तो इतने ही विचार हुए हैं **'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।'** पर्याय के निषेक जितने अवशेष बचे हुए हैं, पंचमरमेष्ठी की आराधना में लगा देना। दुनियाँ में क्या हो रहा है? सुनो, लोक कैसा है? आपके मन में आ गया कि मैं तो सबकुछ ठीक करके रहूँगा। ज्ञानी! तेरा पागलपन है। कैसे ठीक करेगा? सुनो, बारिश का मौसम था। छोटे-छोटे बहुत सारे मेढक विचरण कर रहे थे। भैया! तू एक काम कर, इन सबको तू बड़े प्रेम से एक टोकरी में लेकर आ। बड़े प्रेम से इन्हें दूध-भात खिलाना। ठीक है? और प्रेम से इनसे कहो—मेरे मित्र! अब तुमने पेट भर लिया, दूध-भात खा लिया, अब टोकरी में शान्ति से बैठना, उचकना नहीं। तो एक को बेचारे ने शान्त किया, दूसरे उचक जायेंगे। बताओ, मेढ़कों को कौन शान्त करा पायेगा?

पंचमकाल है, खोटा काल है, तू किस-किस को सँभालेगा? तू अपने भाव सुधार, इसमें सार है। दुनियाँ को सुधारने से क्या? जो है, सो है।

खुद को सुधारो। ये दुनियाँ तो मेढकों के समान है। जैसे टोकरी में तुम मेढ़कों को एकसाथ रखने में समर्थ नहीं होते हो, ऐसे ही ज्ञानी! तुम जगत् के लोगों को इकट्ठा करने का विकल्प छोड़ दो। 'जो है, सो है'। इसी में कल्याण होगा। बाकी कुछ होने वाला नहीं है। एक अरब-खरब का दान देने वाला सेठ मिल जायेगा तुमको, लेकिन दूसरे की अच्छाई बोलने वाले लोग तुमको नहीं मिल पायेंगे। **भैया! अपने मुख से पड़ोसी की प्रशंसा कर दे, ये जीवन की बहुत बड़ी तपस्या है। महीने-महीने का उपवास करना भी सरल है। जीवनपर्यन्त के लिए भोजन छोड़ देना सरल है, लेकिन अपने मुख से किसी के गुणों का व्याख्यान कर**

पाना बहुत कठिन है। जो गुरु के गुणों को अपने मुख से नहीं कह पाता। वो सबसे बड़ा दरिद्र आदमी है।

भैया! ग्रन्थों का उपदेश करो। निर्ग्रन्थ बनाकर रखना है तो बाहर के सब प्रवचन बन्द करो। ज्ञानी! आप उन गाथाओं को लेकर आगम के अनुकूल अपना चिन्तवन बढ़ाओ। अब वे दिन गये। आज बहुत लोगों के मस्तिष्क बदल गये हैं। ये दुनियाँ की कथाओं को लोग पसन्द नहीं करते। आप कथा भी करना चाहो तो जिन-आगम से कर लेना।

चुटकुले सुनाकर आत्मा को प्रभावित नहीं किया जा सकता है। चुटकुले सुना करके जिनवाणी का प्रचार नहीं है। ये मात्र स्व-पर के समय की बर्बादी है। शेर-शायरियाँ जिनवाणी की परिभाषा नहीं हैं। आपको जिनवाणी सुनना चाहिए। आगम ग्रन्थों की गाथा बोलो और भाषण में कोई व्यक्तिगत विषय नहीं आना चाहिए। जिनप्रवचन में आपको तत्त्व की विवेचना करना चाहिए। मालूम, मुझे इनको आँखें करके ऐसे कभी डाँटना नहीं पड़ता। इतने सीधे-सीधे साधु हैं। पर ज्ञानी! पंचमकाल है, कोई सीधा होता है क्या?

वास्तव में सीधे-साधे लोग हैं, पर सीधापन कहाँ होता है? पौधा कोई भी होगा, ऊपर जाने के बाद टेढ़ा हो ही जायेगा। पर बल्ली लगी हुई है तो देख टेड़ा होता कैसे है? समझ गये न? बल्ली लगी है तो टेढ़ा कैसे होगा? ऐसे ही आपको अलग से डाँट दूँगा, नहीं करना चाहिए आचार्यों को। आचार्यों को तो तत्त्व की व्याख्या करना चाहिए। इतने अच्छे से कर दो कि अपने आप में सीधा होना शुरू हो जाये।

ज्ञानी! कितने बढ़िया आप लोग बैठे दिखते हो। धर्मसभा में कितने बढ़िया आसन से बैठे हो। तत्त्व की विवेचना कर रहे हो। आपने उसकी प्रशंसा कर दी। उल्टा-सीधा बैठा होगा भैया! खिसकना जरा। अपना नाम न ले लें महाराज।

अपने आप ठीकठाक होकर बैठ जायेगा। अब अलग से तुम कह रहे हो— 'क्यों भाई! तुम कैसे बैठे हो?' तो बेचारे का नाम लेकर इज्जत खराब कर दी।

जो तृष्णा से अन्धा है, वो नहीं देखता है 'हितं वा अहितं वा' वो हित को देख रहा न अहित को देख रहा है। तृष्णा के वश पुरुष क्या-क्या नहीं करता?

आप सब समझते हो। जब ठण्डा होता है, तब सोचता है कि मैंने कुलपरम्परा का ध्यान ही नहीं दिया।

कम-से-कम इतना तो सोचना कि जिस कुल में भगवान् का अभिषेक होता है, जिस कुल में निर्ग्रन्थों को दान दिया जाता है, जिस कुल में जिनवाणी का वाचन होता है, उस कुल में कोई खोटे काम मत करना। अपनी सन्तान से इतना बोल कर रखना। जन्मघुट्टी पिलाया करो। माताओ! ध्यान रखना, तुम खिलाती हो तो खिलाने की भाषा बदल दो। बार-बार संस्कार देना। बेटे! इतना ध्यान रखना जीवन में, मुझे समाज की अग्रिम पंक्ति से पीछे मत ढकेल देना। इतना ध्यान रखना। अपने बेटे से कहना कि मैं समाज की अग्रिम पंक्ति से पीछे न चला जाऊँ। यदि तुमने कोई उल्टा कार्य किया तो बिना पीछे कराये पीछे हो ही जाऊँगा।

अद्भुत क्या गहरा चिन्तन है। महा-अन्धा कौन है? तृष्णा से युक्त पुरुष महा-अन्धा है। रतौंध आ जाये अथवा न-दिखना प्रारम्भ हो जाये, फिर क्या करना पड़ता है? ज्ञानाञ्जन। ये तो आपने अनेक बार सुना, लेकिन यहाँ क्या लिख रहे हैं? **संतोषाञ्जनमासाद्य**।

जो ज्ञानी पुरुष होते हैं, सुधि पुरुष अपनी तृष्णा के अन्धेपन को दूर करके और संतोष रूपी अंजन शलाका आक करके जीवन में आनन्दमय जीवन जीते हैं, उनका अंधापन नष्ट हो जाता है।

मेरे मित्रो! जाओ, अपने घर में कहना सबसे, ज्ञानियो! संतोष-शलाका लगा लो जिससे दिखना प्रारम्भ हो जायेगा। तृष्णा का अन्धापन आ गया तो जगत् में कुछ भी सत्य दिखाई देने वाला नहीं है। दीपावली के समय द्वार पर क्या लिखोगे? आप क्या लिखने वाले हो? **"तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति, हितं वा यदि वाहितं।"**

न हित देखता है, न अहित देखता है। आप तो इतना लिख देना 'पुण्यास्रव है तो सम्पत्ति की क्या आवश्यकता? पापास्रव है, तो सम्पत्ति की क्या आवश्यकता? पापोदय है तो अपने आप विलीन हो जायेगी। सम्पत्ति चाहिए? एक मन्त्र लिख लो,

यदि पापनिरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्॥ 27 र. श्रा.॥

पूत कपूत तो क्या धन संचय? पूत सपूत तो क्या धन संचय? सपूत है तो अपने आप कमा लेगा और कपूत है तो सब बर्बाद कर देगा।

भैया! तुम ठीक कर रहे हो, तुम द्रव्य मंदिर में लगा दो। कमाने वाले कमा लेंगे, आप रख कर मत जाना। आप रख कर चले गये, किसी ने दुरुपयोग किया, उसका फल मिलेगा कि नहीं मिलेगा आपको? सुन रहा है न ज्ञानी? तेरा बेटा अपने आप कमा लेगा, तू चिन्ता मत करना। अपने हाथों से खूब दान देकर जाना।

अरे! अभी हाथ भी अच्छे मिले हैं, मस्तिष्क भी अच्छा मिला है, इसलिए दान कर देना। हाथ पाँव थक गये तो पूछना पड़ेगा 'भैया! दूँ क्या?' वो कहेगा, 'शान्त बैठो।' इसलिए भैया! अन्तिम समय पराधीनता मत रखना। ये तृष्णा भी समाप्त कर लो। जो दान करना है, अपने हाथ से करके जाना।

प्रत्यक्ष में जब आहार देते हैं तब श्रावक के भाव देखो, क्या गद्गद् होते हैं। आज भी नयनों में नीर झलकता है। इसलिए ज्ञानियो! अपनी सम्पत्ति का दुरुपयोग मत करना। तृष्णा को दूर कर देना और संतोष-शलाका का आनन्द लेना। अपने घर चले जाना, कहना, निज घर जाना है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सन्तोष ही सार रत्न है

सन्तोषसारसद्रत्नं, समादाय विचक्षणाः।
भवन्ति सुखिनो नित्यं, मोक्ष सन्मार्ग वर्तिनः॥ सा. स. 240॥

अन्वयार्थ—विचक्षणाः = बुद्धिमान पुरुष **संतोषसारसद्रत्नं समादाय** = संतोष रूपी और साररूप सच्चे रत्न को हृदय में धारण करके **नित्यं मोक्ष सन्मार्ग वर्तिनः** = नित्य मोक्ष के सच्चे मार्ग पर चलते हुए **सुखिनः भवन्ति** = सुखी रहते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! बुद्धिमान पुरुष सन्तोषरूपी सारभूत रत्न को धारण करके नित्य मोक्ष के सच्चे मार्ग पर चलते हुए सुखी रहते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सब विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में तृष्णा की ज्वाला की व्याख्या कर रहे हैं पुरुष को अंधा करने वाली वस्तु यदि कोई जगत् में है, वह तृष्णा है। तृष्णा से अन्धा हुआ पुरुष नहीं देख पा रहा है। न हित को देख रहा है न अहित का देख रहा है। जिसे हित समझ रहा था, वो सब अहित था। कोई मोक्षमार्गी जीव कहे कि मैंने सब सुख छोड़ करके मोक्षमार्ग को प्राप्त किया है इसका तात्पर्य कुछ-और है।

अभी भी तेरी सुखों में सुखदृष्टि है। तू कह रहा है कि मैं सुख छोड़कर आया हूँ, इसका तात्पर्य है कि मोक्षमार्ग दुःखभूत है। यानि तूने जानकरके दुःख में प्रवेश किया है। भैया! एक जीव कह रहा है कि मैं सुख छोड़कर मुनि बना हूँ, राज्यसुख छोड़ा है, श्रेष्ठ पद को छोड़ा है, नगर के सम्मान के सुख को छोड़ा है। यानि जहाँ छोड़कर आया वही सब अभी तुझे दृष्टिगोचर हो रहा है। मोक्षमार्ग तुझे दुःखभूत लग रहा है, इसलिए तू उन सुखों को याद कर रहा है। जबकि वहाँ दुःख था, तभी तू यहाँ आया। यदि उनमें तुझे सुख दृष्टिगोचर हो रहा है, इसका तात्पर्य है कि

मोक्षमार्ग दु:खभूत है।

आप दु:खभूत अवस्था को जानकर प्राप्त हुए हो और जिसमें वर्तमान में ही दु:ख हो, वो भविष्य में सुख क्या देगा?

मुमुक्षुओं को मोक्षमार्ग में दु:ख दृष्टिगोचर नहीं होता। जब तक घर में दु:ख महसूस न हो, तब तक कभी व्रती मत बनना। सुनना ध्यान से, जब तक आपको अपने संसार के सुखों में दु:खानुभूति का वेदन न हो, तब तक मुनि बनने के परिणाम मत करना। अन्यथा आप एहसान दिखाओगे कि मैं सुख छोड़कर आया हूँ, जबकि सुखी होने के लिए आया था। और तू सुख छोड़कर आया है तो यों कहेगा कि मैं एहसान दिखा रहा हूँ। सामग्री छोड़कर आया है, तृष्णा के अन्धेपन को छोड़कर नहीं आया।

जिनालय में जिनेन्द्र की भक्ति के लिए तो दुनियाँ आती है, पर जिनालय में आत्मा की शान्ति के लिए ज्ञानी बिरले जीव ही आते हैं।

कोई कहे कि मैं घर का काम छोड़कर आया हूँ, मैं घर का सुख छोड़कर आया हूँ मन्दिर में, मेरे मित्र! इसका तात्पर्य है कि तू जिनालय में दु:खी होने के लिए आया है। कहना ये चाहिए कि मैं संसार के गृहस्थी के झंझटों से तंग होकर, एक क्षण को प्रभु के पादमूल में शान्ति का वेदन करने आया हूँ।

भक्ति तो हो जायेगी, लेकिन शान्ति के लिए भक्ति करना। ऐसा न हो जाये कहीं कि तुम्हारी अशान्ति का विषय बदला हो। बड़े सँभल कर सुनना। अशान्ति का विषय बदल कर तो नहीं आये हो? जैसे गृहस्थ कार्यों में हड़बड़ी थी, आपको विकल्प होते थे, ऐसे मन्दिर में पूजा के काल में विकल्प खड़े हो रहे हैं कि अब ये नहीं ये ये चढ़ाऊँगा; ये नहीं, ये द्रव्य चढ़ाऊँगा; ये नहीं, सोने की थाली में पूजा करूँगा, चाँदी की थाली में पूजा करूँगा। नहीं-नहीं, ये लोटा नहीं, वो लोटा लेकर आइये।

मेरे मित्र! तू अशान्ति के क्षेत्र को बदल कर आया है, अशान्ति छोड़ कर नहीं आया। समझ में आ रहा है क्या? आप स्थानान्तरित होकर आये हो, लेकिन जो काषायिक भाव था, गृहस्थ की क्रियाओं में जो चित्त में चंचलता थी, वो ही चंचलता तुम्हारी मन्दिर जी में हो रही है तो विश्वास रखना, आपने स्थान का त्याग किया

है, वस्तुओं को देखने की वस्तु बदली हुई है, आँखों का विषय बदला है, लेकिन कषायों का विषय कहाँ बदला है?

धर्म की व्यवस्था को भी समझो, पूजन करने भी आओ। जिनके पादमूल में आये हो, उनकी अनुभूति करके तो जाओ। भैया! श्रावकों के मुख से मैंने सुना है, 'महाराज! मैंने तो मन्दिर जाना बन्द कर दिया।' हमने पूछा, क्यों? बोला, मैंने तो घर में कक्ष बनाकर रखा है, उसमें शान्ति से जाप कर लेता हूँ, स्वाध्याय कर लेता हूँ। मैंने पूछा, क्यों? बोले, मन्दिर से अधिक शान्ति मुझे वहाँ मिलती है। क्यों? 'मन्दिर में विसंवाद दिखाई देता है।' सुनना उस जीव की भाषा को। वहाँ अशान्ति महसूस होती है, जबकि मन्दिर में किंचित् भी अशान्ति नहीं होती है। मन्दिर में अशान्ति नहीं होती है। जो घर में अशान्ति फैलाते थे, वे ही मन्दिर में अशान्ति फैलाते हैं। मन्दिर में अशान्ति नहीं होती है। वो तो देवस्थान है और देवस्थान पर अशान्ति किस बात की? पर जो जीव देवस्थान पर आकरके देव को नहीं देख पाता है, व्यवस्थाओं मात्र को देखता है, वो अशान्ति फैलाता है।

बोले, 'मैं मन्दिर नहीं जाता हूँ। पहले जाता था।' मैंने पूछा, क्यों भाई? मन्दिर तो जाओ। नहीं वहाँ का वातावरण परिवर्तित है। ध्यान दो, भाई! आपके मानसिक विकल्पों के निवेश से क्षेत्र प्रभावित हो रहा है और जिस क्षेत्र में लोग शान्ति की अनुभूति लिया करते थे, उस क्षेत्र से लोग भयभीत हो जायें। इसका तात्पर्य समझना। व्यवस्था की व्यवस्थायें/दर्शनार्थियों के परिणाम कितने कलुषित होंगे कि लोग मन्दिर में जाने के लिए कह रहे हैं, 'मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। अपने घर के कक्ष में सामायिक कर लूँगा।' समझो मैं क्या कह रहा हूँ? जिस भवन में णमोकार गूँजे, जिस भवन में भक्तामर का पाठ हो, जिस भवन में अरिहन्त नाम स्मरण होता हो, सहस्रनाम का पाठ चलता हो, ये सब प्रशस्त वर्गणायें जीव के परिणामों को परिवर्तित कर देती हैं। ऐसी पुण्यभूमि में बिल्कुल शान्त भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

इतनी विनय रखो कि श्री जी के सामने आपके नयनों से शुभ वर्गणायें टपकने लग जायें और सामने जो दर्शनार्थी हैं, वे सारे-के-सारे उससे प्रभावित होने लग जायें। लोग घर छोड़कर मन्दिर की ओर आने लग जायें। जैसे मन्दिर के द्वार पर पानी रखा होता है। कहते हो कि आप पैर धोकर प्रवेश करो, अशुद्धि मत फैलाना।

शुद्ध स्थान पर ऐसे ही बोर्ड और लगा देना/जो शब्द का प्रयोग है, उसके अर्थ पर ध्यान ले जाओ।

भैया! 'मूलाचार प्रदीप' में निस्सही-निस्सही के दो अर्थ किये। जब जिनालय के द्वार पर तुम निस्सही शब्द का प्रयोग करते हो, उस शब्द के अर्थ पर जाइये। एक प्रसिद्ध अर्थ ये है कि कोई देव आदि दर्शनों को आये हों, उनसे मैं स्थान माँग रहा हूँ कि आपको कोई बाधा न हो। (एक दृष्टि) मैं भी दर्शन करने आया हूँ। आध्यात्मिक दृष्टि ये है 'निःसङ्गोऽहम्' मैं निःसंग होकर जिनालय में प्रवेश कर रहा हूँ। पाप की कीचड़ का प्रक्षालन तो पानी से कर लिया है। पर-भावों की चादर कैसे शुद्ध करोगे?

सारे ममत्वों से, सारे विकारों से रहित होकर श्री जिनालय में प्रवेश करो। किसी प्रकार के विकारों को लेकर प्रवेश मत करो। कहीं आपकी अशुभ वर्गणायें उस पुण्यभूमि को विकृत न कर दें।

निःसङ्गोऽहम्

जैसे घर में रहते हो, ऐसे ही जिनालय में होके मत आना। कोई सम्राट बैठा हो, तो सैनिक, प्रजा, अधिकारी डर के कारण कितने व्यवस्थित रहते हैं। भयभीत होकर व्यवस्थित रहने वाले जीवों की संख्या कोटि-कोटि है। जो भयभीत होकरके व्यवस्थित रहते हैं, उस क्षेत्र की वर्गणायें भयावह होती हैं, अशुभ होती हैं। अरिहन्त के पादमूल में, निर्ग्रन्थ के पादमूल में भयभीत होकर व्यवस्थित नहीं रहा जाता है। अरिहन्त के, निर्ग्रन्थ के पादमूल में, जिनवाणी के पास में भक्तिपूर्वक व्यवस्थित होकर बैठना पड़ता है। वहाँ तुम्हारे हार्मोंस बदल जाते हैं, परिणाम बदल जाते हैं। वे प्रशस्त परिणाम अनेक जीवों को शान्ति की अनुभूति कराते हैं। तात्विक दृष्टि समझिये। वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित समझो। भयभीत होकर एक पुरुष को भयभीत करा जाय, उसकी धड़कन नापी जाय और एक जीव को शान्ति से बैठाया जाय, उसकी धड़कन नापी जाय, तो दोनों में अन्तर होगा। भयभीत पुरुष की आयु कम होगी। आगम के शब्द समझिये। भयभीत पुरुष की आयु क्षीण हो जाती है।

भैया! इस बात को आप मानते हो क्या? मित्र एक बहुत अच्छी बात आपसे

कह रहा हूँ। जिसे आप धीमा जहर बोलते हो। एकाएक किसी को नहीं मारना चाहता, प्रकट भी नहीं हो और व्यक्ति मर भी जाय तो उसको धीमा-धीमा जहर देना प्रारम्भ कर दिया, उसकी सीमा के अन्दर। बेचारे की मृत्यु को जायेगी। हिंसक है, क्रूरपरिणामी है, जो हल्का जहर दे रहा है।

ऐसे ही कुछ लोग घरों में, मन्दिरों में, समाज के बीच में ऐसा वातावरण बना कर रखते हैं। आप लोग अपने ही बीच में ऐसा वातावरण बना कर रखते हो कि आपसे कोई डरे। मेरे से आदमी भयभीत होकर रहे। जिससे डर रहा है और जिसने वातावरण भयभीत बनाकर रखा है, भय संक्लेशता है और संक्लेश परिणामों से आयु क्षीण होती है। जिनको अपनी पूर्ण आयु जीना हो, वे अपनी आत्मा की संक्लेशता से रक्षा करें। जिनमन्दिर तीर्थभूमि में गुरुओं के पास जाने का उद्देश्य मात्र इतना ही समझिये कि संक्लेशता से मेरी आत्मा की रक्षा हो।

ये सब भीतर का विषय समझो। यदि पूजन करते समय एक बर्तन भी जमीन पर गिर गया, उसकी हलचल ने आपके मस्तिष्क को प्रभावित किया कि नहीं किया? ज्ञानियो! जोर की आवाज का प्रयोग भी आपने किसी के साथ किया है तो उसके मस्तिष्क को तुमने विकृत किया है।

जैसे धीमा जहर खिलाने वाला पापी जीव है, हिंसक जीव है, ऐसे ही अपना प्रभाव दिखाने के लिए दूसरे को भयभीत करके रखता है, वो हिंसक ही है। भैया! हिंसक ही है स्व-पर का। जो दूसरे को भयभीत करेगा, तो सम्यक् रोष की संक्लेशता होगी। जो भयभीत हो रहा है, उसमें भय की संक्लेशता होगी। स्वयं की आयु भी क्षीण कर रहा है, दूसरे की आयु भी क्षीण कर रहा है। ये पंचेन्द्रिय मनुष्य की हिंसा का पाप उसको नियत लगेगा। देखो भैया! ये सारे-के-सारे विषय जो हैं, बिल्कुल शान्ति से समझने के हैं। अब सोचिये, योगियों की आयु इतनी लम्बी क्यों होती थी? सत्य ये है कि साधना से आयु बढ़ती नहीं है, लोगों ने उल्टी व्याख्या करना शुरू कर दी है कि साधना करने से आयु बढ़ गयी। भुज्जमान आयु में वृद्धि नहीं होती। ये करणानुयोग बोल रहा है कि भुज्जमान आयु में कोई वृद्धि नहीं होती है। विद्यमान आयु को तुम घटा भी सकते हो, बढ़ा भी सकते हो। उसमें भी क्या

चाहिए? संक्लेश और विशुद्धि।

किसी जीव ने प्रथम स्वर्गकी आयु का बन्ध किया और फिर तपस्या करके विशुद्धि प्राप्त करके वो सर्वार्थसिद्धि जा सकता है, लेकिन संक्लेशता की तो स्वर्ग तो जायेगा पर नीचे के पटलों में जायेगा। देव आयु तो प्राप्त करेगा भवनत्रय में चला जायेगा। जो-जो घातायुष्क है जहाँ जैसी दिखे जहाँ अधिकेय शब्द लगा है सूत्र में घातायुष्क जीव है, जिन जीवों ने उत्कृष्ट आयु का बन्ध किया, जिन जीवों ने उत्कृष्ट आयु का बन्ध किया, साधकों को तो ये विषय अच्छी तरह से समझना चाहिए। कहीं-कहीं क्या होता है कि मैं तो मुनि बन गया मेरा तो मोक्ष नियम से होगा ही होगा। महाराज! सम्भल के रहो, मुनि का मोक्ष होता ही है इसमें कोई शंका नहीं है। महाराज! मुनि भेष का मोक्ष नहीं होता है, मुनि भेष के साथ मुनि भाव का मोक्ष होता है। कहीं आपने अपने मुनिपने की ही संक्लेशता कर ली कि मैं श्रेष्ठ साधक हूँ, मेरी साधना के आगे कोई नहीं लगता, मेरे ज्ञान के आगे कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। हे महाराज! पिच्छी से तो आप सूक्ष्म जीवों की रक्षा करते हो, भव को सुधारना है तो अपने भावों से अपने भावों की रक्षा करो, नहीं तो पिच्छी से तो तुम निर्दोष संयम का पालन करते दिखोगे, पर कषाय से तुमने आत्मा की हत्या कर दी है। साधना की सिद्धि में भी आपने विशुद्धि की विराधना की, साधना की सिद्धि में भी यदि बाह्य साधना की विराधना की है तो वह साधना तुम्हारी आत्म सिद्धि का साधन नहीं होगी। **साधना की सिद्धि के लिए विशुद्धि की विराधना की है, तो वह साधना तुम्हारी आत्म-सिद्धि का साधन नहीं बनेगी।**

जैसे साधनों को सम्भाल रहे हो, ऐसे परिणामों की विशुद्धि को भी सँभालिये। मुझे उपवास करना है आज, उपवास करिये बहुत अच्छी बात है। पर मैं ही उपवास करता हूँ दूसरा तो कोई करता ही नहीं है, बस ये अलंघन हो गया, क्योंकि मैं ही करता हूँ अन्य तो करता ही नहीं है आपने अपनी विशुद्धि का घात कर दिया। **संक्लेशता आते ही विशुद्धि का घात होता है।** जो आप सुन रहे हो, द्रव्य-दृष्टि चरणानुयोग की दृष्टि को तार्किक भाषा में सुन रहे हो। कुछ जीवों ने इन्द्रिय सुखानुभूति को विशुद्धि मान लिया है, कुछ जीवों ने इन्द्रिय दुखानुभूति को संक्लेशता मान

लिया है। राकेश भैया निरंजन वैनाड़ा जी के घर पहुँचे और इन्होंने पूछा ठीक तो हो? हाँ मैं बिल्कुल ठीक हूँ, अपन को कोई टेंशन नहीं है। खूब सम्पत्ति है, आनन्द है, सब जगह घूमता रहता हूँ, साधुओं की सेवा करता हूँ, आनन्द है। मैं तो अपने परिणामों की विशुद्धि में जी रहा हूँ। हे मित्र! आनन्द शब्द का आपने प्रयोग किया है, खोज करना आप अपने वैभव की अनुभूति का आनन्द ले रहे हो। जो गाड़ी आपको मिली है उसका आनन्द ले रहे हो या आपको प्रतिदिन सुन्दर भोजन खाने को मिलता है उसका आनन्द ले रहे हो। ज्ञानी! यही पकड़ने की आवश्यकता है। कहीं विशुद्ध सागर सोचें कि मैं आत्म-आनन्द ले रहा हूँ। ज्ञानी! खोज करो कि तुम अपने यश का आनन्द ले रहे हो, अपनी प्रज्ञा का आनन्द ले रहे हो या कि अपने शिष्यों के बीच का वैभव का आनन्द ले रहे हो, रिद्धी का आनन्द ले रहे हो कि साता का आनन्द ले रहे हो, यश गुणों का आनन्द ले रहे हो किसका आनन्द ले रहे हो? कि सामायिक में शान्ति का आनन्द ले रहे हो।

हे योगीश्वर! षट्आवश्यक क्रियाओं में जितनी शान्ति है, वही तेरी विशुद्धि है। शेष हेतुओं से तू अपने आप को आनन्दित मान रहा है ये विशुद्धि नहीं है, संक्लेशता है।

संक्लेशता दो रूप में होती है साता भूत संक्लेशता और असाताभूत संक्लेशता असाता की संक्लेशता को दुनिया पढ़ लेती है, पर साता की संक्लेशता को नहीं पकड़ पा रहा है। भैया! समझो, साता की संक्लेशता और असाता की संक्लेशता दोनों संक्लेशता हैं। असाता की संक्लेशता में रोता है, असाता की संक्लेशता में चिल्लाता है, लेकिन साता की संक्लेशता में मुस्कराता है। आनन्दित होता है। जितने विषयों की अनुभूतियाँ हैं, आत्मा की प्रवृत्तियाँ ये साता की संक्लेशता है।

वर्तमान के साइंस से पूछो, साता की संक्लेशता कैसे होती है? ज्ञानियो! किसी व्यक्ति के घर में खाने को दाना न हो उसको अचानक पचास करोड़ रुपये का द्रव्य मिल जाये, ऐसे व्यक्ति का हार्ट-अटैक हो सकता कि नहीं हो सकता।

ये बताओ इसको तो पचास करोड़ रुपये का द्रव्य मिला, पर मर कैसे गया? ये खुशी की संक्लेशता थी। इसे करणानुयोग से पूछेंगे तो मेरे मित्र गुस्सा करने

से चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है, तो हँसने से भी चारित्र मोहनीय कर्म का आस्रव होता है

होता है कि नहीं होता है? ओ हो! क्या जैन दर्शन है? इसलिए जितने निर्ग्रन्थ तपोधन हैं, इनको विपाक विचय धर्मध्यान करने की आवश्यकता है। कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं हर्ष के विषय को, विशुद्धि तो नहीं बना रहा हूँ। हजारों-हजारों लाखों जीवों में विशुद्धि को समझनेवाले जीव बहुत कम हैं।

दिन भर तो निकल जाता है, पूर्व के पुण्य का वैभव लूटने में और हम यही समझ रहे हैं की विशुद्धि का आनन्द है। आप मन्दिर में भी जाते हो, तो मुस्करा कर जाते हैं। कोई रास्ते में भी मिल गया हाथ जोड़ लिये मुस्करा करके, ये देखना ये धर्मात्मा देखकर हाथ जोड़े है, कि अपने वैभव की अनुभूति के लिए हाथ जोड़े है, कि लोक मैं मुझे लोग सम्मान देते हैं, इसलिए हाथ जोड़े है, कि ये णमोकार पढ़ने वाला धर्मात्मा जीव है इसके वात्सल्य भाव से हाथ जुड़े हैं। मेरे मित्र! संवेग भाव से हाथ जुड़े हैं कि सम्बन्ध से हाथ जुड़े हैं। ज्ञानी! आज तू खोज करना कि मेरी जो मुस्कराहट है, संवेग भाव की मुस्कराहट है, कि राग की मुस्कराहट है, कि द्वेष की मुस्कराहट है।

द्वेष में भी आदमी हँसता है। यदि शास्त्री की जेब कट जाये और तू इसका शत्रु है, तू हँसेगा कि नहीं, रोयेगा नहीं बोले ठीक हुआ इसका ऐसे ही होना चाहिए। देखो उसकी तो बेचारे की जेब कट गयी ये हँस रहा है अब कोई सोचे कितना धर्मात्मा जीव कि हमेशा खुश रहता है, तुझे पता नहीं है खुश क्यों रहता है? पता तो कर लो खुश हो क्यों रहा है? शास्त्री की जेब कट गयी, इसलिए खुश हो रहा है तो वह धमात्मा है क्या? ऐसे ही मार्ग में चलते-चलते आपने प्रसन्न होकर किसी को जय जिनेन्द्र किया अब यहाँ खोज करिये धर्मात्मा को देखकर के अन्तरंग में उसके प्रति वात्सल्य भाव जगा है। आपने जय जिनेन्द्र किया आपके कर्म की निर्जरा होगी। वहीं इस विषय को समझो, कभी-कभी लोग समझते हैं कि जय जिनेन्द्र करना तो राग है। मेरे मित्र! इस राग की भाषा को तो समझो मैं क्या बोल रहा हूँ? जय-जिनेन्द्र करना भले ही राग हो, पर प्रशस्त राग कर्म निर्जरा का कारण

है। मेरे मित्र! गृहस्थ-गृहस्थ को भी जय-जिनेन्द्र कर रहा है तब भी कर्म निर्जरा हो रही है।।

प्रश्न करो कैसे हो सकती है, आपको उसमें धर्मपना दिख रहा कि नहीं? धर्मात्मा देखकर आप जय-जिनेन्द्र कर रहे हो तो वात्सल्य अंग है कि नहीं? वात्सल्य अंग है वो सम्यक्त्व का अंग निर्जरा का कारण है कि नहीं? मेरे मित्र! संवेग भाव है, धर्मात्मा को देखकर प्रसन्न हो रहे हो, संवेग भाव है। संवेग भाव है, वो सम्यक्त्व का साधन है कि नहीं?

सम्यक्त्व का जो साधन है वो कर्म निर्जरा का साधन है। भैया आप बहुत बड़ी तपस्या, साधना नहीं कर पा रहे हो, तो कम से कम एक दूसरे से परस्पर में एक दूसरे के प्रति वात्सल्य भाव विनय भाव रखना, तो आप इतनी निर्जरा तो कर ही लोगे। साधु नहीं बन पाये, साधु को नमस्कार करते रहो उनको नमोस्तु करते रहो। विश्वास रखना यदि नमोस्तु बोलते समय आपके अन्दर में हर्ष भाव आ रहा है प्रसन्नता आ रही है, तो वो प्रसन्नता आपकी कर्म निर्जरा का कारण है।

कितनी सारी निर्जरा हम लोग कर नहीं पा रहे हैं। कितनी सारी निर्जरा अपने हाथ से खो रहे हैं। जहाँ विशुद्धि होगी, प्रमुदित भाव होगा। आत्मप्रासाद होगा, आल्हाद होगा। हर्ष नहीं खुशी नहीं, आनन्द नहीं उत्साह नहीं विषयों का। हर्ष नहीं खुशी नहीं, आनन्द नहीं यहाँ तो आल्हाद होगा, आत्म-प्रासाद होगा। ज्ञानी! प्रमुदित भाव होगा। जो प्रमुदित भाव हुआ है, आल्हाद हुआ है, संवेग भाव हुआ है वही संवेग भाव है। उसकी खोज करो, कि मैं जो दूसरे को देखकरके जय-जिनेन्द्र कर रहा हूँ, नमोस्तु कर रहा हूँ इसमें मेरे अन्तरंग का भाव कैसा चल रहा है? अन्तरंग का प्रमुदित भाव है, भाव विशुद्धि है तो वह कर्म निर्जरा का कारण है।

मैं नहीं करूँगा जय जिनेन्द्र, मैं नहीं करूँगा नमोस्तु तो मेरे से कौन करेगा? कौन आशीष देगा? कौन जय जिनेन्द्र करेगा? कैसे लोक में व्यवहार चलेगा? यदि लोक व्यवहार चलाने के लिए आप जीवन जी रहे हो तो आप का व्यवहार धर्म नहीं है। अन्तर समझना लोक व्यवहार चलाने के लिए तुम व्यवहारिक कार्य कर रहे हो। व्यवहार नहीं है, मात्र लोक व्यवहार है। व्यवहार तो मात्र इतना है

जिसमें सम्यक्त्व हो, व्यवहार उतना है जिसमें सम्यक्-ज्ञान, चारित्र हो।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से रहित जो भी क्रिया होगी, वो लोक व्यवहार में चली जायेगी। लोकाचार में चली जायेगी, लेकिन व्यवहार धर्म में नहीं आयेगी। ज्ञानियो वो लोक व्यवहार में जायेगी, धर्म व्यवहार में नहीं जायेगी। जितने सम्यक्त्व के साधन हैं, सम्यक्-ज्ञान के साधन हैं, सम्यक्-चारित्र के साधन हैं वे ही व्यवहार धर्म के साधन हैं।

मित्र! कहीं ऐसा तो नहीं है, हम संसार की खुशी को विशुद्धि तो नहीं मान रहे हैं। यहाँ खोज करनी पड़ेगी कि सम्यक्-दृष्टि जीव की विशुद्धि की अनुभूति क्या होगी और महाव्रती की विशुद्धि की अनुभूति क्या होगी। खुशी में और विशुद्धि में अन्तर खोजना ही पड़ेगा। ये विषय आँख खोलकर जानने का नहीं है, भीतर की आँख खोलकर जानने का है।

जब शान्त चित्त होकर बैठेगा तब जीव को समझ में आयेगा कि मेरे तत्त्व की भूल कितनी चल रही है।

जो ज्ञान वैराग्य को कष्ट मानता है, चारित्र को दु:खभूत मानता है, अरे भाई! साधना में तो बहुत कष्ट है संवर तत्त्व की भूल। अरे भाई! साधना से कष्ट होता है कि आनन्द आता है? प्रमुदित भाव होता है, आत्म-आल्हादित होता है। जो साधना को कष्ट स्वीकार रहा है, यही तो संवर तत्त्व की भूल है।

कोई सम्यक् दृष्टि नहीं, कोई मुनि दिखाई नहीं देता है, कोई श्रावक दिखाई नहीं देता है, कोई सम्यक्-दृष्टि जीव दिखाई नहीं देता है। हे जीव! विपर्यास की असीम अनुभूति ले रहा है, यदि तुझे वर्तमान में पंचमकाल में कोई सम्यक्-दृष्टि जीव नजर ही नहीं आ रहा है।

इसका मतलब है तेरी सम्पूर्ण तत्त्वों की भूल चल रही है। पहला मिथ्या दृष्टि तू है ही है। भैया! आजकल जो पत्रिका चलाते हैं, इनसे ही पूछ लेना, इन जीवों को जगत् में कोई सद्गुण दिखाई ही नहीं देते। हर व्यक्ति का लक्ष्य धर्म भी करने जा रहा है, तो अधर्म को देख रहा है।

माना कि जय निशान्त जय सागर बन गये, जय सागर बनकर मालूम ये क्या

कर रहा है। जय सागर बनकर ये सामायिक कर रहा है सामायिक करके उठकर आया और कहता है भैया अब तो जगत् में कोई साधु सामायिक ही नहीं करते। हे जीव! तू जो सामायिक कर रहा था उसमें तेरी सामायिक हो ही नहीं रही थी, क्योंकि जगत् के साधु सामायिक नहीं करते तू ये देख रहा था, तेरी साधना भी असाधना ही हो रही थी। धर्म समझना पड़ेगा। लोगों ने समझ लिया है कि मैं लेख लिख लूँगा, पत्रिका में छप जायेगा मैं धर्मात्मा कहलाऊँगा। तेरा अधर्म तो वहीं दिख रहा है जब तू लिख रहा था, तेरी दृष्टि दोषों पर थी, उपयोग-योग प्रवृत्ति दोषों पर थी। भैया! मैंने हाथ टेड़ा किया तो आपके कैमरे में ऐसा ही आ रहा है और हाथ सीधा किया तो ऐसे ही आयेगा। फोटो तो खिंच गयी। भले आप कैसे ही बैठ जाओ। हे जीव! भगवान् कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसारजी में आठवीं गाथा में लिखा **जिस समय जीव के जैसे परिणाम होंगे, उपयोग की धारा वही होगी और जैसी उपयोग की धारा होगी बन्ध की धारा वही होगी।**

आप जो-जो ज्ञेय देख रहे हो, उनज्ञेयों से समझ रहे हो, पर वास्तव में ज्ञेयों से ज्ञान नहीं हो रहा है, तेरा ज्ञान परिणमन तद्रूप हो रहा है।

मतलब समझो, विषय समझो, भैया! यदि आप मेरी भलाई की दृष्टि से मेरी बुराई देख रहे हो तब भी मेरे मित्र! जब-जब बुराई देखेगा उस समय तेरा उपयोग बुरे में ही होगा।

सूक्ष्म विषय है, जब निज में लीन होगा तब किसी की न भलाई निहारेगा, न बुराई निहारेगा कुछ नहीं देखेगा। लगता ये है इन पत्रकारों को कि मैं ऐसा लिख दूँगा, सुधार होगा, पर सत्यता ये है जो पत्रिका तुम्हारी पढ़ते होंगे उनको पढ़कर के अश्रद्धान उत्पन्न होगा या ईर्ष्या उत्पन्न होगी, डाह उत्पन्न होगा। तुमने घर-घर में जिनवाणी परोसने की जगह कषाय परोस दी है। अभी देश के सम्पूर्ण विद्वानों को बिल्कुल शान्त होकर के धर्म को समझने की आवश्यकता है। पानी में मणिपड़ा हो, तो खुली आँखों से आप देख सकते हो? स्थिर पानी में ही रत्न दिख सकता है।

जैसे सलिल स्थिर होने पर उसमें पड़ा मोती दिखता है, ऐसे ही जीव का मन थक जाये, स्थिर हो जाये ऐसे जीव को अपने निज भावों की दशा समझ में आने

लगती है।

अभी गर्मी है। इसे ज्ञान की गर्मी कहें, तो वास्तव में वो ज्ञान की गर्मी नहीं है अज्ञान की गर्मी है। समयसारजी में कुन्दकुन्द स्वामी ने द्रव्यभूत श्रुत है, शब्दभूत श्रुत है। मित्रो! शब्दभूत श्रुत है वो आत्मा नहीं है, शब्दभूत श्रुत है वो पोद्गलिक है और पोद्गलिक में तुम इतने मस्त हो गये हो। अभी तुम ज्ञानी नहीं हो, पुद्गल शब्दों की अनुभूति ले रहे हो। जब तुम ज्ञानी होगे तो ज्ञानी शब्द ब्रह्म में नहीं जाओगे आत्म ब्रह्म में लीन हो जाओगे। उस समय तुमको शब्द दिखाई ही नहीं देंगे शब्दातीत हो जायेगा। भैया मैं जानकर के कह रहा हूँ, कहीं जीव यूँ न समझ बैठे कि हम जो कर रहे हैं यही धर्म है। हम जो सुधार की बातें लिख रहे हैं, यही धर्म है।

यदि मेरी पूजा निरंजन बैनाड़ा करते हैं, इस जीव को तो पुण्यास्रव होगा। लेकिन ये मेरी मुनि पर्याय की पूजा करने से, पर्याय की पूजा होने से विशुद्ध सागर को कोई पुण्यास्रव होने वाला नहीं है। न कर्म की निर्जरा होने वाली है।

पर्याय की पूजा होने से, पुजने वाले की निर्जरा नहीं होती, पूजने वाले की हो सकती है, लेकिन हे पुजने वाले! तुम्हारी पर्याय की पूज्यता तुम्हारे कारण हो सकती है, निर्जरा का कारण नहीं हो सकती है, यदि राग हो तो हे पुजने वाले! तुम्हारी पर्याय की पूजा, तुम्हारा मोक्षमार्ग नहीं है, तुम्हारे परिणामों की पूजा रत्नत्रय धर्मसे हो रही है, तो तुम पूज्य भी हो निर्जरा भी होगी और ज्ञानी परम पूज्य फिर हो जाओगे। कब मेरे परिणामों से मेरे परमात्मा द्रव्य की पूजा हो सकती है, उसको कोई पूज रहा है।उससे मेरी निर्जरा का कोई सम्बन्ध नहीं है। लोगों ने ये समझ कर रखा है कि मैं जितना ज्यादा पुजूँगा तो उतना बड़ा मुनि हो जाऊँगा, ज्ञानी पुजने से नहीं होगा तेरे पूज्य परिणामों से मुनि होगा।

भैया! भीतर के ताने-बानों को सुलझाना है, नहीं तो बैण्ड बजते देखे उनकी ध्वनि अन्दर गूँज रही है लगने लगा मैं कितना बड़ा हो चुका हूँ। ये बड़ा नहीं होगा, जितनी ध्वनि तेरे कानों में गूँज रही है उतना तेरा पुण्य क्षीण हो रहा है।

एक ढोलक पर जब थाप हो रहा है। चमड़े से मढ़ी ढोलक पर जितने थाप उतनी हिंसा, जितनी खुशी, उतनी अनुमोदना, उतना ही कर्म का बन्ध है तुम्हारे

लिए। अब जो है सो है। इसलिए मुनियों की प्रभावना अलग है, गृहस्थों की प्रभावना अलग है।

नहीं तो मालूम चला हजारी भैया, हजारी सागर बन गये। जलूस निकलना था, पूछा किसी ने महाराज कितने हाथी मँगाऊ।ये बोले पचास मँगालो। मेरे मित्र! ये पचास हाथी पर पाँच बार भी अंकुश लगेगा तो कितने हो गये? वो अंकुश उसको पीड़ित करेगा उसकी वेदना के तुम अनुमोदक होगे कि नहीं होगे। आप कह सकते हो महाराज आप तो बहुत गजरथों में जाते हो, गजरथों में ही जाता हूँ, मैं तो अरिहन्त की बिम्ब प्रतिष्ठा में सूरि मन्त्र देने जाता है। सूर्य मन्त्र देने नहीं जाता हूँ क्या हुआ भैया कुछ लोग मन्त्र देने जाते हैं। भाषा तो वही बोलो जो शास्त्र में लिखी है, लोगों ने लिख दिया कागजों पर सूर्य मन्त्र। भैया! सूर्य का कोई मन्त्र नहीं देते हम जिन प्रतिमाओं में सूरि मन्त्र, सूरि यानि आचार्य के श्री मुख से जिनेन्द्र की प्रतिमा में दिया जाय उस मन्त्र का नाम है सूरिमन्त्र और आप सबने हल्ला कर दिया सूर्यमन्त्र।

यहाँ सब ऐसे ही कहेंगे। वहाँ वो भी कहते हैं महाराज दो सूर्य मन्त्र। मेरे मित्र! सूरि मन्त्र है, सूर्य मन्त्र नहीं है। ऐसे बहुत सारे विकल्प हैं जो कि जीव समझ ही नहीं रहे हैं। अब वो सूरि ही नहीं है, निर्ग्रन्थ मुद्रा को प्राप्त नहीं है। जिन प्रतिमा में मन्त्र देते हैं सो सूरि कहा है। प्रतिष्ठाचार्य भी सूरिमंत्र दे सकते हैं,

पर ये कब की व्यवस्था जब आसपास में दिगम्बर मुनि न हों तो। नहीं तो दिगम्बर मुनि से ही जिन बिम्बों का सूरि मन्त्र होता है।

संक्लेशता साता भूत है, असाता भूत है। दोनों संक्लेशताओं को सम करके देखो, क्योंकि वर्तमान का मेडीकल तो बोल रहा है कि इसको खुशी में हार्ट-अटैक हो गया है। इसे हमारा जिनागम तो सनातन काल से कहता चला आ रहा है। मुमुक्षुओ! सुखानुभूति की संक्लेशता और दुखानुभूति की संक्लेशता दोनों संक्लेशताओं में ज्ञानी दुर्गति होती है। इसलिए साता असाता के उदय के काल में भी जो जीव साता असाता की अनुभूति से भिन्न होकरके मात्र सत् की अनुभूति लेता है उसी का नाम विशुद्धि है। साता-असाता दोनों मेरे द्रव्य से भिन्न हैं, साता का उदय भी पोद्गलिक है,

असाता का उदय भी पोद्गलिक है।

साता-असाता दोनों के उदय के होने पर भी अपनेसत् स्वरूप को जो निहारता है, आनन्द लेता है, उसका जो प्रमुदित भाव है उसका नाम विशुद्धि है। आप विधान कराने गये, लोगों ने आपको तिलक लगाया। जब आप लोगों के फोटो छपते हैं गद्गद् चेहरा दिखता है, प्रसन्न दिखते हैं आप सब। विद्वानो खोज करना ये तिलक की खुशी है, लिफाफे की खुशी है या भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति की खुशी है? इसकी खोज करना पड़ेगा, लेकिन खोज नहीं कर पा रहे हो। मुमुक्षु! विश्वास रखना कि पूरी पर्याय तुम्हारी माला की खुशी में निकल जायेगी और अरिहन्त की एक भी माला नहीं फेर पाओगे।

इस परम सत्य को आप तो सुन रहे हो, पर लोगों को सुनने की भी ताकत नहीं है। क्षमता नहीं बची। वे तो यही समझ रहे, धर्म क्या समझ कर रखा है कि मैं पण्डित की प्रशंसा कर दूँ वे माइक पर आकर के मेरी प्रशंसा कर जायें हम दोनों की प्रशंसा हो जाये और समाज बेचारी देखती रहे। दोनों अहंकारी एक दूसरे की ताली बजा रहे हैं और बेचारी भोली समाज के साथ छल हो रहा है। मायाचारी यदि चली तो तिर्यंचगति नियत है। आप सोच रहे हो कि महाराज अपने मुख से बोल रहे हैं। ज्ञानी! मुख मेरा अवश्य हो सकता है, पर वचन जिनेन्द्र के चल रहे हैं।

''तृष्णान्धा नैव पश्यन्ति''

जो तृष्णा में अन्धे हो चुके हैं, उनको दिखाई नहीं देता। ज्ञानियो! ऐसे दिन भी तो आपने देखे हैं। भैया! उधर इकलौता इक्कीस वर्ष का युवा उसकी अन्तिम श्वास निकल रही है और वैद्यजी कह रहे हैं पहले मेरा द्रव्य दो, तब आप आगे देखना।

पंडित जी! उधर गजरथ की फेरी खड़ी हुई है, आप कह रहे हैं, पहले मेरा काम करो, फेरी फिर गयी फिर तो आप फुर्सत हो जाओगे। पहले मेरा लिफाफा भरो। फेरी बाद में होगी पहले मेरा सम्मान होना चाहिए है। लिफाफा अन्दर जाकर खोल कर देख लिया जायेगा फिर उसे पता चलेगा कितना है, तब फेरी फिरेगी।

मित्र! ये धर्म कितना ऊँचा । पण्डित जी! ऐसा होता है, ऐसा भी लोग कर लेते हैं। तुमसे किसी गरीब व्यक्ति ने विधान कराया, कोई उतना नहीं दे सकता, तो धर्म आपका भी एक दिन धर्म करके ही धर्म कर लेते।

कभी-कभी ये लगता है कि क्या इनका धर्म नहीं है? "जैन धर्म" क्या इनका नहीं है? जैन धर्म ज्ञानी तेरा भी धर्म है। समाज तो पैसा खर्च करके धर्म कर रही है, मुझे समाज ऐसा करने का मौका दे रही है, तू कितनी निर्जरा कर सकता है।

एक वे विद्वान् हो गये देश में जिनको एक रुपया या पचास पैसा मिलता था एक पृष्ठ पर काम करने पर ज्ञानी! चार पाँच दिन तक एक कागज नहीं लिखा।

तो अन्य विद्वान् कहते हैं,आगे क्यों नहीं बढ़ते हो, तुम्हारा दिन का खर्च जा रहा है आप आगे काम करो, नहीं कर सकता। बोले अर्थ समझ में नहीं आ रहा है। शब्द कोष चाहिए, पत्नि ने अपनी सोने की चूड़ियाँ उतार कर दे दीं। पण्डितानी जी ने कहा स्वामी जाओ ये बेच कर आओ और शब्द कोष खरीद कर लाओ फिर आगे काम करो।

ऐसे निर्लोभी जीव हुए हैं, अपने देश में ऐसे विद्वान् भी हुए हैं। उन्होंने जिनवाणी का विपर्यास नहीं किया। पन्ना लाल साहित्याचार्य, कैलाशचन्द, फूलचन्द शास्त्री, जगनमोहन लाल शास्त्री, पण्डित निरंजन लाल कोटिया इनका नाम था वास्तव में विद्वान्।आजकल तो प्रोफेसर लोग हैं। ये थे विद्वान् हकीकत में जिनको विषय पर अधिकार था, ज्ञान था, विनय थी और विद्वत्ता थी। इसलिए तृष्णा को तो छोड़ना ही पड़ेगा। और जब तक लोग तृष्णा नहीं छोड़ेंगे तो आप सामान्य श्रावकों की कैसे तृष्णा सुधार रहे हो। तृष्णा छोड़ना पड़ेगा। आज समझ में नहीं आयेगा जीवन की अन्तिम श्वांस तक समझ में आ जाये, तब भी समझ में न आये तो अगली पर्यायों में समझ में आ जाये तब भी समझ में न आये तो कभी न कभी तो समझ में आयेगा। सिद्धान्त है, मेरा नहीं है, जिनागम का सिद्धान्त है।

ये सारे के सारे वर्तमान में जो मुनिराज हैं ये कितने ही परिणाम ऊपर नीचे कर लें, लेकिन जब भी मोक्ष होगा, एक ही परिणाम से होगा, दो परिणामों से हो ही नहीं सकता है एक परिणाम होगा ये करणानुयोग बोल रहा है, जब भी मोक्ष होगा आप किसी भी संघ के मुनि हो सकते हो, आप किसी भी आचार्य से दीक्षित

हो सकते हो, आप छोटे कद के हो सकते हो, बड़े कद के हो सकते हो, पाँच सौ धनुष की अवगाहना हो सकती है, साढ़े तीन हाथ का शरीर हो सकता है, लेकिन मोक्ष तभी होगा जब सभी के परिणाम समभूत, एकत्व भूत होंगे, क्योंकि सूक्ष्म विरीत शुक्लध्यान जब बनेगा तभी निर्वाण होगा।

कर्म की प्रकृतियाँ समझ लीं, पर प्रकृति अपनी नहीं समझा। ज्ञानी! खोज करो, प्राणी मात्र के प्रति तुम्हारे परिणाम की धारा क्या चल रही है? आज से खोज ये करना कि मैं हर्ष में तो सुख नहीं मान रहा हूँ, विषाद में तो धर्म नहीं मान रहा हूँ। माना कि घर में कोई बात हो गयी अथवा मुनिराज हैं संघ में कोई बात हो गयी तो उदास हो गये, उदास नहीं हुए ये तनाव में इनको उदासी आ गयी।

इसको लोग समझ रहे हैं वैराग्य। विशुद्धि पूर्वक परवस्तु से भिन्न होकरके जीवन जीना, इसका नाम है वैराग्य। अशुद्धि पूर्वक जग को छोड़कर बैठना इसका नाम उदासता नहीं है। संक्लेशता हीन भावना दीन-भावना है।

मुमुक्षुओ! वैराग्य न ही भावना है, न दीन भावना है, वैराग्य अन्तरंग की विशुद्धि है, नहीं तो मालूम माता कहीं खटपट हो गयी और पति से कह रही है कि मैं तो आर्यिका बनने जा रही हूँ। ये वैराग्य नहीं है। घर में झगड़ा हो गया, भैया! कह रहा है बताओ कौन से संघ में दीक्षा ले लूँ?

ये वैराग्य नहीं है, आप चपेट के कारण घर से भाग रहे हो। वैराग्य वो है, **संसार-भोग-शरीर से विरक्ति का भाव है उसका नाम वैराग्य है।** परिग्रह को छोड़ने का भाव रखना। आज धन्य-त्रयोदशी है, इन मुमुक्षुओं ने क्या कर लिया धन-त्रयोदशी। रत्न कोई है, तो संतोष ही है।

विद्वान् पुरुष सतोषरूपी रत्न को धारण करके, नित्य ही सच्चे मोक्ष-मार्ग पर चलकर सुखी रहते हैं। संतोष ही महारत्न है, इसमें दृष्टिपात करना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

धन-संचय में सुख नहीं

तृष्णानल प्रदीप्तानां, सुखौख्यं तु कुतो नृणाम्।
दुःखमेव सदा तेषां, ये रताः धनसञ्चये॥ सा. स. 241॥

अन्वयार्थ—तृष्णानलप्रदीप्तानां नृणाम् तु = जो मानव तृष्णारूपी अग्नि से जलते रहते हैं उनको, **कुतः सुसौख्यं** = किस प्रकार उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है? **ये धन संचये रताः** = जो धन के एकत्र करने में ही रत रहते हैं, **तेषां सदा दुःख एव** = उन्हें सदा दुःख ही भोगना पड़ता है।

भावार्थ—हे आत्मन्! तृष्णारूपी अग्नि से सन्तप्त मनुष्यों को सुसुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है। जो धन को सञ्चय करने में सदा लीन रहते हैं उनको सदा दुःख ही होता है।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो जगत् कल्याणी है, ये सर्वज्ञ शासन नमोस्तु शासन जयवन्त हो जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्य प्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में तृष्णातुर पुरुष की अंतरंग की कषाय परिणती की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं, अंधों में कोई महान् अंधा पुरुष है तो तृष्णा से भरा हुआ पुरुष है।

जिसको न दिन में कोई दृष्टिगोचर पदार्थ होता है और रात्रि में न कोई सत्य का दिग्दर्शन होता है, ऐसा कोई क्षण नहीं है कि तृष्णा से भरा पुरुष अन्धेपन से युक्त न हो।

क्षण-क्षण में पल-पल में यदि अशान्ति कोई है, तो तृष्णा में है। इच्छा की पूर्ति कभी सम्भव नहीं है इच्छा की पूर्णता पर द्रव्य के संग्रह में किंचित् मात्र भी नहीं है। शान्ति चाहिए है, तो इच्छा को शान्त कर लो। समय सभी के पूर्ण हो रहे हैं, गरीब भी जीवन पूर्ण कर रहा है, धनिक भी जीवन पूर्ण कर रहा है, पर दोनों के मध्य में एकत्व दृष्टि कहीं है, धन हीन, धनवान इन दोनों में यदि एकत्व

है तो दो स्थानों पर है। दोनों की आकांक्षाओं से मिला जाय जितनी धन हीन की आकांक्षा है, उतनी धनवान के अन्दर भी आकांक्षा है।

एक को धन प्राप्ति की आकांक्षा है, एक को धन वृद्धि की आकांक्षा है एक को धन मिले कैसे, एक को धन सुरक्षित रहे कैसे? कष्ट दोनों के भीतर गूँज रहा है और दोनों में एक के घर में विभूति दिख रही है एक के घर में गरीबी दिख रही है। दोनों में समन्वय नहीं है। दोनों में समन्वय चाहिए है, तो संतोष दोनों के हृदय में समाविष्ट हो जाये तो दोनों के भाव साम्य हैं। पर वस्तु से मैंने नीचता को देखा, पर वस्तु से मैंने ऊँचाइयों को देखा। पर वस्तु से मैंने उच्चपन देखा, पर वस्तु से मैंने नीचपन देखा। स्व-वस्तु से देखें, तो दोनों समीकरण हैं। समझो ध्यान से पर वस्तु में मैंने ऊँचापन देखा, पर वस्तु में मैंने नीचापन देखा। सोने के कलश में भरा पानी स्वर्णकलश का पानी, रजत कलश में रखा पानी रजत का पानी एक कलश कुर्सी पर रखा है एक कलश जमीन पर रखा है। एक ऊँचा रखा पानी एक नीचा रखा पानी, पर वस्तु के सम्बन्ध में पानी में भेद दिख रहा है।

ज्ञानियो! दोनों पानी के स्वभाव को देखा जाये, तो पानी में समीकरण है। पानी में साम्यभाव है। जैसे पानी के शीतल गुण में साम्यभाव है ऐसे ही जगत् के प्राणिमात्र के चैतनत्व में साम्यभाव है। जो ऊँच और नीच भाव है, ये पर वस्तु का सम्बन्ध है। इसे मिटाना चाहते हो, तो पर वस्तु का सम्बन्ध छोड़ना ही पड़ेगा। कर्तृत्त्व से दृष्टि को मोड़ना ही पड़ेगा। समय कितना ही लग जाये, लेकिन नियत स्थान तो यही है इसको बदला नहीं जा सकता। ऊँच-नीच भाव, पर वस्तु का सम्बन्ध एक दिन के लिए मात्र, एक समय के लिए अपने आप को इतना करके देखो "न मैं गरीब हूँ न मैं धनी हूँ" मेरे में धनत्व भाव नहीं है, धनहीनता भी नहीं है। जो धन दृष्टि धनहीन दृष्टि रंक-राव दृष्टि ये पर भाव है। होता यूँ है कि हम समझ लेते हैं, समझ नहीं पा रहे हैं। क्षण मात्र में भाव आता है मैं विशिष्ट हूँ, मैं विशिष्ट हूँ हाँ तू विशिष्ट ही है। जगत् के जड़ द्रव्यों से तू विशिष्ट है, तू चैतन्य स्वभावी है। जड़ द्रव्यों से तू विशिष्ट है। यदि आपको विशिष्टपना ही देखना है तब भी

मैं अच्छे से पूछे लेता हूँ, कुलीन पुरुष धनवान पुरुष अपने आप को दूसरे के भिन्न करके निहारता है। अपनी इज्जत का ध्यान रखता है। अपनी प्रभुता का ध्यान रखता है।

मेरे मित्र! ध्यान से सुनो मैं क्या कह रहा हूँ। अपनी प्रभुता का ध्यान रखता है, सामान्य लोगों से दूरी बनाकर रखता है, मैं विशिष्ट हूँ। यदि ऐसा ही तुम्हारे अन्दर भाव है कि मैं विशिष्ट हूँ, तो हे जीव! तू चैतन्य गुण से विशिष्ट है, फिर तू जड़ पौद्गलिक द्रव्यों में अपने आप में विशिष्ट है।

परद्रव्य की अपेक्षा से स्व द्रव्य विशिष्ट ही होता है।पर चतुष्टय की अपेक्षा से स्व चतुष्टय विशेष ही होता है। जो-जो अचेतन द्रव्य है अचेतन द्रव्य की दृष्टि से मैं असाधारण ही हूँ अचेतन द्रव्य की दृष्टि से समझ में आ रहा है आपको। अचेतन द्रव्य की दृष्टि पौद्गलिक द्रव्य की दृष्टि से परद्रव्य दृष्टि से मैं असाधारण ही हूँ, मैं साधारण नहीं हूँ। एक प्रभु एक विभु भैया जब ये जीव भगवान् वर्द्धमान के निर्वाण कल्याणक को मना रहा हो, गौतम स्वामी के केवल्य ज्ञान कल्याणक को मना रहा हो, उस क्षण में निज के भेद विज्ञान की ज्योति नहीं जला सका, तो दीपावली क्या और निज आनन्द के मोद में मुदित न हो सका तो निर्वाण लाडू क्या। निश्चय दृष्टि से परमार्थ दृष्टि से निज के भेद विज्ञान के दीप को नहीं देख सका। **'नमः समयसाराय स्वानुभूति'** स्वानुभूति की ज्योति से निज के द्रव्य को प्रकाशित करके नहीं निहार सका तो दीपमालिका क्या? व्यवहार दृष्टि। पण्डित जी! एक जला दीप हजारों भुजे दीपों को जला देता है। एक ज्योतिर्मय दीप हजारों सहस्त्रों लाखों भुजे दीपों को ज्योति दे देता है। देता है कि नहीं देता है? मेरे मित्र! अप्रकाशित दीपों को ज्योति दे देता है। ऐसे ही एक केवली भगवन्त अनन्त छद्मस्त जीवों को दिव्य ज्ञान की ज्योति को प्रदान कर देते हैं। वस्तु व्यवस्था क्या थी और आपने रूप क्या बना दिया? जैसे दीप बुझे को जला देता है, जिनकी श्रद्धाओं के दीप बुझ गये हों, जिनकी आस्थाओं के दीप बुझ गये हों, हे जले दीपको! इन दीपों को भी अपने आप में ज्योतिर्मय कर लो।

जो पंचमेष्ठी की श्रद्धा से दूर हो रहे हों, उनको पंचमेष्ठी के चरणों में बिठा लो। जो धर्म से दूर हो रहे हों, वात्सल्य से दूर हो रहे हों, सच्ची दीपावली तो माँ ये है यदि आपका परस्पर में विसंवाद हो गया हो, परस्पर में प्रीति भंग हो गयी हो, तो आज ही घर में जाकर दीपमालिका बाद में पहले परस्पर में प्रीति का दीप प्रकाशित कर लेना।

क्या मालूम जीवन की ज्योति कब बुझ जाये? जीवन की ज्योति को बुझने से पूर्व श्रद्धा की ज्योति का उद्योतित कर लेना। भैया! यदि लोक में जाकर के अपने अन्दर करुणा दया है, तो जीवों से कहना मेरे मित्र! आस्था की ज्योति जगा लेना। सम्यक् की ज्योति जला लेना और दया और करुणा की ज्योति जला लेना। दीप मालिका के दिन नाना जीवों की प्राणों की ज्योति को नष्ट मत करना। समझ रहे हो न नाना जीवों के प्राणों की ज्योति को भंग मत करना। एक दीपक से हजारों दीप जल सकते हैं। निहारिये भीतर में मेरा कौन सा गुण भुज रहा है? ज्ञान दीप कहा है।

जगत् में जितने द्रव्य हैं पदार्थ हैं, उनमें ज्योति दिखाई नहीं दे रही है। दीपक में ज्योति है। ये ज्ञान गुण द्रव्य है, आत्मा में अनन्त गुण जो हैं आत्म द्रव्य में गुण हैं जो भुजे हुए हैं। आत्मा में अनन्त गुण हैं। जो ज्योति विहीन है, आत्मा में एक गुण ऐसा है, ज्योतिर्मय है, उसका नाम है ज्ञान गुण। प्रदीपवत्। तज्जयति परंज्योतिः।

अमृतचन्द्र स्वामी ने तो ज्योति को ही नमस्कार किया है और इस शब्द को सुन करके भैया लोगों ने क्या किया बोले अमृतचन्द्र स्वामी ने तो ज्योति को ही नमस्कार किया है, लोग इस दीप ज्योति को ही नमस्कार करने लग गये।

मेरे मित्र! इस जड़ ज्योति की वन्दना नहीं है वो चैतन्य केवल्य ज्ञान ज्योति की वन्दना है।

दीपक तो प्रतीक मात्र है, नहीं तो आप दीपक के पैर पड़ रहे हो, हे भगवान् जय हो ज्ञानियो। ये दीपक की वन्दना नहीं है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र ॥पु.सि.॥

उदाहरण कम देना चाहिए? बिल्कुल सम्भल कर सुनना आप लोग। पण्डित जी! दृष्टान्त कम देने चाहिए। मेरे मित्र सही बोल रहा हूँ और जब भी किसी विषय को समझाना हो तो दृष्टान्त को अधिक समय मत दे देना तात्पर्य समझना कदाचित् घर का मुखिया बाहर चला जाय और किसी को अधिकार सौंप कर जाय उसको लम्बा समय नहीं लगाना चाहिए।

देश में जितने राज्य छिने हैं, जितने राज्य पद से लोगभ्रष्ट च्युत हुए हैं, उसमें एक ये भी आलम्बन हुआ है कि मुख्य राज्य अधिकारी अथवा राजा स्वयं विदेशयात्रा पर चला गया। जिसको अधिकार देकर गया था, उस व्यक्ति ने इतने प्रेम से लोगों को रखा, इतना विश्वास दिला दिया कि जब तक राजा वापस आये जिसको अधिकार दिया गया था। वो सम्राट बन चुका था। अब आने वाले को धक्का देकर भगा दिया।

क्या **श्रीपाल** के साथ ऐसा नहीं हुआ, अपने चाचा **अरिदमन** को राज्य दिया था, मात्र कब तक के लिए मात्र जब तक मेरा रोग है, लोग मुझसे दुखी है तब तक के लिए दिया था। जब वापस आये वैभव को देखकर कौन नहीं बौराता? वैभव को पाकर, धन को पाकर कौन नहीं बौराता? बौराना जानते हो न, कौन नहीं उन्नमत्त हो जाता। भैया चाचा **अरिदमन** के भाव बदल गये। मूल विषय को पकड़, दृष्टान्त अधिक मत देना। तो जो हुआ क्या राज्य अधिकारी हो गये **अरिदमन**, ऐसे ही ज्ञानियो आपके घर में भी ऐसा होता है। जिसको भवन किराये पर दिया है, आप में विवेक यदि हो तो लम्बे समय तक किराये पर भवन देकर मत रखना। व्यवहारिक बात बोल रहा हूँ, किराये पर भले ही देना, लेकिन उस किरायेदार को बदल देना, दूसरा रख लेना। नहीं तो मालूम उल्टा पैसा देना पड़ेगा घर खाली कराने के लिए।

ऐसा नहीं होता क्या? कुछ लोग ऐसे यहाँ बैठे होंगे जो पैसा दे चुके हैं कुछ ऐसे भी लोग होंगे जो पैसा ले चुके हैं, हाँ दूसरे घर में राज्य किये थे उल्टे पैसा लेकर घर छोड़ा है।

समझो में यह क्यों कह रहा हूँ। पण्डित जी! क्या होता है, यदि व्याख्यान के काल में तत्त्व का व्याख्यान चल रहा हो, लम्बा दृष्टान्त तुमने दे दिया और श्रोताओं की जो धारा थी वो दृष्टान्त में ही लग गयी। रोचक कथा सुनायी इतनी रोचक कथा सुनायी आपने कि दृष्टान्त प्रधान हो गया और दृाष्टान्त विलीन हो गया। मुमुक्षु! ऐसा है कि नहीं? उदाहरणों से भी शंका हो जाती है। इसलिए दृष्टान्त अल्प देकर के आगे चलना चाहिए, जिससे कि ये मालूम चले कि इस विषय के लिए ये दृष्टान्त दिया गया था, ये न हो जाये कि दृष्टान्त के लिए विषय दिया गया था।

दृाष्टान्त के लिए दृष्टान्त होना चाहिए दृष्टान्त दृष्टान्त के लिए नहीं होना चाहिए है। ज्ञान दीपक के समान होता है आइये विषय पर, ये दृष्टान्त था ज्ञान दीपक के समान होना चाहिए। केवल्य ज्योति की आरती उतारने के लिए आपने दीपक प्रकाशित किया और मालूम चला केवल्य ज्ञान ज्योति गौण हो गयी और घर के प्रकाश के लिए रखा दीपक ही पूज्य हो गया, केवल्य ज्योति से आपकी दृष्टि ही हट गयी।

दीपावली के दिन कितने लोग केवली भगवान् की आरती उतारते हैं। दीपक जलाया घर के कौने-कौने पर रखा और लड्डू मिठाइयाँ खाना प्रारम्भ कर दिये, जब कि उस दिन करना क्या चाहिए था? रात्रि में भोजन-पानी के त्याग की व्याख्या जिस दर्शन में हो और केवल्य-ज्ञान-ज्योति की आप ज्योति से आराधना कर रहे थे।

जहाँ पर केवली की वाणी खिरी हो, केवल्य ज्योति प्रकट हुई हो और ऐसे समयपर आप वहाँ रात्रि में मिठाइयाँ खा रहे हो। भैया! इन बेचारों को थैला दे देना, क्योंकि घर-घर में शाम को जाते हैं पूजा के लिए नहीं, वहाँ तो मिठाई मिलती है। अब इस वर्ष क्या करना एक थैला दे देना। ज्ञानी! केवल्य ज्ञान कल्याणक महोत्सव, वीर का निर्वाण महोत्सव और तू रात्रि में सेवन करेगा? तू एक थैला ले ले, सब का रखवाते जाना घर ले जाना, पर रात्रि में किसी के यहाँ भोजन करने मत जाना। देखो भाई "परम्परा विकृत हुई कि नहीं हुई" महाराज प्रेम कैसे दिखेगा? मेरे मित्र! वात्सल्य के साथ जो मुदित परिणाम है, वही मोदक है, न कि रात्रि

में लड्डू खाने लग जाओ। केवल्य ज्ञान हुआ है, उस वाणी में रात्रि भोजन खाने का निषेध था? पर कितना विपर्यास बड़े-बड़े ज्ञानी लोग कर रहे हैं।

''तज्जयति परं ज्योतिः'' वह परम ज्योति जयवंत हो। कौन सी ज्योति? एक सज्जन दीपक रख करके ध्यान कराते थे, उनसे कहा आप दीपक का ध्यान कर रहे हो, बोले महाराज आपके समयसार जी में अमृतचन्द्र स्वामी ने दीपक की आराधना की है। आचार्य अमृतचन्द स्वामी ने पुरुषार्थ सिद्धि उपाय ग्रन्थ में परम ज्योति को नमस्कार किया, जयवंत किया है, इसलिए तो मैं ज्योति का ध्यान कर रहा हूँ। मेरे मित्र! ये कौन सी ज्योति है? चिद्रूप चैतन्य ज्ञान घन ज्योति है, न कि ये दीपक की ज्योति है।इसलिए दीप को प्रतीक मात्र मानना, पर वन्दना दीपक की नहीं करना दीपक की वनदना करोग तो बन्ध करके ही जाओगे। वन्दना दीपक की नहीं, वन्दना केवली भगवान् की करना है।

तृष्णातुर होकरके इस जीव ने क्या किया? प्रतीकों को ही प्रतीक मान लिया है। समझाने वाले दृष्टान्त को दृाष्टान्त मत समझ लेना। प्रतीक-प्रतीक है, लांछन-लांछन है, लेकिन लांछन वह नहीं है जिसके लिए लांछन ग्रहण किया गया है। यही लोक में हुआ है जैसे प्रतीकों की पूजा प्रारम्भ हो गयी। ऐसे ही नारियों की पूजा प्ररम्भ हो गयी, जबकि जिनशासन की जो विशेषता है उनसे लोग दूर हो गये। भैया! आप भी यहाँ स्वाध्याय कराते हो, जितने आपके चेला हैं सब आपकी भी मूर्ति स्थापित कर देंगे। मेरे मित्र! बहुत अच्छे से कह रहा हूँ, सबके बीच में बोल कर रखना, आज से ही कि मेरी अन्तिम श्वांस निकले, मेरी पर्याय के विलीन होने के बाद मेरा कोई प्रतीक खड़ा मत करना, क्योंकि मैं भगवान् महावीर के विरुद्ध खड़ा होना पसन्द नहीं करता। जो पुरुष अपनी प्रतिष्ठा के राग में, अपना प्रतीक बना कर जायेगा, विश्वास रखना वो तीर्थंकर महावीर के विरुद्ध खड़ा करके जायेगा। मैं इन सबको बोल कर रखे हूँ कि विशुद्ध सागर के नाम पर विशुद्धोदय, विशुद्धगिरी नहीं बनाना।

जो भी है तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी का शासन है। समझो भाई जितने यहाँ बुजुर्ग बैठे हैं। मेरे मित्र! तेरी पर्याय तो विलीन हो जायेगी और तेरी पर्याय की पूजा से

तुझे मिलेगा क्या? इसलिए ज्ञानी अपने बेटों से कह कर जाना कि बेटा मेरी अन्तिम श्वांस निकलने से पहले तेरे अन्दर यदि मेरे प्रति करुणा है तो मुझे दिगम्बरी दीक्षा दिलवा देना वो भी कब पण्डित जब तेरे भाव होंगे जबरदस्ती नहीं। बेटा! मैं मुनि नहीं बन सका तो कम से कम निग्रन्थ के चरणों में मेरी सल्लेखना करा देना, वहाँ नहीं पहुँच सका तो कम से कम तू ही मेरे कान में णमोकार सुना देना। वो तो मेरे काम में आयेगा, मेरी भावों की विशुद्धि रहेगी और कहीं मेरे जाने के बाद तुमने मेरा पुतला खड़ा कर दिया और दूसरे लोग आयेंगे उसे पूज देंगे। मेरे मित्र! मेरे निमित्त से और तेरी करतूतों से ग्रहीत मिथ्यात्व खड़ा हो जायेगा। नियम ले लो, भैया! कितने लोग अपना पुतला बनाकर जायेंगे, नहीं कर पाओगे। कुछ भी तो नहीं छुड़ा रहा हूँ तुम तो चले जाओगे तुम कौन देखने आओगे?

जीवन में जब-तक समझ है जब-तक समझ है, आपके घर में छोटा सा कोरा कागज रखा हो, उस पर लिख करके रख देना। मेरी मृत्यु के बाद कोई मेरी राग मूर्ति स्थापित करके न जाये। आज भगवान् महावीर स्वामी ध्यान में लीन हैं, योग का निरोध तो कल हो चुका, ध्यान में लीन हैं स्वानुभूति की अनुभूति में केवल्य की ज्योति में निमग्न हैं।, प्रतीकों ने प्रतीती नष्ट करा दी। आप ध्यान दो, मैं बोल क्या रहा हूँ और गहरे में जाना पर पर लक्ष्य मत ले जाना। प्रतीकों ने प्रतीती भंग करा दी। मेरे मित्र! जब-तक हीन दशा है तब-तक इन भगवान् के चित्रों में उलझना, उत्कृष्ट मार्ग तो यही है कि प्रतीकों में प्रतीती भंग मत करो।

मैं चन्द्रप्रभु जिनालय जाऊँगा, मैं महावीर जिनालय जाऊँगा, मैं पारसनाथ जिनालय जाऊँगा ही नहीं, मैं शान्तिनाथ जिनालय जाऊँगा ही नहीं। ज्ञानी! ये तीर्थंकर भगवन्तों के प्रतीक थे जिन बिम्ब थे, जिन बिम्ब जो हैं, आत्म बिम्ब को लखने के लिए थे। आप प्रतीकों में इतने लवलीन हो गये मेरे मित्र व्यवहार से वात्सल्य की प्रतीती नष्ट हो गयी और निश्चय से स्वात्म अनुभूति नष्ट हो गयी, क्योंकि तुम पर में उलझ चुके हो। इस विषय को भी समझो, ज्ञानी! लोगों का लक्ष्य ही नहीं है यहाँ पर जितने प्रतीकों में प्रतिबिम्बों में जितना तुम खिंचाव रखते हो उतना तुम निज में प्रीति रख लो तो तुम्हें प्रतिबिम्बों के पास जाने की आवश्यकता ही नहीं है।

यही कारण है कि निर्ग्रन्थ योगी जहाँ होते हैं। वहीं उनकी तीर्थ भूमि होती है। समझ में आ रहा है आप सबको, यदि समझ में आ रहा है तो ध्यान रखना माताओ वन्दना करना जिनबिम्बों की आराधना करना, लेकिन लक्ष्य रखना वर्द्धमान महावीर के ऊपर। लक्ष्य रखना कि मैं वर्द्धमान कैसे बनूँ? वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना। दो बार वर्द्धमान बोला, वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना, वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना। एक बार वर्द्धमान आप सिद्धारथ के बेटा वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना तो दूसरी बार हे जीव! निज आत्म की अनुभूति की जो बुद्धि है आत्म गुणों के वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना। निज गुणों के वर्द्धमान पर लक्ष्य रखना और निज गुणों को बुद्धि पर लक्ष्य नहीं है वर्द्धमान की पर्याय पर लक्ष्य है वर्द्धमान के गुणों पर लक्ष्य नहीं है। कठिन हो रहा है क्या? बहुत सरल है। ये मत सोचना कि मैं आपको भगवान् से दूर कर रहा हूँ। उल्टा मत सोचना। भगवान् के बहुत नजदीक आपको ले जा रहे हैं, अभी तक आप भगवान् की प्रतिमा के नजदीक थे। भगवान् के नजदीक जाओ, भगवान् के नजदीक जाओगे तो स्वयं को भगवान् बना लोगे। ज्ञानियो! अविसंवादी तत्त्व को समझना है, तो दृष्टि को बिल्कुल पवित्र रखना पड़ेगा। प्रदीप वत्। इस शब्द पर ध्यान दो ज्योतिर्मयी, प्रकाशमयी। प्रकाशमयी जैसे दीपक है, ऐसे मेरा ज्ञान-गुण प्रदीप है, अनन्त गुणों को ज्योति देने वाला है, अनन्त गुणों को बताने वाला है

जड़ दीपक कितने द्रव्यों को बता देता है। आपको निज का दीप आपके निज के गुणों को नहीं बता सका, इसका तात्पर्य है आपने अपनी ज्योति को जाना नहीं। दीपावली मनाना है कि नहीं, **इस वर्ष की दीपावली कुछ हटके होना चाहिए है। कोई फटाखे नहीं फोड़ना, राग-द्वेष फोड़ना है। विभाव भाव फोड़ना है, तो एक-दूसरे के प्रति जो कषाय बैठी है उसको फोड़ना।** कोई फुलझड़ी मत चलाना फुलझड़ी चलाना है तो ज्ञानियो भीतर की ज्ञान की रश्मियों को प्रकट करना। अनहोनी दीपावली, विशिष्ट दीपावली, जो अभी तक न ऐसी मनायी हो। भैया! ज्ञानी कोई किसी भी प्रकार का धुआँ नहीं निकालना, कोई धुआँ निकालना है, तो विभाव भावों का धुआँ निकालना।

यदि एक घण्टे सामायिक करते हो, तो इस दिन दो घण्टे सामायिक करना और बैठ कर के ध्यान में लीन हो जाना, फिर निहारना कि पावापुर के सरोवर में वर्द्धमान स्वामी ने कैसे निरोध किया योगों का और कैसे कपूर की भाँति परम औदारिक शरीर उड़ गया। ज्ञानी! नख और केश अवशेष रह गये और प्रभु अनन्त में विलीन हो गये, एक मात्र शुद्ध स्वभाव अवशेष है। ज्ञानमूर्ति और वो ज्ञान मूर्ति हो चुके हैं मूर्तिक देह से भिन्न होकरके ज्ञानमूर्ति हो चुके हैं। वहाँ निहारना जिस उत्साह को देवों ने मनाया था, उत्साह क्या था? जो मेरे भीतर भरा हुआ है। उत्साह क्या? मेरे मित्र स्वयं की दीपावली कल मनाना, बैठकर के सामायिक करना। परमार्थ में नहीं प्रवेश कर पाओ तो फिर व्यवहार से मना लेना एक दूसरे में प्रेम और वात्सल्य का दीप कैसे जले? कषाय का अंधकार कैसे मिटे? भैया! विश्वास रखना कषाय मस्तिष्क में आते ही अन्धकार प्रवेश कर जाता है। जो बहुत दूर तक आपको साफ दिखता था कषाय आते ही तुरन्त अंधकार हो जाता है। जिनमें मैत्री भाव था वहाँ परदा पड़ जाता है जिनमें पित्रीय भाव, मात्रीय भाव था उनमें परदा पड़ जाता है। पुत्र भाव था, परदा पड़ जाता है। मैत्रीभाव था, परदा पड़ जाता है। गुरु शिष्य के बीच में परदा पड़ जाता है जहाँ कषाय भाव हो। जहाँ श्रद्धा का प्रकाश था, वहाँ आस्रव का अन्धकार प्रवेश कर जाता है, कषाय आते ही समझ रहे हैं न आप लोग। तैयारी इन सबने क्या की कोटि-कोटि जीव मार चुके हैं, घर की सफाई में उसका प्रायश्चित करो। कितने जीवों को नष्ट कर दिया है? अब आज से तैयारी करो, प्रायश्चित करो और स्वयं के भीतर का कचड़ा समाप्त हो, फिर तेरा **'नमः समयसाराय'** सच्ची दीपावली उस दिन होगी जिस दिन तुमने जैसे मकान पर लिपाई-पुताई की सब कचड़ा हटा दिया है, ऐसे ही बाहर की काई हटाना पहले कपड़े उतार कर फेंकना फिर भीतर की कषाय जो कालिमा है उसको फेंकना। फिर ज्ञानी भेद विज्ञान का चिद्स्वभाव का दीप प्रकट करना, उस दिन कहना आप मेरे जीवन की प्रथम दीपावली है। नहीं तो भैया मात्र मिट्टी के दीया जलाना है और घी को बरबाद करना है। बेचारे सोच रहे हैं महाराज पूरे ही बिगाड़ देंगे हमको। ज्ञानियो! बिगाड़ नहीं रहा हूँ तुमको सुधार रहा हूँ। पाखंडों

का जीवन दूर करो, सच्चे पाखंडी बनो पाखंडों का जीवन दूर करो, नहीं तो मालूम खीला लाई आदि दुनिया की सामग्री पूजोगे घर में जाकर। ओ हो! होता है न ऐसा ही। मेरे मित्र! तुझे पता होना चाहिए खीला है कौन सी वस्तु? जैसे धान्य की खीला खिली होती है सिकने पर धान्य खिल जाता है उसका नाम क्या है। खीला। तो धान की खीला खिल जाती है ऐसे ही जीव को भेद विज्ञान प्रकट होता है, चारित्र की खीला खिल जाती है तू कहाँ धान की खीला में लगा हुआ है। चारित्र की खीला खिल जाती है। चावल का स्वाद बदल जाता है, विश्वास रखो चावल का भिन्न स्वाद होता है लाई का भिन्न स्वाद होता है और खीला का भिन्न स्वाद होता है।

ऐसे ही मुमुक्षु श्रद्धा का भिन्न स्वाद होता है, ज्ञान का भिन्न स्वाद होता है और चारित्र की खीला का भिन्न स्वाद होता है। एक दिन चख कर तो देख कि चारित्र की खीला खिल जाये और जब-तक चारित्र की खीला नहीं खिल रही है ज्ञानी! विश्वास रखना नाना प्रकार की पर्याय में मोही होकर बुद्धि को नष्ट कर रहा है। स्वरूप क्या था? प्रतीकों में उलझ करके आप क्या दीपावली मना रहे हो? सफाई करनी थी भीतर के घर की और तुम लगे ईंट चूने के घर की सफाई में हिंसा करने में, कितना महान् पर्व, जो साल भर हिंसा नहीं की होगी इस पन्द्रह दिन में कितनी हिंसा की होगी। कितने जाल मिटा दिये हैं, कितनी मकड़ियाँ समाप्त हो गयी होंगी। कीट नष्ट हुए होंगे। उनके तो ऐसा अशुभ कर्म उदय आया की वर्द्धमान स्वामी का निर्वाण हुआ उनका जीवन चला गया। बेचारे मना नही पाये। मालूम लोग क्या बोलते हैं? किसी के घर में आज कल कोई घटना घट जाये, किसी के यहाँ मृत्यु हो जाये। लो भाई दीपावली ही समाप्त हो गयी उसका तो आयुकर्म पूरा हुआ चला गया, लेकिन आप क्या बोलते हो कि मेरी तो दीपावली खोटी हो गयी।

अरे! उसका धन्य भाग्य तो देखो जिस दिन भगवान् महावीर का निर्वाण हुआ हो उस दिन वो गया और तुम खोटी हो गयी। बोले दीपावली खोटी हो गयी। अरे दीपावली तो उनकी खोटी हुई है जिन जीवों को तुमने झाड़ू से मार दिया। दीपावली

उनकी खोटी हो गयी जिनने लाखों जीवों को मारा है। जो चला गया उसकी तो धन्य हो गयी। पंचकल्याणक की तिथियाँ पर्व के दिन है और उन पर्व की तिथियों में पाप नहीं करना होता है। आप कैसे ज्ञानी लोग हो, पर्व के दिनों में सबसे गहन पाप कर रहे हो। प्रतीक में उलझ गये प्रतीक मान को भूल गये।

यानि कितना लोग विपरीत चल रहे हैं। देखो-देखो कल अपन ने चर्चा की थी सब पर्याय में प्रतीकों में जीव उलझ कर किस प्रकार जीव भ्रमित हो गये हैं।

जो वस्तु स्वभाव था मैं तो वर्द्धमान तीर्थंकर को भी उनकी वीतरागता को निहारते वंदना करता हूँ, व्यवहार से निहारते सत्यता यही है। मेरा स्वरूप, मैं स्वतन्त्र हूँ। मेरा स्वरूप मेरे में स्वतन्त्र है मैं पराधीन होकर नहीं जीना चाहता हूँ। जिसने स्वाधीनता को समझ लियाहो, वो ज्ञानी मिट्टी के दीपकों में कहाँ उलझेगा। वो तो भीतर का दीप निहारेगा। पर प्रतीक को प्रतीक मानिये प्रतीक को प्रतीक मान मत मान लीजिए।

कितनी आस्था श्रद्धा से आप दीप जलाते हो। मेरे मित्र जितने दीप जलाते हो किंचित् श्रद्धा के दीप का ध्यान रखना जलाते क्यों हो, कोई युद्ध करके आया था कोई युद्ध करने जा रहा है, इसलिए नहीं जला रहे हो। ज्ञानी दीप केवल्य ज्योति का प्रतीक है। लड्डू भगवान् को खिला नहीं रहे हो। जैसे लड्डू चारों ओर से मीठा है ऐसे ही भगवान् का अनन्त सुख चारों ओर से सुखमयी है।

लड्डू तो प्रतीक था तुम लड्डू को ही सिर टेकने लग गये। लड्डू के पाँय पड़ने लग गये। नाड्डू के पैर नहीं पड़ना भाई उसके तो पैर होते ही नहीं, पड़ोगे क्या ?

कितना विपर्यास हुआ है, जैसे चलते-चलते दृष्टान्त में जीव उलझ जाता है वैसे ही प्रतीकों में जीव उलझ गये और प्रतीती से दूर-दूर हो गये और दूर क्यों हुए है। तृष्णान्धा महा-अन्धा। जीवों ने अनेक प्रकार के विकल्प खड़े कर लिए इसमें ऐसा करो तो ऐसा हो जायेगा। इन्द्रिय सुखों को सब कुछ मान करके जो आत्मिक सुख था उसको न्यौछावर करके इन्द्रिय सुख के लिए सब कुछ करना प्रारम्भ कर दिया। जो दिख रहा है, जितना विशाल पक्ष ये है, उससे विशाल महान् पक्ष आत्म-धर्म का है।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं **'तृष्णानल प्रदीप्तानां'** अग्नि का कोई ऐसा पिण्ड है जिसमें ईंधन रखते जाओ और शान्त हो जायेगा? किसी घर में ऐसी सिगड़ी है, ऐसी गुरसी है, ऐसा चूल्हा है जिसमें लकड़ी डालते जाओ और आग शान्त हो जाये? मुमुक्षु! तू बड़े ध्यान से सुन रहा है? ओ हो! कब किसका बदलाव हो जाये नियत नहीं है। इसलिए मेरा सोच तो ये है कि जितने धरती के देवता वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन हैं। ये मिट्टी के तीर्थ को आशीर्वाद भर दें, बाकी के बिहार करें तो अनेक तीर्थ निर्मित होंगे। स्वार्थी न बनकर के मुनिराज जितना बिहार करेंगे, क्योंकि बिना साधुओं के जाग्रति होती नहीं है। एक विद्वान् बेचारा होशियार होगा तब भी सीमित लोग आयेंगे, सीमित समय के लिए लोग सुनने आयेंगे। ज्ञानी! जिनवाणी का पान जो है कभी-कभी आपको इस व्यवहारिक बात पर भी ध्यान देना पड़ेगा। मुमुक्षु! प्लास्टिक के गिलास में कोई पानी पिलाये तो अलग दिखता है और स्वर्ण गिलास में रखे तो प्यास न भी लगे मन करता है अरे अपने घर में न सही देखो तो सोने का गिलास कैसा लगता है? वो गिलास को देखने के बहाने ही पानी पियेगा ऐसा होता है।

ऐसे ही मुनिराज के पास लोग प्रवचन सुनने आते हैं, उसका कारण है प्रवचन तो सब जगह सुन लेते हैं, पर चारित्र पर जो आस्था टिकी हुई है, चारित्र को स्वर्ण गिलास के समान समझ लोग वहाँ आते हैं।

ऐसे ही निर्ग्रन्थ मुनिराज का जब बिहार होता है रात्रि में जैसे ही शाम हुई मुनिराज वहीं रुक जाते हैं। विहार में श्रावक तो थोड़े होंगे, लेकिन जहाँ ठहरते हैं, किसी भी नगर में आज तक इतिहास में देखना वहाँ हजारों लोग आकर खड़े हो जाते हैं, क्यों शाम को भैया जहाँ मुनिराज विराजे वहाँ अजैन लोग खड़े हो जाते हैं। फिर देखते हैं झाँककरके कि कैसे महाराज हैं। आप तो कहते हो चलो, अन्दर का विषय समझो, जो गौर से देख रहे हैं। आपको पता है कोई भी बालक बिगड़ा है देख कर बिगड़ा है। यदि गुटका भी खाना सीखा हो तो माँ के पेट से सीखकर नहीं आये हो मित्रों के बीच में बैठे उनको देखा फिर सोचा सबसे पहले दर्शन फिर उपयोग गया फिर आकांक्षा वह फिर देखता है चख कर तो देखूँ लगता कैसा है।

ज्ञानी! जैसे पापों में देखने पर प्रवृत्ति बढ़ती है। ऐसे ही जिस व्यक्ति ने एक बार मुनिराज को विराजमान हुआ देख लिया और चारों और स्कूलों में खिड़की से झाँकते हैं बच्चे।

अपन को लगता है, ये लोग ऐसे ही उपद्रव करते हैं। देख रहे हैं, देखते-देखते ऐसी दृष्टि पड़ गयी और भीतर में श्रद्धा का दर्शन हो गया तो मिथ्यात्व का जीवन नष्ट हो जायेगा और उन जीवों को वो संस्कार पड़ गये। एक दिन के देखने के संस्कार ऐसे पड़ते हैं कि मालूम चला कि महाराज के साथ ही हो लिये। मात्र देखने गये थे। सही बताऊँ मैं तो एक दिन आचार्य महाराज विराग सागर के प्रवचन सुनने गया था, मात्र एक दिन।

एक दिन सुनने गया वो छहढाला पर प्रवचन कर रहे थे। मैंने कहा ज्ञानी महाराज हैं अब तो बहाना बनाकरके, क्योंकि जाने को नहीं मिलता था, बहाना बनाकर जाता था, चलो बाजार करके आता हूँ बाजार करने के चक्कर में महाराज के पास रहता था।

अरे वो झूठ भी सही था मैं मानता हूँ। मैं झूठ बोलकर जाता था उस समय श्रावक था, लेकिन जिसमें आत्मा का कल्याण निहित हो वह सत्य है। वो सत्य मत बोलना जिससे कोई विपत्ति में पड़ता हो, वो झूठ बोलना जिससे किसी का कल्याण होता हो, जिससे जीवों की रक्षा होती हो। हे श्रावको! ऐसा सत्य मत बोलना कि किसी के प्राण चले जायें और ऐसा झूठ भी मत बोलना किसी के प्राण चले जायें। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार जी में लिखा हुआ है।

साधु को बिहार करना चाहिए। जहाँ-जहाँ बिहार होगा वहाँ सुप्त लोग हो जाते हैं, वे भी जाग्रत हो जाते हैं। जितने प्रभावक साधक हैं, उनको एक स्थान पर ठहरने की कोई आवश्यकता नहीं, उनको बिहार करना चाहिए। मृदुल चर्या वाले एक स्थान पर ही रहें तो अच्छा है, कम से कम एक स्थान के लोग खराब होंगे।

एक बात बताऊँ एक जगह क्या हुआ कोई पन्द्रह बीस ज्ञानी लोग स्वाध्याय कर रहे थे, कोई जाप कर रहे थे कोई ध्यान कर रहे थे तो वहाँ से पण्डित हजारी भैया निकले राजेन्द्र के साथ। पण्डित जी साहब के मुख से निकला कि ये लोग फूट जायें, तो इनमें विघटन हो जाये अच्छा है। इनने सुन लिया सोचा विद्वान् है

हजारी भैया कुछ मत बोलो। थोड़ी देर आगे चले वहाँ कुछ लोग जुआ खेल रहे थे। हजारी भैया फिर बोल पड़े इनका सबका एक गाँव बस जाये तो बहुत अच्छा होगा।

अब तो इनसे रहा नहीं गया। बोले भैया हम तो तुमको ज्ञानी मानते थे, लेकिन आज आप पूरे अज्ञानी दिख रहे हो, क्यों बोले वो ज्ञानी लोग थे उनसे तुम कह रहे थे उजड़ जायें और जो जुआ खेल रहे थे उनसे तुम कह रहे हो नगर बस जाय। तुम हो कैसे ज्ञानी! बोले इतने ही तो ज्ञानी हैं तुम समझ जाओ तो तुम भी ज्ञानी बन जाओ। बोले मतलब क्या हुआ, आप लोग मतलब समझ गये क्या? बोले तात्पर्य ये है अरे ज्ञानी! ये जुआरी कबाड़ी लोग हैं ये लोग इकट्टे रहेंगे तो एक ही स्थान बिगड़ेगा और ये फैल गये तो जहाँ-जहाँ जायेंगे जुआ फैला देंगे। इसलिए इनका गाँव बस जाये एक जगह और ये ज्ञानी लोग हैं विद्वान् जहाँ-जहाँ जायेंगे वहाँ धर्म का प्रचार होगा लोग ज्ञानी हो जायेंगे। ज्ञानियो! इसलिए जो महापुरुष हैं, उनका विचरण ही महान् है। यदि नदी एक जगह रुक जाये तो कितने लोग प्यासे रहेंगे और नदी बहती रहती है तो वो सागर बन जाती है। लोगों के कण्ठ को गीला करती है, भूमि को हरा-भरा रखती है।

महापुरुष हैं उनके नाम के आगे सागर लगा हुआ है। तुम बिहार करो जिससे अनेक प्रकार के धर्मात्माओं की खेती वृद्धिमान रहे, हरी-भरी रहे। इसलिए साधुओं को बिहार करते रहना चाहिए। अपन आगरा में आये थे ठण्डियों में, दो दिन रुके थे, एक दिन छीपीटोला एक दिन हरीपर्वत।

उस बिहार में ही आप इतने भक्त हो गये कि आप पाँच बस लेकर महाराज जी के पास पहुँच गये। इस काल में मोक्ष तो होता नहीं है, इसलिए अपन इतनी अच्छी साधना करो कि आगे का मार्ग खुले। इतने अच्छे से जीवन जिओ जिससे धर्मात्माओं की वृद्धि हो और जिनशासन नमोस्तुशासन की प्रभावना हो। अपन को ऐसा व्यवहार करना चाहिए जो धर्म से दूर भी हो गये हों, उदास भी हो गये हों तो पुनः धर्म में लग जायें। भैया! लोगों का सोच ये है कि मैं जितना तामझाम दिखाऊँगा उतनी लोगों की श्रद्धा बढ़ेगा। लेकिन तुमको पता होना चाहिए। तुम

दोनों हाथों से सरोबर में खड़े होकर पानी पीना मेरे मित्र देखने वाले सब पहुँच जायेंगे, देखो भैया क्या कर रहा है, पर तू इतना बोलना मैं जैन हूँ पानी पीते रहना मेरे मित्र इतना ध्यान रखना अजैन बच्चा भी होगा, उसके अन्दर भी श्रद्धा भरी हुई है। जैनियो! ध्यान दो, अजैन बालक उसके अन्दर श्रद्धा भरी हुई है कि जैनी छान कर पानी पीता है और तू पानी पी रहा था सरोवर मैं खड़े होकरके उधर बैण्ड बज रहे थे कि अनिल पानी पी रहा है सरोवर में खड़े होकरके।

मेरे मित्र! अजैन बच्चा भी जानता है की जैनी छान कर पानी पीता है, तो तू कितना भी दिखावा कर लेना तेरी हँसी ही होगी, देखने वाले जरूर आयेंगे ये पक्का है। तू छन्ना लगाकर ट्रेन में पानी पी रहा था, यहीं का आगरा का बच्चा मुझ से बोल रहा था महाराज मैं छन्ना लगाकर पानी पी रहा था तो दूर से एक वृद्ध बोलता है बेटा तू जैन है क्या? मैंने पूछा तुमने कैसे जाना? बोला जैन ही तो छन्ना लगाकर पानी पीते हैं।

प्रभावना हुई कि नहीं? ऐसे ही मेरा सोच ये है जितने वीतरागी दिगम्बर तपोधन हैं, बड़े-बड़े तामझाम, दुनियाँ के बैनरों से आपको लगता है कि प्रभावना हो रही है। अरे! सारे विश्व को मालूम है जैन दर्शन आकिंचन धर्म पर विश्वास रखता है जैन दर्शन आडम्बर विहीन है, आप आडम्बर करोगे तो लोग कहेंगे अब तो जैन साधु भी बदल गये हैं।

आप विश्वास मानो ये शब्द भी मैं सुन कर आया हूँ। एक साधक ने अजैन लोगों से, नेताओं से दुनियाँ से पैसा इकट्टा किया तो वहाँ के अजैन बन्धु बोले भाई जैन साधु को इससे कोई प्रयोजन ही नहीं है, ये कैसा हो रहा है।

हाँ तुम प्रभावित करने के लिए जा सकते हो, लेकिन तुम तन को प्रभावित करने की बात कर रहे हो धर्म से लोग सब समझते हैं कि जैन धर्म क्या है? आज भी छत्तीसगढ़ में गाँव का नाम है नगपुरा राजनाँद दुर्ग के पास में नगपुरा गाँव है। वहाँ पर प्राचीन भगवान् पारसनाथ की वृक्ष के नीचे प्रतिमा रखी हुई है। उस प्रतिमा का आलंबन लेकर श्वेत पट् आम्नाय वालों ने तीर्थ भी बना लिया।

वहाँ के जो ग्रामीण लोग हैं, आदिवासी लोग उनसे पूछा इस गाँव का नाम नगपुरा

क्यों? बोले आपको मालूम है यहाँ पर जो लोग पहले रहते थे वे नंगे पैर चलते थे, नंगे साधु आते थे, इसलिए इस गाँव का नाम नगपुरा है। इन्दौर के पास वर्द्धमान पुरम् बनेड़िया तीर्थ है। वहाँ पर एक गौतमपुरा है, वर्द्धमान पुर है तो मैंने पूछा, तो वहाँ के जो ग्रामीण लोग हैं मालवा में वो बोलते हैं कि यहाँ से जब भगवान् महावीर का बिहार हुआ था, तब यहाँ ठहरे हुए थे, सो वर्द्धमान पुरम् नाम अभी भी रखा हुआ है। इसलिए अपने आपको बाहर का दिखाकर बाहर की प्रभावना मत करो भीतर का दिखाकर के भीतर की प्रभावना करो।

हे जीव! तृष्णा रूपी अग्नि में तू झुलस रहा है। ऐसे जीव को सुसुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

मेरे मित्र! अग्नि में हाथ डालकर सुखी होगा क्या? ज्ञानी! सुखी होना चाहता है, तो तृष्णा की आग से अपनी रक्षा कर। पानी में गिरी वस्तु मिल भी जाये, पर अग्नि जहाँ लग जाये राख ही मिलेगी, बाकी कुछ नहीं मिलने वाला। जो तृष्णा में झुलस रहे हैं उनको तो दुःख ही दुःख है।

जो जीव धन के संचय में लवलीन है उनको सदा दुख ही होना है। इसलिए ज्ञानियो सब से कह देना तृष्णा की ज्वाला से निकल कर आओ और भेद विज्ञान की शीतल समीर में लवलीन होकरके अपनी आत्मा को विशुद्ध बनाओ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सन्तोष में प्रीति करने का उपदेश

सन्तुष्टाः सुखिनो नित्यमसन्तुष्टाः सुदुःखिताः।
उभयोरन्तरं ज्ञात्वा, सन्तोषे क्रियतां रतिः॥ सा. स. 242॥

अन्वयार्थ—सन्तुष्टाःनित्यं सुखिनः = संतोषी जीव सदा सुखी रहते हैं, **असन्तुष्टाः सुदुःखिताः** = जबकि असंतोषी जीव दुःखी रहते हैं **उभयोः अन्तरं ज्ञात्वा** = सन्तोषी तथा असंतोषी का अन्तर जानकर, **संतोषे रतिः क्रियातां** = संतोष में प्रीति करनी योग्य है।

भावार्थ—अहो ज्ञानी! सन्तोषी जीव सदा सुखी रहते हैं और असन्तोषी निरन्तर दुःखी रहते हैं, अतः सन्तोष और असन्तोष इन दोनों के अन्तर को जानकर सन्तोष में प्रीति करनी चाहिए।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्र वाणी मनीषियो जगत् कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवन्त हो जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति।

आचार्य प्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में वीतराग भाव की प्राप्ति के उपाय को समझाते हुए भव्यों के कल्याणार्थ सद्उपदेश दे रहे हैं। ये सद्देशना ज्ञानियो आत्म उन्नति का सोपान है। एक सिंह की पर्याय में बैठा जीव तीर्थंकर बन गया। देह देख करके, कितने जीवों ने हर्ष विषाद परिणाम किये हैं। पर्याय में बैठे पर्यायी को देख लेता तो न हर्ष है न विषाद है। जितने विकल्प हैं पर्याय को देखकर हैं। पर्याय का दर्शन जो है वो दूसरे के परिणामों का निमित्त हो सकता है, लेकिन स्वयं की पर्याय स्वयं के लिए न बन्ध का कारण है, न मोक्ष का कारण। स्वयं की पर्याय में सत्ता में जो परिणामों की धारा बह रही है वो तेरे बन्ध और मोक्ष का कारण है।

ध्यान देना सिंह का जो आकार है, वो सिंह को भय उत्पन्न नहीं करा रहा है,

सिंह का जो आकार है वो सिंह को खुशी नहीं दे रहा है। हर्ष-विषाद सिंह के अन्तरंग का विषय है। ऐसे ही हे श्रावक! हे श्रमण! तेरा जो भेष है वो तेरे बन्ध और मोक्ष का कारण नहीं है। जो भेष की सत्ता में परिणामों की धारा बह रही है वो बन्ध और मोक्ष का कारण है। जहाँ देखो आप सुन्दर-सुन्दर पुत्तिलकाएँ बन रही हैं। आज के शिल्पकारों के शिल्प देखो आप क्या सुन्दर होंगे, उनके चेहरे उतने सुन्दर बनाये गये हैं।

यदि सुन्दर चेहरे से बन्ध और मोक्ष देखते हो तो उन्हें मोक्षमार्गी मानना पड़ेगा क्या? इस देह को ज्ञानियो पुतला ही स्वीकारिये, इस देह को मूर्ति ही स्वीकारिये, क्योंकि मूर्ति मूर्तिक ही होती है। जो मूर्तिक है, वो मूर्ति है, अमूर्तिक मूर्ति होता नहीं। स्पर्श-रस-वर्ण-गन्ध जिसके अन्दर है वो मूर्तिक है और जिसके स्पर्श वर्ण रस गन्ध का अभाव है वो अमूर्तिक है।

मूर्तिक के राग ने तुझे संसार ने मूर्ति रूप दिया है। मूर्तिक का राग समाप्त हो जाता तो जैसे आज वर्द्धमान सिद्ध शिला पर निर्वाण प्राप्त करके विराजे हुए हैं। ऐसे ही ज्ञानी वही अवस्था हम सभी की होती। क्या कारण है, कि हमारे बीच से वही वर्द्धमान निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। हम वन्दना कर रहे हैं वे बन्ध को हटा चुके हैं।

वन्दना उनकी है जो बन्धातीत है। नहीं वन्दना उन जीवों की जो बन्ध को प्राप्त हो रहे हैं। एक क्षण को भगवान् महावीर स्वामी की सिंह की पर्याय को निहार लीजिए। जो उपदेश सुना था, उस समय कोई सामायिक नहीं कर रहा था, जीव। जो उपदेश सुना था, उस समय कोई प्रतिक्रमण नहीं कर रहा था जीव। भैया इस विषय को बहुत गम्भीरता से समझना है, लोगों की मानसिकता बन गयी है। कि उपदेश तो उनको देना चाहिए है जो पालन करे। मित्र! जो पालन कर रहे हैं उनको आप उपदेश दे रहे हैं अच्छा है जो पाप कर रहा है उसे भी उपदेश देना चाहिए। जो पालन करे उसको उपदेश इसलिए देना वो अपने चारित्र शुद्धि को प्राप्त हो। जो पाप कर रहा है उसे इसलिए उपदेश देना कि पाप छोड़कर के चारित्र का पालन करने लग जाये, इसलिए दोनों को उपदेश दो।

चारित्र विहीन को उपदेश नहीं दोगे तो चारित्र की ओर बढ़ेगा कैसे? वस्तु स्वभाव को जानेगा कैसे? सिंह की पर्याय में मालूम वो कर क्या रहा था जीव। तत्क्षण की पर्याय में कोई साधना नहीं कर रहा था, वो तो एक मृग को पकड़ रहा था, हिंसा कर रहा था। धन्य हो कृपालु योगियों को, धन्य हो निग्रन्थों की दया को, जिनकी वाणी की महिमा को देखो कि हिंसा करने वाला जीव उसके ऐसे भाव बदल गये कि पंजा तो हट गया, आँखों से आँसू टपक गये। हाय! मैं क्या कर रहा हूँ? वही तत्त्व उपदेश है जिससे भीतर की कषाय विघटित हो जाये। ज्ञानी! तत्त्व उपदेश वो नहीं है कि अकषायी को कषाय आ जाये। बड़े गहरे से समझना। मित्र! कदाचित आपको उपदेश करने को मिले। ऐसी भाषा का प्रयोग करना कि क्रूर से क्रूर परिणामी जीव पानी-पानी हो जाये। पानी की महिमा देखो कठोर से कठोर मिट्टी को भी पानी मृदुल कर देता है।

भैया कितना ही कठोर मिट्टी का परिणमन चल रहा हो, पर पानी की बूँदें पड़ते ही मिट्टी ऋजु हो जाती है। ऐसे ही तत्त्वज्ञानी की वाणी जो है, उपदेश है, वो कितने ही कठोर क्रूर परिणामी जीव क्यों न हो जिनवाणी की छींटे से उसका हृदय पानी-पानी हो जाता है। उसका नाम जिनवाणी है। हृदय को पिघलाने वाली कोई है वो जिनवाणी है। मिट्टी को तो पानी गीला कर सकता है पर पानी हृदय को गीला नहीं कर सकता। हृदय को गीला करने की सामर्थ्य जिनवाणी के भीतर है। सिंह था और वह निरीह प्राणी मृग को पंजा मार रहा था। हे भावी भगवन्त! द्रव्य दृष्टि ही द्रव्य का बोध करायेगी, शेर नहीं कहा, उसे पापी भी नहीं कहा। कभी-कभी क्या होता है पापी को तुमने पापी कह कर पुकारा उसके अन्दर हीन भावना आयेगी। वो सोचेगा मैं जगत् प्रसिद्ध पापी हूँ तो पापी ही हूँ। मेरे मित्र! यदि तुम पापी को भी भगवान् कहने की सामर्थ्य रखते हो, तो आप जैन हो।

हर व्यक्ति नहीं कह सकता, जिसकी दृष्टि में भगवत्ता निहित होगी वो ही पापी को भगवान् कहने की सामर्थ्य रखता है। भैया! सबमें ताकत नहीं है। पापी को भगवान् कहने की ताकत साधु पुरुष में ही हो सकती है। असाधु पुरुष में नहीं हो सकती। कैसे कह दूँ पापी को भगवान्। तुम नहीं कह पाओगे, क्योंकि तुमको दिख नहीं रहा है भगवान्। कैमरे के अन्दर भी नहीं है वो ताकत कि किसी की

हड्डी की सफेदी को बता सके। कैमरा चमड़ी के रूप को दिखा रहा है, वस्त्रों के रूप को दिखा रहा है, वस्तुओं के रूप को दिखा रहा है चित्र में, तो क्या हड्डी की सफेदी का अभाव है ध्यान से समझना। अस्थियाँ सफेद हैं कि नहीं शरीर में तुम्हारे कैमरे में नहीं आपा रही है इसका मतलब हड्डी का अभाव नहीं है। ऐसे ही मित्रो जिसको किसी जीव की पाप पर्याय ही देखने की दृष्टि है इसका तात्पर्य ये नहीं है कि उसके भीतर भगवान् आत्मा नहीं है। पापी के अन्दर भी भगवत्ता है, लेकिन हर व्यक्ति नहीं देख सकता।

जिसमें चर्म आच्छादित था, वही एक्सरे की मशीन के सामने खड़ा कर दो, उसमें हड्डियाँ दिखेंगी। ऐसे ही ज्ञानियो जिसकी दृष्टि एक्सरे मशीन बन चुकी है उसको निगोदिया में भगवान् दिखाई देता है और जिसकी दृष्टि मात्र कैमरे की है उसे मात्र चर्म पिण्ड ही दिखता है। तू भी भगवान् है। व्यक्ति को सोचने का समय दो उपदेश देकर छोड़ देना चाहिए। किसान खेत में पानी देकर छोड़ देता है, उसी दिन हल नहीं चलाता, उसी दिन बीज नहीं डालता छोड़ देता है। बीज डाल दिया अब जमीन का परिणमन जमीन में चलेगा और भूमि में ताकत है वह पानी का शोषण करेगी। मुमुक्षु! जमीन से बहुत बड़ी शिक्षा लेना, किसान बाँध से पानी छोड़ता है छोटी नहरों से लेकर और खेत में पानी देने के बाद छोड़ देता है।

इसके बाद शान्ति से घर में बैठता है जमीन के अन्दर ताकत है पानी का शोषण करेगी अपनी उर्वरा शक्ति को बढ़ायेगी। ज्ञानी! ऐसे लोग भी हैं जिनको बारह वर्ष उपदेश मिला था। बात को गहरे में समझना आवश्यकता नहीं है, कि आज उपदेश सुनने वाले आज ही मुनि बन जायेंगे। मित्र! विश्वास रखना किसान पानी डाल कर छोड़ देता है और जमीन पीती रहती है।

एक समय ऐसा आता है जमीन उर्वरा हो जाती है फिर किसान हल चलाता है, फिर बीज डाल देता है अंकुरण होता है, दाने बहुत दिन बाद आते हैं।

ऐसे ही उपदेशकर्त्ता को इतना धैर्य होना चाहिए कि प्रवचन करके उसको चला जाना चाहिए। कल की घटना बताऊँ एक बालक को शाम को कहा जा रहा है

पिज्जा छोड़ दो। उसको इतना राग था कि उसको छोड़ नहीं पा रहा था, कहता है महाराज एक महीने के लिए छोड़ता हूँ। मैंने उसको शान्ति से बोला ठीक है बैठ जा शान्ति से। लगता है कि रात्रि में उसको नींद नहीं आयी कितना चिन्तन किया होगा उस जीव ने निर्णय की बात करो उतना चिन्तन किया उस जीव ने। अभी मंच पर आया कहता है महाराज जी आज से जीवन पर्यन्त तक में पिज्जा का त्याग करता हूँ। शाम को तो छोड़ नहीं पा रहा था, जब तक पानी अन्दर प्रवेश नहीं किया, तब तक भूमि उर्वरा नहीं होती है। पानी धीरे-धीरे अन्दर चला जाना चाहिए, अन्दर गया अपने आप उर्वरा शक्ति बढ़ती है। ज्ञानी! ऐसे ही जिनवाणी का उपदेश दे देना चाहिए उर्वरा शक्ति बहेगी, संयम के अंकुरण अपने आप उत्पन्न होंगे। धैर्य रखो, धैर्य रखो। किसी को हीन मत समझो पानी डालना किसान का काम है। पानी का काम है मिट्टी का परिणमन होना, किसान का काम नहीं है। ज्ञानियो! पानी देना किसान का काम है। बीज डालना किसान का काम है, पर मिट्टी का परिणमन किसान का काम नहीं है।

जिनदेव ने उपदेश किया है, जिनदेव ने वाणी खिरायी है इतना मात्र उनका काम था। कितने जीव कल्याण को प्राप्त हुए हैं, जिनदेव का काम नहीं है। ओ हो! जिसको जिनदेव पर विश्वास नहीं है, उसको निजदेव पर विश्वास नहीं है, उसको जिनदेव की वाणी कुछ नहीं कर सकती। आप आश्चर्य करोगे, इन में ऐसे लोग बैठे हुए हैं जो कभी अपनी उम्र के लिहाजे कोई मुनि के दर्शन करने नहीं गये। और फिर भी पता नहीं कैसे जीव के परिणाम क्षण मात्र में बदल गये। कोई परीक्षा देने जा रहा था, आशीर्वाद लेने आया सो मुनि बन गया। कोई शिविर में आया था, वो शिविर में ही होकर रह गया। जिनशासन में सबसे उत्कृष्ट कोई मार्ग है उसका नाम है सामायिक। जिसने सामायिक कर ली उसको कुछ सिखाने की आवश्यकता नहीं है। भैया! ऐसे परिणाम सबके हों कि सामायिक प्रतिमा सामायिक चारित्र में बदल जाये। भैया! कोटि-कोटि काम छोड़ देना जहाँ समय हो जाये सामायिक में बैठ जाना।

ज्ञानियो! किसान पानी छोड़कर चला गया और जब वापस लौट कर आता

है उसे खेत सूखा मिलता है, हल जोतने के लायक। जोतकर चला जाता है पुनः वापस लौटकर आता है उसको भूमि की वह सुगन्ध दिखाई देती है, बीज डालने के लायक और कुछ दिन के उपरान्त बीज डाल कर चला जाता है। उसको फसल लहलहाती दिखती है, पुनः किसान आता है तो फसल निकाल कर ले जाता है। ऐसे ही ज्ञानियो हो सकता है बीज डाल दिया तो पुनः किसान आये और फसल लेने आये। अरे क्या हो गया? क्रिया क्या हो रही थी? सिंह मृग को पंजा मार रहा था। वर्द्धमान की चर्चा को कितनी बार भी दोहराओ तब भी ज्ञानी आनन्द ही आता है। अपने जीवन में ध्यान रखना **पुण्य पुरुषों का स्मरण करने से कर्मों की निर्जरा होती है, पुण्यास्रव होता है और पुण्य पुरुषों की क्षण मात्र अवहेलना करने से पुण्य का नाश होता है।**

जिनको अपना पुण्य झुलसाना हो, वे पुण्य पुरुषों की अवहेलना करना प्रारम्भ कर दो। अपने भारत की परम्परा रही है अपने से बड़ों का नाम नहीं लिया जाता था। उसका मुख्य कारण यही था मैं ज्येष्ठों की अवहेलना मैं नाम लेकर न करदूँ। बेटे की माँ यदि आपको पुकारती है, तो अपने बेटे का नाम लेती है देखा अपने भारत की परम्परा को। भैया! यदि तेरा पिता भी तेरी माँ से कोई काम होता है, तो क्या बोलता है ऐसा कर लेना। अब बेटा तो बच्चा है वो क्या जाने? माँ समझ गयी किससे कहा जा रहा है ऐसा कर लेना। कितनी मर्यादा थी लोक की और पत्नि भी काम करवाना चाहती है पति से तो वो भी बोलेगी बेटे का नाम लेकर कि ऐसा काम कर लेना। इसमें रहस्य क्या था। ज्ञानी जीव जो है, ज्येष्ठों का नाम अशुभ काम में कभी नहीं लेता। सहस्त्र-नाम स्त्रोत है और सहस्त्र-नाम स्त्रोत में कुछ भी वर्णन नहीं मात्र नाम ही नाम तो हैं यानि पुण्य पुरुषों के तीर्थंकर भगवन्तों के एक हजार आठ नामों का स्मरण करने मात्र से अशुभ कर्मों की निर्जरा होती है। **भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति पूर्व संचित कर्मों का क्षय करा देती है।**

ये तो भैया में अनुभव कर चुका हूँ। प्रक्टिकल जीवन का शुद्ध अनुभव। भैया! हर व्यक्ति के कुछ दिन गरीबी के आना चाहिए और कुछ दिन गरीबी के आते

ही शीघ्र समय बदलता है। फिर व्यक्ति को समझ में आता है जिसको पिता की सम्पत्ति मिली हो उस बेटे का पता नहीं चलता पैसा कैसे कमता है और स्वयं पैसा कमाकर खड़ा होता है, उसको मालूम रहता है मुझे मालूम है कैसे कमाया है। फिर पुण्य का द्रव्य पुण्य में लगाता है। भैया! तेरा यह पुण्य नहीं है कि तुझे पैसा मिला है इस पर्याय में तेरा पुण्य ये है कि तेरे भाव कैसे हैं, तेरे पुण्य करने के भाव हैं ये पुण्य है। द्रव्य तो जगत् में बहुत सारे लोगों के पास होता है। क्या शरीर मेरे पास नहीं है? क्या शरीर आपके पास नहीं है। शरीर जो मिला है वह पूर्व पुण्य के अनुसार मिला है शरीर का वर्तमान में होना पुण्य नहीं है। सँभलकर सुनना। शरीर जो मिला है पूर्व पुण्य से मिला है, लेकिन इसे प्राप्त कर लेना मात्र पुण्य नहीं है। जो आपको शरीर मिला वो पुण्य आपका पूर्व का था, वर्तमान का पुण्य नहीं है।

इस शरीर का उपयोग आप संयम में कर रहे हो, साधना में कर रहे हो, अरिहन्त की वाणी सुनने में लगा रहे हो, निर्ग्रन्थों को दान में तुम लगा रह हो, ज्ञानी ये तेरा वर्तमान का पुण्य है। ये भविष्य में फलित होगा। हर व्यक्ति को ऐसा नियोग नहीं मिलता, मन्दिर के सामने से निकल जायेगा सिर झुकाने के परिणाम नहीं होंगे, यदि अशुभ बन्ध हो गया है तो। कभी मन नहीं करेगा कि प्रवचन सुनने पहुँच जाऊँ। भैया! दुर्ग की घटना है हम लोग चर्या को निकलते थे। श्वेताम्बर साध्वियाँ निकलती थीं वे गली में मुड़कर निकल जाती थीं। कभी-कभी इष्ट अनिष्ट होता है, इष्ट भी अनिष्ट होता है और अनिष्ट भी इष्ट होता है अनिष्ट इष्ट हो गया उनके लिए। ऐसा नियोग है एक दिन क्या हुआ मैं आहार को निकला बहुत बड़ी विधी नहीं थी विधी थी मात्र एक सेव फल की, लेकिन नियोग ऐसा था बाकी सब दिन हजारों लोग खड़े रहते थे सेवफल लिये उस दिन कोई ले भी ले तो दूसरा कह दे भैया इसको रख दो महाराज इसको देखकर चले जाते हैं। देखना जैसे आगे बढ़ूँ कोई लिये खड़ा था उसके पास जब तक जाऊँ दूसरा भैया बोले इसे हटा दो महाराज इसे देखकर चले जाते हैं। मैंने सोचा देखो भाई आज विधी नहीं है, तो विधी कहाँ से मिलेगी आज विधी नहीं है।

एक दिन विधी नहीं मिली भैया वो सब साध्वियाँ अपने मन्दिर से झाँक कर देख रही थीं। महाराज घूम रहे हैं, विधी नहीं मिली और पूरे नगर में विद्युत जैसे समाचार फैल गया, नगर में आज महाराज का उपवास हो गया। देखना कैसा नियोग! एक दिन की विधी नहीं मिलने से उन जीवों के ऐसे परिणाम परिवर्तित हुए ओसवाल समाज से शाम को कई श्रावक वैयावृत्ति को आये, सरदार लोग वैयावृत्ति करने आये, स्टेशन पर चर्चा चल रही है आज महाराज साहब के आहार नहीं हुए पूरे नगर में चर्चा हो गयी। मालूम है क्या हुआ। दूसरे दिन पुनः निकलता हूँ जो साध्वियाँ सामने आते ही भाग जाया करती थीं। वे सामने आकर के मत्थेय वंदामि महाराज साहब। पता नहीं किस जीव के परिणाम कब बदल जायें। बहिरंग जो संयम है, बहिरंग जो तप है वो दूसरे को दिखाई देता है दूसरे उस तप को देखकरके संयम में अनुरक्त होते हैं उसका परिणाम देखो जो जीव भागता हो, वो जीव सामने खड़ा हो गया। समय दे दो, खेत में पानी डाल दो। किसान घर चले जाओ, समय दे दो। ये मत कहो ये क्यों नहीं सुनता है, ये क्यों नहीं देखता है, नहीं समय दे दो। भगवान् महावीर का जीव समय ही तो प्राप्त कर रहा था। क्या तीर्थंकर ऋषभदेव की वाणी विफल चली गयी वर्द्धमान बनने वाला जीव मारीचि समोशरण से चला गया था। दुनियाँ यों कहेगी कि कैसा अभागा था समोशरण छोड़कर चला गया, पर उस समय उसका नियोग ही ऐसा था। लेकिन जो कान में शब्द पड़े थे वो पानी बनकर भीतर प्रवेश कर रहे थे। वे ही पानी की बूँदें सिंह की पर्याय में पुनः प्राप्त हुई। एक समय पहले शिकार कर रहा था और दूसरे समय में श्रावक बनकर खड़ा हो गया सिंह बचा ही नहीं, वो तो श्रावक हो गया, इसलिए भैया! किसी को कुछ अशुभ मत बोलना और किसी को अशुभ लग भी गया हो **"खम्मामि सव्व जीवाणं"** मैं तो दिन में तीन-तीन बार प्राणिमात्र से बोलता हूँ। आगरा के श्रावकों से बोलता हूँ। ज्ञानियों चातुर्मास पूर्ण हुआ है आज यदि इस चातुर्मास के दीर्घ काल में किसी जीव के मन में विकल्प आया हो, तो योगी कह रहे हैं। **'खम्मामि सव्व जीवाणं'** हे जीवो! क्षमा करना, क्योंकि निर्ग्रन्थों का धर्म ही क्षमा है। माँगना और करना दोनों है।

माना कि मनोज्ञ सागर, प्रमेय सागर सोचें कि इनसे तो क्षमा माँगते हैं हमें डाँटते हैं। ज्ञानी वो डाँटना भी क्षमा ही है। क्योंकि भैया जिस बोतल में औषधि होती है उसमें ढक्कन होता है कि खाली में ढक्कन होता है?

ढक्कन को जानते हो, बुंदेलखण्ड में ढक्कन को बोलते हैं डाट। जिसमें कुछ भरा होता है उसमें डाट लगानी पड़ती है नहीं तो वो फैल जायेगा, समझ गये। भैया! जिस दिन तेरा पिता तुझे डाँटना बन्द कर दे समझ लेना पिता आज से मुझे अपना मानता ही नहीं। नारी हो तो अंजना जैसी हो माताओ सुनो ध्यान से ओ हो! पवनजय ने देखना पसन्द नहीं किया, देखो कर्म की विचित्रता अल्प समय को अरिहन्त की प्रतिमा छुपाकर रख दी थी कनकोदरी रानी की पर्याय में, पाप कभी नहीं छोड़ता है। अंजना की पर्याय में पति का वियोग सहन करना पड़ गया। जब समर भूमि की ओर जा रहे थे पवनजय रावण का सहयोग करने के लिए उसके महल से निकल रहे थे सामने आरती सजाकर लायी बोले ये सामने मुझे अशुभ करने आ गयी ऐसा बोलकर के पैर मार दिया था। तब भी प्रसन्न हुई कम से कम बाईस वर्ष तक स्पर्श न किया हो गुस्से में किया, पर शरीर को तो स्पर्श किया। उन तरंगों ने कैसे प्रभावित किया धन्य हो अंजना के लिए पति की डाँट को भी प्रीति स्वीकार रही थी। आज डाँटा है इसका मतलब कभी न कभी तो लोटकर आयेंगे। ज्ञानी! सबके दिन एक से नहीं होते। देखो नियोग गये थे युद्ध भूमि के लिए और चकवा-चकवी के वियोग को देखकरके उनको अंजना का प्रेम राग उमड़ पड़ा वो इसलिए रो रहे हैं, मैंने तो बाइस वर्ष से आँख उठाकर नहीं देखा। ज्ञानी किसी से कुछ मत कहो। माताओ! कभी-कभी भूल आप लोग कर लेती हो, पति नाराज भी हो न नाराज मत स्वीकारना हृदय बदलने को समय दे दो। आज वर्द्धमान स्वामी का निर्वाण महोत्सव है। इतनी सीख लेकर जाना शीघ्र कोई काम करने का उतावलापन मत करो, समय देना सीखो। बेटे का जन्म भी उस दिन नहीं होता जिस दिन गर्भाधान होता है समय देना पड़ता है। किसान खेत के लिए समय देता है। ऐसे ही अरिहन्त की वाणी, देशना आज हुई है देशना लब्धि नरक में जाकर फलित हो जाती है। सम्यक्-दर्शन प्रकट हो जाता है। क्या हुआ,

देशना फलित होती है।

ये जुगलिया केतन-चेतन, रायपुर में वाचना चल रही थी इनके पिताजी तत्वार्थ सूत्र पढ़ने आते थे। इन दोनों बच्चों को लेकर बिठाल देते थे। मैं देखता रहाता था देखो मैंने कहा डा. साहब चार हैं, क्या विचार है आपका? बोले महाराज दो ये हैं क्या विचार है आपका? बोले महाराज दो मेरे दो आपके। देखो जीवों का नियोग पिता तत्वार्थ सूत्र पढ़ते-पढ़ते घर में ही रह गया बच्चे मात्र सुनने बैठे रहते थे, वे आज मोक्षमार्गी बन गये हैं। इसलिए समय दे दो। हो सकता है, तुम्हारे घर में भी संस्कार चले गये हैं पता नहीं इस भूमि से भी कितनी बालें अंकुरित होंगी। क्योंकि मेरा दृढ़ संकल्प है, कि जमीन पर पानी गिरे और मिट्टी गीली न हो, ऐसा होता नहीं है। चार महीने जिनवाणी गिरे और हृदय गीले न हों ऐसा होता नहीं है। समय लग सकता है और लगना ही चाहिए। आयुर्वेद शास्त्र का नियम है जो बालक जितने अच्छे समय तक गर्भ में रहेगा उतना मस्त रहेगा। दस महीने का बालक आजकल लोग टेंशन में आ जाते हैं। देखो भाई नौ महीने का जन्म सामान्य है। सात महीने का जन्म भी होता है और दस महीने का जन्म भी होता है, दस महीने के ऊपर नहीं जाना चाहिए। नौ महीने तक आप रोना मत, कुछ हो न जाये दस महीने तक धैर्य रखो। दस महीने की सन्तान होगी वह एक महीने माँ के उदर में और मस्त होकर आयेगी, स्वस्थ रहेगी। निरोग रहेगी। ऐसे ही कोई जीव गृहस्थी में रहकर साधना कर रहा है और मुनि बनना लक्ष्य है उसका करने दो। जितने दिन घर में रहे रहने दो, भगाना नहीं, पर मेरे मित्र दस महीने के बाद दिक्कत हो जाती है ये भी ध्यान रखना। ये मैं कहाँ से बोल रहा हूँ, कल्याण कारकम् जैन आयुर्वेद शास्त्र।

मुनिराज ने ये नहीं कहा कि हे पापी! तू क्या कर रहा है। नहीं ये भाषा का प्रयोग मत करना, उपदेश की भाषा उपदेश की ही होनी चाहिए। सामान्य भाषा बोलचाल की भाषा उपदेश की भाषा नहीं होना चाहिए। हे भावी भगवन्त! आप होते तो क्या बोलते हे पापी! देखो मृग को मार रहा है। वो मारने वाले परिणाम भिन्न हैं समय की इकाई को देखिये जैन दर्शन पढ़िये मारने वाला समय दूसरा

था, सुनने वाला समय दूसरा था इसमें अन्तर डालिये आप। जिस समय मृग पर पंजा मारा था वह समय भिन्न था और जब उपदेश सुना तब समय बदल गया एक निमेष में तो असंख्यात समय हो गये समय बदल गया। ओ हो! मृग तो मर चुका था उसका रक्त निकल रहा था। मुनिराज बोलते हैं हे भावी भगवंत! आप अन्तिम तीर्थंकर होंगे। ये शब्द सुनते ही अन्तिम तीर्थंकर जो पंजा मार रहा था वो पंजा जोड़ लेता है। जिन आँखों में लालिमा थी, उन नयनों में आँसू थे। किस बात के पश्चाताप हृदय बदल गया, स्वरूप सम्बोधित हो गया। सबके दिन एक से नहीं होते। दिन तो बहुत लम्बा है समय एक सा नहीं होता।

वे युगल मुनिराज कहते हैं हे जीव! आज में उपदेश दे रहा हूँ आपको तू जगत् का उपदेष्टा होगा। सारा विश्व तेरे उपदेश सुनेगा तेरा जगत् में शासन चलेगा तू भविष्य का भगवान् महावीर बनेगा। उपदेश देकर चले गये मुनिराज पानी डाल गये। किसान पानी डाल गया वो तो चले गये जो सिंह जिसका भोजन अशुभ होता हो, आज वो सूखे पत्ते चबा रहा है। अष्टमी-चतुर्दशी का पालन कर रहा है। अब पानी कैसे पीयेगा प्रासुक? जहाँ सूर्य की किरणें पड़ रही थीं, जहाँ लोग विचरण कर रहे थे उसके लिए वही प्रासुक पानी है। जो कभी जीवों को मार कर खाता हो, आज वो ऐसे संकुचित होकर लेटता है बैठता है। कहीं पैर अधिक फैला दिया तो जमीन के जीव मर जायेंगे। क्या गजब? ओ हो! पंजा मारने वाला पंजा सुकोड़ रहा है आज। मुनियों को कहा गया है कि फैल कर नहीं सोना धनुषाकार संकुचित होकरके बायीं करवट से सोना।

ज्ञानी! सिंह सल्लेखना करके स्वर्ग को प्राप्त हुआ देखो संस्कारों की महिमा चक्रवर्ति बना वो जीव, नारायण बना वो जीव, ज्ञानी! अन्त में जाकरके भगवान् महावीर स्वामी बना वो जीव।

'संतुष्टाः सुखिनो' पैसे गिनने से सुख नहीं मिलेगा, वैभव से सुख नहीं मिलेगा। ज्ञानी! सुखी होना चाहते हो, तो **'संतुष्टाः सुखिनो'** जो संतुष्ट है वही सुखी है, संतुष्ट नहीं है वही दुखी है। भैया! सुखी होना चाहते हो, तो संतुष्ट हो जाओ। अब कमाने के दिन गये, खाने के दिन भी गये अब त्याग के दिन आ गये। शरीर

तुझे छोड़े उससे पहले तू उसे छोड़ना शुरू कर दे। ज्ञानी! **'संतुष्टाः सुखिनो'** डायरी पर नोट कर लेना। बेटा कहे आज दीपावली है बाजार से क्या लेकर आये? तू कहना आज में महाबाजार गया था वहाँ से लेकर आया हूँ बोले क्या **'संतुष्टाः सुखिनो'** बेटा संतुष्ट ही सुखी होगा। पटाखे मत फोड़ना संतुष्ट होना, हिंसा करने में धर्म नहीं है। कितने बालक ऐसे हैं जो आज से पटाखा कभी नहीं फोड़ेंगे। कितने पालक ऐसे हैं जो कभी पटाखा नहीं फोड़ेंगे? कितने माता-पिता ऐसे हैं जो पटाखा फोड़ने के लिए पैसा देंगे? कितने माता-पिता हैं जो पटाखा फोड़ने को पैसा कभी नहीं देंगे।

इन बच्चों का पैसा बचेगा, बचेगा कि नहीं बचेगा? बहुत सारे पैसे बच चुके उनका तुम क्या करोगे? ऐसा न हो कि बेचारे बोलें महाराज ने पटाखे भी नहीं फोड़ने दिये और मेरे पैसे भी गये।

उनको पैसे पूरे देना, बालको तुम पैसे लेकर क्या करोगे? कहना लो **'संतुष्टाः सुखिनो'** बोले मैंने अहिंसा का पालन किया है इन पैसों का क्या करूँगा? भगवन् जिनेन्द्र के मन्दिर में जाना भगवान् की पूजन करके आ जाना, उतना द्रव्य भगवान् की पूजा में चढ़ा देना तीर्थ भूमि को देना, सम्मेद शिखर भेज देना, जीर्णोद्धार करा देना, अरिहन्त की प्रतिमा विराजमान कर देना। भैया! ऐसा भी होना चाहिए। मालूम जबलपुर में मढ़िया जी तीर्थ है। मढ़िया कैसे बनी? एक ऐसी गरीब बुढ़िया थी, जो आटा पीस-पीस कर पैसा कमाती थी। बताओ आप क्या करोगे धन्य हो, उस जीव के परिणाम आटा पीस-पीस कर इतने पैसे कमाये उसने छोटी सी मढ़िया बनवाई जबलपुर में वो आज विशाल तीर्थ हो गया। आज बुढ़िया की मढ़िया महान् तीर्थ बन गया। ऐसा अभियान छेड़ दो, पण्डित जी बच्चों का जितना द्रव्य इकट्टा हो जाये उनकी एक प्रतिमा ले कर आओ। बालको अपने माता-पिता से कहना सारे विश्व को पता होना चाहिए एक श्री जी की प्रतिमा बुलायी जाये उसमें मात्र प्रशस्ति में यहाँ के बालकों की प्रशस्ति होना चाहिए। उसमें स्पष्ट लिखा होना चाहिए पटाखे से नष्ट होने वाले द्रव्य को बचा करके बालकों ने अरिहन्त की प्रतिमा को स्थापित किया है। इतिहास साक्षी रहेगा, कि बच्चे पटाखों में धन नष्ट नहीं

करते थे, अरिहन्त की प्रतिमा विराजमान करते थे। इसलिए माता-पिता आज बच्चों को चौगुने पैसे देना।

जब बुढ़िया की मढ़िया हो सकती है। बुंदेलखण्ड में एक तीर्थ है पपौराजी वहाँ पर एक मन्दिर है सास बहु का।

सास बहू का मन्दिर तो होना ही चाहिए ये बहुएँ लड़ती हैं, झगड़ती हैं, हिस्सा बाँटे के लिए। लेकिन ऐसी भी बहुएँ हुई हैं जिनने सास से मिलकर मन्दिर बनवाया हो ऐसी बहुएँ बने जो सास के साथ मन्दिर बनवायें। ज्ञानी! समाज को सुरक्षित रखना है, मैं स्पष्ट कह रह हूँ कि जितनी अपनी उपजाति हैं उनके अपने सुरक्षित मन्दिर होना चाहिए। क्यों होना चाहिए। यदि बच्चे बिगड़ने भी लग गये और वहाँ लिखा मिल जाये अग्रवाल जैन समाज कोई बच्चे बाहर भटक गये, उनको लिखा मिला मेरे वंश का मन्दिर है, तो ज्ञानी मन्दिर के नाम पर संगठन होगा। इसलिए मन्दिर तो होना ही चाहिए। सामाजिक पंचायत के मन्दिर हों और समाज-समाज के मन्दिर हों। समाज में बिखराव के लिए नहीं हैं, ये समाज की रक्षा के लिए हैं। आप जब सोनागिर जाओगे और वहाँ लिखा मिल जाय अग्रवाल चन्द्र प्रभ दिगम्बर जैन मन्दिर। आपके मन में आयेगा कि नहीं आयेगा मेरे वंश का मन्दिर है। ज्ञानी! सोनागिर जाओगे वहाँ लिखा मिल गया जैसवाल दिगम्बर जैन मन्दिर मन में भाव आयेगा कि नहीं आयेगा, अरे भाई! समाज का मन्दिर है।

कदाचित् बालक तुम्हारे बिगड़ने लग भी गये होंगे, पर मन्दिर के नाम पर उनको राग उत्पन्न होगा ही होगा। तो आगरा के बालक क्या करेंगे। अरे ज्ञानी! बालक करें न करें पर जितने पालक बैठे हैं बच्चों के नाम की एक प्रतिमा बनाना है, ठीक है, नहीं है ठीक भैया सुन रहे कि नहीं यहाँ के बच्चों के नाम पर अरिहन्त की प्रतिमा स्थापित करना और इसलिए स्थापित करना जब बच्चे बिगड़ने लग जायें बच्चों का नाम लिखा मिलेगा अरे इन बालकों के मन में भी आयेगा अरे हमारे बीच में ऐसे भी बच्चे हुए हैं जो भगवान् को स्थापित करते थे।

'संतुष्टाः सुखिनो'

सुखी कौन है? संतुष्ट सुखी है।

ओ हो! मारिची की पर्याय से भटका जीव सिंह की पर्याय में संतुष्ट हुआ, भगवान् महावीर बन गये और वही वर्द्धमान पावापुर के सरोवर में ध्यानस्थ हो गये। तीस वर्ष तक राज-सुख भोगे, तीस वर्ष की भरी जवानी में जैनेश्वरी दीक्षा ली। दीक्षा लेकर तप किया, बारह वर्ष तक घोर साधना की मौन पूर्वक। और केवल्य को प्राप्त करके पुनः तीस वर्ष तक तत्त्व का उपदेश दिया।

तीस वर्ष तक दिव्य-ध्वनि खिरती रही और जीवन का अन्तिम दिन था पावापुर के सरोवर पर कार्तिक कष्णा चतुर्दशी के रात्रि अमावस्या की प्रभात की बेला में तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी सूक्ष्म क्रिया प्रतिपाती ध्यान में लवलीन हो गये प्रभु ने निर्वाण प्राप्त कर लिया। वो परम हंस परम औदारिक से अशरीरी हो गये। जन्म-जरा-मृत्यु का क्षय कर लिया, देवों ने आकर के निर्वाण महोत्सव मनाया। नख और केश अवशेष बचते हैं तीर्थंकर के उनको संग्रह करके अग्निकुमार देवों ने अपने मुकुटों से अग्नि प्रज्वलित करके गोशीर चन्दन आदि से उनका अन्तिम संस्कार किया और सारे देवों ने उस भस्म को अपने मस्तिष्क पर धारण किया। तीर्थंकर परमात्मा की वह भस्म इतनी पावन पवित्र थी कि सौधर्म इन्द्र अपने मस्तिष्क पर लगा रहा था। प्रातः की बेला में निर्वाण हो गया, मुख्य शिष्य गौतम गणधर स्वामी ध्यान में लीन हो गये। मेरे गुरु चले गये इतनी विशुद्धि अज्ञानी शोक करता है, ज्ञानी प्रमुदित होकर के ध्यान करता है।

अज्ञानी होता तो रोता वो ध्यान में लीन हुए एक दिन पूरा नहीं लगने दिया, प्रातः ध्यान में इतने लीन हुए कि संध्या की बेला में केवल्य ज्योति को प्रकट कर ही लिया। उसी के उपलक्ष्य में आप दीपावली मनाते हो। हंस परम हंस हो गया। अब पुनः इस संसार में कभी लौटकर नहीं आयेगा।

ब्रह्मानन्द स्वरूप की प्राप्ति कर ली। जो स्वरूप परमात्मा का है वही स्वरूप मेरी आत्मा का है। आज निवाण दिवस पर ज्ञानी! परमात्मा कर्मों से मुक्त हो गये, कम से कम दीपावली के दिन हम व्यसनों से मुक्त हो जायें।

हे श्रावको! सामूहिक रूप से आज निर्णय कर लेना दीपावली के पावन दिन कभी जुआ मत खेलना, खेलते ही नहीं आप लोग, फिर भी एक बार पुनः नियम

कर लो नियम जितनी बार लो उतनी निर्जरा होती है ज्ञानियो! जीवन में कभी जुआ मत खेलना। नियम ले लिया बहुत बढ़िया कमसे कम आपका नाम महाभारत में तो नहीं लिखा जायेगा। ठीक है, कर लो कायोत्सर्ग, बहुत अच्छा। इसका तात्पर्य कोई शर्तों के काम मत करना। समझ गये न,हार जीत का कोई कार्य मत करना। भाग्य के साथ अपना जीवन जीना। सुखी कौन है, जो संतुष्ट है। असंतोषी जीव, नित्यम् असन्तुष्टाः दुःखिता। जो असंतुष्ट रहते हैं, नित्य ही दुखी रहते हैं।

दोनों के अन्तर को समझ लो संतोष से सुख मिलता है असंतोष से दुख मिलता है। हे मुमुक्षुओ! दोनों को जान करके अब तुम वह क्रिया करो जिससे सुख मिलता है, इसलिए संतोष ही करो असंतोष छोड़ दो। आज से हाय-हाय करना बंद करो कि मेरे दादा ने उनको अधिक दे दिया, मेरी सासु ने उनको अधिक दे दिया। आज से प्रत्याख्यान! माताओ! इतना नियम ले लो, निर्वाण दिवस पर अपने पति को उनके माता-पिता से उनकी सम्पत्ति के लिए झगड़ने के लिए प्रेरित नहीं करोगी। अपने पति को उनके भाइयों से उनके माता-पिता से सम्पत्ति के लिए झगड़ने को प्रेरित नहीं करोगी। चलो बहुत अच्छा हुआ, साता मिली बूढ़ों को। ओ हो! सही है किसी को दुखी करना तेरा भाग्य होगा अपने आप मिलेगा। **भाग्य जैसा होगा वैसा अपने आप मिलेगा।**

सीता को जंगल में भेज दिया था तब भी राज्य मिला कि नहीं मिला? पुण्य कौन बाँट सकता है कोई नहीं बाँट सकता तो इसलिए आज से आपका नियम हो गया है। बहुत अच्छी बात इसका मतलब सास ससुर सरदार न बन जायें, उनका ध्यान रखें।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सन्तोष धारण करो

द्रव्याशां दूरतस्त्यक्त्वा, सन्तोषं कुरु सन्मते।
मा पुनर्दीर्घसंसारे, पर्यटिष्यसि निश्चितम्॥ सा. स. 243॥

अन्वयार्थ—सन्मते = हे सद्बुद्धि धारक भाई! **द्रव्याशां दूरतः त्यक्त्वा** = द्रव्य की आशा को दूर से छोड़कर **संतोषं कुरु** = सन्तोष मन में धारण कर **मां पुनः** = नहीं तो **दीर्घ संसारे** = इस महान् संसार में **निश्चितम् पर्यटिष्यसि** = तू निश्चय से भ्रमण करेगा।

भावार्थ—हे ज्ञानी! द्रव्य की आशा को दूर से ही छोड़कर तू सन्तोष धारण कर नहीं तो इस दीर्घ संसार में तू निश्चय से भ्रमण करेगा।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में वीतरागी श्रमणों की व्याख्या कर रहे हैं, वे धरती के देवता।

आत्म दृष्टि से सरावोर सत्यार्थ मार्ग में लीन, सम्पूर्ण जगत् के द्रव्यों से, बाहर के सारे विकल्पों से आत्म रक्षा में जो लीन हैं, ऐसे निर्ग्रन्थ तपोधन योगी के भावों पर विचार करो। देह के धर्म को अपना समझा है भावों के गुणत्व पर दृष्टिपात करो। गृहत्याग परिग्रह त्याग बाहर का बहुत सरल है, भीतर जो ज्ञानावरणी कर्म रखा हुआ है, दर्शनावरणी, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गौत्र, अन्तराय आदि आठ कर्म हैं वीतरागी तपोधन ने इन कर्मों को भी परिग्रह स्वीकार किया। ये जोभीतर कर्म हैं आपको लगता है अंतरङ्ग परिग्रह है, परन्तु वास्तव में ये भी बाहर का परिग्रह है। कर्म पौद्गलिक है और पुद्गल भी आत्मा का धर्म नहीं है जो आत्मा का धर्म नहीं है। वह मेरा अन्तरङ्ग पदार्थ कैसा? उस कर्म की सत्ता को साथ जब क्रोध आदि विकारी भाव आ रहे हैं, वह अन्तरङ्ग परिग्रह है। बहिरङ्ग द्रव्य छोड़कर चल देना यह तो सरल है। घर से रहित घूमना लोक में ऐसी कई उपजातियाँ हैं जो घर बसाते नहीं नगर-नगर में घूम-घूम करके अपना काम कर रहे हैं। बंजारे लोह

पीट रहे हैं, घर से रहित होने पर भी परिग्रह से सहित हैं। घर से रहित होकर निकल जाना सरल है, लेकिन परिग्रह से रहित होना कठिन है।

ज्ञानियो! जो भवन आपने बनाकर रखा है, षट्खण्ड महल उसमें कितनी देर रहते हो? तेरी आयु का आधा समय तो रोड़ पर निकला है, कुछ समय मेहमानी में गया, कुछ समय तीर्थ यात्रा में गया है, कितना समय व्यापार में निकाल दिया है, इस षट्खण्ड महल पर कितना निवास किया है? जितनी पर्याय उसके निर्माण में लगा दी है उतना उसमें रह नहीं पा रहे हो। **मकान छोड़कर रह लेना कठिन नहीं है, परन्तु मकान से छूट कर रह पाना बहुत कठिन है।** मकान के बाहर तो रह लेते हो, लेकिन भीतर के मकान से रहित होकर नहीं रह पाते हो। चींटा-चींटी बिल बनाने में कितना समय नष्ट करते हैं, परन्तु जब उनको भोजन पानी की खोज करनी पड़ती है तो बिल के बाहर ही घूमते हैं, वहाँ कितना रह पाते हैं? तब भी कितनी मेहनत करते हैं। वे चींटे नीचे बिलबिलाते हैं तुम ऊपर बिलबिलाते हो अन्तर इतना होता है। **जैसे चींटी चिपक जाये तो छोड़ती नहीं है ऐसे ही तुम परिग्रह में ऐसे चिपके हुये हो कि छोड़ नहीं पा रहे हो।**

किसी से कहना मत, जीव की गृद्धता को देखकरके समझना या तो लाल चींटा-चींटी बनने वाला है या बन कर आया है। एक क्षण भी घर से परिग्रह से भिन्न रहना नहीं चाहता है। लोग कहें चलो भैया सम्मेद शिखरकी वन्दना को चलें, महाराज जी के प्रवचन सुनने चलो, नहीं भैया मेरा तो यहीं पर सब कुछ है, मेरा तो काम पड़ा हुआ है। समझ लेना इस जीव की तीव्र परिग्रह संज्ञा है। यह नियम से अशुभ गति से आया हुआ है, मंद कषाय से यहाँ तक आ गया और अशुभ गति में जाने वाला है। घर में ऐसे भी लोग हैं जो ये तो कह देंगे कि जाओ मन्दिर तुम हो आओ। और आप? अरे घर कौन देखेगा? हाँ आपको भेज देगा, पर स्वयं कहेगा घर कौन देखेगा? उसे इतना राग है कि किञ्चित् मात्र भी उसे अनुभव में नहीं आ रहा है कि निज घर भी कुछ है। इसलिये वस्त्रों को निकाल कर बैठ लेना यह भी सरल है, घर से रहित होकर बैठ लेना ये भी सरल है, परन्तु कषाय को खोल कर बैठना बहुत कठिन है। **"ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्तिं उवसंपज्जामि"**

यदि अन्तिम श्वांस के समय एक सूत्र भी चलता रहा तो कल्याण हो जायेगा।

ज्ञानी! कोई क्या कहेगा पिता जी को हास्पिटल नहीं ले गया घर में ही मार दिया। क्या जमाना आ गया है, **कितने खण्ड बना रहे हो आज कल न जंमने मिलता न मरने मिलता फिर बना क्यों रहे हो? जन्म होता है तो हास्पिटल में, मरण हो रहा है तो हास्पिटल में फिर घर किसके लिये है?** आज के बच्चे माता-पिता को तुरन्त छोड़कर क्यों चले जाते है? पड़े रहो आप। एक समय था जिस कमरे में बच्चे का जन्म होता था उसमें नाड़ा गाढ़ दिया जब उसे बड़े में पता चला तो उसे राग रहता था मैं भी माता-पिता का साथ दूँगा, मेरा जन्म स्थान ये है। आज उसे पता ही नहीं है कि हास्पिटल के कौन से कमरे में उसका जन्म हुआ है।

हे ज्ञानी! आचार्य भगवन् कह रहे हैं कि कभी किसी से याचना नहीं करना तेरे बेटे तुझे प्रेम से क्यों नहीं देखते हैं उसका हेतु बहुत बड़ा है। माँ! जन्म से बेटे को बॉटल पकड़ा दी है बच्चा आँचल पकड़ता तो उसके अन्दर ऋजुता होती, कठोर बॉटल पकड़ा दी तो वो कहता है कि तू वासना में लवलीन होने वाली माँ है मेरा जन्म तो मेरे भाग्य से हुआ है, पालन मेरा बॉटल ने किया है, तूने क्या किया है? इसलिये तू मेरी कौन है? बच्चों में ऋजुता नष्ट क्यों हो रही है? क्योंकि तुम्हारे घर में मिट्टी के स्थान बचे ही नहीं हैं सब कठोर पत्थर लगाकर रख दिये हैं। कठोर स्थान में गिरते-गिरते उनके हृदय कठोर हो गये हैं। काश घर में उनके खेलने को मिट्टी धूल होती तो कहते भारत की धूलि की संतान है तो उसमें ऋजुता होती। ब्रज की भाषा में माधुर्य था देखो बनारसी दास के सवैया, दौलतराम, भूधरदास के भजनों में क्या मृदुलता भरी हुई है। लाइट की अर्थिंग भी मिट्टी में ही देनी पड़ती है, क्योंकि उर्वरा-शक्ति, विद्युत-शक्ति, संचार-शक्ति मिट्टी के अन्दर है।

जैसे भारत की मिट्टी में शक्ति है, वैसे धर्म की भूमि में शक्ति है। आप धर्म की भूमि में नहीं जाओगे, ऊपर पढ़ लो, पढ़ लो में घूमते रहोगे, पर साधना की अनुभूति सम्भव नहीं है। त्यागियों, वैरागियों के लिये माँ भगवती जिनवाणी की भूमि में आना पड़ेगा और सन्तानों को भारत की मिट्टी में खेलना पड़ेगा। तब कहीं

आप सत्यता को खोज पाओगे। पानी को चौरासी खण्ड तक ले जा सकते हो, लेकिन उसके स्रोत जमीन में ही होते हैं। "शुचि भूमि गतं तोयं" भूमिगत पानी ही पवित्र है, इसलिये कुये का पानी ही शुद्ध है। नल का पानी पीने वाले मल को पी रहे हैं, बुरा लगे तो आज लग जाये। नाली में बच्चे बैठे थे कहीं पाइप लाइन लीकेज हो गई फिर देखो क्या स्वाद आता है?

ज्ञानियो! बुद्धियाँ क्यों भ्रष्ट हो रही हैं? जब तुझे पानी शुद्ध नहीं मिल रहा है, वाणी शुद्ध नहीं मिल रही है। पानी वाणी दोनों विकृत हुये, तो परिणाम तो विकृत होना ही है। मानो मेरी बात शुद्ध कुये का पानी पिओ और शुद्ध जिनवाणी सुनो तो तुम्हारी बुद्धि ठीक हो जायेगी। जेट-वेट कुछ नहीं, तुम जेट की बिलछानी कहाँ करोगे? प्रेशर से पानी आया, जीवों का चकनाचूर तो वहीं हो गया। जैसे आप जूस निकालते हो टमाटर आदि का वैसे ही उनका जूस निकल गया। धिक्कार हो, जितने हैण्डपम्प, जेटपम्प, बोरिंग के पानी पी रहे हैं सब उन प्राणियों को पी रहे हैं। धर्म तो धर्म है, आपकी चर्या की शिथिलता में, आपकी विषमता में अधर्म को धर्म नहीं किया जा सकता। तत्त्व का कथन तो विपरीत नहीं किया जा सकता। कमी आपकी है, भूल आपकी है हम आपकी भूल को सिद्धान्त तो नहीं बना सकते।

ज्ञानी! जमाने की बातें मत करना जिनवाणी की बात करना। जमाना आपके प्रमाद ने बदला है। किसने मना किया तुम अपने घर में कुये के पानी का प्रयोग मत करो, किसने मना किया कि तुम हाथ की चक्की का प्रयोग मत करो। सीधा बोलो महाराज दवाईयाँ खा सकते हैं, बीमार पड़ सकते हैं, आज तो शरीर को ठीक रखने के लिये घरों में साइकिलें भी रखी हैं, पागलपन की कोई सीमा नहीं है। जीवों के पास कितना विशाल पागलपन है, आखिर में मेहनत करनी ही पड़ रही है। इन साइकिलों की मेहनत की अपेक्षा से घर की चक्की पीसतीं तो तुम्हे व्यर्थ के योगा क्यों करने पड़ते? ये युवा पैसा देकर के जिम जाते हैं, कुये से पानी खींचते तो जिम जाने की क्या आवश्यकता थी? हमारे जैन दर्शन में कितना विशाल विषय था, जीव समझ नहीं पाये और बाहर के प्रपञ्चों में लवलीन हो गये। काँटेदार

प्लेट रखे हैं घर में उन पर घूमते हैं।

ज्ञानियो! सुबह से नंगे पैर बिहार करते तो अपने आप सब कुछ हो जाता, सारे पाइन्ट दब जाते और जीवों की रक्षा भी हो जाती। पर आप बिना मोजे के मन्दिर में भी नहीं जा रहे हो। अरे पापियो! कम से कम मोजे उतारकर तो मन्दिर में जाओ। मल सहित, कीचड़ सहित, मोजे सहित मन्दिर जाओगे तो उसका फल क्या होगा? अब जो है सो है। श्रीजिनालय में कभी पैर धोये बिना प्रवेश मत करना।

भारत की भूमि पर एक बहुत बड़ा सम्राट हुआ उसका नाम था करकण्डू वह अवधिज्ञानी मुनिराज की वन्दना करने गया। स्वामी! मैं सेठ पुत्र, मेरे हाथ में कण्डूक खुजली क्यों? छब्बीस प्रकार का कोढ़ होता है, उसमें से खाज भी एक कोढ़ है।

तीव्र-मन्द-ज्ञाताऽज्ञातभावाऽधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्त-द्विशेषः॥ 6/6॥

आचार्य श्री उमास्वामी महाराज ने तत्वार्थ सूत्र में लिखा है यदि आप कहो कि मेरे जैसा पाप ये भी तो कर रहा है, मेरा उदय है उसका क्यों नहीं? पाप के काल में कषाय कैसी चल रही थी। पाप ही नहीं भोजन, यदि माँ ने भोजन परोसा, तूने प्रसन्न चित्त होकर पानी भी पिया तो वह भी तेरे शरीर को पुष्ट करेगा और सौतेली माँ ने परोसा भोजन उसने दूध परोसा लेकिन उसके भाव भिन्न थे उसके हाथ का भोजन तू कर तो रहा था, परन्तु तेरा मन भी नहीं लग रहा था। उसका रस बदल जायेगा। पत्नि का परोसा भोजन चटपटा तो मिलेगा, लेकिन उसमें माँ का दुलार नहीं होगा। पत्नि का परोसा भोजन राग से मिश्रित होगा चटपटा खाने में भी बहुत अच्छा लगेगा। उसमें दुलार नहीं होगा। मुख में लार नहीं तो भोजन का स्वाद नहीं, माँ का दुलार नहीं तो भोजन का स्वाद नहीं। लार के बिना भोजन नहीं पचता। स्वयं का चित्त प्रसन्न है परिणाम विशुद्ध हैं भोजन करने बैठोगे तो उसका रस बदल जाता है। जब रोटी का परिणमन रोटी पर अवलम्बित है, तो पुण्य पाप का परिणमन चित्त पर आलम्बित क्यों नहीं है? अतंरङ्ग में भय है तो थाली का भोजन पेट भर देगा, पर स्वाद नहीं दे पायेगा। जब थाली का भोजन भयभीत को स्वाद नहीं देता, तो प्रभु के चरणों में द्रव्य की थाली भी भक्ति को जन्म नहीं देगी यदि तेरे अन्दर कषाय भाव है तो। कषायी व्यक्ति के लिये कोई स्वाद नहीं।

माँ! आज से बेटों को जहर परोसना बन्दकर सकते हो? आपके भाव अच्छे न हों तो बेटे से कह देना कि तुम स्वयं थाली लगाकर भोजन कर लो। यदि मन में कषायिक भाव चल रहा है तो उसकी रोटी को आप स्पर्श मत करना। मैं तो पहले से बुलबाता हूँ मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्ध है। जिसके भाव खराब हों, दूर से देखो। जब आपके परिणाम खराब हो तो किसी साधु के चरण मत छूना। उनको आहार मत देना। मन शुद्धि पहली शुद्धि है। जब मन ही शुद्ध नहीं है, तो काहे की शुद्धि। एक जैसा पाप करने के बाद भी, एक जैसा फल नहीं होता। एक जैसा पुण्य करने पर भी एक जैसा फल नहीं होता। खेत में डाला गया बीज भी एक जैसा फलित नहीं होता है। भूमि की उर्वरा शक्ति सदृश्य होने पर भी बीज की किस्म सदृश्य नहीं है, तो क्या कहोगे? ये सुधार वादियों के मस्तिष्क वैज्ञानिक नहीं हैं ये मात्र यशः कीर्ति चाहते हैं। शाली धान्य का स्वाद, बासमती चावल का स्वाद और छत्तीसगढ़ के चावल का स्वाद एक सा है? नहीं। क्या सभी चावल नहीं हैं? हैं। कठिया, पिसिया कितने प्रकार के गेहूँ हैं। क्या सभी के स्वाद एक से हैं? क्या सभी एकसी रोटियाँ बनती हैं? नहीं। परन्तु सभी की संज्ञा गेहूँ है, इसी प्रकार से वंश, कुल आदि का प्रभाव होता है। युवाओ! विशेष रूप से आप लोगों से कह रहा हूँ मित्रो! सुधारवादी लोग उन्मत्त होते हैं, उनके भीतर कुछ नहीं होता है, वस्तु स्वभाव समझो।

इस वीतराग धर्म की रक्षा करना है, तो मेरे बेटो अपने कुल में सुकुल की ही कन्या लेकर आना, पर कुल की कन्या मत लाना। बेटियों से कहना है कि चेहरों को देखकर के धर्म को खोकरके उन घरों में मत पहुँच जाना जिन घरों में सुबह से अभिषेक देखने को न मिले जीव पड़े दिखाई दें। माता-पिता से कहना है कि जन्म देकर फ्री होना मत सीखो संस्कार देना भी सीखो। सभी युवा मन में ही कायोत्सर्ग कर लेना। साधु बन जाऊँगा, शादी नहीं कराऊँगा, लेकिन अपने जैन कुल को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। कभी विचार आ भी गये हों तो त्याग कर देना। साधु बन जायेंगे, लेकिन जिनशासन को छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे। रावण के वंशज बहुत साल पहले राक्षस द्वीप में थे, सिंहल द्वीप में थे। रावण जहाँ रहता

था वहाँ से छोड़करके अपने दादा परदादा की भूमि में पहुँच गया। वंश का, भूमि का राग आया तो अपने स्थान पर पहुँच गया। ऐसे ही यहाँ जितनी भी समाजें हों सभी एक-एक जिन मन्दिर बनाना, समय बदलता है कदाचित् आप कहीं से कहीं पहुँच जाओगे प्रशस्ति जरूर लिखवाना, अपने परिवार में जितने सदस्य हों सभी के नाम जरूर लिखवाना। जब यहाँ से छोड़कर जायेंगे तब भूमि लेकर नहीं जायेंगे, वे कागज भी साथ में चले जायेंगे किसी ने वे कागज पढ़ लिये ओ हो! मेरे वंश का मन्दिर बना हुआ है एक बार अवश्य उस मन्दिर के दर्शन करके आऊँगा। जब लौट कर आयेगा तो कहेगा मेरे वंशज कितने धर्मात्मा थे, जिन मन्दिर बनवाये हैं, जिन-बिम्ब बनवाये हैं यदि वह धर्म से दूर भी हो गया होगा तो पुनः लग जायेगा। पुत्र-पुत्रियों के राग में तुम चाहो मेरा नाम चलेगा तू अपने पिता का नाम नहीं लेता तो तेरा नाम कौन लेगा? जितना पैसा कमा रहे हो, ठीक है सन्तान को भी देना, लेकिन सनातन धर्म की रक्षा के लिये अरहन्त की प्रतिमा जिनवाणी भी स्थापित करके जाना। भगवानों के अन्दर शुद्ध पवित्र पुण्य वर्गणायें बीजाक्षरों की शक्तियाँ भरी हुई हैं मन्दिर में प्रवेश करो आपको अनुभव हो जायेगा शक्तियाँ मेरे अन्दर प्रवेश कर रही हैं। कितने भी नये मन्दिर बना लेना, लेकिन प्राचीन मन्दिरों के दर्शन करने जरूर जाना। नये मन्दिर तो बनाना, लेकिन प्राचीन मन्दिरों में छैनी लगाकर तोड़ मत देना, क्योंकि सारी शक्ति नष्ट हो जायेगी।

ज्ञानी! तुम अस्सी साल के हो जाओगे तब वृद्धत्व का भान कर पाओगे और अस्सी साल के वृद्धत्व के पास आज बैठ जाओगे तो आज ही पता चल जायेगा। बनाना सीखना, तोड़ना मत सीखना। सत्य को समझो, योगियों की धारा। ये भीतर ही भीतर बनते जाते हैं। जमीन में पड़ा-पड़ा कोयला हीरा बन जाता है, नहीं देखा हो तो पन्ना (म.प्र.) में देखकर आना। वहाँ मिट्टी में हीरे निकलते हैं। जितना गहरा खोदोगे उतना अच्छा हीरा निकलता है। ऐसे ही यह देह तो मिट्टीभूत है, भीतर जितना अनुभव करोगे, जितना गहरे उतरोगे तो शुद्धात्म स्वरूप का हीरा चमकता दिखाई देगा।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं सनातन धर्म की रक्षा करना है तो गुप्त होना सीखो, दबना सीखो। इन माताओं से पूछो रोटी बनाई घी लगाया और दबाकर रख दी जितनी बीच की रोटियाँ होंगी उतनी स्वादिष्ट होंगी। ऐसे ही साधना का स्वाद है। दीक्षा लेते ही निर्ग्रन्थ तपोधन भेद विज्ञान का घी लगा करके स्वानुभूति के भीतर अपनेको दबाकर रख देते हैं, फिर वहाँ वह स्वाद आता है। जो अपूर्व स्वाद किसी पर्याय में नहीं चखा वह स्वाद उस जीव को मिलता है। रोटी बनने के बाद यदि ऊपर रख दो तो सूख जाती है, स्वाद विहीन हो जाती है। जो ऊपर दिखाने का भाव रखते हैं वे सूखी रोटी जैसे हो जाते हैं।

हे आत्माओ! संतोष धारण करो, वही अमृत है। जो साधना का मार्ग है वह जगत् में बहुत जल्दी उछलने का मार्ग नहीं है। हे धीर येगीश्वर! निर्मल चित्त, रागादि को बढ़ाने वाले परिग्रह से रहित हो करके अपने व्रतों में दृढ़ होकर जीवन जिओ। त्यागी को किसी से डर नहीं लगता फिर भी डरे होते हैं। त्यागी उपसर्ग परीषहों से नहीं डरते, प्राणों के वियोग से भी नहीं डरते, उन्हें डर लगता है तो संसार के भ्रमण से लगता है, पाँच पापों का लगता है। पापों से डरे बिना त्यागी बन गये तो वे डरे ही रहेंगे, बन नहीं पायेंगे। **कोई भी काम करो पहले तैयारी करो। बिना तैयारी के काम करोगे तो विफल हो जाओगे।** भूमिका बनानी पड़ती है, तैयारी तो करनी पड़ती है।

ज्ञानी! वकील बनोगे, काला कोट पहनोगे, तो उतने काले भाव होते जायेंगे। जितना पुरुषार्थ तू लॉ में कर रहा है कर लो, लेकिन एक बार मेरे पास जरूर आना जिस न्यायालय में तू जायेगा उसका नाम न्यायालय होगा, परन्तु आश्रय अन्याय को देगा। बहुत कम लोग हैं जो न्यायालय में न्याय दें। जीवन में एक बार जैन न्याय भी पढ़ लेना। जितनी पोथियाँ तुम्हारे न्याय की हैं उससे चौगुनी पौथी हमारे न्याय की हैं। युवाओं को दिखाना चाहता हूँ कि जीवन में कभी जैन न्याय भी पढ़ लेना। ये जीव यदि जैन न्याय पढ़ लेता तो सारे जीवन में अनाचार समाप्त हो जाते। हमारा स्याद्वाद न्याय घोर अन्याय को रोकने वाला है।स्याद् है पर है ही नहीं है और भी है। आप एक पक्ष को ही सर्व मत मानिये। तुम बेटा ही नहीं

हो, भाई भी हो। तुम अपने पिता की अपेक्षा से बेटा हो अस्ति तुम बेटा ही नहीं हो, भाई भी हो भतीजे भी हो इन धर्मों का नाश मत कर लेना।

किसी ने आपको थैली सौंप दी और कहा मेरी विजय कराना है आपको। आपने अपनी बुद्धि से, तर्क से उस आदमी की विजय करा दी। पर पता नहीं था कि किसके साथ विवाद हुआ था। जिसने तुमको थैली दी थी उसने अपनी माँ की भूमि को छीन करके अपनी पत्नि बेटों के साथ सुख से रह रहा था और बूढ़ी माँ को धक्का मार करके घर से बाहर कर दिया था। सत्य घटना बता रहा हूँ जब बाहर किया तब वह बूढ़ी माँ समझदार थी उसे मालूम था कि वकील जैन है जैन के नाते कहीं न कहीं उसके अन्दर महावीर के संस्कार अवश्य पड़े होंगे। माँ ठिठुरती ठण्डी में सुबह पाँच बजे वकील के गेट पर जाकर पहुँच गई। सुबह जैसे ही गेट खोलता है वहाँ बुढ़िया बैठी मिली। बोला माँ आप कौन हो? कहाँ से आयी हो। बोली बेटा! अब तू ही तो मेरा बेटा है तभी तूने माँ कहा। अब तू ही बता एक थैली के राग में तूने पूरी सम्पत्ति, भवन, भूमि सब उस लड़के के नाम कर दी है, अब मैं कुछ नहीं जानती, तू ये बता मैं खाऊँगी क्या, रहूँगी कहाँ? मैं तो तेरे द्वारे से कहीं जाने वाली नहीं हूँ, मैं तो यहीं रहूँगी। वह वकील कहता है मुझ से कितनी बड़ी भूल हो गई। मैंने अस्ति को देखा, परन्तु नास्ति को नहीं देखा। वह उस थैली को देखता है धिक्कार हो 'श्री' मैंने इस बुढ़िया को कहाँ खड़ा कर दिया? अनेकान्त, स्याद्वाद, न्याय क्या बोल रहा है? अस्ति को देखना पर नास्ति को भूल कर मत देखना? अस्ति को देखना पर नास्ति को समझकर देखना। वकील बोलता है माँ तू विश्वास रख उसने तो मुझे पोटली दी है तब मैंने उसे विजय करायी है लेकिन माँ तू छोटी सी दरखास लिख दे कल तेरी विजय होगी। मेरा मन आज रो पड़ा कि मैंने आज अपनी विद्या का कितना दुरुपयोग किया इस तड़फती बुढ़िया को मैंने गेट पर ही नहीं, चौराहे पर ही नहीं, रोड़ पर खड़ा कर दिया है। वकील ने खुद बना दी और कह दिया कि किसी से इसे उतरवा कर कल कोर्ट में पैरवी करना।

जब असत्य को सत्य करने की सामर्थ उसके अन्दर थी तो सत्य को सत्य करने की सामर्थ क्यों नहीं होगी। दूसरे दिन जब उसने केश लड़ा, बेटा कटघरे में खड़ा हुआ और पूरी की पूरी सम्पत्ति माँ के हाथ चली गई। वो कहता है मेरी थैली का क्या होगा? वो कहता है थैली तूने कल दी थी सो तू कल जीत गया था। आज मैं तेरा वकील नहीं हूँ, मैं इस बुढ़िया का वकील हूँ।एक आँख से देखोगे तो कितनी बुढ़ियों को रुलायेगा, इसलिये एक आँख से मत देखना दोनों आँख से देखना। आज हमारी समाज में जो बुढ़िया रो रही है वृद्ध माँ जिनवाणी बिलख रही है इन वकीलों के कारण कोई मुझे मात्र व्यवहार की आँख से देखता है, कोई मात्र निश्चय की आँख से देखता है, बुढ़िया बिचारी रो रही है। दोनों नयनों से देखो तो बूढ़ी माँ को रोना न पड़े। हमारी जिनवाणी माँ वृद्ध माँ कह रही है कि बेटा! अपनी इस प्रज्ञा को रोटी के टुकड़ों के पीछे नष्ट मत करना, एक बार जैन न्याय पढ़ना। महेन्द्र शास्त्री और दरबारी लाल कोठिया बहुत बड़े न्यायाचार्य हुये हैं जब इन्होंने स्याद्वाद अनेकान्त की व्याख्या की तो सारे लोग देखते रह गये। जैन कुल में जन्म लेने के उपरान्त आजीविका के लिये जीना यह कोई जैन कुल में जन्म लेने की सार्थकता नहीं है। जैन तत्त्व को समझो। क्या जीने के लिये जन्मा था? पैसे के लिये जन्मा था क्या? स्वाध्याय करो।

आज उपदेशकों ने उपदेश देना शुरू कर दिया, मात्र शीघ्र लाभ के लिए फिर क्या हो रहा है कोई टेंशन नहीं। जुखाम हो जाये तो ज्ञानी तुरन्त विक्स की डिब्बी खरीदता है अब विचारे को पता नहीं है कि मैं इसको लगा कर ठीक होऊँगा कि और बीमार होऊँगा? इसको शीघ्र लाभ मिलना चाहिये। तूने विक्स की डिब्बी तो सूँघ ली, अब निकलने वाला मल विकार निकल जाता तो पूर्ण स्वस्थ होता। अब तूने वहीं के वहीं रोक दिया, वहीं सूख जायेगा। सीने में लगा लिया सो कफ सूख गया अब बिलखो कुछ दिन बाद फिर उभरेगा और धीरे-धीरे टी.वी. का रूप भी धारण कर सकता है। आज के प्रवक्ता विक्स की डिब्बी बन गये तुरन्त लगाओ आराम मिल जायेगा। सिर दर्द कर रहा था गर्मी के कारण और झण्डू बाम लगा कर और बैठ गया ठण्डा मिलेगा गर्मी का मौसम था, अमृत धारा डाल कर पानी

पी गया अब यह तो बताओ अमृत धारा कैसे बनती है? जितने जलने वाले द्रव्य हैं कपूर ज्वलनशील, पिपरमेन्ट ज्वलनशील, तुरन्त आग पकड़ते हैं आग पकड़ने वाले को तुमने अमृत धारा बना करके पी, तो वह पेट में आग ही तो लगायेंगे। वैद्यों के साथ-साथ थोड़ी बुद्धि का भी तो प्रयोग करो। वह तो ये कहेगा कि शीघ्र लाभ मिलना चाहिये। शीघ्र लाभ मिलने के चक्कर में क्या हो रहा है। यह तो द्रष्टान्त मात्र था ऐसे ही वर्तमान के **प्रवचनकार हैं वे भी झण्डू बाम लगाने वाले हो गये। ताली तुरन्त पिटना चाहिये। लोगों के चेहरे मुस्कराना चाहिये पर ये पता नहीं है कि भीतर मिथ्यात्व की जो केंसर की गाँठ पड़ चुकी है वह निकल रही कि नहीं निकल रही है?**

जैन तत्त्वविद्या का उपदेश ही नहीं हो रहा है। विक्स और झण्डू बाम चल रही है। जो तुम सुन रहे हो वह जैन दर्शन है और जिस न्याय की मैं बात कर रहा हूँ वह जैन दर्शन की रक्षा के लिये मूल मन्त्र है। प्रवचन में यदि यहाँ वहाँ की दुनियाँ की फिल्म की स्टोरियाँ सुनायेंगे तो तुम बच्चे यही समझोगे कि यही जैन दर्शन है, क्योंकि तुमको ग्रन्थ तो पढ़ना नहीं है। आपको तो यह देखना है महाराज ने बोला है वह अमृत है। अरे! अमृत तो है, लेकिन वह झण्डू बाम वाला अमृताञ्जन है कि जिनवाणी का अमृत है, स्वाध्याय करो। एक ग्रन्थ आज ही विस्तार लेना। **स्वाध्याय करोगे तो भीतर का बोध होगा तत्त्व का निर्णय होगा, आत्मा का शोध होगा।** यहाँ पढ़ते हो कैसा लग रहा है? अच्छा शान्ति है? हाँ। अब सोचो तीर्थंकर भगवान् बोलते होंगे तो कितनी शान्ति मिलती होगी, अपन तो परोक्ष में बोल रहे हैं साक्षात् भगवान् बोलते होंगे तो क्या आनन्द है। सिर वगैरह के छोटे-मोटे दर्द तो उनको देखते ही ठीक हो जाते होंगे। यदि आप मेरी बात मान लो तो आपके घरों की दवाईयाँ फिक जायेंगी। प्रतिदिन मन्दिर जाओ और स्वाध्याय करो तो सबसे पहले सिर दर्द की गोलियाँ घट जायेंगी।

भैया मेरी रक्षा करना, कितने सारे लोग पहरेदार लगाये हैं जिसको आना होगा वह पहले पहरेदार को ही पकड़ेगा, जैनी होकर के श्वान पाल रहे हैं विचारे। बन्धन में डाले हैं विचारों को। आठ वर्ष तक का बच्चा गलत काम करता है तो पाप

माता-पिता को भी लगता है ऐसे ही जिस घर में कुत्ते बिल्ली आदि जानवर पलते हैं वे हिंसा कर रहे हैं, अभक्ष्य खा रहे हैं उन सबका दोष पालने वाले को भी लगता है। आगम वचन है नहीं पालना चाहिये। उनको बन्धन में डाल कर रखे हैं आप। जिन-जिन के घर में बन्धे हों, वे आज खोल देना। यथार्थ में **जिनके घर में हिंसक जानवर बंधे हैं वे मुनि को आहार देने के पात्र नहीं हैं, अभिषेक करने के पात्र नहीं हैं,** इसलिये जिनके घर में बन्धे हैं उन्हें बन्धन मुक्त कर देना। कितना स्वाध्याय शील है, अपनी रक्षा के पीछे बिचारे पशुओं को साँकलों से बाँधे है। कुछ शौकीन भी हैं, कुछ न शौक है न रक्षा भाव है फिर भी बांधे हैं बात कुछ गहरी है, स्टेण्डर्ड की बात छोड़ो कुछ और ही बात है। **हे भव्यात्मन्! श्रमणों के सत्संग से तुम भले ही श्रमण मत बनना, परन्तु ज्ञानी संतोषी अवश्य बन जाना। संतोषी श्रावक ही श्रेष्ठ है। संतोषी ही श्रमण बनने का पात्र है।** जो दूसरे से याचना नहीं करता है वही इस धरती पर श्रेष्ठ पुरुष है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सन्तोष ही श्रेष्ठ है।

ईश्वरो नाम सन्तोषी, यो न प्रार्थयते परम्।
प्रार्थनां महतामत्र, परं दारिद्र्यकारणम्॥ सा. स. 244॥

अन्वयार्थ-यः संतोषी = जो संतोषी प्राणी **परं न प्रार्थयते** = दूसरे से याचना नहीं करता है **ईश्वरः** = वही श्रेष्ठ पुरुष है, क्योंकि **अत्र** = इस लोक में **महतां प्रार्थनां** = बड़े लोगों से याचना करना **परं दारिद्र्यकारणम्** = घोर दारिद्र्यका कारण है।

भावार्थ-हे ज्ञानी! जो सन्तोषी प्राणी दूसरों से याचना नहीं करता है, वही जगत् में श्रेष्ठ पुरुष है बड़े लोगों से याचना करना इस लोक में घोर दारिद्र्य का कारण है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य प्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में आत्मा के अनन्त वैभव की व्याख्या कर रहे हैं जिस अनन्त को पर द्रव्य के सम्बन्ध के कारण जीव समझ नहीं सका। यह अपना अहो भाग्य है कि ऐसे खोटे कलिकाल में भी भगवान् वर्द्धमान की देशना सुनने को मिल रही है यह हमारे आचार्यों की अनुकम्पा है जिन्होंने अपने जीवन के आलौकिक समयको निकाल करके जिनवाणी का सृजन किया। **यदि ग्रन्थ न होते, तो आज निर्ग्रन्थ भी न होते, क्योंकि निर्ग्रन्थों का परिचय ग्रन्थों से मिला है और निर्ग्रन्थ न होते तो ग्रन्थ भी न होते, क्योंकि निर्ग्रन्थों ने ग्रन्थों का सृजन किया है और ग्रन्थों से निर्ग्रन्थों की पहचान हुई है। जितनी आस्था निर्ग्रन्थ के चरणों में है उतनी आस्था ग्रन्थों में होना चाहिये जितनी आस्था ग्रन्थों में है उतनी निर्ग्रन्थों में होना चाहिये इसका नाम मोक्षमार्ग है।**

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः। त.सू.।

तत्त्व अरहन्त की देशना है, तत्त्व निर्ग्रन्थों ने लिखा है, तत्त्व पढ़ा है ग्रन्थों में। ऐसा नियोग होगा भगवान् सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलका रहा होगा कि ऐसा भी समय आयेगा कि 2012 में एक साथ इतने जीव जिनवाणी सुन रहे हैं। इसमें शंका नहीं करना सब जीवों के पूर्व के संस्कार हैं। एक कैमरा सामने आ जाये

तो जीव व्यवस्थित बैठ जाता है। कोई जीव झगड़ रहा हो, तो कैमरे वाले से कहना इसका फोटो ले लो तब वह जरूर शान्त हो जायेगा। आप माताओ घर-घर में कैमरे की व्यवस्था कर लो तुम्हारे घर में किञ्चित् भी कोई विकल्प हो जाये उससे कुछ मत कहना। खींच लेना फोटो। कितनी सुन्दर व्यवस्था है इस जीव से कुछ कहना ही नहीं है। जब कैमरा सामने दिख जाये तो यह जीव कितना सीधा साधा हो जाता है कि कहीं मेरा फोटो गड़बड़ न खिंच जाये। इस कैमरे में दिखने के लिये तुम थोड़ा अच्छे से बैठ जाते हो। भगवान् सीमन्धर स्वामी विदेह में विराजते हैं उनके कैवल्य कैमरे में तेरे प्रतिक्षण की पर्याय झलक रही है तुझे कितना सावधान बैठना चाहिये कि भगवान् के कैमरे में विपरीत पर्याय न झलक जाये। इस कैमरे से क्या प्रयोजन पुद्गल में पुद्गल का परिणमन चल रहा है। चौबीस घण्टे सावधान रहना पड़ेगा। कोई नियम मत लेना मात्र इतना नियम ले लेना कि मेरा चित्र प्रभु के कैवल्य में विपरीत न झलके।

ज्ञानियो! दो से छिप कर कभी नहीं रह सकते हो एक स्वयं से दूसरे स्वयं-भू से। स्वयं से छिपकर नहीं रह सकते हो और स्वयंभू से छिपकर नहीं रह सकते हो। मायाचारी दूसरों के साथ कर सकते हो लेकिन स्वयं से कोई मायाचारी चलती नहीं है। आज तब किसी व्यक्ति ने छिप कर कोई पाप नहीं किया। सम्हल कर सुनना यह जैन दर्शन का तत्त्व है।

बहुतों ने उसे छुपा कर रखा, उजागर नहीं किया प्रकट नहीं किया। जगत् की लीला, जगत् के प्रपञ्च ये जिन प्रवचन नहीं हैं। आज तक किसी व्यक्ति ने छिप कर पाप नहीं किया, अज्ञानता में पाप नहीं किया तुम्हारी भाषा है अज्ञानता में पाप किया अज्ञानता में पाप किया ही नहीं है। युवाओ सम्हल कर सुनना धर्म की बागडोर तुम्हारे हाथ में है।

सत्यता यह है जैसे बाजे बजते हैं वैसे पैर थिरकते हैं। इस बात को स्वीकारना पड़ेगा। एक घोड़े के नृत्य को देखा जैसा बाजा बज रहा था वैसे उसके पैर थिरक रहे थे। कालिया नाग को नाचते देखा जैसी बीन बज रही थी वैसा उसका फन चल रहा था। जैसे बाजे बजाये जायेंगे नाचने वाला वैसा ही नृत्य करेगा। तुम समयसार

सुनाओगे, तो सब शान्त बैठ जायेंगे। वस्तु स्वरूप पर भी लक्ष्यपात करो। मेरे मित्र यही समझ में आ जाये जो है सो है। फिर तो जगत् में इससे बड़ा कोई उपदेश ही नहीं है। जगत् में कोई जीव अज्ञानता से पाप नहीं करता इस बात को लोग बहुत कम कहते हैं और धीरे से कहते हैं अज्ञानता में कर लिया। अशुभ करने से पूर्व इस जीव ने गेट बन्द किये यह ज्ञान था कि नहीं? चोखे पाँच रुपये की वस्तु को पचास में बेंच रहा है यह ज्ञान था कि नहीं? चोखे में खोटा मिलाया है यह ज्ञान से मिलाया कि अज्ञान से? पिता से फीस के पैसे माँगे थे और सिनेमा हाल में बैठा मिला जान कर किया था कि अज्ञानता से? कितने बार तू झूठ बोल चुका है अपना काम निकालने के लिये ये ज्ञान से किया था कि अज्ञानता से किया था? ज्ञानी बन कर अज्ञानी बन रहा है। ज्ञान तेरे अन्दर लबालब भरा था उस ज्ञान का दुरुपयोग किया है कैसे किया है? जैसे एक कलश में पानी भरकर ले जाता है और श्री जी के सिर पर ढारें करता है तो वह पानी गंधोदक बन जाता है और सुबह से संडास में ले जाये तो वह पानी मल के रूप में बन जाता है। जल से अभिषेक जिनदेव का करो और ज्ञान से अभिषेक निजदेव का कर ले। कुये के शुद्ध पानी से जिनदेव का अभिषेक करो भगवान् के कैवल्य ज्योति की जो दिव्य ध्वनि खिरी है उससे आये श्रुतज्ञान से निजनाथ का अभिषेक करो। **भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक पानी से हो सकता है लेकिन पानी से भगवान् नहीं बना जा सकता, भगवान् बनने के लिये सच्ची वीतरागी जिनवाणी चाहिये।** समझ में आ रहा है? अब बताओ गल्ती किसने की है, ज्ञान में की है कि अज्ञानता में की है? जान कर की है। तो बन्ध होगा कि नहीं? होगा। जब बन्ध होगा तो उदय में आयेगा कि नहीं? आयेगा। तो बिलखना पड़ेगा कि नहीं? पड़ेगा। फिर ऐसा क्यों कर रहे हो जिससे बिलखना पड़े। एक पर्याय पाप करेगी दूसरी पर्याय को भोगना पड़ेगा, परन्तु जीव वहीं होगा। उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्। सद्द्रव्यलक्षणं। द्रव्य का लक्षण सत् और जो उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त है वह सत् है। यहाँ आचार्य कुलभद्र स्वामी सार समुच्चय जी ग्रन्थ में कह रहे हैं कि हे जीव! अज्ञानता-अज्ञानता कहते-कहते अनन्त भव निकल गये, जिस दिन आप कह दोगे कि मैंने अज्ञानता में पाप नहीं किया, मैंने जान कर पाप किया है उस दिन तू पाप से दूर होने का

पुरुषार्थ करेगा। जो कहता है कि -

क्या करूँ महाराज! अज्ञानता में पाप हो गया। मेरे मित्र! ये मायाचार है और 'मायातैर्यग्योनस्य' मायाचारी की तो तिर्यञ्च गति में प्रवेश करना पड़ेगा। उसको विशुद्ध सागर क्या तीर्थंकर महावीर भी रोक नहीं पायेंगे। कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है। परमात्मा न किसी को नरक भेजता है, न स्वर्ग भेजता है, न देव बनाता है, न नारकी बनाता है, न तिर्यञ्च बनाता है, न मनुष्य बनाता है। जैसा परिणामों का परिणमन होता है वैसी गति प्राप्त हो जाती है। इस ध्रुव सत्य को कौन टाल सकता है? वह विषय अलग है कि समझ में नहीं आया था, वह विषय अलग है कि सुनने में नहीं आया था। यह ध्रुव सत्य है जिनवाणी कठिन होती नहीं है और हर जीव को जिनवाणी सुनना आती है। आगम कठिन नहीं है, हर जीव को शास्त्र समझ में आता है। लेकिन क्या करें अपने दोष को दूसरे पर डालने की आदत जीव को अनादि से है। यदि मार्ग में काँटा पड़ा हो और किसी ज्ञानी को वह काँटा लग जाये, तो वह अपरिचित काँटे को गाली देगा। उस ज्ञानी से पूछना तू क्यों भाव बिगाड़ रहा है तू क्यों वाणी बिगाड़ रहा है तू ही आँखों से देखकर चलता तो काँटा क्यों लगता? कण-कण में, प्रदेश-प्रदेश पर बन्ध के स्थान हैं। बन्ध वस्तु में नहीं, बन्ध प्रदेश में नहीं, बन्ध तेरे भावों में है। सोच बदल दो। काँटे में दोष नहीं था। तुम काँटे को दोष अवश्य दे रहे हो। काँटे का धर्म चुभना है उसने चुभन ही तो किया है उसने अपना धर्म नहीं छोड़ा तुम्हारा धर्म क्षमा है तुमने अपना धर्म छोड़ दिया। काँटा चुभे न तो वह काँटा कैसा? हे मनुष्य! तू मानवता से युक्त नहीं तो तू मनुष्य किस काम का? आपने काँटे को गाली देकर बन्ध किया है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जगत् का कोई भी द्रव्य किसी को कष्ट देता नहीं है। तुमने दूसरे पर टालना सीखा सो काँटे को गाली दे दी। ऐसा जीव जब अशुभ करके आता है ईश्वरवादी परमात्मा पर छोड़ देता है। प्रभु की कृपासे सब काम हो गया। एक कहता है पुद्गल का परिणमन पुद्गल में हो रहा है एक

अज्ञानी कह रहा है पर सम्बन्ध से हो गया परन्तु हे मित्र! ये सब अपनी कमी को छुपाने की आदतें हैं। शक्ति है तो जो अज्ञानता से प्रयोग करके तुम अपनी पुष्टि करना चाहते हो कि मैं तो नहीं करता था अज्ञानता शब्द का प्रयोग कर रहे हो वह अज्ञानता है किसमें? आपने दोष अज्ञानता से किया हो वह अज्ञानता है किसमें? आपने दोष अज्ञानता से किया है ये जाना कैसे? ज्ञान। सीधा बोलो जान कर अज्ञानता की है।

एक वह जीव है जिसको सोचने समझने का विचार आता है। एक बालक गुलेल बना रहा था, एक विष बना रहा है एक अपने घर में चूहे का पिंजरा रख रहा है। माताओ! किञ्चित् भी तुम्हारे मन में माँ पना हो तो जिनके घर में चूहे के पिंजड़े रखे हुये हों वे आज ही तोड़कर फेंकना। कोई भी चूहा इतना अज्ञानी नहीं है कि रोड़ पर मरने आयेगा। रोड़ पर जितने भी चूहे मरे मिलते हैं वे आप लोगों के द्वारा ही छोड़ गये चूहे होते हैं। **माँ बनने के लिये रो रही हो, पिता बनने के लिये बिलख रहे हो याद करो चूहे की माँ को तुमने रोड़ पर छोड़ दिया था उसके लाल-लाल बच्चे चीं-चीं करके विलख कर मर गये उनकी आहें तुम्हें लगीं** और तुम्हारे घर वे जीव नहीं थे क्या? पुण्य नहीं होता तो तुम्हारे घर में जन्म लेते ही क्यों? जिनका पुण्य होता है वे गरीब के घर में जन्म लेते हैं क्या? तीर्थंकर वर्द्धमान की अहिंसा को समझो, अपने स्वार्थों से धर्म नहीं चलता है। एक बालक गुलेल बनाकर खेल रहा है एक वो बच्चा जो भगवान् की प्रतिमा के साथ खेल रहा है, एक वो बालक जो झाड़ू लेकरके कपड़े उतारकरके माँ से कह रहा है मेरा पड़गाहन करो मैं महाराज हूँ। जो खेल भी रहा है तो मुनि बनकर खेल रहा है। गोम्मटसार में आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी कह रहे हैं जिस जीव के विष, कूट, पंचर बनाने के परिणाम हो रहे हैं उसका कुमति ज्ञान काम कर रहा है, कुश्रुत काम कर रहा है। जो जिन कुल में जन्मा बालक यूँ कहे दादा अच्छे से बैठो चींटी जा रही है यह कुल की प्रत्यासत्ति है, कुल का प्रभाव है। वंश का प्रभाव है कि जिस कुल में जन्मा उस कुल में जीवों की रक्षा की जाती है। अपने बेटे से इतना कह

कर रखना मेरे लाल इतना ध्यान रखना मेरे कुल में जिन बिम्ब का अभिषेक होता है, गुरुओं को दान दिया जाता है, गुरुओं की वाणी सुनी जाती है इन तीन कामों से मुझे दूर मत करा देना। ऐसा काम मत कर बैठना।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं तूने अज्ञानता में कोई पाप नहीं किया। सत्यता यह है अशुभ परिणति को अज्ञान कह दिया है, मिथ्या परिणति को अज्ञान कह दिया है, असंयम परिणति को अज्ञान कहा गया है, प्रमादता को अज्ञान कहा है, परन्तु तूने ये सब कुछ किया है जान कर किया है। आज से कम से कम इतना तो मान लो। न माता-पिता को दोष दो न अन्य किसी को दोष दो। ज्ञानी कह रहा है माता-पिता ने जबरदस्ती शादी कर दी है, ये झूठी भाषा मत बोलना। घोड़े पर माता-पिता चढ़ने नहीं गये थे, तू स्वयं चढ़ा था। माता-पिता शादी करवाने की ताकत रखते होते तो नेमिनाथ स्वामी के माता-पिता शादी क्यों नहीं करवा पाये?

क्या करूँ महाराज वैराग्य तो होता है, लेकिन घर में कोई नहीं है। सीधी-सीधी बोलो भीतर का वैराग्य नहीं है। जिनको वैराग्य होता है।

कोटि अट्ठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी। तेरे घर में तो वह भी नहीं है जो ईंटें ढोता है। जब वैराग्य हो जाता है तो चक्रवर्ती भी इतनी सम्पत्ति छोड़ कर चल देता है और आप कह रहे हो क्या करूँ घर की व्यवस्था कौन देखेगा? घर है किसका? जो मेरा है नहीं उसे छोड़ना क्या? जो मेरा है उसे छोड़ना क्या? वैरागी कुछ भी छोड़कर नहीं जाता। वैरागी कुछ भी लेकर नहीं जाता।

महाराज! जब तक व्यवहार की बातें नहीं बोलोगे तब तक समझ में कैसे आयेगा? जिस विषय को अनन्त बार सुना उस व्यवहार को सुनने की क्या आवश्यकता? जिसको कभी नहीं सुना उस परमार्थ को सुनने की आवश्यकता है। समयसार बैठ कर सुन रहे हैं इसका तात्पर्य है अपनी बात सबको सुहावनी लगती है। पर की बातें सुनकर हँस सकते हो, अपनी बात सुन कर मुस्कराहट आती है। ऐसा ही है।

जिनके पास पैसा न हो वे आज से रोना बन्द कर दें, तुमसे बड़ा अहो भाग्यशाली

कौन होगा? जिनके पास फूटी कोड़ी नहीं है। करोड़पति को छोड़ने के लिये सोचना पड़ता है किसको सौपूँ? कैसे जाऊँ? जिसके पास कुछ नहीं है उसे कुछ छोड़ना ही नहीं है।

जब मैं कुछ लेकर आया नहीं हूँ तो लेकर जाऊँगा क्या? ज्ञानी जीव वैरागी कुछ भी छोड़कर नहीं आता उसको मालूम रहता है जब मैंने स्वीकार किया ही नहीं है तो छोडूँ क्या? जो मेरा है नहीं, क्या छोडूँ किसको सोंपूँ? **उसे धिक्कार हो जो पर की व्यवस्था में स्वयं को अनवस्थित कर रहा है।** निज में व्यवस्थित होते हुये जगत् में किसी व्यवस्था को नहीं चाहता यदि वैराग्य हो रहा हो तो, पर वस्तुओं को छोड़ने मत जाना, चले जाना छोड़ सको तो छोड़ देना। **मुमुक्षु! एक महीने का उपवास करना सरल है, जीवन पर्यन्त नीरस भोजन करना सरल है, भोजन छोड़ देना सरल है, परन्तु भीतर के कामादिक विकारों को छोड़ देना कठिन है।** जो तेरी वस्तु है उसे छोड़ पर वस्तु को क्या छोड़ते हो? मेरा नाम, मेरी पूजा, मेरा यश इनसे दूर होना सीखो। जेब से एक करोड़ निकालना कठिन नहीं है, लेकिन एक करोड़ का पटिया नहीं लगवाना कठिन है। जैसे यहाँ शान्त बैठे हो वैसे चौबीस घण्टे शान्त रहने लग जाओ तो विश्वास रखना मोक्ष तुम्हारी मुट्ठी में है। अरबोंखरबों का धन लुटा करके मन्दिर तो खरीदे जा सकते हैं, परन्तु अरबों-खरबों का पैसा लगा करके शान्ति नहीं खरीदी जा सकती है। मैं दरिद्री हूँ, जो निज के वैभव को नहीं जान पाया वह पर वैभव को वैभव कहता है।

निज वैभव को निहारोगे तब वे-भव बन पाओगे। इसलिये आज से साधुओं के पास जाने की दृष्टि को बदल देना, तीर्थों में जाने की दृष्टि को बदल देना मात्र कर्म क्षय के लिये जाना कर्म लेने के लिये मत जाना। जयवन्त हों सोनागिरि के चन्द्रप्रभ स्वामी। मैं सोच रहा था। क्या रहस्य है इस मिट्टी पर लोगों को वैराग्य क्यों होता है? भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी का समोशरण सोनागिर में सोलह बार आया नंग अनंग कुमार दोनों सगे भाई थे, वे राजकुमार पिता से अनुमति लेते हैं अहो तात्! मैं चन्द्रप्रभ स्वामी के समवशरण में वन्दना करने जा रहा हूँ। धन्य हो, गये

थे वन्दना करने वन्दनीय बन कर बैठ गये। समवशरण में मानस्तम्भ को देखते ही दोनों बालकों ने केश लुंचन कर लिये। ज्ञानियो! अपने आप को गरीब मत कहो, अपनेआप को गरीब मत मानो। आज से नियम ले लो, आज से यह भावना मन में आनी ही नहीं चाहिये। आत्मा का महान् शत्रु हीन भावना है, जीवन को पतित करवाने वाली हीन भावना है, हीन भावना नहीं रखनी चाहिये। कपड़े न बचें तब भी मुस्कराना कि ये ही तेरा धर्म है। तू कह रहा है कि मैं अमीर, तू अमीर है कहाँ? वह धन पर वस्तु है और पर वस्तु को अपनी वस्तु मान रहा है यह अज्ञानता है।

यहाँ कारिका में कह रहे हैं हाय-हाय करने से मिलने वाला कुछ भी नहीं है। इतना समय हो गया तब भी विचारे सम्हल नहीं रहे हैं, सात दिन के अन्दर-अन्दर सबके समय हो जायेंगे। तुम दो के कारण दुखी हो, **कुछ भूत के लिये रो रहे हैं कुछ भविष्य के लिये रो रहे हैं और अपने वर्तमान को ही खो रहे हैं।** इसलिये रो रहे हैं कि ऐसे मेरे थे, ऐसे मेरे थे, ऐसा मैं था। दादा जी से पूछो आपका युवावस्था का लावण्य कहाँ गया क्या, आपने दूध नहीं पिया? क्या आपने घी नहीं खाया? सब कुछ किया है, चाहे जितना घी खालो, चाहे जितना दूध पी लो, परन्तु वस्तु के परिणमन को कोई बदलने वाला नहीं है। हे जीव! सब कुछ चला गया। रूप भी गया, सुन्दरता विलीन हो जाती है। तुमने श्रृंगार किया है, तुमने पर के लिये परिणमन किया है। निज के श्रृंगार को खो करके पर का श्रृंगार किया है। मैं गरीब हूँ, नहीं हो गरीब। मैं भिखारी हूँ, नहीं हो तुम भिखारी। यदि विकारी नहीं हो, तो जगत् में कोई भिखारी हो ही नहीं सकता है। **भिखारी वे ही होते हैं जो विकारी होते हैं। जो विकार छोड़ करके कपड़े भी उतारकर नंगे बैठ जाते हैं वे न विकारी, न भिखारी वे भिक्षु होते हैं, दिगम्बर मुनि होते हैं। ये मुनि गरीब लोग नहीं हैं, ये अमीर भी नहीं हैं, तो क्या हैं? जो है सो है। यदि कोई ईश्वर है, धनपति है तो जिसके पास संतोष है वही धनपति है, जिसके पास संतोष नहीं है वह हर समय दुखी रहेगा। संतोष नहीं है तो सारा जगत् घर में आ जाये**

तब भी दुख है। संतोष है तो रोड़ पर खड़े होने पर भी आनन्द है। जो है सो है।

बेटा! आज माँ कहे तू कुछ कमा नहीं रहा है तो धीरे से कह देना माँ 'ईश्वरो नाम संतोषी' **जिसके पास संतोष है वही ईश्वर है जिसके पास संतोष नहीं है वही निर्धन है।** श्रेष्ठ पुरुष वही है कि घर में कुछ खाने को न मिले तो पानी पीकर सो जाना और पानी भी न मिले तो णमोकार पढ़ते-पढ़ते सो जाना, लेकिन दूसरे के घर में ये मत कहना कि दे दो, माँगने कभी नहीं जाना और ससुराल में तो कभी माँगने चले मत जाना। जो किसी से माँगता है वही दरिद्र है, वही गरीब है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

तृष्णा जलाती है

हृदयं दह्यतेऽत्यर्थं तृष्णाग्नि परितापितं।
न शक्यं शमनं कर्तुं बिना सन्तोष वारिणा॥ सा. स. 245॥

अन्वयार्थ—तृष्णाग्नि परितापितं = तृष्णा की आग से पीड़ित **हृदयं** = मन **अत्यर्थं दह्यते** = अतिशय करके जला करता है। **संतोषवारिणा बिना** = संतोषरूपी जल के बिना **शमनं कर्तुं न शक्यं** = उस जलन का शमन नहीं किया जा सकता।

भावार्थ—हे ज्ञानी! तृष्णारूपी अग्नि से हृदय अत्यन्त जलता रहता है। उस जलन का शमन करना सन्तोष रूपी पानी के बिना शक्य नहीं है।

॥ सद्-देशना ॥

भगवान् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में कह रह हैं जीवन में सन्तोष मंगलकारी है और अमंगलकारी तृष्णा है। आज तक किसी पर द्रव्य ने तेरा अमंगल किया ही नहीं है। लोक में कोई अमंगलभूत द्रव्य है ही नहीं है। यदि अमंगलभूत द्रव्य हो जायेगा तो तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं का क्या होगा? जीव की दृष्टि देखो अपने स्वार्थों के पीछे कितनों को अमंगलभूत कर दिया।

किसी जीव की दीपावली के दिन आयु कर्मकी पूर्ति हो जाये तो आप कहते हो दीपावली मनाना बन्द कर दिया। वह खोटी कैसे हो गई? मेरे घर अमंगल हो गया। आपको मालूम होना चाहिये है यदि दीपावली के दिन मृत्यु होने में अमंगल होता तो जैन दर्शन के अन्तिम तीर्थंकर का निर्वाण उसी दिन हुआ था वह मंगल कैसे? जिस महोत्सव को सौधर्म इन्द्र मनाने आया हो, तीनों लोकों में आनन्द की लहरें दौड़ रही हों, उस दिन को तुम अमंगलभूत कह रहे हो, वह जीव कितना पुण्यात्मा था जिस दिन भगवान् वर्द्धमान ने निर्वाण को प्राप्त किया है उस दिन उसने आयु कर्म को पूर्ण किया है। इसलिये जिनके घरों में दीपावली बन्द हो गई हो। वे प्रारम्भ कर देना इस मिथ्यात्व को निकालो। अमंगल हो गया अन्दर का विषय बोलो महाराज जिससे मेरी राग की पूर्ति हो रही थी वह चला गया, इसलिये

अमंगल हो गया बाकी मंगल ही मंगल है। कितने लोगों को तुम अशुभ दृष्टि से देख रह हो वह अमंगल नहीं है तेरी दृष्टि को भी देख रहे हो वह अमंगल नहीं है तेरी दृष्टि अमंगल है। जिसने अशुभ दृष्टि से तीर्थंकर भगवान् को भी देखा उसका भी अमंगल ही है। एक पुरुष ने कलश को देखा उसका चि त्त प्रसन्न हो गया उसके लिये वह मिट्टी पानी मंगल हो गया सत्यता यह है कि प्यासे की प्यास बुझती है। तुम्हारी दृष्टि पवित्र हो गई है, इसलिये मंगलभूत है। वस्तु में अमंगल नहीं, वस्तु में मंगल नहीं वस्तु तो वस्तु है, वस्तु धर्म को आप लोगों ने बन्द कमरे में रखा है, जबकि जैन दर्शन विश्व धर्म की योग्यता रखता है। ये काल का दोष है कि श्री पर दृष्टि रहती है श्री जी पर दृष्टि नहीं है। श्री जी के पास भी पहुँचेंगे तो लक्ष्य रहता है कि श्री की प्राप्ति कैसे हो? श्री से श्री नहीं मिलती है, श्री से श्रेय भी नहीं मिलता है इस भ्रम को आज से टाल देना। श्री और श्रेय दोनों नि:श्रेयस को प्राप्त हुये परमात्मा की आराधना से मिलते हैं।

मंगल कौन है, अमंगल कौन है? जिसका पति शान्त हो चुका है ऐसे बेटे की माँ आपको दिख जाये तो चेहरा बनाना प्रारम्भ कर देते हो, वह माँ आपको बहुत बड़ी शिक्षा देने आयी थी जिसका पति अपनी आयु पूर्ण कर चुका है उस माँ को देख कर भी अशुभ मत सोचना। जीव द्रव्य को देखो। इसमें उसका क्या दोष, लेकिन इतना ध्यान रखना जिसको देखकर तुम नाक सिकोड़ रहे हो उस जीव ने कभी किसी को देखकर नाक सिकोड़ी थी उसका परिणाम दृष्टि गोचर हो रहा है। कहाँ शाश्वत धर्म? लोक में ऐसा कोई धर्म नहीं मिलेगा। परमात्मा के नाम पर टिका हुआ है। बहिरात्मा ही अन्तरात्मा बनती है, अन्तरात्मा ही परमात्मा बनता है सम्पूर्ण द्रव्य का परिणमन निज पुरुषार्थ में है।

पदार्थ को देखकरके द्वेष अमंगलभूत तेरा भाव, काँच को देखकरके द्वेष अमंगलभूत तेरा भाव, नाक को देखकरके द्वेष अमंगलभूत तेरा भाव, स्थापना को देखकरके द्वेष अमंगलभूत। भाव प्रकृति के परिणमन को देख, प्रकृति को देखिये प्रकृति प्रकृति करना है तो।

शीत का मौसम आते ही आप ठिठुरने लगते हो मौसम का धर्म ऐसा है। उसमें द्वेष कर रहे हो ये तेरे भीतर का मौसम बिगड़ गया है। एक प्रकार का संतोष नहीं है जितने प्रकार का असंतोष भाव है उतने प्रकार का संतोष भाव है इस व्याख्या की आवश्यकता है। बेटा पिता से असंतुष्ट है, उसको आपसे असंतोष था उसके बारे में पड़ौस में चर्चा करने मत जाइये। खून आपका है, वीर्य आपका है। आप समझदार पुरुष से बेटे की शिकायत करने जाओगे तो वह कहेगा तेरा पुत्र नहीं है क्या? अपनी हँसी अपने मुख से कराना हो तो चले जाना। अपने बेटे की शिकायत पड़ौस में करने जा रहे हो इसका तात्पर्य समझो। बीज जैसा होगा फल का स्वाद भी वैसा होगा आप अपनी सोचो मैं कैसा हूँ। बेटा आपसे असन्तुष्ट है तो उसकी शिकायत करने मत जाइये आप तो यह खोजिये बेटा तेरे से असन्तुष्ट है क्यों? जो असन्तुष्ट है वह हिंसक है।यदि तेरी आवाज से, आपके किसी कार्य से, आपके व्यवहार से किसी को क्लेश हो रहा है और आपको मालूम है कि मेरे कारण इस जीव को क्लेश हो रहा है। मेरे मित्र! स्व की भी हिंसा कर रहा है पर की भी हिंसा कर रहा है। इस पर्याय में कोई प्राण माँगने आ जाये तो यहाँ हजार लोग उसे बचाने खड़े हो जायेंगे।

यहाँ जैन दर्शन की आन्तरिक विद्या है इस विद्या को समझ लो बहुत लम्बा समय हो रहा है, ताली बजा करके, कान खुजा करके चेहरे को खुश करबा लेना बहुत सरल है इसको तो नट भी करा सकते थे, लेकिन आत्मा को आह्लादित करने वाली मात्र जिनवाणी है।

माँ! तुम कितनी बार अपने पति की हत्या कर चुकी हो, तुमको अपने सासू के बेटे पर करुणा नहीं आती। वह विचारा कमा कर लाया था और तुमने पेंट की जेब से पैसे निकाल कर छुपा कर रख लिये, ऐसा नहीं किया क्या? यदि किया है, वह विचारा तड़फ रहा था। कहाँ गये, कहाँ गये कहाँ गये? उसकी वेदना को तुम मशीन लगा कर देखतीं, केवली से पूछने जातीं तब मालूम चलता कि ओ हो! जिसने तुम्हारे लिये पूरा जीवन सौंप दिया तुमने उसके साथ भी छल किया।

अन्तिम श्वांस निकलने के पहले सब प्रायश्चित लेकर जाना क्या इससे बन्ध नहीं होगा? होगा। यदि जैन हो कर्म सिद्धान्त को मानते हो तो पर के घर में डाका डालने पर जो पाप का बन्ध होगा वही पाप का बन्ध पति की जेब से पैसा निकालने पर भी होगा।

बिचारों को देखकर के तुम मुस्करा करे हो, परन्तु डाका डालना सिखाया किसने? तुम निकाल कर दे देते तो वे बिचारे डाका डालना न सीखते तुम्हें देखकर के सन्तान भी चोरी करना सीखती है।

पर के बाणों से रक्षा करने वाले कोटि-कोटि जीव मिल जायेंगे, परन्तु निज के भावों बाणों से निज की रक्षा करने वाला कोई नहीं मिलेगा। किञ्चित् कोई भी विकल्प आता है मैं मर जाऊँ भय आ गया ऐसे बुरे भाव हो जायें। हजारों वर्षों की तपस्या का जो परिणाम था उसे एक क्षण में नष्ट कर दिया। निज के भावों की रक्षा करना सीखो। जिसने भावों की रक्षा करना सीख लिया उससे पर जीवों की रक्षा हो जायेगी। निज के भाव बिगाड़े बिना, पर के भव नष्ट करने के विचार होते ही नहीं हैं। जीव को जीव मानना, जीव को तत्त्व स्वीकारना। तद्जन्य पर्याय को देखते हैं और परिणाम खराब कर लेते हैं, पर्याय को मत देखो पर्यायी देखो। जितने नष्ट हुये हैं, हो रहे हैं, होंगे पर्याय को देखकर ही हो रहे हैं। पाउडर क्रीम लगाने वाले महा-पापी जीव हैं, यदि तूने पाउडर भी अपने गाल पर लगाया तो तू महापापी जीव है। माताओ! सम्हल कर सुनना। बाजार में श्रृंगार करके घूम रहे हैं ये घोर पापी लोग हैं। क्यों? स्वयं के लिये श्रृंगार करता ही नहीं है बताओ किस जंगल में लोगों ने अपने फँसाने के लिये जाल फैलाया वह तो निरीह खरगोस, मृग को फँसाने के लिये जाल फैलाते हो। ऐसे ही दूसरे के शील रूपी व्रत को नष्ट करने के लिये गालों पर पाउडर का जाल फैलाया है कि इस जाल में फँस जाये और मेरे चेहरे को देखकर के अपने शील को प्राण नष्ट कर ले इसलिये सब श्रृंगार करके घूमते हैं। नाटक मंच पर सज कर किसके लिये आता है? अपनी आँख से अपने चेहरे को देखने के लिये? अपनी आँख से अपने चेहरे को बिना दर्पण के किसने देखा? नहीं देखा। तो मात्र अपना चेहरा सजाया गया है दूसरे

की आँखों को नष्ट करने के लिये। समझना तो पड़ेगा शील लाना ही पड़ेगा।

मित्र! धर्म का रागद्वेष भी आ रहा है तब भी तू हिंसक है। धर्म में राग होता ही नहीं है, राग धर्म होता ही नहीं है, धर्म तो वस्तु स्वभाव है। तेरा धर्म ज्ञान दर्शन है। उस धर्म से दूर हो करके कितने भेद करके आप बैठ गये हो, घर-घर में चूल्हे बनाकर बैठ गये हो। इस शरीर से निकलने के पहले कोई बहू लक्ष्मी बुलाओ जो सब चूल्हे फोड़ दे। एक घर में नौ सदस्य रहते थे वे नौ चूल्हे रखे हुये थे सब अपने-अपने चने लेकर आये सेंक लें, खा लें और सो जायें। सुबह उठकर फिर काम पर चल दें। ज्येष्ठ बेटे की शादी हुई, लेकिन विदाई नहीं कराई। क्या करेगी बहू हम तो नौ के नौ ही कमाते हैं उसको कौन खिलाये।

कभी-कभी अड़ौस-पड़ौस के लोग भी काम में आते हैं। वे कह रहे थे बेटे की शादी हुये दो साल हो रहे हैं आपने आज तक विदा नहीं कराई आप विदा तो करा लेते। उन्होंने बैठ कर विचार किया चलो एक बार तो बुला लो। उनने कहा बुलातो लो, लेकिन पूरे मकान में राख ही राख भरी है चूल्हे ही चूल्हे हैं और कुछ है ही नहीं है। ऐसा करो पड़ौसी के यहाँ ठहरा देना। बहू को पड़ौसी के यहाँ रोक दिया गया। वे नौ के नौ अपने काम पर चले गये।

व्यक्ति पचा नहीं पाता। **बादाम का हलुआ पचाना सरल है, लेकिन भीतर की भावनाओं को भीतर रख पाना बहुत कठिन है।** आचार्यों के पास पचाने वाला गुण होता है। जिस आचार्य के पास यह गुण नहीं है उस आचार्य के पास जाना ही नहीं चाहिये। इतने सारे शिष्य हैं, समाज है सबकी सुनलो और भीतर रख लो। वैद्य-डाक्टर और गुरु इन लोगों के अन्दर बहुत आवश्यक है। जो विषय आप माँ, पिता, पत्नि को नहीं बताते हो ऐसे रोग आ जाते हैं, लेकिन डाक्टर से सलाह लेने आते हो। डाक्टर से छुपा लोगे तो असमय में ऊपर चले जाओगे। कहीं डाक्टर ने सबके सामने प्रकट कर दिया तो उस डाक्टर की डाक्टरी भी समाप्त हो जायेगी। वैद्य के अन्दर यह गुण होना चाहिये कि किसी के रोग को किसी दूसरे को न बताये और गुरु के पास वह गुण होना चाहिये कि किसी शिष्य की बात को दूसरे शिष्य को न बतायें इसका नाम है पाचन शक्ति। एक-एक से कहने

बैठ गया और कह रहा है किसी से कहना मत आपसे ही कह रहा हूँ जब किसी से कहना ही नहीं है तो मुझसे क्यों कह रहा है। आचार्य का गुण होता है हर प्रकार की बात को पचा लेना, पाचन शक्ति का गुण आवश्यक है। जिसके अन्दर पाचन शक्ति नहीं है उसको जीवन में न वैद्य बनना चाहिये न आचार्य बनना चाहिये। अपनी योग्यता स्वयं निहारना चाहिये। **क्षमता विहीन व्यक्ति यदि पद को स्वीकार कर लेगा तो जिन शासन की हँसी उड़ायेगा।** हाथी की पीठ का वजन ईटें ढोने वाले गधे पर रखोगे तो वह चिल्लाने लगता है, अच्छा है कम-से-कम वह असमर्थता व्यक्त कर रहा है यह वजन मेरे ऊपर मत रखिये। ऐसे ही कोई महान् पद को किसी असमर्थ पुरुष को दे रहा हो तो उसे चिल्लाने लग जाना चाहिये ये मैं नहीं झेल सकता हूँ, मेरे अन्दर क्षमता नहीं है ये पद महान् है। गाम्भीर्य और गहराई ये दो अनिवार्य हैं, ये बच्चों का खेल नहीं है।

वे नौ के नौ काम करने चले गये। जिसके घर में बहू रुकी हुई थी उसके अन्दर पाचन शक्ति नहीं थी उस बहू को उसने अच्छा भोजन कराया, लेकिन बेटी तुम धोके में मत रहना। क्यों? यह तुम्हारा घर नहीं है छत पर चलो मैं दिखाती हूँ तुम्हारा घर कैसा है? वह जो राख उड़ रही है वह है मेरी झोपड़ी। बहू कहती है माँ मैं वहीं जाना चाहती हूँ आप मुझे शीघ्र वहाँ भेज दो। वह कहती है बहू वहाँ क्या करोगी? आप मुझे वहीं भेज दो आखिर में मुझे वहीं जाना पड़ेगा। बहू चली गई कम से कम सत्य का बोध तो हो गया। उसने पहले राख हटाई दो चार नमक की डली मिलीं, कुछ चने पड़े हुये थे उन चनों को इकट्ठा किया और पड़ौस से जाकर पीस लाई। और फिर उसने आठ चूल्हे फोड़ डाले, परन्तु नियोग देखो एक चूल्हा बचा वह उसके पति का निकला। उसने उसमें कढ़ी रोटी बनाई। पानी भर कर रख लिया। वे अभागे काम करके आये। ससुर चिल्लाता है हम भूखे तो आये हैं अब कहाँ चने सेकें बहू ने तो पहले ही दिन सारे चूल्हे फोड़ डाले। सारे बेटे चिल्लाने लगे बहू का पति शान्त बैठा अब अपनी गलती पर शांत बैठना ही पड़ता है। दूसरा भैया कहता है कि कितनी चतुर आयी है अपने पति का चूल्हा बचा लिया सबके फोड़ दिये। बहू हाथ जोड़ती है सास-ससुर के पैर पड़ती है

कहती है पिताजी! इन चूल्हों का निपटारा तो हम बाद में कर लेंगे पहले आप हाथ पैर धोकर के शुद्धि करो और भोजन तैयार है भोजन करो। जिसने वर्षों से नमक चने फाँके हों? जब नौ के नौ भोजन करने बैठे तो अँगुलियाँ चाँट रहे थे जैसे बिचारों ने कभी भोजन ही न किया हो। जब सबके पेट भर गये। कोई गुस्सा में भी आये तो उससे कहना पहले भोजन पानी कर, तो आधा गुस्सा तो वैसे ही शान्त हो जायेगा। जब भोजन करके नौ के नौ तैयार हुये तब ससुर कहता है हम लोग कहाँ भ्रम में रहे इतने दिन तक सूखे चने चबाते रहे बहू को बुलाकर क्यों नहीं लाये? ये तो बहू लक्ष्मी है। अब उनको लक्ष्मी दिखना प्रारम्भ हो गई। पूरे परिवार का माहौल परिवर्तित हो गया, नौ चूल्हे पर खाने वाले एक चूल्हे में बैठ गये वह भी उसके पति का चूल्हा। मित्रो! जितने चूल्हे तुम बना कर रखे हो उनको तोड़ कर फेंक दो एक मात्र अरहन्त भगवान् महावीर हैं उनका चूल्हा रहने दो बाकी सब चूल्हे तोड़ कर फेंक दो। कोई बहू लक्ष्मी को बुलाकर लाओ। मैं इस ग्रुप में, उस ग्रुप में कुछ नहीं एक मात्र अखण्ड दिगम्बर जैन समाज। श्रमण संस्कृति जयवन्त हो। एक बहू लक्ष्मी को लेकर आओ और सारे चूल्हे फोड़ दो। तुम्हारी पहचान मात्र तीर्थंकर महावीर स्वामी। जिनवाणी के रहस्यों को समझो।

लोगों ने निज के चर्म की प्रशंसा के लिये अचर्म धर्म को भुला दिया। अपने चर्म की पहचान दिखाने के लिये अचरम धर्म को भुला दिया। कुछ भी हो आप तो मेरा नाम लो तुम तो कुछ भी करो, ऐसे रागी-द्वेषी जीवों से आत्माकी रक्षा करना। ध्रुव सत्य ये है आप लोग समझ नहीं रहे हो। मैं आपको समझाने भी नहीं आया हूँ। सुधारने भी नहीं आया हूँ, समझाने आऊँगा तो कर्ता बन जाऊँगा। सुधारने आऊँगा तो कर्त्ता बन जाऊँगा तुम नहीं सुधरोगे तो मेरे परिणाम खराब होंगे। मैं तो मात्र आपको तत्त्व की बात बताने आया हूँ सुधरना न सुधरना, मारीचि की पर्याय में महावीर स्वामी को ऋषभदेव नहीं सुधार पाये और महावीर स्वामी हमें नहीं सुधार पाये, तो हम तुम्हें क्या सुधार पायेंगे। सुधार तभी होगी, निमित्त तभी सहकारी बनेगा जब तुम्हारा उपादान पवित्र होगा। इसलिये ज्यादा चक्कर में मत पड़ा करो ये सुधर जाये, ये सुधर जाये ये सब पागलपन मत करना। एक बार इतना जरूर

कह देना मार्ग ऐसा है कल इतिहास न बने कोई ये न कह पाये कोई सुधारने वाला नहीं था इतना ध्यान रखना। बाकी सब आपको मालूम है।

जंगल में आग लग गई, आग लगने पर चिड़िया चोंच में पानी भर कर ला रही थी और पानी को छिड़क रही थी। तुम्हारे पंच लोग पहुँच गये कहने लगे अरी चिड़िया! तू क्या अग्नि बुझा पायेगी। वह चिड़िया कहती है कि - भयंकर अग्नि में बड़े-बड़े सागर सूख जायें वहाँ मेरी चोंच क्या अग्नि बुझायेगी, परन्तु इतना ध्यान रखना जब इतिहास में नाम लिखा जायेगा तो मेरा नाम आग लगाने वालों में नहीं होगा आग बुझाने वालों में होगा। ज्ञानियो! ऐसा काम करो कि तुम्हारा नाम आग लगाने वालों में न हो आग बुझाने वालों में हो। माँ! कितने चूल्हे हैं घर में? जो आनन्द अखण्डता में है वो आनन्द खण्ड-खण्ड में नहीं है।

एक समय आता है जीव को धन की तृष्णा बढ़ जाती है, धन मिल जाये, धन मिल जाये और जब धन मिल जाता है तो दूसरी तृष्णा इतनी कठिन होती है कि यश मिल जाये। **यश की तृष्णा धन से कठोर तृष्णा है। वस्त्र भी उतर गये दिगम्बर भेष में भी आ गया और ख्याति-लाभ-पूजा की तृष्णा नहीं मिटी तो उसका मोक्ष-मार्ग अभी शुरू हुआ ही नहीं है।** मैं योगियों से कह रहा हूँ भाई! तुमको खाने को समाज दे रही है, रहने को समाज दे रही है फिर भी आपका आपस में क्लेश दिखाई देता है तब पूछा जाता भाई! आप लोग विसंवाद क्यों कर रहे हो? लोग तो भीख माँग कर पेट नहीं भर पा रहे हैं लोग तुम्हें पुचकार-पुचकार कर खिला रहे हैं तब भी आप आपस में अच्छे से बात करते नहीं मिलते हो। आपसे मेरा प्रश्न है, हे साधु! आपका आपस में क्लेश किस बात का है? श्रावक मुख से तो नहीं बोलते, लेकिन भीतर तो रोते हैं। कई नगर के नागरिकों ने नियम ले लिया है कि अब हम चातुर्मास नहीं कराएँगे सूचना मिली बाहर से। कहते हैं मैत्री भाव जगत् में मेरा सब जीवों से नित्य रहे। जब सब जीवों से मैत्री भाव रहे और वे शब्द तुम्हारे साथ दिखाई नहीं दे रहे अब विषय किस बात का है? महाराज अभी आपको पता नहीं है जो तुम कह रहे हो वह चाक्षुष है, एक और वस्तु है जो अचाक्षुष है भीतर बैठी ख्याति लाभ की तृष्णा वह शान्ति से जीने नहीं देती। किसका नाम अमर होता है नाम अमर करने की भावना बदल दो, काम

करना प्रारम्भ कर दो, नाम अपने आप हो जायेगा। तुम **ईश्वर बनना चाहते हो तो संतोष धारण कर लो। जिसके पास सन्तोष नहीं है, उससे बड़ा जगत् में कोई दरिद्री नहीं है।** अस्सी साल के दादा से पूछना दादा! कितना खा पाते हो वह कहेगा दो रोटियाँ तो पचती नहीं हैं खाने के लिये एक दो से काम चल जाता है देखने के लिये कितना चाहिये पड़ता है। पेट की भूख बहुत कम है, पेटी की भूख बहुत अधिक है। पेटियों की भूख पूरी हो जाये तो कोठियों की भूख चलती है, कोठियों की भूख भाग जाये तो बैंकों की भूख चलती है।आप लोग ऐसे नहीं हो बादल गरजे पानी बरसे और भूमि गीली न हो ऐसा नहीं होता जिनवाणी बरसे और हृदय न बदले, ऐसा होता नहीं है। मुझे ये चिन्ता नहीं है कि ये आज ही सुधर जाये जब नारकी हो जायेगे तब समझ जायेंगे जब वहाँ पहुँच जायेंगे तो अवधि ज्ञान से देखेंगे हाय-हाय मन्दिर जी में जिनवाणी सुनी थी मनमानी के चक्कर में जिनवाणी नहीं मानी सो आज भोग रहे हैं, इसलिये ज्ञानियो नरक में समझ में आये इससे अच्छा है यहीं समझ लो जिससे स्वर्ग चले जाओगे। आज नियम है जिनसे जीवन में कभी भी झगड़ा हो गया हो आज उनसे क्षमा माँग लेना और कहना हे ज्ञानी! जलने के पहले जलना छोड़ो यह देह जले इससे पहले हृदय का जलना छोड़ दो, यदि कल्याण चाहते हो तो।

अग्नि ईंधन को जलाती है। अग्नि कब होगी? ईंधन होगा तो और ईंधन नहीं होगा तो अग्नि नहीं जलेगी। ये तृष्णा की अग्नि इतनी विराट है ईंधन हो तब भी जलती है और न हो तब भी जलती है। पदार्थ मिल जाये तो भी झुलसेंगे, न मिले तब भी झुलसेंगे। **तृष्णा अग्नि जीव को संतापित कर रही है। तृष्णा की अग्नि को क्षीर सागर का जल भी ठण्डा नहीं कर सकता है।** यदि तृष्णा की अग्नि को शान्त करना है, तो संतोष रूपी जल डाल दो तो तृष्णा की अग्नि शान्त हो जायेगी।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

मानसिक दु:खों का नाशक है सन्तोष

यैः सन्तोषामृतं पीतं, निर्ममत्वेन वासितं।
त्यक्तं तैर्मानसं दु:खं, दुर्जनेनेन सौहृदं॥ सा. स. 246॥

अन्वयार्थ—यैः = जिन्होंने **निर्ममत्वेन वासितं** = ममता रहित भाव से **संतोषामृतं पीतं** = सन्तोषीरूपी अमृत का पान किया है **तैः** = उन्होंने **मानसं दु:खं त्यक्तं** = सर्व मानसिक दु:ख का त्याग कर दिया है **दुर्जनेन इव सौहृदं** = जैसे दुर्जन के साथ मित्रता छूट जाती है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! जिन्होंने निर्ममत्व भाव से सुवासित सन्तोष रूपी अमृत का पान किया है उन्होंने सारे मानसिक दु:खों का परित्याग कर दिया है अर्थात् सारे दु:खों से छुटकारा पा लिया है। जैसे दुर्जन के साथ मित्रता छूट जाती है।

॥ सद्-देशना॥

भगवान् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में आत्मा की ध्रुव धारा की व्याख्या करके समझा रहे हैं। अहो मुमुक्षु! आत्म शान्ति की खोज आपने वहाँ की है जहाँ शान्ति की सम्भावना ही नहीं है। आत्म सुख की खोज वहाँ हो रही है जहाँ सुख की सम्भावना ही नहीं है।

मेरे सुख का क्या कारण है? मेरे दुख का क्या कारण है? अन्य में ही सुख खोजता रहा, अन्य में ही शान्ति खोजता रहा, अनन्य में दृष्टि ही नहीं गई। मेरा द्रव्य मेरी पर्याय अन्य भूत नहीं है। अनन्य भूत है। द्रव्य अनन्त चतुष्य से युक्त है। द्रव्य कर्म सापेक्ष है, गुण पर निरपेक्ष है। 'निर्गुणा गुणा' जो द्रव्य के आश्रित है, निर्गुण है उसका नाम गुण है। पानी का धर्म, पानी का गुण, शीतल है वह शीतलता किसकी अपेक्षा लेकर है? पानी की शीतल गुण किसी भी अपेक्षा को लिये नहीं है। जो मेरा वास्तविक सुख स्वभाव है, जो मेरा वास्तविक धर्म है उस पर लक्ष्य कीजिये। आपसे बड़ा सुखी जगत् में कौन होगा? निज सम्पत्ति पर दृष्टि कीजिये। जिसने निर्णय कर लिया है मैं परम सुखी हूँ विश्वास रखना वह दुखी नहीं दिखेगा। जिसको यथार्थ का ज्ञान नहीं होता है वह अज्ञानता से कष्ट समझता है।

कोई व्यक्ति आपकी जेब से पैसा निकाल ले जाये आप देख लेते हो, आप ये भी देख लेते हो कि वहाँ पड़ा है। विश्वास रखना आपको कष्ट नहीं होगा। क्यों नहीं होगा? मैंने देख लिया है वह जैसे ही यहाँ से जायेगा मैं उठा लूँगा।

आपकी जेब कट गई हो आप देख नहीं पाये हो कौन ले गया है? कष्ट कहाँ है? पैसे आपने देख लिये हैं वह भी जेब से गये हैं, नहीं देख पाये वह भी जेब से गये हैं, लेकिन दुख किसमें अधिक है? जिसको देख लिया है वहाँ अधिक कष्ट नहीं है देख नहीं पाये हो उसमें कष्ट अधिक है, वेदन अधिक है क्यों? क्योंकि अज्ञान है। जीवन में कष्ट दु:ख अज्ञानता में है और ज्ञान हो जायेगा तो दुख समाप्त हो जायेगा।

जितना स्वस्थ तन को रखना चाहते हो, जितना स्वस्थ धन को रखना चाहते हो, जितना स्वस्थ भवन को रखना चाहते हो उससे कई गुना स्वस्थ आप मन को रखो मन अस्वस्थ नहीं होना चाहिये। जिसका मन अस्वस्थ नहीं है उसका तन अस्वस्थ भी हो जायेगा तो उसको दुख नहीं होगा। जिसका मन अस्वस्थ हो गया उसका तन कितना ही स्वस्थ हो तब भी दुखी ही होगा। तन का अस्वस्थपना कर्म बन्ध का कारण नहीं है। तन का अस्वस्थपना संसार भ्रमण का कारण नहीं है, परंतु जिसका मन अस्वस्थ है उसको नियम से संसार भ्रमण करना होगा। तन को स्वस्थ रखने के देश-विदेश में नाना प्रकार के साधन हैं, लेकिन मन को स्वस्थ रखने के लिये मात्र जिनवाणी माँ है और कोई नहींहै। एक द्रव्य अन्य द्रव्य में कभी परिणमन कराता नहीं है। एक द्रव्य भिन्न द्रव्य को भिन्न द्रव्य भूत होकर के कभी परिणमन कराता ही नहीं है। जो-जो मेरा परिणमन है अपने स्वभाव में ही स्वभाव विभावभूत है। किसी ने आपको गाली भी दे दी, जो गाली का उच्चारण कर रहा था वह आपके मुख से कर रहा था कि अपने मुख से कर रहा था? वह अपने मुख से कर रहा था। उसके गाली के उच्चारण करने में तेरा मनोयोग काम किया कि तेरा वचन योग काम किया कि तेरा काय योग काम किया? पर के द्वारा उच्चरित गाली में न तेरे मन योग ने काम किया, न

वचन योग ने काम किया, न काय योग ने काम किया। दूसरे का मन-वचन-काय योग काम कर रहा था। पर के वचन-काय-योग का तू कर्ता कब से हो गया। उसने तो अपने उपयोग का दुरुपयोग किया है। वह तुम्हारे पास आया नहीं, वह तुम्हारे भीतर गया नहीं, वह तेरे विरुद्ध हुआ नहीं, उसने तुझे गाली दी कैसे है? यदि परिणाम खराब हुये हैं। वह तो गाली देने का कर्ता है।यदि आज यह विषय समझ में आ गया तो तुमको कभी क्लेश नहीं होगा कि उसने मुझे गाली दी। जो वर्षों-वर्षों की गाँठ बाँधे बैठे हो कि मैं अमुक व्यक्ति से बात नहीं करूँगा मैं भाई से नहीं बोलूँगा क्यों? उसने मुझे गाली दे दी ये तुम्हारी अज्ञानता बोल रही है, ज्ञान नहीं बोल रहा है। उसने गाली दी आपने ली क्यों? इसका मतलब है आपने ली है। मैं सुधी श्रावक के घर आहार लेने जाता हूँ, जो सामग्री मुझे नहीं लेनी पड़ती है मैं अंजुली बन्द कर लेता हूँ आप तभी रख पाओगे जब मेरी लेने की इच्छा होगी। जब आप मेरी इच्छा के बिना मेरी अंजुली में ग्रास नहीं रख पाओगे, तो तुम्हारे कान में गाली गई कैसे है? जब तुमने इच्छा पूर्वक सुनी है, स्वीकार की है, धन्य हो गाली को भी स्वीकार कर लेते हो। जैसे गाली को स्वीकार कर लेते हो, वैसे जिनवाणी को स्वीकार कर लेते तो कल्याण हो जाता। जैसे प्रीति पूर्वक रख लिये एक वर्ष निकल गया, पचास वर्ष निकल गये तब भी नहीं निकाल पाया और कल के प्रवचन आज तक नहीं रख पाया। जिसने गाली दी है उसका चतुष्टय शुद्ध था कि नहीं? जिनागम के हर विषय को तद् न्याय आगम सिद्धांत को स्वीकार करो। चरणानुयोग सुन रहे हो वो भी द्रव्यानुयोग की भाषा में। जिसने गाली दी है वह तेरे से भिन्न था कि अभिन्न था? भिन्न था। उसकी गाली से राग द्वेष तेरे में उत्पन्न हुआ है कि रागद्वेष तेरे भावों में उत्पन्न हुआ है? पर की गाली रागद्वेष रूप परिणत हुई है कि तेरे परिणाम रागद्वेष रूप परिणत हुये हैं। ओ हो हो! इस बात को सोचा ही नहीं था आज तक यही सोचते रहे कि गाली देने से मुझे कषाय हुई है। तूने गाली से कषाय नहीं की है तेरे भावों ने तेरे में कषाय उत्पन्न की है गाली ने कुछ नहीं किया है। मैं बात नहीं करूँगा उस व्यक्ति से।

मत कर बात वे भगवान् बन जायेंगे, वे सिद्ध बन जायेंगे तब भी तू यही कहेगा अञ्जनचोर, अञ्जचोर वह तो निरञ्जन हो गया तुम पाप को ही लेकर बैठे रहे। एक अन्तर्मुहूर्त में पापी परमात्मा हो जाता है आप उसके पाप ही देखते रहोगे और वह सिद्ध शिला में परमात्मा बनकर बैठ जायेगा। एक समय की पर्याय को बदल कर देखो। एक समय की पर्याय को बदलने की जो बात की जाती है वह धर्म के नाश के लिये नहीं की जाती। एक समय की पर्याय का नाश हो गया है ये जीव अपने परिणामों की विशुद्धि के लिये जी रहा है? जिसने तुझे गाली दी है उसकी पर्याय बदल चुकी है उसके परिणाम बदल चुके हैं तू उसके परिणामों को क्यों लिये बैठा है? वह गाली के परिणाम थे।

तू भगवान् की प्रतिमा को पूज रहा है अच्छा काम है, लेकिन मेरे मित्र! वे बन चुके भगवान् हैं, परन्तु जो घर में माँ को पैर मार कर जा रहा है पत्नि को पीट रहा है, तू कर क्या रहा है बनने वाले भगवान् का नाश करके, पत्थर के भगवान् को पूजने जा रहा है। **तीर्थंकर भगवान् की प्रतिमा को नहीं भी पूज पाया तो वहाँ रागद्वेष नहीं होगा भगवान् को पीड़ा नहीं होगी, लेकिन हे जीव! तू एक बनने वाले परमात्मा को क्यों सता रहा है। अच्छा बोलना सीखो, अच्छा व्यवहार करना सीखो, अच्छा व्यापार करना सीखो जिसमें अनन्त जीवों की हिंसा होती हो ऐसा बोलो मत, ऐसा व्यवहार मत करो, ऐसा व्यापार भी मत करो।** मात्र वर्तमान की पर्याय के सुख को मत देखिये भविष्य पर भी लक्ष्यपात कीजिये। जो वर्तमान की पर्याय के सुख में लीन होकरके प्रचुर पाप कर लेता है। वर्तमान में वर्तमान का जीव भी दुखी दिखाई देता है।

इनको दुखी करने के लिये, पीड़ित करने के लिये आपका पूर्ण सहयोग है। आपका बेटा इंजीनियर की योग्यता नहीं रखता है। वह दूसरा विषय लेना चाहता है और आप अपने बेटे को इंजीनियर डाक्टर बनाना चाहते हैं। आप उसको कितना वजन दे रहे हैं, हाथ से गाल पर चाँटा भी मार रहा है, धनुष बाण चला रहा है बात-बात में बाण मार रहा है बेटा तुझे इंजीनियर बनना है और वही करना है उसका

क्षयोपशम देख लो, बुद्धि नहीं चल रही है। जो माता-पिता इस विषय को समझते नहीं हैं और अपने बेटे को बाहर भेज देते हैं। होस्टल में। वह बेटा वहाँ फाँसी लगा कर मर जाता है फिर आप सोचते हो कोई कारण होगा आपको भीतर का कारण मालूम नहीं रहता। योग्यता के अभाव में तुमने उसको प्रेशर डाला है, यह भी हिंसा है। मालूम चला बेटे से शून्य हो गये। खोज करना चाहिये है, इसकी रुचि कहाँ जा रही है? उस विषय में लगा दोगे तो वह विश्व-विख्यात भी बन सकता है, मानसिक हिंसा का तो आप लोगों ने विचार ही नहीं किया। कितने पुरुष अपनी मानसिक हिंसा कर रहे हैं और कितनी पर की मानसिक हिंसा कर रहे हैं आगम की भाषा में भाव हिंसा। ठण्डी का मौसम है चादर छोटा है सिर ढकता है तो पैर नहीं ढकता पैर ढकते हैं तो सिर नहीं ढकता। अब क्या करेगा? पैर सिकोड़ लेंगे। चादर कितना ही छोटा होगा, जितना छोटा चादर होगा उतने ही पैर सिकोड़ लेंगे। चादर तो बड़ा नहीं किया जा सकता है, लेकिन पैर छोटे किये जा सकते हैं। ठण्डी से बचने के लिये।

मेरे मित्र! जब तू ठण्डी के मौसम में पैर सिकोड़ सकता है तो पाप के मौसम में पाप से बचने के लिये अपनी कषाय को क्यों नहीं सिकोड़ सकता है। इच्छाओं को संकोच कर लो। पंचम काल भले हो, इस पंचम काल में भी, छोटे पुण्य में भी तुम संकुचित हो सकते हो, यहाँ अपनी इच्छाओं को संकुचित कर लेना। जिसका पुण्य का चादर छोटा हो उसे इच्छायें विशाल नहीं करना चाहिये। अपने चादरे को देखकरके अपनी इच्छाओं को सीमित कर लेना चाहिये। जिसका पुण्य छोटा होता है उसकी इच्छायें बड़ी होती हैं। उनको दुखी होना ही है, मच्छर भी काटेंगे और ठण्ड भी सतायेगी। आज से क्या करोगे **इच्छाओं के पैर को संकुचित कर लो, कामनाओं की परिणति को छोटा कर लो यदि आपको शान्ति का जीवन जीना है तो। जिसकी इच्छायें शान्त नहीं हैं वह पुरुष कितना ही धार्मिक क्यों न हो उसको किञ्चित् मात्र भी सुख नहीं है।** आज से यह मत कहना कि महाराज श्री मैं सुखी होना चाहता हूँ। यदि सुखी होना चाहते हो पैर सिकोड़ लो ठण्डी से

बच जाओगे। मुमुक्षु! परिणामों को संकुचित कर लो इच्छाओं को संकुचित कर लो दुर्गति से बच जाओगे। परिवार को दुखी रखने में पूर्ण सहयोग रहता है आप सब का। विशाल इच्छायें हैं। यदि ज्ञानी दिगम्बर मुनि बन गया और इसकी विशाल इच्छायें हैं ये चाहता है कि मैं जमीन पर पैर ही न रखूँ। तू दिगम्बर मुनि बन गया, कपड़े उतार कर फेंक दिये लेकिन इच्छाओं को उतार कर नहीं फेंक सका। घर में रहता तो माता-पिता को परेशान करता अपने परिवार को परेशान करता, दिगम्बर मुनि बन कर कपड़े उतार करके इच्छाओं को नहीं उतार सका तो पूरी समाज को परेशान करेगा। जिनके घरों में फूटी कौड़ी न हो रहने को झोपड़ियाँ भी न हो और बिना वैराग्य के दीक्षा लेलें उन जीवों की इच्छायें देखो।

हे मन! कैंचुली उतारने से कालिया निर्विष नहीं हो जाता है वैसे ही कपड़े उतारने मात्र से कोई दिगम्बर नहीं होता है। जब तक साँप की जहर की थैली नहीं निकलती है तब तक साँप निर्विष नहीं होता है। ऐसे ही निर्ग्रन्थ की मोह की थैली नहीं निकलती है तब तक दिगम्बर मुनि निर्ग्रन्थ मुनि नहीं होता है। इसलिये इच्छाओं को उतारकर रखना। यदि आपने किसी दिगम्बर मुनि की सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति का सहयोग किया तो श्रावको तुमको भी मुनि हत्या का दोष लगेगा। तूने दिगम्बर मुनिराज को टी.वी. देखने को दी तेरे से बड़ा पापी जगत् में कोई नहीं होगा। मुनिराज के लिये तो जिनवाणी लाकर के देना आपने टी.वी. लाकर के रख दी है तो अब उनकी साधना का क्या होगा? चित्रों को देखना था कि आत्म वैभव को देखना था? अशरीरी भगवान् आत्मा को निहारने वाला इन चित्रों को देखकर के जानबूझ कर अपनी दुर्गती नहीं करेगा। गाँव की मेढ पर कोई भी दिगम्बर मुनिराज आयें उनकी सेवा में कमी मत छोड़ना, लेकिन किसी भी धर्मशाला में किसी भी दिगम्बर मुनि को भौतिक साधन देने की आवश्यकता नहीं है। किञ्चित् मात्र भी तुमने भौतिक साधन दिये तो धर्म की पावनता का नाश होगा। वस्तु स्वरूप समझो हाँ सत्य यही है मुनि तो बनना चाहिये कितनी बार तो नाटक का बन चुका है एक बार सही में बन कर देखना बड़ा आनन्द आता है। लेकिन बनने के बाद नाटक मत करना।

स्वामी ब्रह्मगुलाल मुनि की कथा सुनो अचरज कारी हँसी खेल में स्वांग रचायो जिनवत की दीक्षा धारी।

ब्रह्मगुलाल बहुरुपिया फिरोजाबाद के थे, अनेक रूप बना लेते थे एक दिन सम्राट ने कहा आपको सिंह का रूप बना कर आना है वह बोला राजन् हाँ बना सकता हूँ, लेकिन एक खून माफ करना पड़ेगा। वह सम्राट बोल पड़ा ठीक है, वचन दे दिया जैसे ही सिंह बनकर राजसभा में प्रवेश किये राजपुत्र को उसने पंजा मार दिया राजकुमार प्राणविहीन हो गया। करें क्या? स्वयं वचन दिया था। राजा ने पुनः कहा कि ब्रह्मगुलाल मैंने आपके सभी रूप देखे, लेकिन मैं चाहता हूँ एक बार दिगम्बर मुनि का रूप देखूँ। राजन्! सभी रूप तो शीघ्र बनाये जा सकते थे, दिगम्बर रूप तो शीघ्र नहीं बना सकता हूँ, आप मुझे एक सप्ताह तो दीजिये। ऐसा क्यों? नाथ! क्षमा करो जगत् के रूप बन कर बदल जाते हैं, जगत् के रूप तो बनाकर मिटाये जा सकते हैं, दिगम्बर रूप ऐसा होता है जो बनने के बाद मिटाया नहीं जा सकता। हर रूप में खेल हो सकता है, हर रूप में तमाशा हो सकता है, लेकिन जिनेन्द्र की मुद्रा है जिसे तीर्थंकर देव ने स्वीकार की है इस मुद्रा की महिमा को महिमा मण्डित ही रहने देना। इसे धारण करके छोड़ा नहीं जा सकता है। विश्वास मानना चक्रवर्ती नारायण बलभद्र भी उनके चरणों में सिर टेकने जाते हैं। जब नब्बे साल के श्रावक इन सोलह साल के युवा को भो! स्वामिन् नमोस्तु कहते हैं तब सोचना चाहिये। हे युवा! ये तेरे लिये नमस्कार नहीं है, न तेरे युवा शरीर को नमस्कार है यह वृद्ध पर्याय की वन्दना नहीं है ये निर्वृद्ध पर्याय की प्राप्ति के पुरुषार्थ के लिये वन्दना है, रत्नत्रय धर्म की वन्दना है। उस रत्नत्रय धर्म को तुम शून्य होकर जिओगे तो तुम्हें बन्ध ही बन्ध है। **संयम विहीन जीवन जियेगा तो समाज के धन को बैल बनाकर चुकाना पड़ेगा, संयम सहित जीवन जियेगा तो समाज का धन शिवालय का पाथेय बनेगा।** पाथेय यानि कलेवा। हे श्रावको! जब तुम्हारे घर में दिगम्बर मुनिराज पधारें तो तुम उनका पड़गाहन करो, उनके हाथ में ग्रास रखो तब बोलना, हे शिवमार्ग के पथिक! मेरा धन तुम्हारे मोक्ष मार्ग का कलेवा बन कर जा रहा है तुम मेरे द्रव्य को लेकर के शिवालय की ओर जाओ। ये दिगम्बर

वीतरागी मुनि भविष्य के सिद्ध भगवान् हैं। तुम पर्वतों में कहाँ खोज रहे हो भगवान् को? आज से किसी भी मुनि के पास जा करके ये मत कहना गंडा दे दो, ताबीज दे दो, यन्त्र दे दो।

ज्ञानी! तेरी जनकपुरी कहाँ है? ससुराल से कोई पुरुष आया ये मैं नहीं बोल रहा हूँ समयसार टीका में आचार्य जिनसेन स्वामी बोल रहे हैं आचार्य पूज्य पाद स्वामी ने समाधि तन्त्र ग्रन्थ में लिखा हुआ है मुख मेरा हो सकता है, लेकिन सब जिनवाणी है। तो भैया इसकी ससुराल से कोई पुरुष आया और कब आया जब इनकी देवी माँ के घर गई थी, जब माँ के घर में इनके बेटे की माँ थी। अच्छे शब्दों का प्रयोग सीखो। इनके बेटे की माँ अपनी माँ के घर गई थी, तब ससुराल से वह पुरुष आया तो उसने सम्मान के साथ बिठाया उसको पेड़े खिलाये अब धीरे-धीरे से बतियाना प्रारम्भ हुआ और आपके यहाँ सब ठीक है बातों-बातों में वह कहता है कि - जीजी भी ठीक है हाँ इतना ही तो पूछना था इतनी देर से मिठाई इसीलिये तो खिला रहा था। ज्ञानी! ससुराल से आये हुये पुरुष को बड़ी भक्ति पूर्वक पेड़े खिला रहा था इतना आदर सम्मान दे रहा था ये सम्मान किसका था? उस पुरुष का नहीं था। ध्रुव सत्य ये है ये सम्मान इसलिये चल रहा था कि अपनी पत्नि की जानकारी लेना है, पर पूछे कैसे? ऐसे ही हे मुमुक्षु! जब तुम दिगम्बर मुनियों की पूजा करो, आहार दो इनकी भक्ति करो इनसे ये मत पूछना कि धन कैसे मिलेगा? इनसे ये पूछना जैसे पत्नि से नजदीक से आये पुरुष से ये पूछते हो कि मेरी देवी कैसी है? ऐसे ही मुक्ति वधू के नजदीक के दिगम्बर मुनि हैं इनसे धीरे से पूछना मेरी मुक्ति बल्लभा कैसी है? योगियों से पूछ सको तो वही पूछना, जिसके पास जो हो उसके बारे में पूछना। तुम पूछने लगो महाराज दुकान कैसे चलेगी?इनसे दुकान चलाते बनती होती तो ये छोड़कर क्यों आते? ज्ञानी! राग के वश कदाचित् कोई बता भी देगा तू उस व्यापार में लग गया जो कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होगी। हे वीतरागी मुनिराज! उसकी हिंसा के भागीदार तुम मत बनो। इसलिये इन बिचारे साधुओं को सुरक्षित रखो इनसे इतना ही कहना स्वामी! आप अपनी आत्मा की साधना करो जिसके लिये तुम गये थे वही करो।

चले थे हरि भजन को घोंटन लगे कपास। मतलब समझो श्रावक मुख से बोलें या न बोलें कोई विपरीत परिणति देख लें तो ये जानते सब हैं। **सुख का कारण कोई दूसरा नहीं, हीनता का कर्ता कोई दूसरा नहीं और ऊँचाई में ले जाने वाला कोई दूसरा नहीं, तेरा निज का परिणमन ही तुझे ऊँचा करेगा तेरा निज का परिणमन ही तुझे नीचा करेगा।** इसलिये ज्ञानी तू जब भी मुनि बने तो व्यवस्था लेकर मत चलना, व्यवस्थित होकर रहना व्यवस्थायें आगे-आगे दौड़ेंगीं। ध्रुव सत्य है यह देह का चादरा निकले इसके पहले इच्छाओं को चादरा निकाल कर फेंक देना। कोई कहे मैंने इच्छाओं का चादरा निकाल दिया अब देह का चादरा नहीं उतारुँगा उससे बड़ा ढोंगी विश्व में कोई दूसरा नहीं होगा। हाँ ऐसे भी लोग हैं जो बोलते हैं 'मूर्छा परिग्रह' मन में भाव नहीं है, पुद्गल का परिणमन पुद्गल में चल रहा है। मित्र! ऐसा होता नहीं है कि परिग्रह से लिप्त बैठा रहूँ और कहूँ पुद्गल का परिणमन पुद्गल में चल रहा है, ये व्यर्थ की ढोंग की बातें मत कर। वीतराग श्रमण संस्कृति इन बातों को स्वीकार करती नहीं है। जहाँ-जहाँ ममत्व होगा वहाँ नियम से परिग्रह होगा ही होगा, जहाँ परिग्रह नहीं है वहाँ परिग्रह हो भी सकता है नहीं भी हो सकता है, लेकिन जहाँ-जहाँ परिग्रह होगा वहाँ ममत्व नियम से होगा। जिनवाणी में आनन्द है। यदि आनन्द है और सत्य को समझना है तो सब प्रमाद छोड़ करके स्वाध्याय करना प्रारम्भ करो, 'पुरुषार्थ सिद्धि उपाय' पुरुषार्थ देशना पढ़ लो तब समझ में आता है सत्य क्या है, धर्म का रूप क्या है अनन्य ने धर्म को स्वीकार क्यों किया है।

ब्रह्मगुलाल दिगम्बर मुनि बन कर राज सभा में आया राजा सिंहासन से उतर गया ये मुद्रा ही ऐसी है। हजारों करोड़ों की भीड़ में एक दिगम्बर योगी दिख जाये अपने आप परिणाम बदल जाते हैं दिगम्बर मुद्रा को देखते ही मन मयूर नाच उठता है। जैसे ये मन्दिर में प्रतिमा विराजमान है, किसी भी जाति का हो, किसी भी पंथ का हो चाहे कोई सिर टेक जाये, चाहे कोई गाली देकर चला जाये एक जिन प्रतिमा को क्या समझ? कुछ नहीं ऐसे ही वस्तु स्वरूप ऐसा है कि दिगम्बर मुनि के चरणों में कोई भी आये सबके साथ एकत्व जैसे परिणाम, एकत्व-भाव।

'अर्घावतारण असि प्रहारण में सदा सकता धरें' अर्घ उतारने आये उन पर भी साम्यभाव है और असि से प्रहार करने भी आये उस पर भी साम्यभाव धन्य हो। ऐसा साम्य भाव कहीं नहीं मिलता यह है जैन धर्म। अर्घ चढ़ाने वालों को अपना कहने वाले हर जगह मिल जायेंगे, परन्तु तलवार से वार करने वाले को अपना कहने वाले कहाँ मिलेंगे? उपसर्ग करने वाले को भी आशीर्वाद। जयवन्त हों यशोधर मुनिराज श्रेणिक साँप डाल रहा है चेलनी साँप निकाल रही है और योगीराज दोनों को बराबर आशीर्वाद दे रहे हैं आप क्या कहेंगे नहीं-नहीं चेलनी अपनी है श्रेणिक दूसरे का है।

राग भी बन्ध का कारण है, द्वेष भी बन्ध का कारण है। न चेलनी तुम्हारी है, न श्रेणिक दूसरे का है ऐसे परिणामों को सम्हाल सके तो कल नहीं आज ही मुनिराज बन जाना ऐसे परिणाम नहीं सम्हाल सको तो वीतरागी मुनियों के चरणों की सेवा करते रहना। संख्या बढ़ाने के लिये मत आना, गुणस्थान बढ़ाने के लिये आना। आप लोग पूजन करते हैं **'मुनिमन सम उज्जवल नीर'** कवि को यमुना का पानी नहीं मिला, गंगा का नीर नहीं मिला सारे पानी नहीं दिखे। कैसे पानी की कल्पना कर रहा है, मुनि मन सम उज्जवल नीर। हे प्रभु! आपके पाद मूल में मैं न गंगा का नीर लेकर आया हूँ, न यमुना, न चम्बल का नीर लेकर आया है मैं आपके चरणों में ऐसा नीर लेकर आया हूँ जैसा दिगम्बर मुनि का मन होता है। जीवन में मुनि तभी बनना पहले मन को देखना जिसमें राग-द्वेष की शैवाल न हो, जिसमें विषय-कषाय के जलचर जीव न हों वह मुनि का मन है। जयवन्त हो ऐसे मुनिमन को। कोटि-कोटि नमन हो। मुनिमन चाहिये है तो मुनि बन कर बन जाना पड़ेगा। मुनि बने बिना मुनि मन बनता नहीं। जब मुनि बनने में आनन्द आयेगा। **मुनिमन तभी बना पाओगे जब संतोषामृत का पान करोगे और सन्तोषामृत का पान नहीं है तो जैसी हाय-हाय घर में थी वैसी हाय-हाय सब जगह है। मुनि बनकर आनन्द उन्हें आता है, जिसके अन्दर वैराग्य है।** जिसके अन्दर वैराग्य नहीं है, तो हाय हाय जगत् में है, किसी की बातों में आकर भटक मत जाना। बनके चलना, बनही जाना बनके नहीं जाना बन के जाना। झगड़ा हो जाये तो पैर पड़कर आ

जाना कहना भूल हो गई थी जो मैं तेरे घर आ गया था शादी करने, अब भूल सुधार रहा हूँ।

आचार्य भगवन् कह रहे हैं जो सन्तोष रूपी अमृत का पान कर लेते हैं और निर्ममत्व भाव से निवास करते हैं वे ही सुखी हैं। **जग में सुखिया वे ही सदा जो इच्छा के त्यागी। जग में दुखिया वे ही सदा जो जग में अनुरागी।**

ज्ञानी! सोचता है मैं सारे जग को सुखी कर दूँ सारी समाज को सुखी कर दूँ। कुछ ज्ञानी यही सोचते हैं घर की व्यवस्था बना दूँ फिर घर की व्यवस्था बताऊँ कैसी है? बरसात में छोटे-छोटे से मेढ़क हो जाते हैं बहुत सारे उनको एक टोकनी में रख देना और कहना हे भावी भगवन्तो! शान्त बैठो। एक को बिठायेगा तब तक दूसरा उचक जायेगा। ऐसे ही तू घर में एक को ठण्डा करता है तब तक दूसरा गरम हो जाता है। घर को ठण्डा करना और समाज को एक साथ रख पाना मेढ़कों को एक साथ बिठालने जैसा है। यदि अपना कल्याण चाहता है तो धीरे से निकल जा नहीं तो झंझट ही झंझट है।

भगवान् महावीर स्वामी अकेले थे और चले गये थे। वे ही जा पाते हैं जो पुण्यात्मा जीव हैं। ज्ञानी! समय हो गया, अब तो सबको मालूम हो जाना चाहिये कि सर्वार्थ सिद्धि के देव तैंतीस सागर प्रमाण तत्त्व की चर्चा करते हैं, पता ही नहीं चलता समय कैसे पूरा हो जाता है। अब समझो, आपका एक घण्टा कुछ कम नहीं है।

जो जीव संतोष स्वरूपी अमृत का पान कर लेता है उसका मानसिक दुख ऐसे ठीक हो जाता है छूट जाता है जैसे दुर्जन की मित्रता। जीवन में मित्र कैसा बनाना? बटलोई में ढक्कन होता है, जब-तक बटलोई ठण्डी रहती है तब-तक ढक्कन सिर पर बैठा रहता है जैसे ही उबाल आयी तुरन्त भाग जाता है। जब-तक तुम्हारे पास सम्पत्ति थी, धन था तब दुनिया के लोग चिपक रहे थे, जैसे ही संकट के दिन आये छोड़कर भाग गये ऐसे मित्रों से दूर रहना। मित्र बनाना तो बटलोई की पेंदी के समान बनाना सबसे पहले आँच वही देखती है। जो पेंदी की भाँति उपषर्ग सहन करते रहें, लेकिन साथ न छोड़े ऐसे मित्रों के साथ रहना ऐसे मित्र कौन है?

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि।

धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ऐसा मित्र धर्म है जैसे दुर्जन पुरुष की मित्रता क्षण मात्र में नष्ट हो जाती है ऐसे ही संतोषी प्राणी के दुख क्षण मात्र में नष्ट हो जाते हैं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

निर्वाण सुख का कारण है सन्तोष

यैः संतोषामृतं पीतं तृष्णातृट् प्रणाशनं।
तैश्च निर्वाण सौख्यस्य कारणं समुपार्जितम्॥ सा. स. 247॥

अन्वयार्थ—यैः = जिन्होंने **तृष्णातृट् प्रणाशनं** = तृष्णा की प्यास को बुझाने वाले **संतोषामृतं** = संतोषरूपी अमृत को **पीतं** = पिया है **तैःच** = उन्होंने ही **निर्वाण सौख्यस्य** = निर्वाण सुख के **कारणं** = कारण को **समुपार्जितम्** = प्राप्त कर लिया है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! जिन्होंने तृष्णारूपी प्यास को बुझाने वाले सन्तोषामृत का पान कर लिया, उन्होंने निर्वाण सुख के कारण को प्राप्त कर लिया।

॥ सद्-देशना ॥

भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में साधक स्वरूप की व्याख्या कर रहे हैं। **विश्व में शान्ति का, आनन्द का कोई स्थान है वह साधु स्वभाव है।** साधु स्वभाव की आवश्यकता है, साधु बनने की आवश्यकता नहीं है, साधु स्वभाव मिल जाये तो साधु बन जाना। जब-तक साधु स्वभाव न मिले तब-तक साधुओं की वन्दना करते रहना, परन्तु साधु स्वभावके अभाव में साधु बन के साधु मुद्रा को बदनाम मत करना। जब-तक साधु स्वभाव का जन्म न हो पाये तब तक साधु बनने का विचार मन में मत लाना। वन्दनीय मुद्रा को बदनाम करने की चेष्टा मत करना, पंच महापुरुष जैन शासन में पाँच ही महापुरुष हैं छटवाँ कोई महापुरुष नहीं है। पहले महापुरुष अरहन्त, दूसरे महापुरुष सिद्ध, तीसरे महापुरुष आचार्य, चौथे महापुरुष उपाध्याय और पाँचवें महापुरुष दिगम्बर वीतरागी धरती के देवता सच्चा साधु भाव लिंगी है ये पंच महापुरुष। एक सामान्य देश की ध्वजा यदि झुक जाये तो वह दण्ड का अधिकारी होता है। हर व्यक्ति को तिरंगा पकड़ने का अधिकार नहीं था, यदि पकड़ते हो तो उसको ऊपर रखना पड़ेगा। जब भारत के तिरंगे को ऊपर रखना पड़ता है कहीं झुक न जाये। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जिसके तीन रंग हों ऐसा वीतरागी जिन शासन का ध्वज जो पुरुष धारण करे उसको झुकाना

नहीं चाहिये, नमना नहीं चाहिये, नवकी ओर जाना चाहिये। क्षमतायें नहीं हैं, योग्यतायें नहीं हैं तो वन्दना करते रहना, परन्तु वन्दनीय मुद्रा को अवन्दनीय बनाने की चेष्टा नहीं करना। ब्रह्माण्ड में अर्घ पंचमहापुरुष को दिया जाता है पूजा पंचमहापुरुष की की जाती है।

मेरे मित्र! रंग-रंग में, अङ्ग-अङ्ग में, चर्या-चर्या में, चर्चा-चर्चा में जैसे रसवन्ती के अन्दर से रस टपकता है। जलेबी को संस्कृत में रसवन्ती कहते हैं उसके चारों ओर रस टपकता रहता है ऐसे ही जैसे रसवन्ती का रस झलकता है वैसे वीतरागी दिगम्बर मुनि के अङ्ग-अङ्ग से संयम झलकता है, समता झलकती है वीतरागता, झलकती है उसका नाम है जैन मुनि। कपड़े बाद में उतारना चाहिये है सज्जनता पहले बना कर रखना चाहिये है। हमारी भाषा कैसी हो, हमारी वृत्ति कैसी हो? दृष्टि निम्न हो, दृष्टि उर्ध्व हो जिनको मुनि बनने के परिणाम आ रहे हों वे सभी युवा ध्यान से सुनना। दृष्टि ऊँची नहीं है वह साधु बनने का पात्र नहीं है जिसकी दृष्टि नीची नहीं है वह साधु होने का पात्र नहीं है। साधु मुद्रा को मेले की मिठाई न बनाई जाये। शौक न चढ़े कि साधु बन जा ऊँ। पूज्यपाद स्वामी ने संस्कृत में पंचगुरु भक्ति लिखी हुई है, कुन्दकुन्द स्वामी ने प्राकृत में पंचमहागुरु भक्ति लिखी है वहाँ लिखा पंच महापुरुष। आज का श्लोक इसी बात को कह रहा है दृष्टि नीची होनी चाहिये है, दृष्टि ऊँची होनी चाहिये है। हे श्रमण! जब तू गमन करे तो तेरी दृष्टि नीची होनी चाहिये है। हे श्रमण! जब तू गमन करे तो तेरी दृष्टि ऊँची होनी चाहिये है। **हे श्रमण! जब तू जमीन में गमन करे तो दृष्टि नीची होनी चाहिये है और हे श्रमण! जब तू निज में रमण करे तब तेरी दृष्टि ऊँची होनी चाहिये है।**

हे योगीश्वर। प्राणी का विघात न हो जाये इसलिये ईर्यापथ के शोधन के लिये दृष्टि नीची होना चाहिये किसी प्राणी के प्रति मेरा सोच अशुभ न हो जाये इसलिये दृष्टि ऊँची होनी चाहिये। सोच की दृष्टि ऊँची होना चाहिये और आँखों की दृष्टि नीची होना चाहिये। हृदय में विशालता नहीं आयेगी तो संकुचित बने बैठे रहोगे। भारत की ही नहीं, विश्व की अखण्डता को देखना चाहते हो तो जैनियों का मन्त्र

है। आप जैन दर्शन को किस रूप में कथन कराना चाहते हो हर विधायें इसके पास हैं। विश्व अखण्डता का कोई महामन्त्र है उसका नाम णमोकार मन्त्र है। मुनि संघ भी णमोकार मन्त्र काअर्थ नहीं सीख पाये, अभी उनको बालबोध पढ़ना चाहिये। तब उनको आचार्य और मुनि बनना चाहिये है। मित्र आज णमोकार सीख कर जाना और योगियों के कक्ष में एकान्त में कहना स्वामी! मैं और कुछ नहीं जानता हूँ मात्र णमोकार जानता हूँ आप मुझे णमोकार का अर्थ बता दो फिर मैं आपके कार्यक्रम में शामिल होऊँगा, क्योंकि आपको ऐसे भी लोग मिलेंगे मेरे अलावा आप दूसरी जगह नहीं जाओगे। उनसे कहना स्वामी! णमोकार का अर्थ बता दो फिर आपकी बात मान लूँगा। लोग आपसे भी कह सकते हैं उनसे कहना स्वामी णमोकार का अर्थ बता दो।

यदि आप कहो कि णमोकार का अर्थ चतुर्थ काल का है तो कहना स्वामी! आप भी पंचम काल के हो चतुर्थ काल के नहीं हो। भैया! देश के साधु णमोकार का अर्थ भूल गये। बिचारे भूल में हैं ये कलिकाल की देन है तब भीअशुभ नहीं सोचना। यदि आपको कोई दो साधु लड़ते मिल जायें तब भी अश्रद्धान मत करना। महाराज! आज आप कैसी बातें कर रहे हो? हाँ आप तो यह पूछो कि किस शास्त्र से आप बोल रहे हो। ये इस मिट्टी का प्रभाव है। पूरे देश के लोगों से कहना कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है, दुनियाँ के भूत-प्रेतों से भी डर लगे तो जिन मन्दिर में जाकर सिर टेक लेना। महामन्त्र णमोकार जिसने सीख लिया वह साधु कभी अपने मुख से यह नहीं कह सकता है कि मेरे अलावा किसी के पास मत जाना। क्यों? णमोकार में आचार्य विराग सागर का नाम नहीं है, आचार्य विद्या सागर का नाम नहीं है, आचार्य विशुद्ध सागर का नाम नहीं है, परन्तु एक भी सागर का नाम छूटा नहीं है। अच्छा हुआ आपने इस भवन का नाम ऋषभ भवन रखा कहीं एक सागर का नाम रख देते तो दूसरेका चेहरा उतर जाता मेरा नाम क्यों नहीं?

ज्ञानी! भाई-भाई के बेटों में विसंवाद हो जाये वह तो होगा, क्योंकि उनके पिता अलग-अलग हैं, सहज है होता ही है। दो भाई की सन्तानें विसंवाद करने लग

जायें तो विकल्प नहीं करना। दोनों की सन्तानों को एक साथ बिठालना है तो क्या करोगे? इनके पिताजी का नाम क्या है? कोई बात नहीं है तुम पिता के नाम पर तो झगड़ रहे हो, लेकिन यह बताओ तुम्हारे दादा कौन हैं?

यदि भारत की भूमि पर दिगम्बर मुनिराज कहें कि ये मेरे गुरु, ये मेरे गुरु उनसे पूछना ये बताओ तुम्हारे प्रभु कौन हैं? तुम महावीर के हो कि नहीं हो? मुमुक्षु! तीर्थंकर महावीर एक ही हैं, दो नहीं हैं। णमोकार पढ़ना चाहिये। बेटा भ्रमित मत होना आज विचित्र-विचित्र प्रकार के लोग हो गये हैं, जो अपनी चमड़ी की प्रभावना के राग में धर्म खो रहे हैं हर व्यक्ति की बातों में नहीं आना।

भाई! मन्दिर का तिलक लगाना बन्द मत कर देना। जब तक मुनि न बन जाओ तब तक श्रावक को तिलक लगाना नहीं छोड़ना चाहिये इस तिलक में बहुत बड़ा रहस्य है। **दिगम्बर मुनि बन जाओ तो दिन में एक बार आँख से नाक जरूर देखते रहना, जब-तक आँख से स्वयं की नाक दिखती रहे तब तक ही तुम्हारा जीवन है जिस दिन तुम्हारी नाक दिखना बन्द हो जाये उस दिन सब त्याग करके बैठ जाना तुम्हारा अन्तिम दिन है।** जब-तक तुम्हारे माथे का तिलक तुरन्त सूखता रहे तब तक समझना तुम्हारा जीवन लम्बा चलेगा। जिस दिन तुमने तिलक लगायाऔर एक घण्टे तक सूखा नहीं है वह तुम्हारा अन्तिम दिन है, उस दिन सामायिक में बैठ जाओ और समाधि कर लो। कारण यह है तुम्हारी भीतर की गर्मी समाप्त हो चुकी अब तुम ठण्डे होने वाले हो। इसलिये अब तो रोज मन्दिर जाया करो और रोज तिलक लगाया करो। लेकिन मुफत का चन्दन घिस मेरे नन्दन साथ में चन्दन की व्यवस्था भी करना, नहीं तो पता चला कल से पुजारियों को चन्दन ही नहीं बचा। ठीक है भैया मन्दिर में चन्दन भी समाज से ही आता है और ज्यादा मूठे रख देना, लेकिन लगाने देना मना मत करना। शुद्ध चन्दन फूल नहीं, शुद्ध चन्दन कृत्रिम केशर नहीं नहीं तो मक्का के भुट्टे के भी केशर बनने लगे शुद्ध केशर काश्मीर की। ठग मत जाना। पंचम काल में जमीन से भगवान् निकलने लगे गाढ़ दो और निकाल लो। झूठे चमत्कार में मस्तक को टेकने की कोई आवश्यकता

नहीं है। भगवान् को निकलना होगा तो जैसे महावीर जी में निकले, तिजारा में निकले ऐसे निकल कर आयेंगे वहाँ पूजने को चले जाना कोई जमीन से निकाल कर बैठ जाये और आँखें निकाल कर कहें मैं निकाल कर लाया हूँ इस मिथ्यात्व में पड़ मत जाना। आज कल दस-दस किलोमीटर पर भगवान् निकलने लग गये। आज कल ऐसे चमत्कार होने लग गए हैं कि श्री फल की आँखें खोलीं और उसमें मोती भर दिये फिर चिपका दिया। कहने लगे मैं श्री फल से मोती निकालूँगा अब महाराज पहले से भर दिया अब क्या निकालोगे। हाँ! ताकत है तो मेरा श्री फल लेकर फिर निकालो। ये गढ़ा ताबीज बन्धन वार फँस मत जाना इस व्यर्थ के चमत्कारों में। यह शुद्ध ठगी का काम है।ज्ञानी कहता है भाई? ग्यारह लाख दो और घर में कलश रखवा लो तेरे सब संकट दूर हो जायेंगे। स्वामी! आपही रख लो, हमसे ग्यारह लाख माँगने क्यों आ रहे हो? लोगों ने छल का ऐसा तरीका अपनाया। इसलिये थोड़ा विवेक से काम करो। किस मन्त्रवादी ने तुझे सलाह दी थी कि इस मन्त्र का जाप कर ले सो तू जैनकुल में जन्म ले लेगा। इन व्यर्थ के प्रपंच में मत पड़ जाना। विचित्र-विचित्र लोग आते हैं तन्त्र-मन्त्र का लोभ दिखा करके अपनी जेब भर करके चले जाते हैं। कुछ ऐसा भी कहते हैं कि तुम नहीं दोगे तो तुम्हारा ऐसा हो जायेगा। वहाँ कहना महाराज कब होगा? अभी करके दिखाओ मुझे तो एक दिन जाना ही है डरने की जरूरत नहीं है।

जिसको महामन्त्र पर विश्वास है उसका जगत् में कौन क्या कर सकता है। 'पञ्च महापुरुष' अन्यत्र भटकने की आवश्यकता नहीं है। न कोई भूत न कोई प्रेत। भूतों के चक्कर मत काटो अपन तो भूतनाथों के भक्त हैं। तुमको कितना छल के रखा गया है, सत्य इसलिये नहीं बताया गया सत्य का बोध हो गया तो मेरी डमरू कैसे बजेगी? सही कारण है लोग विशुद्ध सागर से परेशान हैं। बड़े-बड़े योगी परेशान हैं क्यों? मेरी सब पोल पट्टी खुली जा रही है। अन्दर का विषय तो समझो छल बहुत दिन तक नहीं चलता, झूठे चमत्कार बहुत दिन तक नहीं चलते हैं। पञ्च महापुरुष। हम किसके भक्त हैं? भूतनाथ के, अब भूतों के चक्कर काटोगे?

जिनके चरणों में कोटि-कोटि देव सिर झुकाते हैं, उनके भक्त होकर के तुम किनके चरणों में भटक रहे हो? एक छोटी सी बात समझना, भारत का सम्राट अपने एक अनुचर पर प्रसन्न हो गया खुश होकर के उस सम्राट ने अपनी पगड़ी उसको दे दी उस पगड़ी को बाँध कर वह एक दिन विदेश गया वहाँ की राज सभा में राजा ने उसे निमन्त्रित किया वह पुरुष जैसे ही सभा में प्रवेश करता है सिर ढक कर बैठना सभा की मर्यादा है और खोलना ही है तो पूरे ही खोल कर बैठो नहीं तो मर्यादा के साथ रहो। सभा की मर्यादा है सिर ढककर आना था उस अनुचर ने सभा में प्रवेश करते ही अपनी पगड़ी उतार ली और हाथ में ले ली तो सभासदों को बहुत बुरा लगा। क्यों? इस राज सभा में पगड़ी बाँध कर आते हैं इस पुरुष ने पगड़ी को उतार लिया, रहा नहीं गया। मच्छर तो कम से कम बोल कर काटते हैं और एक दो बार ही काटेंगे। पर कानों में लगने वाले मच्छर पता नहीं कब काट जायें? पुरुष के आकार के इन मच्छरों से बचकर रहना। मैं तो बहुत दूर रखता हूँ, मैं किसी मच्छर की बात मानता ही नहीं हूँ। यदि आपको अपने जीवन में सफलता हासिल करना हो तो जगत् की सुनना सीखो मानना किसी की नहीं, मानना मात्र अरहन्त की वाणी की , निर्ग्रन्थ गुरु की। मेरे जीवन में तो कोटि-कोटि सलाह कार हैं, मैं किसकी-किसकी मानूँगा? नहीं 'गुरु बुद्धि विशेषता' **गुरु की बुद्धि से जीवन में विशेषता आयेगी स्वयं की बुद्धि से काम करोगे तो तुम्हारे जीवन का उत्कर्ष कुछ नहीं होगा।** आप कितना बदलोगे एक सलाह देंगे ऐसा कर लो दूसरा सलाह देगा ऐसा कर लो तो मैं क्या-क्या करूँगा। सलाह देना आपके हाथ की बात है और स्वीकार करना ये मेरे हाथ की बात है। **'आगम चक्खू साहू'** मैं दुनियाँ की बात मानता ही नहीं हूँ, मैं मात्र आगम की बात मानता हूँ। सम्राट के कानों में मच्छर लग गये। राजन्! इस व्यक्ति ने आपकी अविनय की है सभा में आकर के पगड़ी को उतार लिया। कान के कच्चों से बहुत दूर रहा करो। वे जीवन में कभी सफल नहीं होंगे किसी की सुनी और तुरन्त निर्णय ले लिया। कोई शिकायत करने भी आये चाहे कोई ब्रह्मचारी भी दूसरे की शिकायत करता है तो

मैं उसे भी प्रायश्चित देता हूँ। यदि मैं एक बार शिकायत सुन लूँगा तो वह तो ऐसा ही बैठा रहेगा और मालूम चला पूरा संघ ही गड़बड़ हो जायेगा। एक ज्ञानी आकर कहता है महाराज सागर सामायिक नहीं कर रहे थे। क्या कर रहे थे? सो रहे थे। आप क्या कर रहे थे? कम से कम उस व्यक्ति ने बैठ-बैठे अपनी नींद तो पूरी कर ली तूने तो देखते-देखते सामायिक नहीं की। एक ने सोते-सोते नहीं की एक ने देखते-देखते नहीं की दोनों प्रायश्चित के भागीदार हो। पहले तू प्रायश्चित ले तूने देखा क्यों? अब शिकायत करने वाले को सोचना पड़ेगा जो-जो आचार्य गुरु और राजा दूसरे की बात को तुरन्त मान लेते हैं उनके संघ नष्ट हो गये। संघ टूटने का मुख्य कारण होता है, राज्य नष्ट होने का का मुख्य कारण होता है दूसरेकी सुन करके निर्णय कर लेना।

दूसरे की सुन कर कभी निर्णय मत करना। पहले मालूम करना बात क्या है? फिर विवेक से निर्णय करो। आपका मन भी शंकित हो जाये तो उस शंकित मन की बात का तुरन्त निर्णय मत करना। जो मन की शंकित बात पर भी निर्णय करलेते हैं, वे भी नष्ट हो जायेंगे। आपके मन में यदि मेरे प्रति शंका आ गई तो मेरे मित्र एकान्त में आकर पूछ लेना, लेकिन शंका को प्राप्त होकर के शंक्ति होकर के मिथ्यात्व में मत चले जाना। पढ़ना भिन्न विषय है, सुनना भिन्न विषय है जीवन में उतार कर चलना भिन्न विषय है।बड़े-बड़े योगी इस विषय में फेल हो जाते हैं। कान के कच्चे होने के कारण कभी भी किसी के ऊपर सभा में चिल्ला पड़े क्या हो गया? माइक खराब हो गया। इतना विवेक रखना यदि मैं आपके यहाँ आहार लेने आया और कर्म योग से अन्तराय आ गया तो मेरा विश्वास है कोई भी इतना पापी श्रावक नहीं होगा जो साधु को अन्तराय कराने के लिये चौका लगायेगा। भारत की भूमि में इतना अनाचार नहीं है जो सुबह चार बजे से जग करके अपने बेटों को जितना सुन्दर नहीं खिलाता होगा वह साधु को खिलाता है, वह कभी अन्तराय के लिये चौका नहीं लगाता। कर्म के उदय से अन्तराय हो जाये श्रावक का दान-अन्तराय का उदय है, साधु का लाभान्तराय कर्म का उदय है लेकिन श्रावक

साधु को अन्तराय नहीं कराता।

साधु बनने के पहले साधु बनने का सोच जब तक नहीं लाओगे साधु जीवन में फेल हो जाओगे।किसी ने माइक लगाया वह तो अच्छा सोच कर ही लाया था मशीन है बिगड़ गई अब तुम क्या कर सकते हो? अब जो है सो है। ऐसा तुम सोचोगे तो आपके परिणाम भी अच्छे रहेंगे और सामने वाला पश्चाताप करेगा बताओ मैंने कैसा सड़ा माइक रख दिया। आपने क्रोध कर दिया तो जो चार दिन से आपके प्रवचन सुनने आये थे वे बड़ी श्रद्धा से आते थे और सोचते थे महाराज क्या गजब की बातें बता रहे हैं जैसे ही तुमने माइक फेंका उन सबकी समझ में आ गई क्या चार दिन के प्रवचन थे? कहने के अलग थे होने के ये हैं। जो स्वयं की कषाय को नहीं रोक पा रहे हैं। समझ में आ रहा है? इसलिये जितना तुम बोलते हो उतना जीवन में उतारते भी दिखना चाहिये है। व्यवस्था के राग में व्यवस्थितपना भङ्ग मत कर देना। आज माइक अच्छा बोल रहा है, ऐसा क्यों बोल रहे हो, क्योंकि कल माइक अच्छा नहीं था। ऐसा क्यों नहीं बोलते हो मैंने ऐसा कोई ज्ञानावरणीय कर्म का बन्ध किया होगा वह उदय में आ गया इसलिये विघ्न हुआ था सम्यग्दृष्टि का सोच विधि परख होता है अस्ति रूप होता है वह नास्ति में नहीं ले जाता है। अस्ति में सोचेगा तो सर्वत्र आनन्द मिलेगा नकारात्मक सोच बनायेगा तो जहाँ जायेगा वहीं झगड़ा मिलेगा। एक सज्जन बड़े ऊटपटांग काम करते थे गाँव का बालक-बालक मूर्खानन्दन कहने लग गया तो बिचारे को थोड़ा बुरा भी लगा।वह भिण्ड से भाग गया और इटावा में जाकर रहने लग गया एक दिन वह कुए में पैर लटका कर बैठ गया इटावा के वरिष्ठ पुरुष वहाँ से निकले बोले मूर्खानन्दन क्या कर रहे हो? वह पूछता है कि कि ये बताओ भिण्ड से कौन आया था जो आपसे यह कह गया कि मेरा नाम मूर्खानन्दन है। बोले मित्र! कोई ने नहीं कहा तेरी गति परिणति चर्या ही ऐसी है कि दुनिया जान लेगी तू कौन है। **नगर-डगर बदलने से कुछ नहीं होता है अपनी परिणति बदलो, भाव बदलो उससे भगवान् बनोगे गाँव बदलने से कुछ नहीं होगा।**

राजा ने उस पुरुष से कहा आपने पगड़ी क्यों उतारी? राजन्! क्षमा करना। क्यों? क्या आपको ज्ञात नहीं है कि सभा में पगड़ी बाँध कर आना पड़ता है? राजन्! मैं उस देश का हूँ जिस देश को अध्यात्मक का गुरु कहा जाता है। हमारा देश मात्र विचारक नहीं है, आचरण भूत देश है। जिस देश की मिट्टी को तीर्थ भूमि कहा जाता है उस देश का मैं हूँ। जब तुम इतने अच्छे देश के हो तो पगड़ी क्यों उतारी? राजन्! सेवक बनकर मैं आया हूँ आपका, आपका दास मैं हूँ, आपको मुझे फाँसी देना हो तो दे सकते हो, परन्तु सत्य कहने का आज मौका है सो मैं कह कर रहूँगा। राजन्! यह पगड़ी भारत के नरेश की प्रदत्त पगड़ी है इस पगड़ी को बाँधकरके यदि मैं आपको सिर झुकाता हूँ तो मेरा भारत देश झुक जायेगा मैं देश को नहीं झुका सकता हूँ। ये भारत देश की पगड़ी है। मित्रो! जब भारत की पगड़ी विदेशों को नहीं झुक सकती है तो जो मस्तक तीर्थंकर के पादमूल में झुक चुका हो वह दूसरी जगह कैसे झुक सकता है। मैंने तो ये सुना है जिस कलश से भगवान् का अभिषेक हो जाता है उसकलश से आप लोग पानी नहीं पीते हो। ऐसे ही जो मस्तक प्रभु के चरणों से टिक जाता है वह पवित्र सम्यग्दृष्टि का अङ्ग हो जाता है, वह दूसरी जगह झुकने कहाँ जायेगा? सोचो।

'पञ्च महापुरुष' जब तुमसे कोई कहे अन्यत्र नहीं जाना तो कहना स्वामी! मेरी माँ ने जन्म घूटी में णमोकार महामन्त्र मिलाया है उसमें लिखा हुआ था।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं॥

अन्तदीप 'लोए' शब्द है। इसका अर्थ करोगे तो प्रारम्भ से लगाओगे णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आइरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। एक-एक पद ऐसे पढ़ना।

लोक के सम्पूर्ण वीतरागी अरहन्त परमात्मा को नमस्कार हो अखण्डता की प्रधानता है। एक अरहन्त को नमस्कार नहीं है महावीर मात्र की वन्दना नहीं है जितने तीर्थंकर अरहन्त हुये उन सबकी वन्दना है। णमो लोए सव्व सिद्धाणं लोक में जितने सिद्ध हुये हैं सभी सिद्धों की वन्दना है। लोक में जितने वीतरागी आचार्य

भगवन्त हैं उन सबकी वन्दना है। ये नहीं है कि कोई कहे नहीं मेरे अलावा किसी दूसरे आचार्य को नमस्कार नहीं करना तो वे गलत सिखा रहे हैं। गुरु-गुरु-गुरु क्या गुरु 'पञ्च महापुरुषः' सभी गुरु-गुरु हैं। दीक्षा गुरु तुम्हारा है उसकी प्रधानता रखना। इसका अर्थ यह नहीं है कि जगत् के तीन कम नौ कोटि मुनिराजों को हम यूँ फेंक दें। आपको यही सीखना है। अपने नगर की मेंढ पर किसी भी पिच्छीधारी को देख लो पहले उनकी चर्या कराना और चर्या कराते-कराते क्रिया दिख जायेगी जब क्रिया विपरीत दिखे तो निन्दा नहीं करना मध्यस्थ हो जाना। स्वामी तुम्हारी परिणति तुम्हारे अन्दर, मेरी परिणति मेरे अन्दर मैंने अपना काम पूरा किया है। मित्र! चर्या कराना है, मृदुल चर्या की पुष्टि नहीं करना है।

यदि कोई मुनि कहे भैया आज मुझे चैनल देखने की जरूरत पड़ रही है, तो कहना स्वामी! मैं आपको जिनवाणी तो दिला सकता हूँ, परन्तु टी.वी चैनल मैं मन्दिर में नहीं ला सकता हूँ। न पंखा, न कूलर, न ए.सी. मात्र मोक्षमार्ग 'जो है सो है'। मैं ऐसा अज्ञानता में नहीं कह रहा हूँ जानकर कह रहा हूँ। डाकू डाका डालते हैं और गली बदनाम होती है। मृदुल चर्या साधु करते हैं और नगर बदनाम होता है।

लोग भी मोक्षमार्ग जानते हैं। बुन्देलखण्ड का बच्चा भी गौर से देखता है कि महाराज कैसे हैं? विदिशा में मैंने प्रवचनसार की एक गाथा पर प्रवचन किये तो वहाँ की विदुषी मातायें इकट्ठी हो गईं बोलीं महाराज! आप लोग तो चुटकुले सुनाते हो ग्रन्थों की बातें तो पण्डित लोग बताते हैं। मैंने वहीं प्रतिज्ञा कर ली कि आज से ग्रन्थों पर ही प्रवचन होंगे। निर्ग्रन्थों के प्रवचन ग्रन्थों पर न हों और सग्रन्थों के प्रवचन ग्रन्थों पर हों, नहीं कभी मुनि बनो तो चुटकुलों के चक्कर में मत पड़ जाना। मनोरञ्जन के लिये तो घर-घर में टी.वी के डिब्बे रखे हैं घर-घर में मनोरञ्जन मिल जायेंगे। अरे! आत्मा का आनन्द आना चाहिये तुम्हारी सभा में ये श्रावक मनोरञ्जन करने नहीं आये जिनवाणी सुनने आये हैं।

सात धान्यों को मिला दो मिल कर तो रहेंगे, लेकिन मिलेंगे बिल्कुल नहीं। ऐसे ही सारे जगत् के लोगों के साथ मिल कर तो रहो, लेकिन मिल कर बिल्कुल

नहीं रहना, क्योंकि कण-कण स्वतन्त्र है, अण-अणु स्वतन्त्र है। मैं कैसे मिल सकता हूँ, इसलिये मानवता के नाते साधुता के नाते सबके साथ मिल कर रहना, लेकिन शिथिलाचार में मिलने की आवश्यकता नहीं है।

आचार्य पद न रसवन्ती है, न रेबड़ियाँ हैं, न बतासे हैं कि किसी को भी बाँट दो। आचार्य पद तीर्थंकर परम्परा को जीवन्त रखने के लिये मोक्षमार्ग के नेता हैं। नेता कितना विशिष्ट होना चाहिये है? आचार्य पंचाचार का पालन स्वयं में करें और शिष्यों से करायें, धर्म और राष्ट्र पर दृष्टिपात रखें, जिन शासन को उज्जवल करें तब तो आचार्य पद की गरिमा है।उस जीव का प्रबल पुण्य का नियोग है कि साधना के मार्ग में, ज्ञान के क्षेत्र में, आज भारत के विद्वान् यह कहने को तैयार हैं कि आचार्य विराग सागर ने अपने शिष्यों को जोड़ना सिखाया है तोड़ना नहीं सिखाया। ज्ञान की धारा की बात की है मिटाना नहीं सिखाया बनाना सिखाया है।

आचार्य परमेष्ठी को आचार्य वीरसेन स्वामी ने राजा कहा है। जैसे सम्राट खड्ग लेकर के अपने देश एवं प्रजा की रक्षा करता है किसी प्रकार प्रजा को कष्ट न हो, इसलिए राजा कहा है।

तीन रत्नत्रय के खड्ग लिये हैं और मोह रूपी शत्रु सेना के सिर को विहीन कर रहे हैं और लोक में जितने भव्य जीव हैं उन सबको रत्नत्रय धर्म से पालन कर रहे हैं वे आचार्य रूपी राजा हर समय मेरे ऊपर प्रसन्न रहें। हे विराग सागर राजा! खुश रहो तुम्हारा खुश रहनाही हमारी खुशीहै। दक्षिणा दे दो सो ब्राह्मण खुश। व्यापारी से व्यापार कर लो खुश। क्षत्रिय को भूमिदान दे दो खुश। गुरु के पाय पड़ लो खुश। बस इनका इतने से काम चल जायेगा। यह नीति है नीति, लेकिन पाय पड़ने का तरीका सीखना पड़ेगा तब खुश कर पाओगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

साधु क्या धारण करते हैं?

सन्तोषं लोभनाशाय, धृतिं च सुखशान्तये।
ज्ञानं च तपसां वृद्धौ, धारयन्ति दिगम्बराः॥ सा. स. 248॥

अन्वयार्थ—दिगम्बराः = परिग्रह त्यागी निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि **लोभनाशाय संतोषं** = लोभ के नाश के लिए सन्तोष को **सुखशांतये धृतिं** = सुख-शान्ति के लिए धैर्य को और **तपसां वृद्धौ ज्ञानं च** = तपकी वृद्धि के लिए ज्ञान को **धारयंति** = धारण करते हैं।

भावार्थ—हे भव्य! परिग्रह त्यागी दिगम्बर मुनि लोभ का नाश करने के लिए सन्तोष को, सुख शान्ति के लिए धैर्य को और तप की वृद्धि के लिए ज्ञान को धारण करते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में निर्ग्रन्थ मार्गी योगी के अन्तस् की भावनाओं की व्याख्या कर रहे हैं। निर्ग्रन्थ स्वभाव दिगम्बर है जिसकी पहचान पिच्छी कमण्डलु है जहाँ पिच्छी कमण्डल नहीं है वहाँ नंगापन है, दिगम्बरत्व नहीं है ऐसी पावन मुद्रा जिसको देखकर सुर असुर भी सिर टेकते हैं। इस पंचम काल में यदि कोई परम पूज्य दशा है तो पंच महापुरुषाः ये दिगम्बर ही है इन पंच महापुरुषों में आज दो तो दृष्टि-गोचर ही नहीं हैं अरहन्त और सिद्ध। इस खोटे काल में मात्र तीन ही महापुरुष दिख रहे हैं आचार्य उपाध्याय साधु। जितनी आस्था इन महापुरुषों के प्रति श्रावकों की है उससे कई गुनी आस्था इन महापुरुषों को स्वयं के प्रति होती है और होना ही चाहिये। **यदि दूसरे से तुम प्रीति उत्पन्न कराना चाहते हो तो आपको स्वयं में प्रीति होना चाहिये है।** साग मण्डी में भी जाओ तो वहाँ पर भी बैठा व्यापारी लौकी को भी पौंछता दिख जायेगा, जबकि उसको खाना नहीं है, खाना दूसरे को है वह सामग्री को सुन्दर रखता है। क्यों? चमकेगी नहीं तो बिकेगी कैसे? साग मण्डी में बैठा कुँजरा भी अपनी राग की दुकान को साफ रखे हुये है उसको राग किस बात का है? स्वच्छ दिखेगा तो सामने वाला

प्रभावित होगा। **जैसे व्यापारी अपनी सामग्री को स्वच्छ रखता है ऐसे ही वीतरागी साधक अपनी चर्या को स्वच्छ रखता है** जैसे व्यापारी अपने आप में स्वच्छ रहता है। वैसे ही योगी अपने आप में स्वच्छ रहता है। वह तो अपने द्रव्य को अर्थ के लिये स्वच्छ रखता है। यहाँ योगी अपने द्रव्य को परमार्थ के लिये स्वच्छ रखते हैं। किसी को प्रभावित करने का कभी मन मत बनाना, बड़े विवेक के साथ सुनना। जो-जो पर को प्रभावित करने का मन बनायेगा, उसकी पर दृष्टि होगी। पर दृष्टि नरक दृष्टि है, पर दृष्टि मोक्षमार्ग नहीं है, परादृष्टि मोक्षमार्ग है। परदृष्टि यानि अन्य दृष्टि और परा यानि उत्कृष्ट दृष्टि। अन्य दृष्टि पर दृष्टि पर्याय दृष्टि और परादृष्टि आत्म द्रव्य दृष्टि।

कैसी है श्रमणों की धारा? एक टूटा मकान, टपकता पानी छोटे बर्तन, फटे वस्त्र इनको छोड़ना कठिन है। लाठी टेक कर थैली लटका करके द्वारे-द्वारे पर भीख माँगना सरल है, पर पिच्छी-कमण्डल लेकर के दिगम्बर होना सरल नहीं है बहुत कठिन हैं। उन निर्ग्रन्थ का जीवनजीना आनन्दमयी बड़ा सरल है। रातों में नींद न लेने दे, दिन में शान्ति न लेने दे हे राग! तू विलीन हो जाये तो न कहीं कष्ट है, न कहीं दुख है सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। जीव कैसे भ्रमण कर रहा है जीव कैसे भटक रहा है उसे कहीं तो शान्ति मिले जब तक पर वस्तु में शान्ति खोजेगा तब तक कहीं शान्ति मिलने वाली नहीं है। योगियों के पास जाने की धारा को बदल देना, इनके मुख से ज्यादा मत सुनना इनके मुख को देखकर ज्यादा सुनना। मुख से लोक की ऐसी बातें भी होती हैं कि भले ज्ञानी घर में सिर पकड़ कर रोये, लेकिन दूसरे को समझानेकी आवश्यकता पड़ जाये तो इतना अच्छा समझायेगा कि भगवान् भी न समझा पायें। सारे विश्व के लागों को समझ रहती है जब दूसरे के घर में कोई घटना घट जाये तो हर व्यक्ति समझदार होता है भाई ये तो होनहार होती रहती है, जन्म-मरण तो लगा ही रहता है दूसरे के घर में समझाने जाता है मित्र! जब तेरे घर में घटना घट जाती है तब भी उस समझ को बुला लिया करो वह कहाँ चली जाती है। लंकेश ने सीता का हरण किया क्या अच्छा किया? नहीं राम जैसे महापुरुष की सती नारी का हरण कर लिया हो ये रावण ने अच्छा नहीं

किया ये ज्ञान तुझे कब तक रहता है रावण को समझाने के लिये हर व्यक्ति पण्डित है, परन्तु तेरा मन कितनी सीताओं का हरण कर चुका है उस समय तेरी समझ कहाँ चली जाती है? रावण ने सीता का हरण किया रविषेण स्वामी लिख गये सो सबको मालूम चल गया तेरी बात तो किसी ने लिखी नहीं है, परन्तु तुझे पता है कि मैं रावण हूँ कि नहीं हूँ? एक सीता देखने वाले के लिये नरक में जाना पड़ गया तो करोड़ों सीताओं को देख रहा है उसको कहाँ जाना पड़ेगा? हर व्यक्ति की समझ दूसरे को समझाने के लिये है। इसलिये मुख से समझाने की शैली शब्द जाल है। मुख से अनेक प्रकार से समझाया जाता है, लेकिन निर्ग्रन्थों के उपदेश मुख से कम सुना करो उनके मुख को देखकर अधिक सुना करो। एक दरिद्री पुरुष दूसरे को सलाह दे रहा है तुम ऐसा व्यापार करो तुम करोड़पति हो जाओगे तब आप उसका चेहरा देखते हो कि ये मुझे सहाल दे रहा है इसका चेहरा तो ऐसा दिखता ही नहीं है। अरहन्तों का दर्शन, निर्ग्रन्थों का दर्शन पीठ से करते हो क्या? ज्ञानी! पीछे से कभी नमस्कार नहीं होता। जब तक वक्ता का चेहरा न दिखे तब-तक श्रोताओं को आनन्द नहीं आता है, जब-तक प्रभु का मुख कमल न दिखे तब-तक भक्त को आनन्द नहीं आता है। चेहरे को पढ़ना तो श्वान भी जानता है आप तो इंसान हो। यदि कोई गुस्से में खड़ा हो तो श्वान भी तुम्हारे सामने पूँछ हिलाने लगता है। चेहरे पर लिखा है व्यक्ति का भविष्य, चेहरे पर लिखा है व्यक्ति का भाव। अशुभ करके आओगे तो तुम हँस तो सकते हो, लेकिन प्रसन्न नहीं दिख सकते हो, मुस्करा नहीं सकते हो। गद्गद् भाव अलग है और अट्टाहास अलग है। हँसना कषाय है, गद्गद् भाव आत्मा की विशुद्धि का प्रभाव है। सब कुछ तुम्हारे चेहरे पर लिखा है। साधु के प्रवचन साधु का रूप ही प्रवचन है। प्रवचन में बताया क्या जाता है? सम्पूर्ण प्रवचनों का सार क्या है? साधु बनना। निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग है सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है वह किसमें है? निर्ग्रन्थों में साधु में। कोई भी प्रवचनकार होगा उसको अन्त में कहना ही पड़ेगा, मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता है। वह कहाँ है? इसलिये 'णिग्गंथं पवयणं' इसका अर्थ है निर्ग्रन्थ ही प्रवचन हैं। जिस प्रवचन में निर्ग्रन्थ स्वरूप की व्याख्या नहीं है, निर्ग्रन्थ

प्राप्ति का लक्ष्य नहीं है वह प्रवचन ही नहीं है, वह तो प्रवचनाभाष है। मैं भगवती आराधना से बोल रहा हूँ, दिगम्बरजैन आम्नाय में भगवती आराधना एक बहुत बड़ा ग्रन्थ है। णिग्गंथं पवयणं निर्ग्रन्थ ही प्रवचन है और निर्ग्रन्थ ही मोक्षमार्ग है।

अब माना कि कोई वीतरागी तपोधन आपकी नगरी में पधारे उनसे वचन के प्रवचन करते नहीं बनता था। हे सुधी श्रावको! वे प्रवचन तो करते ही नहीं थे। मुख के प्रवचनों में तो आडम्बर लगाना पड़ता है, ये माइक, ये स्टेज 'णिग्गंथं पवयणं' सुनने के लिये व्यक्ति को सभा मण्डप में भी नहीं आना पड़ता है।योगी जंगल में विचरण कर रहे थे भक्त सिंहकी पर्याय में खड़ा हुआ था, भक्त हाथी की पर्याय में है योगी को पता ही नहीं था मुझे देखकर के किसमें क्या हो रहा है? जिसे आप भक्त कह रहे हो वह आज भगवान् बन कर पुज रहा है, किसी को मालूम नहीं है मैं सब साधुओं से एक ही बात कहता रहता हूँ। भाई! तुम ये मत सोचना कि जब हम सभा में जायेंगे तब ऐसे बन कर बैठ जायेंगे जैसे भगवान् की प्रतिमा हो, नहीं जैन दर्शन आर्जव-मार्दव धर्म से युक्त है। कक्ष में कुछ भेष हो और मंच पर कुछ भेष हो यह बगुले की वृत्ति हो सकती है, यह दिगम्बर मुनि की वृत्ति नहीं होती है। हे जीव! जब मैं ऋषभ भवन में उपदेश करूँगा तो लोग समझेंगे ये विशुद्धसागर ही है ये मनुष्यों के लिये ही मात्र मत समझो, आप कमरे में बैठे हुये थे वहाँ एक कबूतर उड़ते आया और एक कोने पर बैठ कर आपको देख रहा था। आप समझ रहे थे कि पक्षी है जब महावीर स्वामी अकौआ में बैठे थे तो कबूतर में भी कोई तीर्थंकर बेठा हो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। माँ! आज से सुअर के प्रति भी अशुभ भाव नहीं करना, क्योंकि अशुभ पर्याय में है तुम उसकी अशुभ पर्याय को देखकर के अशुभ पर्याय की तैयारी क्यों कर रहे हो? नाली में घूमता सुअर भी दिख जाये तो उसके प्रति भी अशुभ भाव नहीं करना। निहारना हे भावी भगवन्त! कभी तू भी सिद्धालय में विराजेगा आज तू किस पर्याय में है। ज्ञानी! श्रमणों का विषय चल रहा है और श्रावको आप ध्यान से सुनना। कबूतर साधु को देखकर सोच रहा था मैंने मायाचारी की भीतर कुछ होता था बाहर हाथ पैर कुछ चलते थे, सो आज में पंख फड़फड़ाने वाला बन गया, परन्तु धन्य है इस

तीर्थंकर मुद्रा को ये ही सत्यार्थ रूप है यही भूतार्थ मार्ग है, यही सम्यक्-मार्ग है। निर्ग्रन्थ दशा से बढ़कर कोई शान्ति का मार्ग नहीं है। मेरे मित्र! आपको कबूतर पक्षी दिख रहा था वह मोक्ष पंथी बन गया और कबूतर ने मुनि को देखकर के सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया और हम यही सोच रहे थे कि आज माइक नहीं लगा, मेरे प्रवचन नहीं हुये लोगों का हित कैसे होगा? तुझे पता नहीं था बिना माइक लगाये, बिना मुखसे उपदेश बोले **''मूर्त्तमिव मोक्षमार्गम वाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं''** वचन का विसर्जन कर दिया है दिगम्बर मुनि का रूप ही मोक्षमार्ग का उपदेश देता है। यदि ज्ञानी को धर्म प्रभावना के लिये खड़ा कर दिया जाय तो उसे चार बैंड बजाना पड़ेंगे, हाथ में बेनर पकड़कर चलना पड़ेगा उसमें लिखना भी पड़ेगा। **''धम्मो दया विशुद्धो''** गली-गली में एलाउन्स भी कराना पड़ेगा। वस्तु स्वरूप समझना, तुझे चिल्लाना भी पड़ेगा, ढोलक बजाना पड़ेगी, बैंड बजाना पड़ेंगे बेनर लगाना पड़ेंगे तब कहीं तुम धर्म की प्रभावना कर पाओगे। यदि कोई ज्ञानी रास्ते में चलते-चलते जेब से छन्ना निकाल करके पानी पीते दिख जाये तो न बैंड बजाना पड़ेगा, न ढोलक बजाना पड़ेगी, न बेनर लगाना पड़ेगा लोग अपने आप कहेंगे यह जैन श्रावक है।

हे जीव! शाम को साढ़े चार बज रहे हैं तूने टिफिन खोल कर के भोजन करना प्रारंभ कर दिया पूरी ट्रेन के लोग कहेंगे आप जैन हैं क्या? नाटक वृत्ति धर्म की प्रभावना नहीं है यह आडम्बर हो सकता है, लेकिन सत्य की प्रभावना यदि कोई है जब तुम स्वयं प्रभावित होंगे वही प्रभावना है। है कोई वीर का भक्त जो आज कह दे महाराज! मैं जहाँ भी पानी पीऊँगा अपना छन्ना लगा कर पीऊँगा

रामायण में उल्लेख आता है कि जनक ने स्वयंवर रचा सीता के विवाह के लिये और धनुष बाण रख दिया उस पर ड्योढ़ी चढ़ा कर धनुष को तोड़ना था बड़े-बड़े धुरन्धर क्षत्रिय पुत्र पहुँच गये जब धनुष के पास पहुँचते तो बिचारे हाथ लगा कर घबरा कर पीछे हो जाते। तब जनक जी के मुख से अचानक निकल पड़ा। ओह! मुझे नहीं था मालूम ये पृथ्वी क्षत्रियों से शून्य हो चुकी है यदि ऐसा होता तो मैं स्वयंवर ही नहीं रचता। मुझे भी नहीं मालूम कि जैनों में साधना शून्य

हो गई है नहीं तो मैं ऐसा नहीं कहता कि ऐसा होना चाहिये था तो राम उठ कर खड़े हो गये थे।

जनक जी के कहने पर कम से कम एक राम तो ऐसे आये जिन्होंने जनक की आँखों के आँसू पौंछ लिये थे। क्या इस सभा में एक भी श्रावक नहीं होगा जो कह देगा महाराज! जब भी पानी पीऊँगा तो छन्ना निकाल कर के पीऊँगा। नाक पौंछने के लिये रुमाल रख सकते हो, लेकिन जीवों की रक्षा के लिये छन्ना नहीं रख सकते हो।

मेरे मित्र! जब तेरे घर में कोई मांगलिक काम हों तो ये दुनिया के परिग्रह देना बन्द करो, न गिलसियाँ, न कटोरियाँ तुम बाँट सको तो छन्ना बाँट देना कहना मेरे भाई पानी छानकर पीना सीखो। कोई मेहमान आये तो रुमाल के साथ एक छन्ना भी देना। ये तेरे जैनी की पहचान के लिये है। तुम भूल गये थे। पानी छानकर पीना सीखो। धर्म की प्रभावना है। कितने लोग आज से छन्ना से पानी छान कर पीयेंगे? ऐसे लोगों का सम्मान करो जिनसे जैन दर्शन की प्रभावना होती है। अब विश्वास रखना ये लोग जहाँ-जहाँ छान कर पानी पीयेंगे वहाँ लोग अपने आप कहेंगे ये भगवान् महावीर का भक्त है। णिग्गंथं पवयणं। एक निर्ग्रन्थ तपोधन कक्ष में बैठे हुये थे और कबूतर ने देख लिया वीतरागी मुद्रा को देखकरके उसको जाति स्मरण हुआ सो पूर्व भव का स्मरण करके सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लिया। कैसे? अब आप कहेंगे ये सम्भव है क्या? हाँ सम्भव ही है। एक गुणवन्ती सुशीला कन्या आदिनाथ भगवान् के सामने बैठ कर पूजा कर रही थी उसे मात्र प्रभु दिख रहे थे और थाली की द्रव्य दिख रही थी और गद्गद् भाव से आराधना में लीन थी। उस जीव को नहीं पता कि मेरी इस कोमल पर्याय को देखकर के कौन जीव परिणाम खराब करके तीर्थंकर के मन्दिर में आकर के निधत्ति निकाचित कर्म का बन्ध करे जा चुका है। वह कन्या तो पूजा कर रही थी उसे मालूम ही नहीं था कि पापी युवा आया और कन्या के कोमल शरीर को देखकरके मन में अशुभ भाव करके बन्ध करके चला गया। मन्दिर में आकर के भगवान् कितनी बार देखे और दूसरों के चेहरे कितनी बार देखे उसको तुमने सोचा कि नहीं सोचा?

माताओ! ध्यान से सुनना, तीर्थंकर के पादमूल में तीर्थ वन्दना को गये थे, तीर्थ भूमि को निहारते हुये किसी के चेहरे को देख लिया है देह का तीर्थ नहीं कहेगा तेरी निर्जरा होगी भावों का तीर्थ कहेगा तू तीर्थ भूमि में आकर के घोर पाप का बन्ध करके जा चुका है। पूछो अपने मन से ऐसा नहीं किया क्या? यदि किया है तो जीवन की अन्तिम श्वास निकलने के पहले उन सबका प्रायश्चित करके जाना। देखने वाले देख रहे थे ज्ञानी सामायिक कर रहे हैं, वह आँखें बन्द करके दूसरे के मन की भावों को सोच रहा है। यह ताली बजाने का विषय नहीं है यह मोह के ताले तोड़ने का विषय है। आज देश में कोई मन्दिर ऐसा नहीं होगा जहाँ इन जीवों की प्रतिमायें न हों, जो पूर्व में गज था और सिंह था। भगवान् पार्श्वनाथ ने हाथी की पर्याय में निर्ग्रन्थ मुनि का प्रवचन सुना था मात्र देख करके सिर टेक दिया और सम्यक्त्व प्राप्त करके गज की पर्याय में प्रतिमाधारी हो गया बारह व्रतों को स्वीकार कर लिया। महावीर के जीव ने सिंह की पर्याय में 'णिग्गंथं पवयणं' सुना प्रवचन सुनते ही सिंह श्रावक बन गया। वही जीव आज तीर्थंकर पारस नाथ और महावीर के रूप में मन्दिर-मन्दिर में विराजे हुये हैं। भैया! आपको विराजमान होना हो तो सुन लेना। यह ध्रुव सत्य है शुष्क उपदेश नहीं होता है, जिसमें समरस भरा है ऐसा निर्ग्रन्थ ही प्रवचन है। महाराज आप अकेले कक्ष में बैठे हैं आप यह मत सोचना कि मैं तो अकेला हूँ। हे जीव! जीवों को खाने वाली यदि छिपकली भी वहाँ घूम रही है दीवाल पर, पंचेन्द्रिय जीव है संज्ञी है हो सकता है तुम्हारे रूप को स्वरूप को देखकरके उसके भाव बदल जायें और तुम्हारी कोई विपरीत दशा देखी तो पता नहीं कितने जीवों को अश्रद्धान हो जायेगा, इसलिये निर्ग्रन्थ सम्यक्त्व का कारण है। जिन बिम्ब चेतनजिनबिम्ब अचेतन जिनबिम्ब। जिनबिम्ब दर्शन करने से सम्यक्त्व उत्पत्ति होती है। जिन दर्शन, जिन महिमा, प्रवचन, जाति स्मरण ये सब सम्यक्त्व के साधन हैं। पता नहीं किस प्रतिमा को देख करके किसके भाव जाग जायें। ये कभी मत सोचना कि महाराज जी! इतने जिनालय हैं, इतने प्रतिमाओं की स्थापना क्यों? तत्व को समझो, '**अन्ध घोटक न्याय**' है एक गरीब व्यक्ति के पास एक घोड़ा था वह बंजी करता था। बुजुर्गों से पूछो, 'सबके दिन एक से

नहीं होते'। गरीबी की दशा गरीब ही जानता है कई लोगों को तो भूख का ही ज्ञान नहीं है क्यों भूख लग ही नहीं पाती है और उसके पहले ही खा लेता है। उन लोगों से पूछो जिनको सुबह लेने के बाद शाम को कोई ठिकाना ही नहीं है। उनको पता होती है कि भूख कैसी होती है इसलिये साधु बनने के पहले खूब चौके लगाना जिनके घर में रोज महाराज जा रहे हों उनको थोड़े ही पता रहता कि जब चौका खाली रहता है तब कैसा लगता है और जिनके यहाँ महाराज आकर निकल जायें उनको कैसा लगता है। गरीब की दशा गरीब ही जानता है, परन्तु **मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना जब-जब तुम्हारे जीवन में अशुभ दिन आयें तो किसी दूसरे के घर में मत जाना। जब-जब तुम्हारे पास विपत्ति आये आप किसी के द्वारे पर मत जाना सगे भैया के घर भी मत जाना, ससुराल तो भूलकर भी मत जाना और बेटी के घर तो सोचते-सोचते भी मत जाना। ये जगत् का जो सम्मान है भरे कलश में ही सिक्का डाला जाता है खाली कलश को तो कोई नहीं पूछता है, चेहरा चमक रहा है जेब खनखना रही है तो सब बगल में आकर बैठ जायेंगे नहीं तो?**

पुण्य साथ नहीं दे रहा है तो तू जिसके घर में जायेगा वह यही कहेगा आ गया कुछ माँगने। देगा कम, देगा ज्यादा सहयोग कम देगा, व्यथायें ज्यादा देगा इसलिये किसी के घर नहीं जाना। अशुभ दिन आयें तो क्या करना चाहिये? माँ ने भी जिसको नौ माह गर्भ में रखा था उसको देखना पसन्द नहीं करती, पिता भी गालों पर खिलाता था वो भी आज चेहरा देखना नहीं चाहता। जिस बेटे को तुमने सिर पर रखकर खिलाया था वह भी देखना नहीं चाहता, जब अशुभ के दिन आते हैं तब कोई किसी का नहीं होता। यह अनुभव की बात सुनो और अनुभव से सुनो। माँ तेरा भाई करोड़पति भी क्यों न हो जब तेरे पतिगृह में संकट आता है तो भैया भी सहयोग करने में सोचता है। कहीं नहीं जाना, कहीं नहीं जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? चत्तारि सरणं पव्वज्जामि अरहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णंत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि। कहीं नहीं जाना मात्र केवली प्रणीत धर्म की शरण में चले जाना। किसी के द्वारे भटकने भी मत जाना।

एक गाँवपति जो होवे सो भी दुखिय दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी दुख मेट्यों अन्तर्यामी।

गरीबी की दशा विचित्र होती है। एक गरीब घोड़े से बंजी करता था, जब अशुभ दिन आये सो घोड़े के नेत्रों की ज्योति चली गई। बिचारा दौड़ा-दौड़ा वैद्यजी के यहाँ पहुँचा देखो अशुभ कर्म वैद्य भी बाहर चला गया तो बिचारा गरीब वैद्य पुत्र से कहता है भैया। **''सबके दिन एक से नहीं होते।''** भैया! तू एक काम कर अब फूटेकी क्या फूटेगी उसके तो नेत्र फूट ही गये, लेकिन जितने नेत्रों के अञ्जन रखे हों उनको निकाल करके एक-एक शलाका आप मेरे घोड़े की आँख में लगा दो। वह वैद्य पुत्र बोला कुछ हो गया तो? वह कहता है तू चिन्ता मत कर घोड़ा मेरा है, कुछ भी हो गया तो तेरे ऊपर कोई आपत्ति नहीं आयेगी उस वैद्य पुत्र ने उस गरीब की बात को स्वीकार कर लिया और घोड़े की आँखों में एक-एक शलाका अञ्जन लगाना प्रारंभ कर दिया। एक ऐसाअञ्जन फँस गया कि उस घोड़े के नेत्रों की ज्योति वापस आ गई। ऐसे ही हजारों प्रतिमाएँ हों, हजारों जिनबिम्ब विराजमान हों, पता नहीं कौन सी प्रतिमा को देखकरके किस जीवकी सम्यक्त्व की आँख जो फूट गई थी और मिथ्यात्व की अंधियारी छा गई थी तो सम्यक्त्वकी रोशनी आ जाये, इसलिये प्रत्येक प्रतिमा की वन्दना करना। किस प्रतिमा को देखकरके भीतर का भगवान् जग जाये। मित्र! जितने भगवान् विराजमान कर सको सो कर जाओ। जिनके घर में सम्पत्ति रखी हो तो ये तो भूल ही जाना कि बेटे मेरा नाम बढ़ायेंगे। मेरे मित्र! तेरे जैसे बेटे को जन्म देकर के वह बिचारा कहीं चला गया। वे सम्पत्ति लेकर गये कि तुझे देकर गये? सत्य बता जिसने तुझे जन्म दिया है तू आज दिनभर में उनका नाम कितनी बार लेता है? तस्वीर तो बहुत लगी रहती हैं, पर तू नाम कितनी बार लेता है? जब तेरे जैसा धर्मात्मा जीव दिन भर में अपने पिता का नाम नहीं ले पाता है तो तेरे बेटे तेरा नाम क्या लेंगे।

भैया! अपने बेटे का नाम दिन में कितनी बार लेता है? जिसने जन्म दिया उसका नाम दुनिया भूल जाती है जिसको जन्म दिया उसको दुनिया चिल्लाती है। हे जीव! जब तू अपने पिता का नाम भूल सकता है तब तेरा बेटा भी

अपने बेटे को जन्म देके तेरा नाम भूल जायेगा। इसलिये नाम चलाने के लिये सन्तान को जन्म देने की आकांक्षा मत करो। कोई किसी का नाम नहीं लेते हैं तुम्हें नाम ही चलाना है तो अरहन्त की प्रतिमा विराजमान कराके जाना गोम्मटेश बाहुबली स्वामी आज तक जीवन्त हैं, चामुण्डराय का नाम आज तक चलता है।

जिन-जिन को अपने नाम ही सुरक्षित रखवाना हो तो विशाल मन्दिर बनावाकर जाना। ये चिन्ता मत करना भगवान् को कौन देखेगा, भगवान् की चिन्ता मत करना। पूजा होती है ओर जब तब जिन प्रतिमा रहेगी तब तक उस भूमि पर जिनशासन रहेगा। प्रतिमा को देखकर किसके भाव बदल जायें इसका नाम है **'अंध घोटक न्याय'** एक-एक शलाका लगाते-लगाते एक शलाका ऐसी आ गई कि घोड़े की आँख खुल गई। ऐसे ही पता नहीं किस जीव की आँख खुल जाये। ऐसे ही कोई मुनि संघ पधारे उसमें हजारों पिच्छीधारी योगी हों, एक-एक मुनि को वन्दना करना पता नहीं किस मुनि मुद्रा को देखकरके तेरे भीतर का मुनि प्रकट हो जाये। हाँ ऐसा होता है जिस जीव का जहाँ नियोग है उसे कोई टाल नहीं सकता है। ये निर्ग्रन्थ योगी जिन प्रवचन हैं, निर्ग्रन्थ जीवन्त है, तो तुम्हारा दिगम्बरत्व जीवन्त है। बड़े चाव से कहते हो मैं दिगम्बर जैन। कैसे? कपड़े पहने बेठे हो, महासाहू महासाहू महासाहू दिगम्बरा। हे महासाधु! शीत उष्ण नग्नत्व आदि परीषह को तुम सहन करते हो, परन्तु आपकी महिमा देखो, कपड़े पहनकर भी हम दिगम्बर कहलाते हैं, घरमें रह कर भी परिग्रह में लिप्त होकर भी तुम दिगम्बर किसके नाम पर हो? महा साहूदिगम्बरा। जब प्रतिमा प्रशस्त होती है वीतरागता टपकती है जिन बिम्ब को देख करके कब निज बिम्ब झलक जाये कोई नियत नहीं है। प्रतिमा आड़ी हो टेढ़ी हो दीवाल पर टिकी हो तो कहते हैं कि अशुभ है जब जिन प्रतिमा वीतरागतामय दिखती है तो गद्गद् भाव आता है। ऐसे हे श्रमणो! जब आप टिके हो तो अशुभ हो, जिन प्रतिमा हँसते दिख जाये तो अशुभ होता है, इसलिये मेरा समाज से कहना है यदि तुम्हें दिगम्बर मुनि की फोटो भी छपवाना हो तो हँसते खिलखिलाते दाँत दिखाते मत छपवाना। ये वीतराग मुद्रा है ये कोई नेता अभिनेता थोड़े ही हैं ये तो जिन मुनि हैं इनकी तस्वीर प्रशान्त होनी चाहिये। घर में जितनी दुनिया की तस्वीरें

रखी हों उतार कर अलग कर देना, क्योंकि चित्र से चित्त प्रभावित होता है चित्त से चारित्र प्रभावित होता है। मुनि महाराज की तस्वीर रसोईघर में अवश्य लगाया करो। जो बिचारे आहार देना ही भूल चुके हों मुनि को भोजन देयफिर निज करहिं आहारे उनको कम से कम भोजन करते समय चित्र दिख जाये। ओ हो हो! ये वीतराग मुद्रा है, इनको आहार देकर ही भोजन करना पड़ता है। मैं कैसा अभागा हूँ। सोमदेव सूरि ने तो ये लिखा है जो साधु के आहार के पहले भोजन कर ले वह पिशाच है। रसोई में चित्र क्यों? ये जिन मुद्रा है जिन मुद्रा को देखकरके जीव के पवित्र भाव आते हैं, मुनि को देखते-देखते मुख में गया ग्रास जब तक वह ग्रास शरीर में रहेगा तब तक निर्ग्रन्थों अरहन्तों के प्रति भक्ति रहेगी। जब तू एक्टरों की तस्वीरें देखकर भोजन करेगा, तो मन में वैसे ही भाव रहेंगे। इसलिये श्रावकों! खोटे चित्रों को देखते-देखते भोजन मत किया करो। जहाँ अशुभ चित्र चल रहे हैं। टेलीवीजन देखते-देखते भोजन नहीं करना।

खण्डित प्रतिमा अशुभ होती है। बिना पिच्छी-कमण्डल के मुनिराज की फोटो नहीं छपाना। राजमार्ग तो यही है।

वीतरागी मुनि, वीतरागी तपोधन, लोभ के नाश के लिये, संतोष को धारण करते हैं और सुख-शान्ति के लिये धैर्य को धारण करते हैं। जिनको सुख-शान्ति चाहिये, वे जीवन में कभी अधीर न हों। अधीरता व्यक्ति का नाश कर देती है। धीरता के बिना तो पैसा भी नहीं मिलता। व्यापारियों से पूछो। धन्य हो आपकी धीरता। कितनी हिंसा कर रहा है, फिर भी मुस्करा रहा है। कपड़े के व्यापारियों के यहाँ ग्राहक आते हैं और कितने थान पटकवाते हैं क्या सब लेकर जाते हैं? नहीं। कुछ ऐसे होते हैं, सब पटकवायेंगे, लेकिन एक भी लेकर नहीं जायेंगे। तब भी बेचारा, भले ही बनावटी मुस्कराये, चेहरा देखता रहेगा, लपेटता रहेगा और रख लेगा। ऐसा क्यों कर रहा है? ऐसा नहीं करूँगा, गुस्सा करूँगा, तो कल से मेरे पास कौन ग्राहक आयेगा? जितना धैर्य कपड़े लपेटते वक्त है, उतना परिणामों को लपेट लेता तो भगवान् बन जाता। इसलिये मुनिराज से कह रहे हैं। बिना धैर्य के श्रावक व्यापार नहीं कर पाता। धीरता के बिना लक्ष्मी नहीं मिलती। जब श्री/लक्ष्मी

धीरता के बिना नहीं मिलती, तो मोक्ष- लक्ष्मी धीरता के बिना कैसे मिल सकती है? इसलिये साधु को चाहिये धैर्य। ऐसा नहीं कि जो मैंने कह दिया वही होना चाहिये। अरे महाराज! तनक धैर्य धरो। जब तुम्हारा जन्म हुआ था माता-पिता के सहयोग से, वह गर्भाधान के ही दिन नहीं हो गया था, उसके लिये भी नौ महीने लग गये थे। अतः धैर्य रखो। धीरता से सुख-शान्ति मिलती है। तपस्या की वृद्धि के लिये ज्ञान करना चाहिये। ज्ञान का फल तप है। तप का फल केवल-ज्ञान है। सन्तोष है लोभ के नाश के लिये, धैर्य है सुख-शान्ति के लिये, ज्ञान है तपस्या की वृद्धि के लिये।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

ध्यानस्थ प्राणी के विचार

ज्ञान-दर्शन-सम्पन्नः आत्मा चैको ध्रुवो मम।
शेषा भावाश्च मे बाह्याः, सर्वे संयोग-लक्षणाः॥ सा. स. 249॥

अन्वयार्थ—साधुजन ध्यान के समय ऐसा विचारते हैं कि **मम आत्मा** = मेरा आत्मा **एकः च** = एक अकेला ही है **ध्रुवः** = अविनाशी है **ज्ञान-दर्शन-सम्पन्नः** = ज्ञान-दर्शन स्वरूप है **च शेषा भावाः** = मेरे शुद्धात्मा के भाव को छोड़कर अन्य जितने भी रागादि भाव हैं **सर्वे संयोग-लक्षणाः** = वे सर्व पुद्गल के संयोग से होते हैं अतएव **मे बाह्याः** = मेरे आत्मा से बाहर हैं।

भावार्थ—हे भव्य! धर्मध्यान की प्राप्ति के लिए ज्ञानी विचार करते हैं कि ध्रुव अविनाशी ज्ञान-दर्शन-सम्पन्न एक मेरी आत्मा है। शुद्धात्मभावों को छोड़कर जितने भी रागादि भाव हैं, वे सर्व पुद्गल के संयोग से होते हैं, अतः वे मेरी आत्मा से बाह्य हैं।

॥ सद्-देशना ॥

कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में परम सत्ता की व्याख्या कर रहे हैं। **सत्य को समझना बहुत सूक्ष्म है, सत्य को जानना बहुत कठिन है, सत्य को पहचानना अत्यन्त दुर्लभ है। सब को जान सकते हो, लेकिन सत्य को जानना जितना कठिन है, उससे कई गुना कठिन सत्य को जीना है। सत्य को जाननेवाले कोटि-कोटि जीव हैं, परन्तु सत्य पर जीने वाले अत्यल्प हैं।** जो दृष्टिगोचर हो रहा है, वही सत् है, वही सत्य है; लेकिन वह तेरा सत्य नहीं है। जो लोक में सत्य दिख रहा है, वह असत्य है, सर्वथा माया है क्या? नहीं है। जिसे लोक में माया कहा है, वह वस्तुस्वरूप की दृष्टि से परभूत द्रव्य है, इसलिये माया है; परन्तु माया असद्भूत नहीं है। ज्ञानियो! तटस्थ होकर सुनना। आज आचार्य कुलभद्र स्वामी जिस कारिका को कह रहे हैं, वह कारिका समयसार से उद्धृत दिखाई दे रही है। ऐसा लगता है कि कुलभद्र स्वामी कुन्दकुन्द स्वामी के 'समयसार' को निकाल कर लाये हैं। लोक जिसको सत्य कह रहा है, वह भी सत्य है। जहाँ

आज जिस को माया कहा, उस माया का उद्देश्य असत्भूत नहीं है।

यदि कैमरे ने चमड़ी को देखा है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भीतर हड्डियाँ नहीं हैं। एक्सरे मशीन ने हड्डियों को देखा, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि चमड़ी का अभाव है। निश्चय नय ने हड्डियों को निहारा, व्यवहार नय ने चर्म को निहारा; लेकिन दोनों का अभाव नहीं है। अपनी दृष्टि से जिसने जिसको देखा है, उसकी दृष्टि में वह सत्य है। समझने का प्रयास करो। वही द्रव्य भूतार्थ है एक के लिये, दूसरे के लिये वही द्रव्य अभूतार्थ है लेकिन वस्तु न भूतार्थ है, न अभूतार्थ है। वस्तु तो जो है, सो है। भूतार्थ/अभूतार्थ तो वक्ता की दृष्टि है, श्रोताओं की दृष्टि है। एक पुरुष मामा कहला रहा है, दूसरा पुरुष भानजा कहला रहा है। एक पुरुष पिता कहला रहा है, दूसरा पुरुष बेटा कहला रहा है। पुरुष कितने हैं? और सम्बन्ध कितने हैं? एक पुरुष में अनेक सम्बन्ध हैं। ये सम्बन्ध रिश्तों के हैं, वस्तु के नहीं हैं। ये सम्बन्ध तो सम्बन्ध के हैं, ये सम्बन्ध स्वभाव के नहीं हैं। जितने सम्बन्ध हैं वे स्वभावभूत नहीं हैं। सम्बन्धों को स्वभाव मानना, यही अज्ञानधारा है। स्वभाव को स्वभाव मानना, सम्बन्ध को सम्बन्ध मानना, यह ज्ञानी की ज्ञानधारा है। **क्लेश/दुःख स्वभाव में नहीं है, सम्बन्ध में है। जितने दुःख बढ़े हैं, बढ़ेंगे, ये सब स्वभाव नहीं है। सम्बन्ध 'पर' है। जिनसे कोई सम्बन्ध नहीं था, उनके मरण पर तुझे दुःख नहीं था। सम्बन्ध होते ही रोना प्रारम्भ हो गया, हँसना प्रारम्भ हो गया, द्वन्द्व प्रारम्भ हो गया। सम्बन्ध 'बन्ध' है। बन्ध को बन्द करना है तो सम्बन्ध को बन्द कर दो। जो सम्बन्ध के बीच में भी निर्बन्ध को देख लेता है, वह बन्ध को बन्द कर देता है।** जो सम्बन्ध के बीच में निर्बन्ध को नहीं जान पा रहा है, वह न सम्बन्ध तोड़ पाता है, न बन्ध को छोड़ पाता है। जितने रो रहे हैं, रोयेंगे और रो चुके हैं, वे सब सम्बन्ध के राग में रोयेंगे। देश में कितने लोगों की मृत्यु हो रही होगी, लेकिन आप रोते क्यों दिखाई नहीं दे रहे हो? इस नगर में कितने घरों में लोग शोक मना रहे होंगे, कहीं हर्ष मान रहे होंगे, आप प्रसन्न दिख रहे हो। आप रो क्यों नहीं रहे हो? महाराज! अब समझ में आई कि रो क्यों रहे हैं? रोना नहीं चाहिये। अपने जीवन में कभी नहीं रोना न कभी सूतक-पालक लगेगा, न मिठाइयाँ बाँटना पड़ेंगी, न रोना पड़ेगा, मात्र पिच्छी-कमण्डल हाथ में

लेना पड़ेगा। भैया! विश्वास रखना, रोना है तो सम्बन्ध में है, हँसना है तो सम्बन्ध में है, आवाजें आती तो सम्बन्ध में है। नीरव सरस अनुभूति है तो सम्बन्धातीत है। जगत् में जितनी आवाजें हैं, सब सम्बन्ध में हैं। ज्ञानी! बहुत अच्छा विचार किया, जीवन में कभी नहीं रोना पड़ेगा। जो जीवन में कभी नहीं रोना चाहता हो, तो विश्वास मानना, सम्बन्धियों के बीच में रहना पड़ रहा है तो रहना, लेकिन सम्बन्धियों को अपना स्वभाव मान कर मत जीना। जहाँ सम्बन्ध को आपने स्वभाव मान लिया, वहाँ बन्ध के अभाव करने का पुरुषार्थ प्रारम्भ ही नहीं होगा।

आचार्य कुलभद्र स्वामी जहाँ चरणानुयोग की पंक्ति का व्याख्यान करते हैं, वहाँ करणानुयोग की शैली भी लगाते हैं। जहाँ करणानुयोग, प्रथमानुयोग की शैली से और ऊपर जाते हैं तो द्रव्यानुयोग की शैली में प्रवेश कर जाते हैं।

ज्ञानियो! सम्बन्ध में बन्ध है। आप लोग रो क्यों नहीं रहे हो? सारे जगत् में मरण हो रहा है फिर भी आप रो नहीं रहे हो ? महाराज! मरण में दुःख नहीं है। यदि मरण में दुःख होता, तो कितने लोग प्रतिदिन मरते हैं, लेकिन कुछ नहीं। मरण में दुख नहीं है, तो आप मुस्करा क्यों नहीं रहे हो? कितने लोगों का जन्म हो रहा है। महाराज! जन्म में भी सुख नहीं है। जन्म में सुख होता तो तेरे शत्रु के घर में बेटे का जन्म होता है तब तुम क्यों नहीं मुस्करा रहे हो?

नारायण कृष्ण का जन्म हुआ, देवकी खुशियाँ मना रही है और कंस से पूछो कि कैसा लग रहा है। जन्म में सुख है, कि मरण में दुःख है? न किसी के जन्म में सुख है, न किसी के मरण में दुःख है। जिसका सम्बन्ध जिसमें है, वहीं सुख है, वहीं दुःख है। दुःख का कारण सम्बन्ध है, राग का कारण सम्बन्ध है। जहाँ सम्बन्ध का अभाव है, वहाँ न सुख है, न दुःख है। गहरे में जाकर चिन्तन कर लो। कितने लोगों के यहाँ आनन्द मन रहे होंगे, कितने लोगों के यहाँ दिवाली मन रही होगी, कितने लोगों के यहाँ रंग बरस रहा होगा, लेकिन आपको कुछ भी महसूस नहीं हो रहा है। इस जीवन में एक दिन को इस आनन्द का वेदन करके तो देखो, सबसे भिन्न होकरके देखो। आपने जन्म के आनन्द देखे हैं, आपने मरण के दुःख देखे हैं, लेकिन जन्म-मरण से रहित एक ऐसी धारा है

जिसका आनन्द आपने लिया ही नहीं है।सम्बन्ध में दु:ख है। आज से किसी साधु के पास मत जाना। मेरे पास तो आ मत जाना ये पूछने के लिये कि मुझे सुख कैसे मिले, क्योंकि बहुत अशान्ति हो रही है? मेरे मित्र! कोई अशान्ति नहीं है। जो संबन्ध तू चाहता है, वह सम्बन्ध नहीं मिल पा रहा है, इसलिये दु:खी है। जो सम्बन्ध तू छोड़ना चाहता है, वह छूट नहीं पा रहा है, इसलिये दु:खी है। दोनों से दूर हो जाय तो सुखी-ही-सुखी है, कष्ट कहाँ है? पीड़ा कहाँ है? वेदना कहाँ है? पर सम्बन्ध में निज भाव है। बहुत अच्छा हुआ जो मार्ग में बैठकरके मार्ग को सुन रहे हैं। **दु:ख से दूर होना चाहते हो तो आज से सम्बन्ध से दूर होना प्रारम्भ कर दो। नीबू की एक बूँद दूध में पड़ते ही मधुर रस अम्ल रस में बदल जाता है, दूध फट जाता है। जो शान्ति और आनन्द का सुमन होता है, जैसे ही सम्बन्ध स्थापित होता है, सारा मधुर रस अम्ल रस में बदल जाता है।** ज्ञानियो! किसी के कहने में नहीं आना। एक का सम्बन्ध अनेक को खड़ा कर देता है। जब आपकी शादी नहीं हुई थी, पीछे बगीचे में कोई कन्या झूला झूल रही थी, उसके सिर में दर्द था, बुखार था, आपको कोई टेंशन नहीं था। कहीं उसके पिता ने तेरे साथ सम्बन्ध कर दिया, अब तुझे सूचना मिल गई कि जो कन्या पीछे झूला झूल रही है, वह तेरी पत्नि बन कर आनेवाली है, तो उसके सिर के दर्द को सुनने मात्र से तेरे सिर का दर्द हो गया। पहले सम्बन्ध नहीं था, उसके पहले उसके सिर में दर्द नहीं था क्या?

ब्रह्माण्ड में कोई जीव दु:खी नहीं है। दु:ख कोई वस्तु है ही नहीं है। जहाँ सम्बन्ध भीतर प्रवेश करा देता है, बस, दु:ख प्रारम्भ हो जाता है। **जहाँ सम्बन्ध हुआ, तभी से पीड़ा प्रारम्भ हो जाती है। शत्रु भी सम्बन्ध से ही बनते हैं, मित्र भी सम्बन्ध से बनते हैं। इसलिये अपने आप पर नियन्त्रण करना चाहते हो तो सम्बन्धों से दूर रहना प्रारम्भ कर दो।** दु:खी होना नहीं चाहते हो तो पर से सम्बन्ध स्थापित करना बन्द कर दो। चार दिन पहले आपने किसी परिवार को देखा, पूरे परिवार में मुस्कराहट थी और ज्ञानी के बेटे से शादी हुई तो ऐसी पुत्रवधू आयी कि हँसी-खुशी गायब हो गयी। अब बेचारा आँखों से आँसू टपका रहा है

कि ये क्या हुआ? कुछ नहीं हुआ। आपको पहले से मालूम होना चाहिये था। क्लेश का कारण सम्बन्ध है। आपने सम्बन्ध स्थापित किया तो घर के सारे सुख समाप्त हो गये। एक पुरुष के घर पर एक स्त्री के आते ही, सम्बन्ध होते ही, संकट प्रारम्भ हो गये। जिसने अनन्तों का सम्बन्ध बना रखा है, वह शान्ति कैसे प्राप्त कर सकता है? जिसने अनन्त का सम्बन्ध छोड़ दिया है, एक में लीन हो गया है, वही अनन्त सुख में लीन है, उसी का नाम परमात्मा है। चेहरे की प्रसन्नता अलग है, आत्मा की प्रसन्नता अलग है।

मैंने माँ को दोष दिया, पिता को दोष दिया। किसी ने बेटे को दोष दिया, किसी ने बहू को दोष दिया कि ये मेरे कष्ट का कारण है। तुम भूल चुके थे कि निमित्त बन कर तो आते हैं, लेकिन उपादान तेरा होता है। सम्बन्ध तूने बना रखे थे, दोष दूसरे को दे रहा है। किसी ने काल को दोष दिया, किसी ने क्षेत्र को दोष दिया, किसी ने पदार्थ को दोष दिया, किसी ने निज के भावों को दोष दिया कि मेरे साथ ऐसा हो गया है, अमुख व्यक्ति ने ऐसा कर दिया है। एक क्षण को इस दृष्टि को संकुचित कर लो। तुम हर व्यक्ति को शत्रु बनाने का विचार कर रहे हो। स्वार्थी जो हैं, वो भगवान् में भगवान् को नहीं देखते। **ठण्डे मस्तिष्क से निहारोगे तो एक के सम्बन्ध ने दूसरे को गाली दी। वह जीव जिसको माँ कहकर पुकार रहा था, जिस दिन तेरे घर में किसी दूसरे की बेटी से सम्बन्ध हो गया, तो जन्म देने वाली को धक्का मारकर बाहर निकाल दिया। जो अपनी माँ का नहीं हुआ, उस पर विश्वास कैसे किया जा सकता है? समझदार पत्नि होती तो कहती कि तू विश्वास का पात्र नहीं है। एक का सम्बन्ध दूसरे को धक्का देता है। परमार्थ ये कहेगा कि किसी को धक्का देना निज के भावों को ही धक्का देना है।** ध्रुव सत्य क्या है? जो सम्बन्धों से शून्य है, बन्धनों से शून्य है, निर्बन्ध है, वह अखण्ड ध्रुव आत्मा है। ज्ञान-दर्शन से सम्पन्न है। जिस स्थान पर तुम आज तक नहीं पहुँचे, उस विषय में आचार्यमहाराज चिन्तन कर रहे हैं। जिसने आज तक प्रतिमा को नहीं जाना, आज कम-से-कम आत्मा को जान लो।

जिससे आप जान रहे हो, जिससे आप देख रहे हो, लेकिन जानने वाला कौन है और देखने वाला कौन है? आँखें जान रही हैं, आँखें देख रही हैं। आपकी आँखें देखती हैं, कि आप आँखों से देखते हो? आँखों से देख रहे हैं, आँखें नहीं देख रही हैं। यदि यह विषय समझ में आ गया, तो तुम्हारी अगली गति सुधर जायेगी। आप आँखों से देख रहे हो। बराबर है। बेचारे अज्ञानियों ने क्या कर डाला? महाराज! मैंने क्या पाप कर लिया? ये पागलपन छोड़ो। आँखों ने नहीं देखा। यदि आँखें देखती हैं तो मुर्दे की आँख क्यों नहीं देखती है? आँखें बल्ब तो हैं आँखें करण्ट नहीं हैं। आँखों में करण्ट मिल रहा है आत्मा का लोगों ने क्या किया? कुछ भी मन का कर लो और कहना 'मेरा दोष नहीं है, ये तो आँखों का दोष है। आँखें चली गईं, इसलिये ऐसा हो गया है। ज्ञानि आँखें कर्त्ता नहीं हैं, आँखें करण है। आँखों से देखा तो जाता है, परन्तु आँखें देखती नहीं हैं। देखनेवाला जैसा देखना चाहता है, आँखें वही देखती हैं। इसलिये जो ये सोचे कि पाँच इन्द्रियों का भोग तो इन्द्रियाँ भोग रही हैं, मैं थोड़े-ही भोगी हूँ। इन्द्रियाँ भोगी नहीं हैं, इन्द्रियों से भोग भोगता है भोगी तो आत्मा है और परमात्मा बनेगा तो आत्मा। इन्द्रियाँ परमात्मा नहीं बनेंगी। इन्द्रियाँ तो यहीं जल जायेंगी। शरीर के संस्कार के साथ इन्द्रियों का भी संस्कार हो जायेगा। महाराज! मैं कुछ नहीं करना चाहता था।

एक ज्ञानी कहता है, महाराज! मेरा दोष नहीं है माँ ने लड्डू बनाये थे। सामने रखे थे। सो मैंने खा लिये। इसमें मेरा क्या दोष है? आँखों का जाना हुआ, माँ का रखना हुआ और हाथों का उठाना हुआ, मेरा क्या दोष? कितना साहूकार बन रहा है। इस पंचमकाल में अनेक प्रकार की मिथ्या धारणाओं का जन्म होगा, यही तो कलयुग की महिमा है कि कुछ भी पाप कर लो, या तो पुद्गल को दोष दे दो या इन्द्रियों को दोष दे दो और आत्मा को निर्दोष स्वीकार लो। इसलिये आज से ऐसा मत कहना कि आँख चली गई। आप गाड़ी पर आये हो, लेकिन इसी ओर क्यों आये? यन्त्र का काम चलना तो है, परन्तु चलाने वालाकोई दूसरा, यन्त्र का चालक जैसा चलायेगा यन्त्र वैसा चलता है। ऐसे ही ये शरीर यन्त्र है, चलानेवाली आत्मा है। ये आत्मा जैसा चलायेगी, वैसा शरीर चलेगा।

आप चार्वाक नहीं हो। भारत में चार्वाक की संख्या सम्प्रदाय के नाम पर नहीं दिखती है, लेकिन घर-घर में सर्वाधिक कोई है तो चार्वाक ही है। कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि मैं कुछ नहीं करता हूँ। शरीर से किये पाप शरीर भोगेगा, मैं तो स्वतन्त्र हूँ। ज्ञानी! शरीर ने पाप नहीं किया। शरीर तो एक सोने की पुड़िया है। कुछ लोग शरीर को गाली देते रहते हैं। ढोंगी बैरागी लोग। कुछ शरीर को रागी बनाकर बिठाये हुये हैं।

कभी भी शरीर को गाली मत देना। शरीर दुष्ट है, शरीर अनाचारी है, इन शब्दों का प्रयोग जब त्यागी करता है, तो उसके अन्दर अभी राग-द्वेष है। आपको मालूम होना चाहिये कि विष की कणिका चाहे अमृत में डालो, मारने का काम करेगी और सीधे-सीधे खिलाओ तो मारने का काम करेगी। औषधि में मिलाकर खिलाओगी तो मारने का काम करेगी, विष तो मारने का ही काम करेगा।

एक काड़ी जलाकर चन्दन की लकड़ी में लगा दो, फिर अंगुली डालना, तो वह जलायेगी कि नहीं? जलायेगी। और बबूल की लकड़ी भी जलायेगी। चाहे बेशरम की लकड़ी हो, चाहे बबूल की लकड़ी हो, चाहे चन्दन की लकड़ी हो, वह तो जलायेगी-ही-जलायेगी। उसमें अँगुली डालोगे तो वह जलेगी-ही-जलेगी। माना कि तुम्हें वैराग्य हो गया और कह रहा है कि मैं वैरागी हो चुका हूँ और घर के लोग मुझे दीक्षा नहीं लेने देते हैं। भगवान्! ये लोग कब ऊपर चले जायें सो मैं मुनि बन जाऊँ। षट्काय के जीवों की रक्षा के लिये तो मुनि बनना पड़ता है, तू पंचेन्द्रिय जीवों की हिंसा के भाव कर रहा है। जिसके घर में बूढ़े माता-पिता हों और तुम्हें वैराग्य हो रहा हो, उनको छोड़कर तो चले जाना, लेकिन यह मत सोचना कि ये जल्दी ऊपर चले जायें तो मैं मुनि बन जाऊँ। तुम्हारे पंचेन्द्रिय हिंसा के भाव बन रहे हैं, तू मुनि बन क्यों रहा है? भैया! आगम को समझने की आवश्यकता है। किसी के घर में वृद्ध माता-पिता, दादा-दादी बैठे हों, तुमसे सेवा न बने तो तुम एक किनारे बैठ जाना। तुम्हारे मन में ये भाव आ रहे हैं कि ये बूढ़ा कब ऊपर जायेगा? यहाँ रोहणी व्रत कर रही हो, पर्युषण में दस-दस उपवास कर रही हो, और इधर मन में विचार कर रही हो कि ये बूढ़ा

कब ऊपर चला जाय तो तनक साता तो मिले, जिससे धर्मध्यान करूँ। धर्मध्यान है कौन-सी वस्तु? पंचेन्द्रिय जीव को मारने के परिणाम तुम्हारे मन में आये कि जल्दी ऊपर चला जाये। वह तो अपने आयुकर्म को भोग कर ही जायेगा। तुम जितनी बार सोच रहे हो, उतनी बार पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा कर रहे हो। इसलिए आज से नियम ले लो कि घर में कोई रोगी पुरुष हो, वृद्ध हो, उनके बारे में कभी मत सोचना ये जल्दी ऊपर चले जायें। तुम तो ये सोचो कि ये मेरे लिये औषधालय है। यदि घर में कोई वृद्ध है, रोगी है, पीड़ित है, उसके सामने धैर्य बंधाने का प्रयास कीजिये 'हे जीव! सबके दिन एक-से नहीं होते।' कभी-कभी सुनो भाई! **फल की कितनी दशा होती हैं? कभी कोमल होता है, कभी कठोर होता है, फिर पिलपिला जाता है, फिर सड़ता जाता है। यह आयुकर्म का फल मनुष्य का शरीर है। पहले कोमल, फिर कठोर युवा हुआ, फिर पिलपिलाने लग गया, अब जाने के समय आ रहे हैं, नष्ट होने के समय आ रहे हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। इसलिये वृद्ध को देखकरके ग्लानि मत करो। वृद्ध को देखकरके शिक्षा ग्रहण करो।**

वैरागी कह रहा है कि यह शरीर दुष्ट है। यदि तुम लोगों के दीक्षा लेने के परिणाम हो रहे हों तो कभी बेढंग की भाषा मत बोलना कि ये शरीर तो दुष्ट है यदि तुम शरीर को दुष्ट कह रहे हो, यानि तुम्हारी गाली देने की आदत थी, अब दूसरे को नहीं दे पा रहे हो सो शरीर को दे रहे हो कि शरीर दुष्ट है, दुर्जन है। इसका इतना अशुभ भाव। घूरा जानते हो? कूड़ा का ढेर घूरा। घूरे की क्या कीमत? तू घूरे को गाली देगा क्या? **घूरे की कीमत नहीं मानोगे तो तुम्हारी थाली पर भोजन भी नहीं आ पायेगा। वही घूरा किसान ने खेतों में डाल दिया, खाद बन गया, तो गेहूँ आ गये। आप कह रहे हैं कि घूरे की कोई कीमत नहीं है। घूरे को घूरा देखो तो कोई कीमत नहीं है, खेतों में डाल दिया सो खाद बन गया। ऐसे ही देह को देखो। कोई कीमत की भूमि में डाल दो तो मुनि बना देता है और मुनि बनाकर भगवान् बना देता है।** किसी को गाली मत दो। घूरे की कीमत है कि नहीं? है। गन्ने को चूसा क्या? गाँठ न होती तो गन्ना आता

कैसे? अज्ञानी लोग रसमात्र समझते हैं। रस आया कहाँ से? उसको देखो तो। दिगम्बर साधु को निर्ग्रन्थ कहा जाता है। गाँठ फूटी तो गन्ना निकलता है, गाँठ खुली सो निर्ग्रन्थ हो जाता है। गाँठ को खोल दो, तुम सब निर्ग्रन्थ हो। जब तक गाँठ नहीं खुलती, तब तक गन्ना नहीं निकलता है गाँठ के फूटने पर गन्ने उगते हैं, ऐसे ही तुम्हारी गाँठ खुल जाये तो समरस पान होता है। उसका नाम निर्ग्रन्थ दशा है। किसी को दुष्ट मत कहना आज से।

इन्द्रियाँ अशुभ नहीं हैं। अशुभ यदि कोई है तो तुम्हारा मन है। शुभ है तो तुम्हारा मन है। देह तो स्वर्ण का सिक्का है, इसको अशुभ मत कहना। एक सोने का सिक्का, उसमें पुण्य है कि पाप? विश्व के सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान यदि कोई है तो 'जो है, सो है'। **सोने का सिक्का कहता है कि मैं तो 'जो हूँ, सो हूँ'। तो मैं तेरे हाथ में हूँ, हे जीव! तू जैसा उपयोग करेगा फल तुझे वैसा मिलेगा। ऐसे ही आयुकर्म तुझे मिला है, इन्द्रियाँ मिली हैं। वे कह रही हैं, 'हे मनुष्य! मैं तो तटस्थ हूँ। मैं न पुण्य हूँ, न पाप हूँ जो हूँ, सो हूँ। तू सारे विषय भोग करके चाहे नरक में चले जाना। तू चाहे तो मेरे से तपस्या करके सिद्ध भगवान् बन जाये। मैं न पुण्य हूँ, न पाप हूँ।** देह में पुण्य है क्या? तो पापी से कहो कि देह तुझे भी मिली हुई है। देह मैं पाप है तो इन मुनियों से कहो कि आप लोगों को भी शरीर मिला हुआ है। इसलिये आज से इन्द्रियों को दोष मत देना, शरीर को दोष मत देना, अपनी परिणति को निर्मल करना।

भविष्य की गति इस गति के हाथ में नहीं है। भविष्य की गति तेरी परिणति के हाथ में है। पुण्य/पाप तेरी परिणति में है। **एक जीव सिर में बाँधे गये फेंटे को लेकरके, कुए में डुबो करके पानी खींच कर लाये, प्यासों की प्यास बुझा दे और अरहन्त के मस्तक पर ढार करके अभिषेक कर ले। एक ज्ञानी इसी फेंटे से फाँसी लगा कर मर जाये। अब बताओ, इस फेंटे में पुण्य है कि पाप है? इसलिये वस्तु में न पुण्य है, न पाप है। दृष्टि में पुण्य है, दृष्टि में पाप है। इसलिये वस्तु को सुधारने की बात मत करो। सुधार सको तो अपनी दृष्टि को सुधारो।** वस्तु को बदलने की चेष्टा मत करो, बदल सको तो अपनी दृष्टि को बदलो। आज घर में कोई कुछ बोले तो यही बोलना कि तू मुझे मत बदलना

बदलना चाहे तो अपनी दृष्टि को बदल दो। वस्तु को बदलोगे क्या? बदलना चाहोगे तो बदल पाओगे क्या? बदल सको तो तेरी निज की परिणति को बदल दो। यदि दृष्टि बदल गई तो तेरी स्वयं की क्रिया नियम से बदल जायेगी। कहीं क्लेश नहीं है, अशान्ति नहीं है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि उस परम सत्य को देखो। आत्मा जो है, वह शरीर नहीं है। वीतरागी श्रमण, वीतरागी योगी जब ध्यानस्थ होते हैं, तब कुछ भी नहीं निहार रहे हैं। जैसे अनार के फल को जानने वाला पुरुष सामने दिख रहा कि फल लेकर आया है। जो देख रहा है, उसे छिलके नहीं दिख रहे, दल नहीं दिख रहा, बीज भी नहीं दिख रहे। मात्र रस दिख रहा है ऐसे ही ध्यानस्थ योगी को न देह दिख रही है, न इन्द्रियाँ दिख रही हैं, मात्र एक ध्रुव आत्मा नजर आ रही है। जितने शेष पदार्थ हैं, जितने शेष भाग हैं, वे मायाभूत हैं। मायाभूत का तात्पर्य समझना, ये तेरे भाव नहीं हैं, इसलिये माया है। लेकिन आप में सभी भाव हैं। भैया! कितनों के साथ आये हो? कितनों को लेकर जाओगे? कहीं मालूम चल जाय कि अमुख आत्मा दस को लेकर जायेगी तो कोई देखने भी नहीं पहुँचेगा। इतना ही बहुत नहीं है, बाकी सब कुछ ज्ञान है। आप किसी को लेकर नहीं आये थे और लेकर भी नहीं जाओगे, तो दुनियाँ को देखकर आँखों में आँसू क्यों गिराते हो? ये मेरे हैं, ये राग कौन-सी बला है? ये जानते हैं कि राग है। जब तुम्हें मालूम है कि ये राग है तो राग आग दहे सदा।

आग लगे तो ईंधन की सत्ता में लगती है और राग की आग ऐसी होती है जो ईंधन न भी हो तो भी जलती है।

महाराज ने एक सज्जन से कहा कि दीक्षा ले लो। तो कहता है—महाराज! आपको मालूम नहीं है, मेरी पत्नि मेरे बिना पानी नहीं पीती। यदि मैं दीक्षा ले लूँगा, तो उसकी मृत्यु हो जायेगी। महाराज! आप दीक्षा दोगे तो आपको हिंसा का दोष लगेगा। मैं दीक्षा ले लूँगा तो मुझे हिंसा का दोष लगेगा, क्योंकि मेरे वियोग में मेरी पत्नि की मृत्यु हो जायेगी। महाराज बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने कहा कि तू एक काम कर ले, परीक्षा तो कर ले। बोला, महाराज! आप मेरे गुरु हो। मैं आपकी आज्ञा तो पालता हूँ। परीक्षा कैसे करूँ? महाराज बोले—तुम प्राणायाम सीख लो

और जैसे-ही घर के द्वार पर पहुँचना, जोर से बोलना पेट में दर्द हो रहा है। सबसे अच्छा बहाना होता है पेट दर्द का। स्कूल से भी भागना होता हो तो पेट का बहाना बनाते हो। उसमें कोई थर्मामीटर भी नहीं लगता। द्वार पर जाकर लेट जाना। उसने ऐसा ही किया। शाम को जाकर चिल्लाया कि पेट में दर्द है और द्वार पर ही लेट गया। देवी दौड़ी आती है और कहती है कि ये क्या हो गया? इनकी तो श्वास ही नहीं चल रही है। अंथउ का समय था वो सोचती है कि अब ये तो चले ही गये। अब अभी से मैं रोती हूँ तो रात भर रोना पड़ेगा। ये जो बना कर रखा है, इसका क्या होगा? उसने अच्छा बढ़िया ठाँस-ठाँस कर भोजन किया जल्दी नहीं तो फिर भोजन मिलने वाला नहीं है। फिर सोचती है कि रात्रि भर विश्राम कर लूँ अन्यथा रात भर रोऊँगी तो तबियत बिगड़ जायेगी। सो सोने चली गई। प्रातः जब हुआ, सो सोचती है कि अरे! दुर्गन्ध आने लगेगी। लोग आ जायें तो इनकी व्यवस्था करें। लेकिन ऐसा करो कि नाश्ता तो कर ही लो। अब वह पड़ा-पड़ा देख रहा है कि ये हो क्या रहा है? मैं तो कह रहा था कि देवी मेरे बिना पानी नहीं पीती है, लेकिन ये हो क्या रहा है? बेचारा अन्दर-ही-अन्दर झुलस रहा था। पत्नि ने बढ़िया बादाम का हलुआ बनाया और इतना अच्छा डट कर खा लिया कि तीन दिन तक भी न मिले तो काम चलेगा। सब साफ करके अब चिल्लाने बैठ गई, 'अरे रे! मेरे स्वामी चले गये।' अड़ौस-पड़ौस के लोग जुड़ गये। जब विमान तैयार हो गया और सेठ जी बेचारे पड़े हुये थे। जब लोग उठाने आये, तो वह बिल्कुल अकड़ गया, द्वार के बाहर ही नहीं निकल पाये। पंचों ने कहा कि अब यह जीव तो चला ही गया है, अब एक काम करो कि अच्छे से निकाल लो तो एक जीव बोला कि अच्छे से निकालना है तो एक काम करो कि द्वार को तोड़ दो। सेठानी के कान में जैसे ही ये शब्द पड़े, तो सोचती है कि बनाने वाला तो चला ही गया, यदि द्वार को तोड़ देंगे तो बनाने कौन आयेगा? वह रोते-रोते उठ बैठी और भीतर जाकर कुल्हाड़ी उठा लाई और कहती है, 'पंचो! बनानेवाला तो जा चुका है। अब बनायेगा कौन? इनको तो जलाना ही है। आप एक काम कर लो, इनको ही काट लो।' अब सेठ सोचता है कि अभी तक तो नहीं गये थे लेकिन अब अवश्य ही चले जायेंगे। वह उठ कर बैठ गया। जैसे ही बैठा, लोग भाग गये

कि भूत आ गया, भूत आ गया। वह भी भागते-भागते महाराज के पास पहुँच गया। महाराज! मैं धोके में था। मैं तो कहता था कि देवी मेरे बिना पानी नहीं पीती है, लेकिन वह तो मेरे हाथ-पैर काटने तैयार हो गई थी। मुझे बचाओ। मैं जानता हूँ संसार की लीला कैसी है? बोला, महाराज! सब समझ में आ गया। 'अहमिक्को' मैं तो एक अकेला हूँ, शुद्ध हूँ, चिद्रूप हूँ। ये सारा जगत् स्वार्थ का है।' मेरी न मानो तो आज ही परीक्षा कर लेना, लेकिन आज नहीं करना, क्योंकि ये सब सुन कर जा रहे हैं। कुछ दिन निकल जायें, तब करना। घर जाओगे क्या? इतना सुनने के बाद भी घर जाओगे क्या? जितने बाहरी पदार्थ हैं, ये संयोग हैं और संयोग शान्ति देनेवाले नहीं हैं।

अपने जीवन में संयोगों को संयोग मानकर ही जीवन जीना, संयोगों को स्वभाव नहीं मानना। स्वभाव त्रैकालिक होता है, परन्तु सम्बन्ध छूट जाता है। जो आता है, वह जाता है। जो होता है, वह त्रैकालिक ही होता है।

सारे विश्व में यदि आपको अधिकार मिला है तो कर्तव्य का अच्छे से पालन करना। ऐसे करना जैसे दिगम्बर मुनि का कमण्डलु। **ज्ञानी! देश का संचालन करना हो तो ऐसे करना जैसे दिगम्बर मुनि का कमण्डलु। भरते बड़े मुँह से हैं, निकालते टोंटी से हैं। आय अधिक होना चाहिये, व्यय कम होना चाहिये। यही अर्थशास्त्र है, यही न्याय शास्त्र है। पुण्य के नियोग से वस्तु की प्राप्ति होना सरल है, सँभालना कठिन है वैभव मिलता पुण्य से है, सँभाला पुरुषार्थ से जाता है। जिसने सँभाल लिया, वही है सच्चा अधिकारी।**

मुझे मालूम है कि ये सिंहासन मेरा स्वभाव नहीं है, इसको भी छोड़ना होगा। इसलिये बैठे होने पर भी, पहले से ऐसे बैठो कि हटेगा भी तो मुस्करायेगा। इसलिये इस सत्य को समझ कर चलना, 'जो है, सो है'। संयोग तो संयोग है, संयोग स्वभाव नहीं है। लक्ष्य तो आत्मा के गुणों पर ही रखना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

रागादि भाव को छोड़ने का आदेश

संयोगमूलजीवेन, प्राप्ता दुःख-परम्परा।
तस्मात् संयोगसम्बन्धं, त्रिविधेन परित्यजेत्॥ सा. स. 250॥

अन्वयार्थ—ध्यान के समय योगी विचार करता है कि **संयोगमूलजीवेन** = अनादिकाल से पुद्गल के संयोग से **दुःखपरम्परा प्राप्ता** = मैंने दुःखों को प्राप्त किया है **तस्मात्** = इसलिए **त्रिविधेन** = मन-वचन-काय तीनों से **संयोग-सम्बन्धं परित्यजेत्** = इस पुद्गल का संयोग छोड़ देना चाहिए।

भावार्थ—ध्यानस्थ योगी विचारता है कि अनादिकाल से पुद्गल के संयोग से इस जीव ने अनेक दुःख प्राप्त किये हैं, अतः मन-वचन-काय के संयोग सम्बन्ध भावों को छोड़ देना चाहिए।

चिन्ता करना निरर्थक है

ये हि जीवादयो भावाः, सर्वज्ञैर्भाषिताः पुरा।
अन्यथा च क्रियास्तेषां, चिन्ताऽत्र निरर्थका॥ सा. स. 251॥

अन्वयार्थ—ये हि जीवादयः भावाः = जो जीवादि तत्त्व **पुरा** = पूर्वकाल में **सर्वज्ञैः भाषिताः**= सर्वज्ञों द्वारा कहे गये हैं **तेषां अन्यथा क्रियाः** = उससे अन्य प्रकार की क्रिया हो **चिंताऽत्र हि निरर्थका** = इस प्रकार की चिन्ता यहाँ व्यर्थ ही है।

भावार्थ-हे भव्य! सर्वज्ञ ने जो जीवादि द्रव्य कहे हैं, उनकी क्रिया अन्यथा रूप हो जाये, उनका स्वरूप बदल जाये, ऐसा चिन्तन करना निरर्थक है।

॥ सद्-देशना॥

कुलभद्र स्वामी आत्मा के भूतार्थ स्वभाव की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि हे जीव! सारे जगत् के द्रव्यों में जहाँ तेरी ममत्व दृष्टि है, एक क्षण को अपने भूतार्थ स्वरूप का वेदन तो करके देखो। मिलनेवाले कोटि-कोटि हैं, साथ में रहनेवाले कोटि-कोटि हैं पर, मित्र! साथ जानेवाला एक भी नहीं है। जो साथ

में रहते थे,वे भी साथ में नहीं हैं। जिनसे कल चर्चायें होती थीं, वे आज दिखाई नहीं दे रहे हैं। ध्यान से समझो, किसी की शाम थीं किसी की सुबह थी; परन्तु खिला हुआ पुष्प कब मुर्झा जाये, विलीन हो जाये, कोई नियत नहीं है। जबतक श्वासें हैं, तब तक कुछ ऐसा करके जाओ जिससे कि श्वासों की श्वासें श्वासवान् को समझ में आ सकें। प्राणों का वियोग नियत है। धन का संयोग-वियोग भी नियत है। जिनका संयोग है, उनका वियोग भी नियत है। उस घड़ी को निहारना जब बलभद्र नारायण तीर्थंकर कामदेव एक घर में एक कुल में एकसाथ उत्पन्न हुये हों, वे दिन कैसे होंगे? और वे दिन भी देखो कि जन्म हुआ तो जेल में हुआ, मरण हुआ तो जंगल में हुआ। जन्म के समय कोई थाली बजाने वाला नहीं मिला और मरण के समय कोई आँसू ढारने वाला नहीं मिला। सबके दिन एक-से नहीं होते। एक नारायण महापुरुष। कर्म कहता है कि मैं किसी को नहीं छोड़ता हूँ। तीर्थंकर ऋषभ देव से पूछ लेना। जिनके कल्याणक मनाने के लिये देवता आकर खड़े रहते हों, सौ-सौ इन्द्र सिर टेकते हों, कोटि-कोटि देव मस्तक टेकते हों, वे तीर्थंकर ऋषभदेव जब चर्या को घूम रहे थे, तब सौधर्म इन्द्र कहाँ चला गया था? उनका अवधिज्ञान विलीन हो गया था क्या? कर्म कहता है कि लोक के सारे सम्बन्ध, लोक की सारी विभूतियाँ, परिणामों की निर्मलता तभी तक तुम्हारे साथ है, जब तक भाग्य तुम्हारे साथ है। **भाग्य भग्न हो गया तो भगवान् भी दिखाई नहीं देते हैं। किसी को सँभालने की आवश्यकता नहीं है, किसी को सुरक्षित रखने की आवश्यकता नहीं है, किसी को मित्र बनाने की भी आवश्यकता नहीं है। यदि पुण्य तेरा मित्र है, तो शत्रु के घर में भी आपका सम्मान है और पुण्य यदि शत्रु बन गया, तो घर में भी अपमान करने वाले मिल जायेंगे। पुण्य साथ देता है तो शत्रु के घर में भी सम्मान मिल जाता है, काँटा भी कष्ट मिटा देता है और जब अशुभ कर्म का उदय आता है तो फूल भी गले में लग जाता है, फूलों की माला भी प्राण ले जाती है और पुण्य का उदय आता है तो काँटा भी काँटा निकाल ले जाता है।** इसलिये जीवन में यह कभी मत सोचना कि मेरे साथ इतने लोग हैं। जीवन में यह कभी मत सोचना कि मेरे साथ

कोई नहीं है। दुनियाँ की भीड़ लेने की आवश्यकता नहीं है। ये कभी मत सोचना कि मेरे पास सब कोई है। एक लख पूत सवा लख नाती ता रावण घर दिया न वाती। एक लाख पूत हों, सवा लाख नाती हों, अट्ठारह अक्षौहणी सेना हो, उसके साथ सब कोई था, लेकिन कोई नहीं बचा। राम के साथ मात्र तीन जंगल में गये थे, लेकिन लाखों के साथ अयोध्या लौट कर आये। दृश्यमान को देखनेवाली आँखें कोटि-कोटि हैं। सारा लोक अहंकार में डूबा है, वह दृश्यमान के राग में डूबा है, अदृश्यमान पर दृष्टि ही नहीं है। दृश्यमान को देखकर आप हर्षित हो गये, दृश्यमान को देखकर आप दु:खी हो गये। जितनी तुम्हारे पास शक्ति है, उतना दिख रहा है कि अभी कुछ-और वस्तु है। जिससे दिख रहा है, वह कोई-और वस्तु है। जो दिख रहा है वह कोई-और वस्तु है, दिखानेवाला तो दिखता ही नहीं है। जो दिख रहा है, वह दिखानेवाला होता ही नहीं है। दीवाल की घड़ी को आज देख लेना। जो चलते हैं, वे चलाते नहीं हैं और जो चलाता है, वो चलता नहीं है। घड़ी में चलते काँटे हैं, चलाता कौन है? जो चला रहा है, वह चलते नहीं दिखता और जो चलते दिखता है, वह किसी को चला नहीं रहा है। चलते काँटे दिखाई दे रहे हैं; लेकिन जिसके माध्यम से चल रहे हैं, वह किसी को दिखता ही नहीं है। सैल तो पीछे छिपी हुई है। ऐसे ही जो दुनियाँ का तुम्हें वैभव दिख रहा है, जो दिखानेवाला है वह दिखाई नहीं दे रहा है। वह तेरा पुण्य है, सैल की भाँति छिपा हुआ है। जब ये सैल निकल जाय, तो काँटे बन्द हो जायेंगे। पुण्य निकल गया तो सारी सम्पत्ति विलीन हो जायेगी। जो दिख रहा है, वह दिखानेवाला नहीं है। जो दिखानेवाला है, वह जगत् में किसी को दिखाई देता ही नहीं है। आज तक किसी व्यक्ति को जीव दिखाई नहीं दिया। जो धड़क रहा है, वह जीव नहीं है।

'यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा।'

जिस रूप को मैं देख रहा हूँ, वह जाननेवाला नहीं है और जो जाननेवाला है, वह दिखाई देता नहीं है। जो दृष्टि है, वह दृष्टव्य नहीं है। ये वेदान्त बोल रहा है, ये समयसार बोल रहा है। जो दृष्ट है, वह दृष्टव्य नहीं। जो दृष्टा है, वह दिखाई नहीं दे रहा है। जो दिखाई दे रहा है, वह देखनहार नहीं है। दिख रहा शरीर है,

देखनहार आत्मा है जो किसी को दिखाई देता नहीं है। देखनहार को देख लिया होता तो आज किसी के शरीर को देखने नहीं जाता। शरीर को देखने जा रहा है, इसका मतलब है कि देखनहार को देख नहीं पाया है।

अरे रावण! देखनहार को देख लेता तो कभी सीता का हरण करने नहीं जाता। हे लंकेश! तूने रूप को देखा। यदि तू सीता के स्वरूप को देख लेता तो तुझे सीता में भगवान् दिखाई देता। भैया! यदि तू भी रूप को देखने न जाता तो आज तू कहाँ होता? रूप को ही तो देखने गया था। जितने लोगों ने देखा, रूप को ही तो देखा। चर्म को कौन देखता है? चमड़ी को कौन निहारता है? चमड़ी की पहचान कौन करता है? हे ज्ञानियो! चमड़ी मोटी है, कि पतली है? काली है, कि सफेद है? मृतक पशु को भी लोग निहारने चले जाते हैं, चमड़ी को निहारनेवाले कौन होते हैं? एवंभूत नय कह रहा है कि आपने दूसरे की चमड़ी को देखा, उस समय तुम क्या थे? अपने चेहरे की चमड़ी को देखने के लिये दर्पण देख लिया। काँच में निहार रहे थे, अपनी चमड़ी को निहार रहे थे, इस समय भीतर का भगवान् कहता है—हे जीव! तू इतने प्रेम से चेहरे को दर्पण में देख रहा है उतने प्रेम से तू भीतर देख लेता, तो चेहरा देखने की आवश्यकता ही न पड़ती। चेहरे को देखा। 'समाधितन्त्र' ग्रन्थ में आचार्य पूज्यपाद स्वामी लिख रहे हैं। ज्ञानी! तुम गुरुओं की सेवा खूब कर रहे हो, अरहन्त की सेवा कर रहे हो, जिनवाणी को अर्घ भी चढ़ा देते हो। भाई! उन आचार्यों से तो मिलो जिन्होंने जब सारा जगत् मस्त नींद में सोता है तब योगी जाग करके तत्त्वों का चिन्तन करते हैं। जब तुम विषयों में लिप्त होते हो, तब वे योगी ग्रन्थ का लेखन करते हैं। निज में लख-लख करके ग्रन्थ लिखे हैं। इतना दे कर गये हैं, तुम उठा कर पढ़ भी नहीं सके तो जैनदर्शन की तुमने क्या सेवा की? स्वाध्याय ही सेवा है। आँखों का विषय भिन्न है और आत्मा का विषय भिन्न है। ये अद्वैत धारा है। आज का विषय पर बातों से भिन्न है; अद्वैत धारा है।

द्वन्द यानि दो और द्वन्द्व यानि द्वन्द (झगड़ा) द्वन्द को सभी जानते हैं, घर-घर में होता है। द्वन्द्व में ही द्वन्द्व है। अद्वैत में कोई द्वन्द्व नहीं है। एक सिक्का जेब में

डालकर दौड़ो, तू हजार किलोमीटर भी दौड़ेगा तो चोर की दृष्टि नहीं पड़ेगी, क्योंकि कोई आवाज नहीं आयेगी, खनकेगा नहीं। लेकिन यदि तूने पाँच-पाँच के दो सिक्के भी डाल लिये, बस, खनकना प्रारम्भ हो गया। लोक में कोई रूप को देख रहा है, कोई प्रदर्शिनी को देख रहा। जिसे तुमने जाना ही नहीं, वह सुन्दर है क्या? लोक में सबसे सुन्दर कोई है तो एकत्व-विभक्त भगवान्-आत्मा है। उसका नाम अद्वैत अखण्ड चैतन्य आत्मा है। द्वन्द्व में द्वन्द्व है। पहले व्यवहार से बात कर रहा हूँ, आप एकान्त में बैठे हो। किसी से झगड़ा नहीं है, किसी से बातें भी नहीं कर रहे हो।

यथार्थ मान कर चलना, शान्ति का जीवन जीना है तो अभी जिसका आप आनन्द ले रहे हो वही करो जब तक दो आदमी न बैठें, तब तक चैन नहीं पड़ता कि हमको तो कोई बातें करने वाला नहीं मिल रहा। यह तुम्हारी भूल है। दुनियाँ से अनन्त बार बतिया चुके हो। एक बार उससे बात कर लो जो दुनियाँ से बात करता था। उससे एक दिन तो बतिया लो। **जो निर्द्वन्द्व है, स्वयं में सम्राट है, वह निज भगवान्-आत्मा है। जितने भगवान् बने हैं, जितने भगवान् बनेंगे, वे निर्द्वन्द्व होकर ही बने हैं। जितने नरक में गये हैं, जितने नरक में जायेंगे, जितने नरक में जा रहे हैं, वे द्वन्द्व में ही गये हैं।** अभी आप कहाँ बैठे हैं? सब अकेले-अकेले बैठे हो, इसलिये आपको प्रवचन सुनने में अच्छा लग रहा है। कभी आप मित्र लेकर आओ, वह आगे पीछे हो जाय, तो आपको पीछे मुड़कर देखना पड़ेगा कि वह कहाँ बैठा है। तो आनन्द तुम्हारा भङ्ग हो गया। भगवान् की भक्ति करने जाओ, जिनवाणी करने जाओ, निर्ग्रन्थ योगी के पास जाओ, तो दो को लेकर मत जाना, तुम अकेले ही जाना। दो भले ही जायें, लेकिन तुम अकेले ही जाना। जो-जो दो के साथ आता है, वह अहमिक्को कह करके अशरीरी सिद्ध बन जाता है। अहमिक्को करना है तो अकेले होकर आना। आनन्द एक में है। आनन्द एक में ही है। जैसी बीन बजती है, वैसा साँप नाचता है। मोरों की आवाज से साँप डर कर बिल में चला जाता है। बैंड़ों की आवाज सुनकर, तबले की आवाज सुनकर साँप बिल में प्रवेश कर जाता है, क्योंकि उसको डर लगता है और बीन की आवाज सुन

करके कालिया नाग भी बिल से निकल करके नाचने लगता है। सपेरा बिल में हाथ डाल कर साँप को बाहर नहीं लाता, बामी के पास जाकरके मात्र बीन बजाता है। जब विषधर बीन की आवाज को सुनकर के नाच सकता है, तो जिनेन्द्र की वाणी को सुनकरके श्रावक का हृदय/मन न नाचे, ऐसा हो ही नहीं सकता है। अरहन्त की वाणी के लिये कहा जाता है कि वाणी खिरी। 'भगवान् बोले' ऐसा कहीं लिखा नहीं मिलेगा। भगवान् की वाणी खिरी। एक बार वीणा की आवाज कर्कस हो जाये, लेकिन वीर की वाणी कष्टप्रद नहीं हो सकती है। जीवन में ध्यान रखना, वीणा बजा करके भीड़ को इकट्ठा कर लेना सरल है, जादूगर भी भीड़ को खड़ा कर सकता है, डमरू बजाकर मदारी भी भीड़ को जुटा सकता है। वीणा तो पराधीन है। **हे श्रावको! तुम्हारी वाणी बाँस न बने, तुम्हारी वाणी 'वीणा' बन जाये।** वाणी बजती न दिखे, फिर भी वीणा बजा दे, उसका नाम वाणी है यही कारण है कि जन्मजात-विरोधी जीव नेवला और साँप एकसाथ समोशरण में बैठे हों, गाय और शेर एक घाट में पानी पी रहे हों, यह किसकी महिमा है? हे जिनेन्द्र! तुम्हारी वाणी की महिमा है। जिसने जिनवाणी को अपने हृदय में रख लिया, उसकी भगवत्ता नियत है। भव्य जीव ही भक्तिपूर्वक भगवान् की वाणी सुन सकता है। यह विश्वास मानकर चलना। विदेह में विराजमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि भरतक्षेत्र में मध्यप्रदेश में मध्यभारत में ऐसे भी जीव हैं।

माना कि नगर के सेठ का बेटा बहुत बड़े कॉलेज में पढ़ने जाये और पोजीसन बना आये और ज्ञानी जाकर उसकी पीठ ठोक दे तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है।जिस गरीब के घर में प्रकाश के लिये मिट्टी का दीपक भी न हो, पढ़ने के लिये पुस्तक भी न हो, पड़ौसी से पुस्तक लेकर आये और बाहर रोड़ पर खम्बे की लाइट पर बैठकर पढ़ता हो, ऐसा गरीब का बालक पोजीसन बना कर लाये तो उसकी पीठ ठोकना चाहिये। चतुर्थ काल का जीव तत्त्व-उपदेश सुने, मुनिराज बने, श्रावक धर्म का पालन करे, तो उनकी पीठ ठोकने की आवश्यकता नहीं है। जहाँ तीर्थंकर जैसे महान् प्राचार्य हों, गणधर परमेष्ठी जैसे शिक्षक विराजते हों, धर्म का साक्षात् फल देव आते दिखाई देते हों, ऋद्धिधारी मुनिराज हों, ऐसे काल में लोगों

को वैराग्य हो जाये, मुनि बन जाये, श्रावक धर्म का पालन करें, उनकी पीठ ठोकने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि धर्म का प्रत्यक्ष फल दिख रहा है। भारतभूमि में पंचम काल में न केवली हैं, न अवधिज्ञानी हैं, न मनः पर्ययज्ञानी हैं, न देव आ रहे हैं, न ऋद्धिधारी मुनि हैं, तब भी यह भव्य जीव मार्ग पर बैठकर मार्ग की चर्चा कर रहे हैं, तो उनकी पीठ ठोकने लायक है। इस खोटे काल में भी जिस जीव के मुनि बनने के परिणाम हो जायें तो वह प्रशंसनीय है। भैया! कोई मदारी चमत्कार दिखाये तो सिर मत टेकना। मन्त्रवादी चमत्कार दिखाये तो सिर मत टेकना। हे जीव! इस पंचमकाल में चित्त चलायमान हैं, देह अन्न का कीड़ा है। सुबह मिल जाये और शाम को न मिले तो चेहरा कुम्हलाने लगता है।

कलिकाल में चित्त चलायमान हैं, देह अन्न का कीड़ा बना हुआ है। ऐसे खोटे काल में भी जिनरूप को धारण करनेवाले नर दिखाई दे जायें तो यह पंचमकाल का चमत्कार है। जब लोग भोगों की ओर दौड़ते हैं और युवा योग की ओर दौड़ें, इससे बड़ा और क्या पंचमकाल का चमत्कार होगा? जगत् में दिखनेवाला सब लोग देख लेंगे, परन्तु जो अदृश्यमान् है, उस पर लक्ष्यपात करो। हे जीव! दीपावली के दिन बालक चकरी चला रहे थे। उस चकरी को चला कौन रहा था? वह कब तक चलेगी? आग लगने के बाद भी प्रकाश दे रही थी और लोगों की आँखों को लुभा रही थी। कब तक? जब तक उसमें बारूद है तब तक चकरी चल रही है, लोगों की आँखों को लुभा रही है, आग लगने पर भी तुमको प्रकाश दे रही है। ऐसे ही विषयों की आग लगने पर भी यह पुण्य तुमको प्रकाश दे रहा है। तुम्हारी चकरी तभी तक चल रही है, जब तक पुण्य कर्म की बारूद है। जैसे-ही बारूद समाप्त हुआ तो मात्र राख मिलती है। जीवन में ऐसी भूल मत कर लेना। ज्ञानी! यह मत देखना कि मुझे लोग देख रहे हैं। कोई नहीं देख रहा है। चलती घड़ी में दुनियाँ घड़ी देखने आती है, जिस दिन सैल खत्म हो जाये, उस दिन सब देखकर भग जाते हैं। अरे बन्द है। सेल को व्यवस्थित रखो। जब तक उसमें ताकत है, तभी तक लोग हाथ में लेकर लगा देते हैं। सेल डाउन हो जाये तो कबाड़े में डाल देते हैं।

आचार्य पूज्य पाद स्वामी कह रहे हैं कि अदृष्यमान् को देखने की बात करो। जो दिख रहा है, वही स्व स्व नहीं है। कभी-कभी जीव धोके में आ जाता है। दृश्यमान को देख करके ऊँचा नीचा सोच लेता है, अदृश्यमान को देख नहीं पाता है पद्मपुराण में आया है कि राम लक्ष्मण सीता वन में विचरण कर रहे थे। ऐसा नियोग बना कि एक व्यक्ति के यहाँ शाम को ठहरे। पत्नि धर्मात्मा थी, उसने कहा, 'अतिथि देवो भवः।' हमारे नगर में अतिथि आये हैं, सम्मान के साथ ठहरा दिया, भोजन-पानी की व्यवस्था कर दी। जैसे-ही पति आया, उसको घर में तीन जीव और दिखे। उसको बलभद्र नहीं दिखे नारायण नहीं दिखे, सीता नहीं दिखी। सत्य है, भगवान् उसी को दिखते हैं जिसकी भावना पवित्र होती है। भगवान् उसे कहाँ दिखेंगे जिसकी भावना अपवित्र होती है?

जाकी रही भावना जैसी, जिन मूरत देखी तिन वैसी। पत्थर में भगवान् नहीं होते, पता नहीं लोग पंचकल्याणक क्यों करवाते हैं? परन्तु मुमुक्षु भक्त के लिये पत्थर-पत्थर में भगवान् होते हैं। अज्ञानी के लिये, अश्रद्धावान के लिये मन्दिर की मूर्तियाँ पत्थर हैं और श्रद्धावान के लिये परमात्मा हैं। अज्ञानी के लिये गुरु मनुष्य हैं, ज्ञानी के लिये गुरु निर्ग्रन्थ (भगवान्) हैं। अज्ञानी के लिये ग्रन्थ कागज है, ज्ञानी के लिये ग्रन्थ जिनवाणी है। आस्था है तो पाषाण में परमात्मा दिखेंगे, आस्था है तो मनुष्य में गुरु दिखेंगे, आस्था है तो कागज में शास्त्र दिखेंगे। आस्था नहीं तो एक को भी कोई दिखनेवाले नहीं हैं।

उस विप्र ने आक्रोशित होकर पत्नि को ही पीट दिया और फिर तीनों के लिये अशुभ भण्ड वचन बोल दिये कि आप मेरे घर में कैसे ठहर गये? क्यों बोले? क्योंकि वह अदृश्यमान को नहीं देख रहा था, वह दृश्यमान को देख रहा था। ये तीन पुरुष हैं, इनका घर-द्वार नहीं है। **जो घर-द्वार बनाकर रहते हैं, उनका एक ही द्वार रहता है। जो घर-द्वार को छोड़कर चले जाते हैं, उनके द्वार-द्वार द्वार होते हैं। प्रतिदिन न्यौता मिलता है। जो घर-द्वार बसाकर रहते हैं, उन्हें रोटियों के चक्कर लगाने पड़ते हैं। जो घर-द्वार छोड़कर चले जाते हैं, उनको द्वारे-द्वारे पर रोटियाँ तक बुलाती हैं।** जहाँ राटियाँ बुलायें वहाँ रहना चाहिये, कि रोटियों

को बुलाये वहाँ रहना चाहिये? ज्ञानी इतना कमाता है, इतना कमाता है, फिर भी पूछना पड़ता है—'बन गई क्या?' यहाँ भो स्वामी! भो स्वामी। एक हाथ से भी नहीं कमाते, फिर भी दोनों हाथों से खाते हैं। ये बेचारे दोनों हाथों से कमाते हैं, फिर भी शान्ति से खाने को नहीं मिलता है। धिक्कार हो, धिक्कार हो।

कुछ लोग देखते हैं कि हमारे महाराज खड़े होकर खाते हैं, तो स्वयं भी बफर में खाने जाता है। यहाँ से उठाता है, वहाँ से खींचता है। तुम्हें खड़े होकर खाने का शौक ही है तो मेरे साथ चलो और फिर अच्छे से खाओ। जब तक दिगम्बर मुनि नहीं बने, तब तक बैठकर खाया करो। वात्सल्य तो गया, व्यवहार चल रहा है कि उस होटल में व्यवस्था है तुम चले जाना, खाकर आ जाना, मैं बिल भर दूँगा। वे दिन कहाँ गये? पंगत बैठी हुई है, पंच खड़े हो गये। कितना भी बड़ा आदमी होगा, हाथ जोड़कर कहता था 'भैया! भगवान् का नाम लेकरके शुरू करो।' अब तो कहते हैं कि आवश्यकता नहीं है, तुम तो दूर बैठो, मैं तो शुरू कर लूँगा। ज्ञानी! तू ही नियम ले ले। भले ही जाना पड़े, अपनी थाली लगवा लेना और दूर जाकर बैठकर खाना खाना और वहीं से देखना कि बेचारे खींच-खींच कर चीख-चीख कर खाते हैं। कोई तिर्यञ्च मर जाता है तो श्वान पहुँचते हैं, गिद्ध पहुँचते हैं, वो उधर से खींचता है, वह उधर से खींचता है। आप देखो, बफर में क्या होता है? इधर से उठाते, उधर से उठाते। सकरा जूठन तो पता ही नहीं चलता है। धन्य हो। कहाँ गया वह जैनत्व? उच्चकुल के लोग व्यस्थित होकर खाते हैं तब लगता है कि मनुष्य भोजन कर रहे हैं। अब पता ही नहीं चलता मनुष्य है कि पशु। अब आप समझो, मैं तो आपको ज्ञानी कह रहा हूँ।

याद करो उन दिनों की, तुम्हें घर से बाहर आने पर चौके में प्रवेश करने को नहीं मिलता था। माँ कहती थी बेटा! पहले स्नान करके आओ, तब प्रवेश मिलेगा। अब तो कहता है कि माँ! विकल्प मत करो, अब तो मेरे अन्दर दया नष्ट हो चुकी। जब मैं मुर्दे पर खड़े होकर भोजन करूँगा तो दया कहाँ रहेगी? जब चमड़े के जूते पैर में होंगे, हाथ में भोजन की थाली होगी, अब दया/करुणा होगी क्या? आज इस सभा में इतने ही मनुष्य बन जाओ कि जूते पहनकर भोजन नहीं केरेंगे। पंचमकाल

है, बहुत सँभल कर रहना पड़ता है। नियम तो ले लिया, 'महाराज! सिगरेट नहीं पीऊँगा,' सो बीड़ी पीने लग गये। जूते पहन कर नहीं करूँगा, सो चप्पल पहन कर तो कर लूँगा। सीधी-सी बात है न जूते न चप्पल। नंगे पैर भोजन करूँगा।

ये मातायें तो महा ज्ञानी हैं। आजकल सोले की चप्पल चलने लग गई। माँ! रसोई घर है, आप पाटा रखकर भोजन बनाओ, संस्कृति का नाश मत करो। चप्पल पहन कर रसोईघर में प्रवेश नहीं करना। ये तो है व्यवहार की बातें। अब वस्तु स्वरूप पर आओ। अब क्या करें? पंचमकाल है। अब जो है, सो है। एक समय था कि जब किसी का बालक होटल पर भोजन कर ले तो लोग देखते थे कि इनका बालक तो बिगड़ गया। एक बालक ने नियम लिया 'जब तक भिण्ड में रहूँगा तब तक आलू नहीं खाऊँगा।' वह मालूम क्या करे? जैसे-ही भिण्ड के बाहर रोड़ पर पहुँचा और खाकर आ गया। पूछा, ऐसा क्यों? तो कहता है कि मेरा नियम था कि भिण्ड के भीतर नहीं खाऊँगा। जगत् में ऐसे भी जीव हैं इसलिये ज्ञानी! वस्तु स्वरूप समझो। इन बेचारों की आँखें पोंछ लो, तुम्हारे हाथ में है। ये ज्ञानी कह रहे हैं 'महाराज! हमें तो नियम दिला दिया, लेकिन चौका ही सोले का नहीं होगा तो क्या होगा?' कितनी मातायें हैं जो चप्पल पहन कर भोजन नहीं बनायेंगी?

यन्मया दृश्यते रूपं, तन्न जानाति सर्वथा। जो रूप हमें दिखाई देता है, नहीं है। और जो ज्ञाता-दृष्टा है वह किसी की आँखों से दिखाई देता नहीं है। वह कौन है? वह जो है, सो है। वही भगवान् है। जब तक निजनाथ का अवलोकन नहीं होता, निज के भगवान् के दर्शन नहीं होते, तब तक मन्दिरों के भगवान् को पूजना और जब निज के दर्शन होने लग जायें, तब सारे विकल्पों से दूर हो जाना। परन्तु इतना सीख कर जाना कि भगवान् की भक्ति तो हम कर ही रहे हैं, आराधना कर रहे हैं, जिनालयों में पूजा कर रहे हैं, मन्दिरों में उपासना कर रहे हैं, हे जीवो! जो मन्दिरों में विराजमान हैं, वे तो बन चुके हैं, परन्तु जिनके साथ तुम रह रहे हो, वे बननेवाले हैं। कच्चा माल नहीं होगा तो पक्का माल कहाँ से आयेगा? इसलिये कच्चे माल को फेंकना मत, उनके साथ भी प्रेम से रहना। मात्र ग्रन्थों में भगवान्आत्मा को मत देखना। जो तुम्हारे साथ रह रहे हैं, उनके भीतर भी भगवान्-आत्मा को

देखना। इसलिये माताओ! कल तुमसे किसी का झगड़ा हो गया हो तो आज उनसे क्षमा माँग लेना। क्या मालूम किसकी डोली पहले निकल जाये? कोई नियत नहीं है। **हम चले जायेंगे, हमारे चले जायेंगे, मात्र इतिहास रह जायेगा। राम भी गये, रावण भी गया, परन्तु इतिहास की पोथियाँ रखी हुई हैं। जिसने जैसा किया था, वैसा नाम हो रहा है।** फोड़े को तो उपचार करवा कर ठीक किया जा सकता है, परन्तु दाग तो बन ही जाता है। तुम भगवान् तो बन जाओगे, लेकिन उस विसंवाद के कलंक को नहीं मिटा पाओगे। विश्वास न हो तो भरत-बाहुबली स्वामी से पूछ लेना। दोनों भगवान् तो बन गये, लेकिन भाई-भाई में युद्ध हुआ था, इस कलंक को नहीं मिटा पाये। कर्मकलंक मिट सकता है, लेकिन झगड़े का कलंक नहीं मिटता है। इतिहास में जब भी बात आयेगी तो दुनियाँ कहेगी कि जिनके नाम पर देश का नाम भारत है, वे भरत भी अपने सगे भाई बाहुबली से लड़े थे।

मेरे भैया! तुम छोटे भाई के साथ प्रेम से मिलकर रहना। यदि वह कोई भूमि लेना चाहे तो दे लेना, घर से निकालना चाहे तो निकल जाना, परन्तु इतना कहना अपने भैया से 'भैया! तुमको जो कुछ लेना है सब ले लो, लेकिन भाई के सम्बन्ध को मत मिटाना। यदि भाग्य होगा तो और मिल जायेगा। कैकई, राम को जंगल तो भेज सकती है, परन्तु राम को जंगल में रख नहीं सकती है। भैया निकाले तो निकल कर चले जाना, परन्तु मेरा विश्वास है तेरा भाग्य होगा तो भैया तुझे बुलाने आयेगा। भरत भी राम को बुलाने गये थे। **भूमि और धन के पीछे कषाय नहीं करना। भवन तो पुनः मिल जायेंगे, भूमि मिल जायेगी, परन्तु भावों की विशुद्धि कहीं मिलनेवाली नहीं है।** तुम्हें जो आननद आ रहा है, वह प्रवचन का आनन्द नहीं है, यह तुम्हारी भीतर की भावनाओं का आनन्द है। पर की बात में तो कभी आनन्द आता ही नहीं। आनन्द जब भी आता है तो निज की बात में आता है। बस, मेरे भैया! पुनः कह रहा हूँ, भैया से झगड़ना मत। तुम सबकुछ दे देना, लेकिन भैया कहना बन्द मत करना। तुम सबकुछ ले जाओ, मैं सबकुछ कमा सकता हूँ, पर भैया को नहीं कमा सकता।

घर नहीं जाना क्या? यदि नहीं जाना हो तो कपड़े वाले भैया से दिगम्बर भैया

बन जाओ, तो मैं अपने साथ रख लूँगा। लेकिन ध्यान रखना, भीड़ को देखकर मेरे पास मत आना। यदि आ सको तो निज के वैराग्य को देखकर आना। भीड़ को देखकर आ गये तो तुमको मेरे पास रोना ही रोना पड़ेगा। क्यों? कभी अट्टालिकाओं में संघ रुकता है, कभी श्मसान घाट पर भी रुकता है। एक बार जिस भूमि पर मुर्दे जल चुके थे, उस भूमि पर पाटा लगा हुआ था। शाम को सैकड़ों श्रावक थे, लेकिन जैसे ही नौ बजे, सब भाग गये। एक गरीब के बच्चे को छोड़ गये। सुबह बालक सोकर उठता है, कहता है, 'महाराज श्री! नमोस्तु। मेरा एक प्रश्न है। क्या गरीबों को भूत नहीं लगते? जब शाम का समय था, तब एक भी सेठ मुझे आपके पैर नहीं छूने दे रहा था, इतनी भीड़ लगी हुई थी। जैसे-ही रात्रि हो गई, सब अपने-अपने घर भाग गये, इस गरीब बच्चे को अकेले छोड़ गये। क्यों? जहाँ आपका पाटा पड़ा हुआ है, उसके नीचे देखो, मुर्दा जल चुका था। ये जमीन श्मसान की है। सामने देखो, खोपड़ियाँ पड़ी हुई हैं। मैंने कहा, ज्ञानी! तुझे मालूम होना चाहिये कि सारे जगत् में चंगा पुरुष नंगा है, उससे भूत वगैरह सब घबरा कर भाग जाते हैं। भूत-बूत कोई नहीं आते यहाँ पर। भूत भी देखता है कि जहाँ प्रसादी चढ़ने मिलेगी, वहीं तो मैं लगने जाऊँगा, लेकिन यहाँ तो कुछ भी नहीं है, यहाँ कौन मुझे पूछेगा?

मित्रो! विश्वास रखना, जो परिणाम तुम्हारे यहाँ पर हैं, ऐसे परिणाम चौबीसों घण्टे हो जायें, तो मोक्ष तुम्हारी मुट्ठी में है, कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि लोक में दु:ख की परम्परा को दिलानेवाला संयोग है। ज्ञानी! ये संयोग दु:ख का मूल है। यह घड़ी भी किसी ने तुम्हें दी थी और लेते ही तेरी हो गई। दु:ख-परम्परा का कारण संयोग है। इसलिये हे मुमुक्षु! सुखी होना चाहते हो मन, वचन, काय त्रय कोटि से, कृत-कारित-अनुमोदना से संयोग को छोड़ दो। यदि सुखी होना हो तो दीक्षा की तैयारी कर लो।

जब देवी डाँटे तो कह देना कि तेरा कोई दोष नहीं। हे जीव! दु:ख का कारण संयोग ही है। इसलिये घर में कोई डाँटे-पीटे तो उसको गाली मत देना। कह देना कि तेरा कोई दोष नहीं है, ये संयोग का ही कारण है। यदि आपको दु:ख से दूर

होना है तो संयोग से दूर हो जाओ।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी आत्म-उन्नति के उन सोपानों की व्याख्या कर रहे हैं जो जीव के कल्याण का बोध कराते हैं। संसार दु:ख का मूल संयोग है। संयोग कितने प्रकार के हैं? कोई खुशहाल पुरुष बैठा हो, आनन्द का जीवन जी रहा हो कोई आवाज लगा दे कि यहाँ साँप है, तो सारे-के-सारे लोगों की खुशियाँ समाप्त हो जाती हैं, सब उठ कर खड़े हो जाते हैं। **एक नाग की बात सुन करके आप खड़े हो गये। उसके तो मात्र कण्ठ में जहर था, बिच्छू के मात्र डंक में जहर है, परन्तु व्यसनी पुरुष के तो सर्वांग में जहर है। दुष्ट पुरुष के सर्वांग में जहर होता है। अपने जीवन में जब तुम सिंह और साँप के संयोग को लेकरके दु:ख का वेदन करते हो, तो जीवन में जो हमारे दु:ख के मुख्य बिन्दु हैं, उनको जानने की आवश्यकता है।** आज विचार करना, भारत देश में ही नहीं, पूरे विश्व में एक वर्ष में साँप ने कितने लोगों को काटा/डसा और कितने लोगों की मृत्यु हुई? बहुत कम। एक वर्ष में मनुष्यों ने कितने नागों का नाश किया है? उसकी गणना करो। साँप कभी काटने नहीं दौड़ता। वह अपनी रक्षा के लिये दौड़ता है। आज जो अहिंसा की बात होती है तो शंकर जी से पूछो, जिनके गले में नाग पड़ा हुआ हो, जिनका हार ही नाग हो और आपके गले के हार को कोई खींच ले जाये तो प्रसन्न होओगे कि रोओगे? जिस शंकर की आप आराधना कर रहे हो, पूजा कर रहे हैं, अर्चना कर रहे हो, उनके गले के हार को कोई खींच ले जाये तो तुम्हारे भगवान् खुश होंगे कि नाराज होंगे? जब नागपंचमी का दिन आता है तो सारे-के-सारे लोग बामी में पूजने पहुँच जाते हैं, दूध पिलाने पहुँच जाते हैं, तब वह परमात्मा के रूप में दिखता है और घर में निकल आये तो लाठी मारने पहुँच जाते हैं। मेरी समझ में नहीं आता है कि अहिंसा क्या है, सत्य क्या है और धर्म क्या है? घर में निकल आने पर मुस्कराना चाहिये, क्योंकि आज मेरे घर में ही आ गये हैं। आपको खुश होना चाहिये, कि लाठी उठा कर मारना चाहिये? साँप इतना गिरा हुआ नहीं होता, विश्वास रखना, साँप किसी को बिना बैर के डसता ही नहीं है। साँप इतना बैरी नहीं है जितना कि सप्त व्यसन तुम्हारा बैरी है। साँप किसी को

दरिद्री नहीं बनायेगा, साँप किसी को रोगी नहीं बनायेगा। जुआ खेलने वालों से पूछना, तुम्हारा घर-द्वार बिक गया है, यह तुम्हारी खोटी आदत ने बेचा है। हार-जीत में चाहे ताश के पत्ते हों या कोई भी खेल हो, सब जुआ है। पूरा राज्य छोड़ना पड़ गया, अपनी पत्नि द्रौपति को भी दांव पर लगाना पड़ गया। कौन हेतु था? युधिष्ठिर जैसा महापुरुष, पाँचों पाण्डव दर-दर भटकते रहे एकमात्र जुआ के कारण।

अपने देश में यदि कुछ करने की भावना आये तो सबसे पहले अपने जिले को व्यसन मुक्त रखने की भावना रखना। ईंट चूने के पुलिया पुल तो दुनिया के नेता बनाना जानते हैं, इस पुल पर चलनेवाले इंसान सुधर जोयेंगे तो पूरा ग्राम ठीक हो जायेगा। रोड़, पुलिया किसने फोड़ी? स्कूल की बेंचें किसने तोड़ी? यदि संसार पवित्र है, तो ये सारी व्यवस्थायें पवित्र हैं और संसार पवित्र नहीं है, तो आप महल खड़े कर सकते हो लेकिन पवित्रता नहीं। आज स्पर्धा इस बात की चल रही है कि मैं कैसे ईंट-चूने पर अपना नाम लिखा सकूँ। ईंट-चूने की पुलिया तो कुछ दिनों के बाद पुनः मिट जायेगी। यदि एक संस्थान का एक बालक साधु बन कर चला गया, तो जैसे आज मुस्करा रहे हो, ऐसे हरसमय मुस्कराओगे। एक-एक बच्चे के अन्दर परमात्मा बनने की शक्ति है। आज उस परमात्मा को निहारने की आवश्यकता है। जब हम जैनदर्शन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो वह कहता है कि पत्ते-पत्ते में परमात्मा बनने की सामर्थ्य है। वैदिक दर्शन को देखते हैं तो वह कहता है कि पत्ते-पत्ते में परमात्मा है। जब दोनों परमात्मा की सत्ता को निहार रहे हैं, तो एक प्रश्न है। वैदिक दर्शन कह रहा है कि हर वस्तु में ईश्वर-अंश है। यदि सभी में ईश्वर-अंश मानते हो, तो आपने किसी बच्चे के गाल पर चाँटा मारा, वह ईश्वर का अंश था कि नहीं? सो आपने किसके गाल पर चाँटा मारा? ईश्वर ने ईश्वर के गाल पर चाँटा मार दिया। एक जैनी से पूछोगे तो वह कहेगा कि सब भगवान्-आत्मा हैं जब तुम सबको भगवान्-आत्मा मानते हो, जिस गाय ने आपको दूध दिया, जिस गाय ने आपको घी दिया, जिस गाय ने आपको बछड़े दिये, उसी गाय को आपने कसाई के हाथ में बेंच दिया, ये आपने क्या किया? ऐसा भी होता है क्या? जिस माता-पिता ने आपको पालन करके इतना बड़ा किया हो, कदाचित्

ऐसा भी समय आयेगा वो वृद्ध हो जायेंगे, तो आप ये कहोगे कि अब ये किसी काम के नहीं बचे हैं, तो इनको भी.....। **संस्कारों की आवश्यकता है। एक टीचर के हाथ में पूरा देश रहता है, वो ही सुधार सकता है। कुम्भकार के हाथ में मिट्टी रहती है, वह जो आकार देना चाहे वह आकार दे सकता है। गुरु के हाथ में शिष्य होते हैं, वह जो आकार देना चाहें तो दे सकते हैं। अध्यापक चाहे तो चातुर्य दे सकता है, अध्यापक चाहे तो अति वाचाल भी बना सकता है।** आज इस भूमि में बैठ करके यह चिन्तन करने की आवश्यकता है कि हमारे जीवन का विस्तार कैसे हो? एक छोटा-सा पौधा एक लकड़ी से बाँध दिया जाता है तो वह आकाश की ओर जाता है। यदि वह शुरू से तिरछा हो गया, तो बड़े होने पर टूट सकता है, लेकिन सीधा नहीं हो सकता है। ऐसे ही आज आवश्यकता संस्कारों की है। यदि हमारे संस्कार बचपन से श्रेष्ठ होंगे तो आज हमको आनन्द आयेगा, वृद्धावस्था में वे संस्कार काम आयेंगे। जिसके बचपन के संस्कार खोटे हो गये, फिर तो जीवन की अन्तिम श्वासों तक वह दिन आपको याद आयेगा।

एक बालक ने एक पेन की चोरी की, माँ मुस्करा गई, पीठ ठोंक कर बिठाल लिया– बेटा! बैठ जा। दूसरे दिन वह बस्ता चुराकर लाया, माँ ने कुछ नहीं कहा। कुछ दिन बाद वह डाका डालना प्रारम्भ कर देता है। जब तक पुण्य का नियोग था, सो पकड़ा नहीं गया। एक दिन वह पकड़ा गया। उसको सम्राट के सामने खड़ा किया गया कि इसने बहुत चोरियाँ की हैं। उसको फाँसी की सजा सुना दी। फाँसी देने के पूर्व उस युवा से कहा गया 'बेटे! तुझे मालूम है कि ये तेरे जीवन का अन्तिम क्षण है।' अब दिखना प्रारम्भ हो गया कि मैंने पूर्व में क्या किया था? 'आपका अन्तिम क्षण है। आपको किसी से कुछ कहना हो तो कह लो, किसी से मिलना हो तो मिल लो। तुम्हारी अन्तिम इच्छा की पूर्ति की जाती है।' मालूम, बालक क्या कहता है? राजन्! जब मेरी अन्तिम विदा है ही, तो अब मैं किसी से क्या मिलूँ? परन्तु एक भाव मन में अवश्य आ रहा है कि जिसने मुझे जन्म दिया है, उससे अवश्य मिलना चाहता हूँ। उसकी माँ को वहाँ बुलाया गया ताकि माँ अपने बेटे का अन्तिम चेहरा तो देख ले। राजा भी निहार रहा था। सारे-के-सारे

लोग देख रहे थे कि माँ बेटे की क्या चर्चायें होती हैं? बेटा माँ के नजदीक जाता है और माँ बेटे के पास आती है। बेटे ने माँ के कान को काट लिया। देखने वाले सोच रहे थे कि कैसा पापी जीव है? अन्तिम श्वास के समय तो माँ के पैर छू लेता। इसने तो माँ का कान काट लिया है। वह आँख फोड़ने को जैसे ही तैयार हुआ, तो लोगों ने उसके हाथ पकड़ लिये, बोले, भाई! तू तो जा ही रहा है, माँ को अंधा क्यों कर रहा है? धीरे से कहता है—क्षमा करना ये फाँसी का तख्ता मुझे नहीं होना चाहिये, इस माँ को ही होना चाहिये। क्यों? जब मैं प्रथम दिन पैन चुरा कर लाया था, उस दिन ये माँ मुझे प्रोत्साहन न देती तो आज मैं डाकू न बनता और फाँसी के तख्ते पर न चढ़ाया जाता। जिस दिन मैं पेन चुराकर लाया था, माँ ने पीठ ठोकी थी और पीठ इतनी ज्यादा ठुक चुकी थी कि आज मैं यहाँ तक पहुँच चुका हूँ।

प्रथम पाठशाला माता-पिता हैं। बाहर के संयोग तो दिखाई नहीं देते। साँप दिख गया सो भाग गये। मन में आ रहा था कि मैं अमुख व्यक्ति के साथ छल करूँ। वह किसी को दिखाई नहीं दे रहा था, परन्तु वह संयोग सबसे खोटा था। कितने छुप-छुप कर काम किये। **पाप छुप करके किया जा सकता है, परन्तु पाप के फल को छुपा कर नहीं रखा जा सकता है। बाथरूम में जाकरके गुटका खा सकते हो, लेकिन दाँतों को नहीं छिपा सकते हो। दाँत बता ही देंगे कि तुमने गुटका खाया है।** क्या राम ने गुटका खाया था? क्या हनुमान ने गुटका खाया था? उनको मानते हो क्या आप लोग? भगवान् को माननेवालों की संख्या आज भी बहुत है, लेकिन भगवान् की माननेवालों की संख्या आज बहुत कम है। भगवान् ने सिगरेट पी थी, बीड़ी पी थी क्या? कुछ भी नहीं किया। आज ये भगवान् को तो मानने तैयार हैं, लेकिन भगवान् की मानने तैयार नहीं हैं। जो किञ्चित् भी भगवान् के भक्त हैं, वे आज प्रतिज्ञा कर लेंगे कि हम जीवन में गुटका नहीं खायेंगे? बहुत अच्छा, इतने बालक सुधर गये। **आज के संस्कार ही भविष्य में साधु बनायेंगे। पानी की एक-एक बूँद झिरते-झिरते कुआँ भर जाता है। मटके से एक-एक बूँद गिरते-गिरते एक दिन मटका खाली हो जाता है। ऐसे ही एक-एक गुण**

आते-आते व्यक्ति महान् बन जाता है और एक-एक गुण जाते-जाते व्यक्ति हीन-दीन व नारकी बन जाता है।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि दु:ख का हेतु संयोग है। अपने जीवन में कुछ करना है तो ऐसा करके जाना, अपने बेटों से मात्र इतना बोलना कि मैं आपसे कुछ भी नहीं चाहता, तू मेरी अन्तिम श्वांस तक रोटी दे सके या नहीं, पानी पिला सके या नहीं, बेटा! इतना मात्र ध्यान रखना, मैं सभी सभा में आगे बैठता हूँ, आगे बैठने के स्थान से कहीं पीछे न जाना पड़े। इतना ध्यान रखना। जीवन में ऐसा कोई काम मत करना कि तेरे काम से मुझे पीछे बैठना पड़ जाये। पाप तो मात्र पाँच हैं, व्यसन सात हैं। जुआ खेलना पहला व्यसन है। अपने घर को बर्बाद करना हो, चेहरा नीचे दिखाना हो, तो जुआ खेलना। यदि युधिष्ठिर पाण्डव जैसे अपनी पत्नि को दाँव पर न लगाना हो, तो जुआ मत खेलना। युधिष्ठिर धर्मराज कहलाते थे। पाण्डव वंश के लिये कलंक का टीका जुआ मात्र के कारण लगा था। आज भी कितने लोग रोड़ पर पहुँच चुके हैं। जिनके घर के सामने हाथी झूमा करते थे, आज भीख माँगते दिखते हैं। क्यों? महाराज! सबके दिन एक-से नहीं होते। महलों में रहनेवाले भीख माँग रहे हैं। राजा भी रंक हो गये इसी जुआ के कारण। आजकल विचित्र प्रकार के व्यापार चले हैं नाम व्यापार है, परन्तु शुद्ध जुआ है। समझ गये? शेयर बाजार, सट्टा शुद्ध जुआ है। जब व्यक्ति जुए में सब हार जाता है कंगाल हो जाता है, उनके परिणामों से पूछो कितनी विशुद्धि बनती है? घर में कुँवारी कन्या बैठी हो और सिर पर ऋण हो, उससे पूछना भोजन कितना अच्छा लगता है और नींद कितनी अच्छी आती है? **भैया! गरीबी का जीवन जी लेना, भीख माँग कर खा लेना, लेकिन किसी से ऋण लेकरके रसगुल्ला खाने का विचार मत करना। कभी दान देने के परिणाम हों, धर्म करने के परिणाम हों, कोई दान दे रहा हो तो हाथ जोड़कर अनुमोदना कर लेना, परन्तु दूसरे से ऋण लेकर दान देने का विचार मत करना। दान देने का उद्देश्य भावों की विशुद्धि होता है।** आपने जिस दिन से ऋण लिया है, वहीं भाव आते हैं कि चुकाना पड़ेगा। तनाव युक्त की मन की विशुद्धि समाप्त हो चुकी है। वह कोई धर्म नहीं है।

एक बालक कहता है कि मुझे स्नान करना है, सो वह पहले नाली में लोट गया। ऐसे ही जो व्यक्ति ऋण लेकरके या दान करने के लिये धन कमाता है, वह नाली में लोटने के बाद स्नान करने जा रहा है। कभी ऋण लेकरके दान मत करना। जो कमा कर रखा है, उसमें कीड़े न लग जायें, उसको निकाल दो। छोटे कीड़े तो धीरे-धीरे नष्ट करेंगे, बड़े डाकू वाले कीड़े उसी को उठा ले जायेंगे। इसलिये **अपने जीवन में परिणामों की विशुद्धि चाहिये है तो विषयों से अपनी आत्मा की रक्षा करना। हर जीव अपने प्राणों की रक्षा के भाव रखता है, कोई व्यक्ति मरने का भाव नहीं रखता चाहे वह कीड़ा हो, चाहे साँप हो, चाहे हाथी-घोड़ा हो। कोई जीव मरने का भाव नहीं रखता है। जब हम किसी को जीवन नहीं दे सकते हैं, तो किसी के प्राणों को लेने का अधिकार कैसे?**

आज अपने मन में संकल्प ले लेना कि जिसमें पर जीवों का विघात हुआ हो, पर जीवों का अंश भी पड़ा हो, ऐसे द्रव्य का सेवन नहीं करेंगे। **मात्र स्वयं जीवन जीना ही श्रेष्ठ नहीं है, जीवों को जीने देना भी श्रेष्ठ है। इसलिये जीवन में मात्र जीने का ही भाव मत रखो, दूसरे को जीने देने का भी भाव रखो। जैसे हम जगत् के अन्य द्रव्यों से भयभीत रहते हैं, वैसे ही अपने को विषयों से भयभीत रहने की आवश्यकता है।** आपको अपने ऊपर दया न हो तो कम-से-कम संतान पर, परिवार पर तो दया रखना चाहिये। तम्बाकू, बीड़ी, सिगरेट, गुटका आदि का प्रयोग करने वाला तड़फ-तड़फ कर मरता है, डाक्टर/वैद्य बोल भी देते हैं कि ये दो महीने का मेहमान बचा है। इसलिये अपने जीवन में उन द्रव्यों से दूर रहना है। यदि आपको अपनी पर्याय से राग है, द्रव्य से राग है, तो आप व्यसनों से मुक्त हो जाओ। यहाँ तक कि तम्बाकू बीड़ी सिगरेट की गंध सूँघने मात्र से केंसर होने लग गया है, इसलिये ऐसे लोगों से भी दूर रहना। जिनके मुख में तम्बाकू भरी हो उनसे कहना कि मैं आपसे बात तो करूँगा, लेकिन पहले मुख साफ करके आओ; क्योंकि आप तो खाकर मरोगे, लेकिन मैं सूँघकर ही मर जाऊँगा। इसलिये आप मुख साफ कर आओ। **जैसे सिगरेट का धुआँ आपके केंसर का हेतु बन रहा है, वैसे ही अशुभ भावों की परिणति दुर्गति का हेतु बन रही**

है।आत्मा की रक्षा करना है तो भावों की विशुद्धि की रक्षा करना होगी। आज मैं साधु की संगति में आया हूँ। जीवन में साधु बन सकूँ या न बन सकूँ, साधु की पहचान करने के भाव तुम्हारे मन में आयें तो कभी साधु की पहचान मत करना, बस, इतना ध्यान रखना। आपके यहाँ कोई इत्र बेचने वाला आये, आप इत्र ले सको या न ले सको, परन्तु सुगन्ध का पता तो चल ही जाता है।

साधुपुरुष को देख करके असाधु का मन भी साधु रूप होने लग जाये, यही साधु की पहचान है। जहाँ मुर्झाये मन भी प्रसन्न होने लग जायें। यथार्थ मानना ग्रहस्थ लोग घर में चौबीस घण्टे कितनी विपत्तियों में जी रहे हैं, मुझे तो कभी-कभी आश्चर्य लगता है कि जी भी कैसे लेते हैं? यदि किसी पुरुष को मधुमक्खियाँ लग जायें, ऐसे **तुम्हारे घर-ग्रहस्थी में जो चिन्तायें हैं, वे अंग-अंग पर सता रही हैं, आत्मा के प्रदेश-प्रदेश पर सता रही हैं। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो चिन्ता से मुक्त हो। मधुमक्खियाँ काटती हैं तो भागते हो, जब तुम्हारे भीतर दुःख और विपत्तियाँ दौड़ रही हों, तब भी तुम भाग नहीं रहे हो? बड़ा आश्चर्य है, तुम घर में रह कैसे लेते हो?** चौबीस घण्टे घर के तनाव का चिन्तन करने लग जाये तो पता नहीं उसका क्या हो? जब तक यहाँ बैठे हो, शान्ति का वेदन कर लो। घर जाकर वही होना है जो हो रहा था? कहीं बेटा कपड़े खींचेगा, कहीं बेटे की माँ परेशान करेगी कि कुछ कमा कर लाये कि नहीं? तुम कितने सहनशक्तिवान् जीव हो सारी विपत्तियों को सहन करते हुये भी मुस्करा भी लेते हो। जब किया है, तो भोगना ही पड़ेगा अब जो है, सो है। इसमें सन्तुष्ट होकर काम नहीं चलेगा। यदि अपनी आत्मा की रक्षा के भाव आ रहे हैं, इन विपत्तियों से दूर होना चाहते हो तो विषयों से दूर होने का प्रयास करना। **आस्था जीवन को महान् बना देती है। सम्पूर्ण विषमताओं को समता में दिखाने वाली कोई वस्तु है तो उसका नाम विश्वास है। यदि श्रद्धा-विश्वास पवित्र है तो।**

एक पुरुष, जिसके घर में खाने को दाना भी नहीं था, पहनने को वस्त्र नहीं थे, जंगल में लकड़ी काटा करता था और अपना पेट भरता था, एक दिन लकड़ी लेने जंगल पहुँचा। वहाँ एक महात्मा को देखा, सोचा कि लकड़ी तो मैंने बहुत

काटी है, चलो, पहले महाराज के दर्शन कर लें। ऐसे भाव करके मुनिराज के चरणों में सिर टेकता है, नमस्कार करता है, हे स्वामी! मेरे जीवन में क्या ये कुल्हाड़ी ही हाथ में रहेगी? क्या लकड़ी ही काटता रहूँगा? **ध्रुव सत्य है, जिसके पास जैसी भावना रहती है, वैसा ही होता है। सारी दूरियाँ तब-तक हैं, जब-तक विश्वास नहीं है। जब विश्वास हो जाता है, तब विश्व की सारी दूरियाँ समाप्त हो जाती हैं।** वह पढ़ा-लिखा नहीं था, लेकिन ध्यान रखना, श्रद्धा में पढ़ाई-लिखाई का कोई स्थान नहीं है। विश्वास में पण्डिताई नहीं चलती है, विश्वास में तो आस्था चलती है और आस्थावान भव से पार हो जाता है। उस लकड़हारे ने महाराज से कहा, 'स्वामी! मेरे पास कुछ नहीं है।' महाराज ने कहा, 'भैया! ये लकड़ी काटना बन्द कर दो। उसके कहा, 'मेरी बुद्धि तो चलती नहीं है, मैं करूँगा क्या? एक ही उपाय है, लकड़ी ले जाओ।' **जो सरलहृदयी पुरुष होते हैं, उनको एक क्षण का उपदेश कल्याण का हेतु बन जाता है।** उसने कहा, 'आपका जैसा आदेश हो।' बेटा! तुम हरी लकड़ी मत काटना। इसमें जीव होते हैं। सूखी लकड़ी जहाँ मिल जाये उसे ले जाकरके अपना व्यापार करना। 'जो आपकी आज्ञा।' महाराज को करुणा आ गई। उन्होंने कहा, 'लकड़ी बेचना, परन्तु जब लकड़ी बेचना तो एक मन्त्र बोलना 'णमो अरिहन्ताणं'। पूरा मन्त्र भी नहीं सीखा, मात्र इतना सीखा 'णमो अरहंताणं'। भक्त को लगन लग जाये तो एक बार भगवान् फेल हो जाये, लेकिन भक्त फेल नहीं होता। उसने लकड़ी बीनकर गट्ठा बना लिया। उसके मन में भाव था कि जीवन में पहली बार तो गुरु मिले हैं, गुरुमन्त्र मिला है, यदि मन्त्र भूल गया तो जीवन में कुछ नहीं बचेगा। एक ज्ञानी ने पूछा 'लकड़ी बेचेगा क्या?' वह बोला 'णमो अरिहन्ताणं।' कितने की बेचेगा? 'णमो अरिहंताणं।' उनने सोचा कि कोई धर्मात्मा जीव है। वह रोज तो दस रुपये की बेच कर आता था, ये खुश होकरके पचास का नोट देकर आ गया। जब घर पहुँचता है, तो देवियों की तो आदत होती है, पूछा— लकड़ी बेंच आये क्या? वह कहता है—णमो अरिहन्ताणं। णमो अरिहंताणं सुन कर जब जेब में पैसे देखे तो खुश हो गई। **गरीबी के दिन में जब पैसा आ जाये तो उसी दिन दशहरा, उसी दिन दीपावली, उसी दिन**

होली। गरीबी में वे पर्व के दिन होते हैं जिस दिन भरपेट खाने को मिल जाये। वह खुश हो गई। रोज दस रुपये लाते थे, आज पचास लेकर आये हैं। कुछ अच्छा बनाकर खिलायेंगे इनको। उसने अच्छा-सा भोजन बनाया और पूछा 'कैसा लगा?' कोई अच्छा काम करके आये, जब तक पूछे न, सबसे बड़ी कमी क्या है, ज्ञानी! पेट भर जाये, लेकिन कान नहीं भरते। अपनी प्रशंसा सुनने में किसी को थकान नहीं आती। वह भी सोचती है कि मैंने इतना अच्छा भोजन बनाया है, कम-से-कम इनको बोलना तो चाहिये कि अच्छा बना है। 'स्वामी! कैसा बना?' बोला—णमो अरिहंताणं। एक बार सुन लिया, दो बार सुन लिया, अब उसको गुस्सा आ गई कि पहली बार तो मैंने खीर बनाई है, ये कुछ बोलते नहीं उसने गुस्से में चूल्हे से जलती लकड़ी (लूहर) निकाल कर उसके सिर में मार दी। तब भी वह कह रहा था णमो अरिहंताणं। जैसे ही णमो अरिहंताणं बोला, जितने कोयले बिखरे थे, मोती बन गये। पड़ौसी ने पूछा कि तुम्हारे पति तो लकड़ी बेंचते थे, आज इतने धनपति कैसे बन गये वह कहती है—बहिन! कुछ मत पूछो। बात ऐसी थी कि मैंने पूछा भोजन कैसा बना? तो वो बोले णमो अरिहंताणं। मुझे गुस्सा आयी। मैंने एक लूहर मारा, सो वे मोती बन गये। पड़ौसन कहती है—बहन! तुमने अच्छी सिखाई। अब पड़ौस की देवी कहती है— स्वामी! एक काम करो, तुम लकड़ी लेने जंगल जाओ। अब बेचारे ने कभी लकड़ी नहीं काटी थी, फिर भी गया। और कह दिया कि णमो अरिहंताणं बोलना। अब वह सिर पर लकड़ी रखे बाजार गया। कोई उसकी लकड़ी खरीदे न। लकड़हारे का रूप भी तो दिखना चाहिये। लोग सोचें कि यह खरीद कर ले जा रहा होगा। जैसे-तैसे बिकी, शाम को घर पहुँचे। देवी पूछती है—'लकड़ी बेंच आये?' तुझे लकड़ी दिख रही है, मेरे पेट में चूहे लोट रहे हैं। नहीं-नहीं, बोलो णमो अरिहंताणं। लकड़हारे ने तो पतली लकड़ी रखी थी, इसने मोटी लकड़ी रखी थी ताकि और अधिक रत्न निकलना चाहिये। पूछा—भोजन कैसा लगा? वह बोला कि नमक है ही नहीं। वह बोली 'बोलो णमो अरिहंताणं'। जैसे ही उसने बोला, सो लकड़ी उठाकर सिर में मार दी। सेठ जी चले गये, उनके तो प्राण निकल गये। क्या हुआ बहिन? वह बोली—मेरे स्वामी

को गुरुमन्त्र मिला था, तुम्हें नकल मिली थी। तुझे पता नहीं था कि जहाँ श्रद्धा थी, वहाँ मोती हो गये और जहाँ श्रद्धा नहीं थी, वहाँ पति का वियोग हो गया। इसलिये ज्ञानियो! ये अन्दर का विषय है। अपने जीवन में आस्था और विश्वास को बनाकर रखना, ऐसे ही धर्म में लगे रहना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कर्मबन्ध का कारण

यथा च कुरुते जनतुर्ममत्वं विपरीतधीः।
तथा हि बन्धमायाति, कर्मणस्तु समन्ततः॥ सा. स. 252॥

अन्वयार्थ—विपरीतधीः जन्तुः = विपरीत बुद्धिधारी मानव **यथा च ममत्वं कुरुते** = जैसे-जैसे पर पदार्थ में ममता करता है **तथा हि तु समन्ततः कर्मणः बन्धं आयाति** = वैसे-वैसे यह सर्व ओर से कर्म के बन्धको प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे भाव्यात्मन्! अज्ञानी जन जैसे-जैसे पर पदार्थों से ममत्व करता है, वैसे वैसे सर्व तरफ से कर्म के बन्ध को प्राप्त होता है।

स्वहित से पराङ्मुख

अज्ञानावृत्तचित्तानां, रागद्वेषरतात्मनाम्।
आरम्भेषु प्रवृत्तानां , हितं तत्र न भीतवत्॥ सा. स. 253॥

अन्वयार्थ—अज्ञानावृत्तचित्तानां = जिनका मन अज्ञान से ढका हुआ है **रागद्वेषरतात्मनाम्** = जो राग-द्वेष भावों में रत हैं **आरम्भेषु प्रवृत्तानां** = जो संसार के आरम्भ करने में लग रहे हैं **हितं तत्र न भीतवत्** = वहाँ उनका हित नहीं हो सकता है, जैसे कायर का हित नहीं हो सकता है।

भावार्थ—हे ज्ञानी! अज्ञान से आच्छादित चित्तवाले, राग-द्वेषादि भावों में लीन और संसार के आरम्भ में प्रवृत्त मानवों का इस लोक में हित नहीं हो सकता, जैसे कायर का युद्ध में कल्याण नहीं हो सकता।

॥ सद्-देशना ॥

हम सभी अन्तिम तीर्थेश भगवान् वर्द्धमान स्वामी के शासन में विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की मंगल पीयूष वाणी मनीषियो जगत्कल्याणी है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मा के स्वभाव की अलौकिक व्याख्या कर रहे हैं।

हे भव्यात्मन्! परपदार्थों का ममत्व कर्मबन्ध का कारण है और कर्मबन्ध दु:ख का कारण है। ममत्व भाव ही संसार में परिभ्रमण कराता है। परपदार्थों से ममत्व हटाकर अपनी अन्तरात्मा में निवास करो।

हे ज्ञानी! आत्मा का आश्रय प्राप्त करके आत्मिक सुख प्राप्त करो। **परपदार्थों में जितना-जितना चित्त भटकेगा, उतना-उतना चित्त चलायमान होगा और चित्त चलायमान होते ही चारित्र से च्युत होकर भ्रष्ट हो जायेगा। आत्माश्रय ही श्रेष्ठ है, आत्मनिवास ही परम कल्याणकारी है।**

ज्ञानियो! हमारे जीवन के वे क्षण पावन और पवित्र होते हैं जिन क्षणों में साधु-पुरुषों का संयोग मिला करता है। राम के आदर्शों ने सारे विश्व को अपनी ओर खींच लिया है। **व्यक्ति का नाम महान् नहीं होता, व्यक्ति का काम महान् होता है। भारतभूमि विश्व में पूज्य है। वह धन के कारण महान् नहीं है, वह वैभव के कारण महान् नहीं है। इस भूमि ने सारे विश्व को अध्यात्म दिया है। जीव को जब शान्ति चाहिये पड़ती है, तब वह भारत की ओर दौड़कर आता है। लोग तीर्थ बनाया करते हैं, लेकिन इस देश का कण-कण तीर्थ है। जितने महापुरुष हुये हैं, सब भारत की भूमि पर हुये हैं।** विदेश में न कोई तीर्थंकर हुये, न बलभद्र राम नारायण आदि हुये। इन सभी ने भारत की भूमि को ही पवित्र किया है। यही कारण है कि विश्व में जब-जब आत्मा की बात होगी, धर्म की बात होगी, शान्ति की बात होगी, तब लोगों को समझ में आता है।

चम्पतराय एक बहुत बड़े बैरिस्टर हुये। वे विदेश में रहते थे। जब विदेश से भारत लौटे, तो यहाँ के युवाओं से कहते हैं—यदि आपको जीवन जीना है तो विदेश चलना चाहिये। जब चम्पतराय जी की मृत्यु का समय नजदीक आया, तो वे वापस भारत आ गये। हर समय यही कहा करते थे कि जीवन जीना है तो विदेश जायें। फिर आप भारत क्यों आये? मैंने ये ही तो कहा था कि जीवन जीना है तो विदेश जाइये, परन्तु मैंने ये कब कहा था कि मरना हो तो विदेश जाइये? संसार का वैभव तो विदेश में मिल सकता है, लेकिन अन्तिम श्वास के समय परमात्मा के दर्शन तो भारत की भूमि में मिलेंगे। व्यक्ति का जन्म कहीं भी हो, यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। अयोध्या में आदिनाथ हुये, अयोध्या में राम का जन्म हुआ। आज विश्व में

बच्चे-बच्चे को मालूम है कि राम नाम की कोई वस्तु है, आदर्श का जीवन। यदि महान् बनना है तो कष्ट सहन करना पड़ेगा। जो कष्टों से भयभीत हो जाता है वह कभी महान् नहीं बन सकता।

श्री राम से पूछना, आपके पिता ने आपको जंगल भेज दिया, उस समय आपके मन में भाव क्यों नहीं आया कि ज्येष्ठ पुत्र मैं हूँ, राज्य का अधिकार मेरे लिये है? राम ने अधिकार को नहीं देखा, राम ने कर्तव्य को देखा, इसलिये सारा विश्व राम का नाम ले रहा है। राम वन गये, सो राम बन गये। जो-जो बनेंगे, सब वन गये। जीवन में बनना है तो वन जाना ही पड़ेगा। सुग्रीव अपने नगर में निहार रहा था और लंकेश सीता का हरण कर ले जा रहा था, उस समय सीता ने 'हे राम' कह कर अपने वस्त्र-आभूषण छोड़ दिये। राम सीता की खोज में जा रहे थे, जब सुग्रीव के यहाँ पहुँचते हैं, तब सुग्रीव ने कहा हे स्वामी! एक अबला बिलखती हुई विमान में जा रही थी। उसने अपने आभूषण छोड़ दिये हैं। राम ने लक्ष्मण को दिखाये कि देखो ये आभूषण किसके हैं? ये कण्ठ का हार क्या सीता का है? लक्ष्मण की आँखों में आँसू थे। भैया! मैं नहीं बता सकता हूँ कि ये माँ सीता के कण्ठ का हार है। क्यों? लक्ष्मण! तुम मेरे साथ चौबीस घण्टे रहे हो, तुमने सीता की सेवा की है तुम्हें ये मालूम नहीं कि ये कण्ठ का हार किसका है? युवाओ! ध्यान से सुनना बात गहरी है। लक्ष्मण कहते हैं—भैया! मैंने माँ के कण्ठ को नहीं देखा, मैंने माँ के चरणों को देखा है। माँ के नूपुर मैं बता सकता हूँ, बिछुये बता सकता हूँ, क्योंकि मेरी आँखें माँ के चरणों तक ही गई हैं, कण्ठ तक नहीं गई। यह वह भूमि है जहाँ भाभी को माँ की दृष्टि में देखा जाता है। यह वो भूमि है स्व की वैदेही मात्र पर पत्नि भाव है, जगत् की शेष नारियों पर माँ और बेटी भाव है। उसका नाम है भारत की भूमि।

दशहरा के मैदान पर जा करके हमने कितने रावण के पुतलों का दहन किया है? लेकिन मित्रो! आज रावण होता तो वह कहता सुनो! एक पुरुष ने चोरी की तो उसको फाँसी की सजा घोषित कर दी। उससे पूछा कि उसकी अन्तिम इच्छा क्या है? उसने कहा कि मेरे फन्दे को जो भी खींचे, वो ऐसा पवित्र हाथ होना

चाहिये है जिसने जीवन में कभी चोरी न की हो।

सम्राट कहता है कि इसकी अन्तिम इच्छा तो पूरी करनी ही पड़ेगी। सारे अधिकारी कहते हैं 'मैं तो नहीं खींच सकता हूँ।' क्यों? 'महाराज' मैं भी कुछ कर लेता हूँ।' जब बाद में राज्य के मन्त्री बचे, तो राजा ने कहा, आप तो मेरे राज्य के प्रधानमन्त्री हो, आप तो खींच सकते हो? नहीं, स्वामी! मैं भी नहीं खींच सकता हूँ।

जी के राज में रहियो, ऊके जैसी कहियो।
ऊँट बिलइया ले गई, सो हाँजू हाँजू कहियो।

अरे! बिल्ली कभी ऊँट को ले जा सकती है क्या? मुझे क्या करना, मुझे तो जीवन जीना है इसलिये जैसा तुम कहलवाना चाहते हो, वैसा कह देता हूँ। मैं भी कभी-कभी आपको कर नहीं देता हूँ। इसलिये मैं तो फंदा नहीं खींच सकता हूँ। वहाँ राजगुरु भी बैठे थे राजा बोले, 'आप तो खींच सकते हो? आप तो मेरे देश के गुरु हो। आपके हाथ अपवित्र कैसे हो सकते हैं?' राजगुरु कहते हैं 'महाराज! मैं इसके साथ छल नहीं कर सकता हूँ।' क्यों? इसकी अन्तिम इच्छा है। दक्षिणा के राग में मैं जो मुहूर्त नहीं होता वह भी निकाल देता हूँ। चोर धीरे-से मुस्करा कर कहता है—महाराज! जल्दी करो। आप देर क्यों कर रहे हो? सबने कहा कि आप तो हमारे देश के सम्राट हो, रक्षक हो, प्रजापालक हो, आप ही फंदा खींच दीजिये। राजा के हाथ काँपने लगे। मैं नहीं खींच सकता। क्यों?

जाके राज की प्रजा दुखारी, सो राजा नरक अधिकारी। जिसके राज में प्रजा दु:खी होती है, वहाँ का राजा नरक का अधिकारी होता है, ऐसा तुलसी दास जी ने कहा है। मुझे प्रजा का पालन पुत्र के समान करना चाहिये, परन्तु मैं भी अपने घर को पहले देखता हूँ, प्रजा को बाद में देखता हूँ। इसलिये इसका फंदा कैसे खींच सकता हूँ? वह डाकू कहता है कि महाराज! जब कोई खींचने की सामर्थ्य नहीं रखता, तो आज तो समझ में आ गया कि चोर-चोर मौसेरे भाई, तो मुझे ही फाँसी क्यों लगा रहे हो? राजा कहता है भैया! उतर आ। तूने तो सबके पर्दा खोल दिये।

आज रावण होता तो आपसे बोलता कि मेरे पुतले को जलाने जा रहे हो तो

कम-से-कम ऐसे पवित्र हाथों से जलाना चाहिये है जिसने किसी पर नारी को न देखा है।

रावण का पुतला जलाने का क्या कारण है? सत्यता यह है कि भारतदेश अहिंसक देश है। यह किसी के पुतले को नहीं जला रहा है, ये रावण का नाश नहीं कर रहा है यह राजसिक वृत्ति का नाश कराने के लिये जला रहे हैं। उसने अपने राम की पत्नि का हरण किया था और सीता के हरण करने वाले का पुतला जलाना ही चाहिये। **मित्र! रावण आपसे कह रहा है कि मैंने एक सीता का हरण किया सो मेरी यह दुर्गति हो रही है, आज तक पुतला जल रहा है, अब मैं तुमसे पूछ रहा हूँ कि तुमने कितनी सीताओं को छुप कर देखा है, तुम्हारे पुतले का क्या होना चाहिये?** बेचारा कह देगा कि मैं ही अकेला आप सबको मिलता हूँ। मेरे पुतले को दियासलाई लगाने के लिये वह हाथ होना चाहिये जिसने स्वप्न में भी कभी परस्त्री की ओर दृष्टि न फेंकी हो। अब जलाने के पहले सोच लेना।

यह यथार्थ मानकर चलना कि ये महापुरुष थे, इन्होंने किसी का घात नहीं किया है, इन्होंने राक्षसवृत्ति का अभाव किया है और अपने जीवन में एक आदर्श देकर गये हैं कि जब-तक ये युग चलेगा तब-तक महापुरुषों को कोई भूल नहीं सकेगा। यही कारण है कि जीवन में जब-जब आदर्शों का नाम आता है, तीर्थंकर महावीर जब तुम्हारे सामने आते हैं, तो भगवान् की भक्ति भी तुम्हारे सामने दिखाई देने लगती है। नल-नील ने पुल बाँधा था। कभी -कभी भगवान् ढक जाते हैं, भक्त बहुत ऊपर चला जाता है। पुल बनाते समय नल-नील एक-एक पत्थर पर श्रीराम लिखकर छोड़ रहे थे। श्री राम के मन में आया कि मेरे भक्त बहुत मेहनत कर रहे हैं, उनका साथ दे दूँ। उन्होंने कहा, 'नल! एक पत्थर मैं भी फेंकूँ?' वह बोले, 'आप मेरे आराध्य हो। यदि यह पत्थर डूब गया तो हँसी हो जायेगी?' श्री राम बोले, 'भक्त का पत्थर तैरे और भगवान् का पत्थर डूबे, ऐसा होता है क्या?' स्वामी! मेरा विश्वास मानो, वह डूब जायेगा। यदि आपका पत्थर डूबता है तो पहली ताली मैं ही बजाऊँगा। जैसे-ही राम ने पत्थर फेंका, पत्थर डूब गया। जब आप साइकिल चलाते थे तो गिरे भी थे। जब गिरते थे तो यह नहीं देखते थे कि कहाँ छिला,

कहाँ लगी? ऐसे-ही श्री राम पीछे देखते हैं कि कोई देख तो नहीं रहा। हनुमान ने देखकर ताली बजाना प्रारम्भ कर दी, आपका पत्थर डूब गया। बोले, आपने कुछ लिखा था कि नहीं? आप वह भी लिखोगे तब भी डूब जायेगा। मैंने अपने पत्थर पर लिखा था श्री राम। मेरा ही पत्थर, मेरा ही नाम, तब भी मेरा पत्थर डूबता है क्या? हाँ, डूबेगा। जैसे ही श्रीराम लिख कर पत्थर छोड़ा, तो वह भी डूब गया। समझो, बात गहरी है, जो प्रभु के हाथ से छूट जाता है, वह डूब जाता है, लेकिन **जिसके हृदय में प्रभु का नाम होता है, वह भवसागर से पार हो जाता है। इसलिये संसार से पार होना है तो परमात्मा के चरणों में आस्था की आवश्यकता है।** लेकिन प्रभु के चरणों तक ही रहना, प्रभु के सिर पर नहीं पहुँचना। जो सच्चा भक्त रहता है, वह प्रभु के चरणों मात्र में ही रहता है और चरणों के प्रसाद से अपना कल्याण कर लेता है।

जीवन में इतना ध्यान रखना, जो लक्ष्मण ने आदर्श प्रदान किया था कि मैंने माँ सीता के चरणों को देखा है, मैंने सीता के कण्ठ को नहीं देखा है। युवाओं से कहना है जिस गाँव की इतनी ख्याति हो रही है, वहाँ आपको इतना भी ध्यान रखना है कि लोग कहें कि जिले में व्यसन मुक्त कोई गाँव है। एक महाराज विशुद्धसागर नहीं, यहाँ के तो एक-एक घर में विशुद्धसागर हों। इसलिए अपने जीवन में सत्य को संजोकर रखना।

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ने इस भारत वसुन्धरा पर अद्भुत अध्यात्म विद्या का सूत्रपात किया है। ऋषियों ने क्षत्रियों से प्रश्न किया कि बिना किसी वस्त्र के, बिना किसी आलम्बन के निर्वस्त्र होकरके आप वासनाओं पर विजय कैसे प्राप्त करते हो? आज बहुत अच्छे प्रश्न आये हैं। खुशी इस बात की है कि वेदान्त को पहचानने वाले लोग आज भी हैं। वे क्षत्रिय थे कौन? जंगलों में जो ऋषि रहते थे, उन्होंने क्षत्रियों से प्रश्न किया 'मैं जानना चाहता हूँ कि बिना वस्त्र धारण किये, बिना चरस का सेवन किये, बिना गाँजा-अफीम आदि का सेवन किये आप अपने आप को विश्वास का पात्र कैसे बनाये हो? विश्व में किसी का विश्वासपात्र हो लेना कठिन नहीं है। इसलिये नहीं है, क्योंकि दूसरा तुम्हारा बहिरङ्ग देखता है, दूसरा

तुम्हारे भावों को नहीं देखता है। दूसरा भेष को देखकरके सिर टेकता है; लेकिन स्वयं के द्वारा स्वयं का विश्वासपात्र हो जाना, यह विश्व में सबसे बड़ा विश्वास है। हर व्यक्ति के सामने कोई भी सिर टेक सकता है। पर के द्वारा सिर झुकवा लेना कठिन नहीं है, लेकिन स्वयं के द्वारा स्वयं के प्रति श्रद्धा को जन्म दे पाना बहुत कठिन है। कौन सत्य है, कौन झूठ है? इसका बोध अन्य के ज्ञान में नहीं होता है। इसका बोध स्वयं के ज्ञान में होता है। एक छोटा-सा बालक भी, उसके अधोवस्त्र को खींचो तो वह भी पकड़ लेता है, उसको शर्म लगती है। उस बच्चे को दूसरा भी देखना पसन्द नहीं करता है। हे योगियो! आप निर्वस्त्र जीवन व्यतीत करते हो, आप किसी को नंगे दिखाई नहीं देते हो। यह ध्रुव सत्य है कि जो वासनाओं से भर कर कपड़ा उतारता है, वह नंगा होता है; जबकि जो वासनाओं को उतार करके कपड़ा उतारता है, उसका नाम दिगम्बर योगी होता है। वस्त्र उतार देना कठिन नहीं है।

संस्कृत साहित्य में जो कालिदास का नाम आता है वहीं दिगम्बर जैन परम्परा में जिनसेन स्वामी का नाम आता है। जब कालीदास ने 'मेघदूत' ग्रंथ लिखा तो एक शर्त रखी गई कि जैन समाज के पास भी ऐसा कोई ग्रन्थ है क्या? जिनसेन स्वामी ऐसे आचार्य हुये हैं जो पुरानी परम्परा को याद दिलाते हैं कि दस वर्ष का बालक ऐसे ही गलियों में नंगा घूमता रहता था। आज उम्र कम हो गई, सो वासनायें जल्दी प्रारम्भ हो गई हैं। एक समय था कि बच्चे यूँ ही घूमा करते थे। जिनसेन स्वामी ऐसे ही धूल में खेल रहे थे। गुरु निकले, बोले, 'बेटा! मेरे साथ चलेगा?' बोला, 'हाँ, महाराज!' उनको तो कपड़े भी नहीं उतारने पड़े, मात्र संस्कार कर दिये। वे तो जन्म से ही मुनि-जैसे थे। जिनसेन स्वामी के पास जब कालिदास के यहाँ से समाचार आये कि तुम्हारे पास कोई साहित्य नहीं है, तो जिनसेन स्वामी ने सात दिन के अन्दर 'पार्श्व अभ्युदय' ग्रन्थ लिखा। 'मेघदूत' प्रसिद्ध साहित्य है, उसमें मात्र इतना वर्णन है कि आकाश में बादलों को दूत बना कर पत्नि के पास तक भेजा गया है और इतना बड़ा साहित्य लिख दिया। ऐसे ही 'पार्श्व अभ्युदय' ग्रन्थ में जिनसेन स्वामी ने लिखा कि भगवान् पारसनाथ अहिक्षेत्र में खड़े हुये हैं। उनके

ऊपर उपसर्ग करने कमठ आ रहा है। कमठ ने मेघों को दूत बनाकर भेजा हुआ है। इस बात पर जिनसेन स्वामी ने महाकाव्य लिख दिया। मेघदूत और पार्श्व अभ्युदय में समन्वय क्या है? एक-एक चरण जिनसेन स्वामी का स्वयं का है और एक चरण मेघदूत का है। ये कवियों की कला है। उन जिनसेन स्वामी (द्वितीय) ने हरिवंश पुराण लिखा, उसमें लिखा है–

अक्षरस्यापि चैकस्य पदार्थस्य पदस्य वा।
दातारं विस्मरन् पापी किं पुनर्धर्मदेशिनम्॥

जो एक अक्षर को देनेवाला हो, एक पद को बतानेवाला हो, वह धर्म गुरु भी आपका शिक्षा गुरु है। जिसने आपको पूरे ग्रन्थ पढ़ा दिये हों, उसका नाम भूलना अच्छी बात नहीं है।

जब क्षत्रियों के सामने प्रश्न किया 'मैं जानना चाहता हूँ कि वह कौन-सी विद्या है जिस विद्या के बल पर आप निर्वस्त्र होकर जी रहे हो?' वे धीरे-से कहते हैं कम्बल पहन कर बहुत कुछ छुपाया जा सकता है। कम्बल विलीन कर बहुत कुछ चुराया जा सकता है। बाहर किसी का डाका डाले या न डाले, परन्तु भीतर के भावों का डाका तो डाल ही लेता है। परिणामों का डाका जो भी व्यवस्था विश्व के शासन की है, पापियों के लिये कोई जेल नहीं है। **आज तक विश्व में किसी भी शासन ने पापी को पकड़ा ही नहीं। यदि पकड़ा है तो अपराधी को पकड़ा है। जो शरीर से प्रकट हो गये हैं, वे अपराध हैं। जो मन ने कर लिये हैं, उसका नाम पाप है। पहले पाप होता है, अपराध तो बाद में होता है। अपराध हो या न हो, पाप तुम कर चुके हो, तो पाप का फल तो भोगना ही पड़ेगा।** जीवन में अपराध बहुत कम कर पाते हो। पाप कितने किये, उनकी गिनती करो। एक दिन के भीतर कितने खोटे-खोटे परिणाम कर लेते हो? कितनी बार अपनी माँ का घात कर लेते हो, कितनी बार पिता की हिंसा कर चुके हो, जब दो बेटे पिता से हिस्से के लिये लड़ते हैं। मन में कलुषित परिणाम रखते हो, पिता के बारे में क्या सोच लेते हो? बेटा! तुम पिता के पुत्र तो कहलाते रहोगे, लेकिन भावों से तुम पिता की हत्या कर चुके हो।

अध्यात्म = अधि + आत्मा। अधि उपसर्ग है आत्मा के सामने। आत्मा का मूल शब्द है आत्मन्। आत्मन् में से नू का लोप होता है तब आत्मा की सिद्धि हुई है। जीव, जन्तु, प्राणी, विज्ञ, ज्ञानी, आत्मा—ये सब जीव के पर्यायवाची नाम हैं। आत्मन् शब्द में अधि उपसर्ग जोड़ने पर यण सन्धि में इ का य हो जाता है, उससे बना अध्यात्म। **जो आत्मा के पास की विद्या है, जो आत्मा के पास रख दे और सारे जगत् से दूर कर दे, जहाँ परमात्मा का भेद समाप्त हो जाये, परमात्मा से भी दृष्टि हट जाये, जब आत्मा में आत्मा का अवलोकन हो जाये, उसका नाम है अध्यात्म विद्या। इसी का नाम वेदान्त में परा विद्या है।** वे तीर्थंकर क्षत्रिय थे। 'योग वाशिष्टय' में जब श्री राम लक्ष्मण दोनों भाई की बात को सुनते हुये दशरथ ने पूछा, बेटे राम! आपके मन में विकल्प क्या है? उस समय श्रीराम कहते हैं हे तात्! न अहं रामो। मैं राम नहीं हूँ। जो संज्ञायें हैं, वे मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ, उसमें कोई संज्ञा नहीं है। जब तक संज्ञायें चलेंगी, तब तक संज्ञान का विच्छेद होता रहेगा। किसी ने नाम ले लिया, सो मैं फूल गया और यदि किसी ने गाली देदी, सो रोने लगा। हे माँ, हे तात्! आपने मेरा नाम रखा है। पिता ने नाम मेघनाथ रख दिया कोई मेघनाथ के नाम पर गाली देता है तो मन में अशुभ भाव आता है और कोई प्रशंसा करता है तो शुभ भाव आता है। लेकिन उस बेटे से पूछना 'बेटा! जब तेरा जन्म हुआ था, तब तू कौन था? मैं न मेघनाथ था, न अन्य कोई। माँ! तुम्हारे घर में जब तुम्हारे उदर से बेटे का जन्म हुआ, उस क्षण बेटे का नाम क्या था? आपने उसको पहचाना किस नाम से? 'एक जीव आया है।' तत्त्व की खोज करो। जब आया था, तब 'जीव' बोला था। जब व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है, तो कहते हो कि अच्छा 'जीव' था। आते समय 'जीव' था, जाने के बाद 'जीव' हो गया, बीच में क्या था? जब जन्म हुआ था, तब तू नंगा था और जब जायेगा, तब संस्कार के पहले नंगा कर दिया जायेगा, सब उतार दिये जायेंगे। दुनियाँ को मालूम चलना चाहिये कि जैसे आये थे, वैसे ही जा रहे हो। न लेकर आये थे, न लेकर जा पाओगे। जन्मा था नंगा, जायेगा नंगा, बीच में दंगा किस बात का है? इसी का नाम कषाय है। आपसे कोई पूछे कि भारत का धर्म

क्या है? तो कहना 'अहिंसा परमो धर्मः'।

कपड़ेधारियों की संख्या कितनी थी? वनस्पतियाँ देखो। जगत् में जितने द्रव्य हैं, वस्त्र रहित हैं। जब पुरुष प्रकृति की ओर जाता है तो अशुभ। विश्वास रखना, कोई भी पुरुष एक घण्टे तक गुस्सा नहीं कर सकता। अड़तालीस मिनट के अंदर उसे ठण्डा होना पड़ेगा, बाद में भले ही करने लग जाये, लेकिन बीच में तो ठण्डा होना पड़ेगा। जगत् में जितनी भी कषाय हैं, काम-वासना भी क्यों न हो, अड़तालीस मिनट अपनी वासना को दे दो तो कपड़ों के बीच वास न करना पड़े। वो अड़तालीस मिनट अपने को नहीं दे पाया, इसलिये संसार में वास करना पड़ रहा है। प्रकृति कह रही है—समय देना सीखो।

जिसको लोगों ने धर्म कह कर पुकारा है, वह यथार्थ में धर्म नहीं है, सम्प्रदाय है। अब धर्म की व्याख्या करो। यदि धर्म समझ में आ गया, तो सारे विश्व में आनन्द-ही-आनन्द है। तू एक कुए से पानी लेकर आया, उसे चाँदी के लोटे में रखा। दूसरे ने सोने के कलश में रखा। तीसरे ने पीतल के लोटे में रखा। चौथे ने ताँबे के लोटे में रखा एक बिचारा गरीब था उसने मिट्टी के कलश में पानी भरा। पात्रों को देख करके ज्ञानी कहता है महाराज! मेरे घर के सोने के कलश का पानी आपको समर्पित है तो दूसरा ज्ञानी कहता है कि मेरे घर का चाँदी के लोटे का पानी समर्पित है। सभी व्यक्ति अपने द्वार पर लोटा लिये खड़े थे। अपने-अपने थाल, कोपर, परात, सब रखे पैर पखार रहे थे कि मेरे घर का पानी है। मेरे मित्र! तुम सब अपने घर का पानी बोल रहे हो, लेकिन उस कुये ने कभी नहीं कहा कि वो क्या है। वो अपने आप में है।

अपने-अपने लोटों में भर कर कहा कि ये मेरे घर का पानी है। भेद पात्रों का है, पानी का भेद नहीं है। धर्म का भेद, सम्प्रदाय का भेद है। धर्म में कोई भेद होता नहीं है।

'अहिंसा परमो धर्मः।'

यह महाभारत का शान्ति पर्व का श्लोक है। पशुघातकः। हे युधिष्ठिर! एक पशु की हत्या करने वाला जीव, पशु के शरीर में जितने रोम हैं, उतने हजार वर्ष

तक नरकों में पचेगा। जब ये सूत्र सामने आ गया, तब देखो ब्रह्म की उपासना प्रारम्भ कैसे होती है। अभी तक ब्रह्मा को लोगों ने चतुर्मुख के रूप में देखा। वेद के काल तक लोगों ने ब्रह्म को चतुर्मुख के रूप में देखा। जब वेदान्त का काल आ गया तो लोगों ने ब्रह्म को देखना प्रारम्भ कर दिया। 'अहिंसा परम ब्रह्म:'। समय बदलता है और सत्य सामने आता है। अपने यहाँ मन्दिर की स्थापना होती है, कोई धर्मशाला बनाते हैं, कोई मकान की नींव बनाते हैं, तो आपने सुना होगा कि सोने की ईंट पीली पन्नी मँगाई मिट्टी की ईंट पर लपेट दी, सो सोने की ईंट, सफेद पन्नी मँगाई, वह लपेट दी, सो चाँदी की ईंट। फिर जैनियों की तो महिमा ही न्यारी है चलो, अब बोली लगा लो। सोने की ईंट की बोली लग रही है। क्या पन्नी लपेटी ईंट सोने की होती है? वेदान्त क्या है? जगत् नहीं जान सकता। क्रियाकाण्ड का युग है, लोगों को वस्तु स्वरूप का बोध नहीं है। इन माताओं के घर में घी के घड़ा भी रखे हुये हैं। घी के घड़े नहीं होते और दूध की बाल्टी नहीं होती, न पानी की बाल्टी होती है। धर्म की व्याख्या और उपचार की व्याख्या भिन्न है। जिस बाल्टी में दूध भरा जाता है, उस बाल्टी को उपचार से दूध की बाल्टी कह दिया जाता है, लेकिन बाल्टी तो धातु की होती है। ऐसे ही ये शरीर मैं मनुष्य हूँ, मैं देव हूँ, मैं नारकी हूँ, मैं पशु हूँ, ये सब पात्र हैं बर्तन हैं। इसके भीतर जो भरा है, वह शुद्ध आत्मा है। वही परमब्रह्म है।

कथा-कहानी मेरे मुख से कोई सुनना ही नहीं चाहता। सभी कहते हैं कि आप तो समयसार सुनाओ, वेदान्त, अध्यात्म। इससे मालूम चलता है कि भारत की भूमि के रग-रग में वस्तुस्वरूप भरा हुआ है, सत्य धर्म भरा हुआ है। जो क्रियाकाण्ड किया जाता है, वह मात्र क्रियाकाण्ड के लिये नहीं किया जाता है। फल खरीद कर लाया जाता है, पर फल खरीदने के लिये नहीं लाया जाता है। अनार का फल क्या छिलकों के लिये आप लाये कि रस के लिये? क्रियाकाण्ड रस के लिये है, न कि छिलकों के लिये है। पात्र को देखा? सोने का पात्र, चाँदी का पात्र। लेकिन वास्तव में भेद किसमें थे? बर्तन में थे। पानी में भेद कहाँ था? जैसे पानी में भेद नहीं है, ऐसे इन प्राणियों में भी भेद नहीं है। जिसको स्त्री दिख रही, वह पात्र

है। जिसको पुरुष दिख रहा, वह पात्र है। जिसको नपुंसक दिखे, वह पात्र है। इन पात्रों को भेद करके जो देखता है, उसको परम पुरुष परमात्मा दिखाई देता है। ये पुरुष पात्र है। जब तुम बर्तन देखोगे, तब तक विकार दिखेंगे और वेदातीत देखोगे तो वेदांत दिखेगा। परदृष्टि, अपरादृष्टि। मैं काष्टोपनिषद से बोल रहा हूँ। वेदान्त, उपनिषद और अध्यात्म—इन तीनों का एक ही अर्थ है।

निषद स्तव ठहरने के अर्थ में है। उप समीप। जो निज के समीप रख ले, उस विद्या का नाम है उपनिषद विद्या। भारत में एक जैनेन्द्र व्याकरण है। जब पाणिनी का व्याकरण अधूरा रह गया और उसकी मृत्यु हो गई तो उस पाणिनी के व्याकरण को पूरा करने के लिये जैनेन्द्र व्याकरण लिखा गया।

जब तत्त्व को एकसाथ बोलते हैं, तब समझ में आता है कि भेद कहाँ है? भेद मन्दिरों में है, भेद मठों में है, परन्तु धर्म में भेद नहीं है। पाणिनी और आचार्य पूज्यपाद स्वामी एक भाट् जाति के ब्राह्मण थे। जब पाणिनी का अन्तिम समय आया, तो इनके मन में एक विकल्प रहा कि मेरा व्याकरण अधूरा रह गया है। नागार्जुन, पाणिनी और पूज्यपाद—ये सगे रिस्तेदार थे। धर्म का समन्वय अब देखो, जैन दर्शन और वैदिक दर्शन—इन दोनों का समन्वय देखो। नारायण कृष्ण और भगवान् नेमिनाथ, वे दोनों चचेरे भाई थे। पाणिनी के अधूरे ग्रन्थ को पूज्यपाद स्वामी ने पूरा किया है। उसका नाम है जैनेन्द्र व्याकरण। भारत में तीन व्याकरण विशिष्ट हैं। पाणिनी,जैनेन्द्र और शाकटायन। इनमें शाकटायन जैन थे, पूज्यपाद जैन थे, पाणिनी वैदिक थे। ये तीनों भारत के व्याकरण साहित्य, लक्षण शास्त्र, लक्षण विद्या को कितने ऊँचे स्थान पर ले गये। उन्होंने कहा है 'उपवेदी समीपे'। निषद, जो विद्या पास में बिठा ले, वह उपनिषद। जिसको जैनदर्शन अनेकान्त कहता है, अन्त का अर्थ है धर्म। अन्त यानि धर्म। वेदांत। विद् धातु ज्ञान अर्थे, बोध अर्थे। जो जिनधर्म का वेदन कराये, उसका नाम है वेदान्त। हम लोगों ने जब बर्तनों को देखा, तो पात्रों का देख करके बोले—मैं तेरे घर का पानी नहीं पिऊँगा। क्यों? तू शूद्र है। मिट्टी का बर्तन देख लिया, सोने का बर्तन देख लिया, ये भेद किसका था? बर्तनों का। इसी प्रकार जो धर्म है, उसका नाम है **'वत्थु सहावो धम्मो।'** यह सूत्र जीवन में

कभी मत भूलना। जिसको वेदान्त समझना हो तो ये सूत्र समझना पड़ेगा। 'वत्थु सहावो धम्मो' यह सूत्र प्राकृत भाषा में है। भारत देश ही ऐसा महान् देश है जिसमें अनेक भाषायें हैं। जो वस्तु का स्वभाव है, उसका नाम धर्म है। पानी को अग्नि पर रख दिया है, उसमें अँगुली डालोगे तो जल जायेगी। पानी को अग्नि ने जलाया, कि अग्नि के संयोग ने अँगुली को जलाया है? ऐसे ही जीवन में किसी को गुस्सा आ रही हो, कोई अशुभ भाव कर रहा हो, तुम उसके प्रति कभी अशुभ मत करना। क्यों? पानी ने अँगुली जला दी और उस गरम पानी को देखकरके तुमने फेंक दिया, थोड़ी देर बाद तुमको प्यास लगी, अब कण्ठ सूखेगा, तुम ऊपर जाओगे। पिओगे क्या? अँगुली पानी ने नहीं जलाई थी। आप एक काम करते, थोड़ा स्वयं ठण्डे हो जाते। पानी को रखा रहने दो, वही पानी ठण्डा होगा तुम्हारी प्यास बुझायेगा अग्नि के संयोग से पानी गरम हुआ है, पानी गर्म नहीं था। वत्थुसहावो धम्मो। पानी का धर्म तो शीतल था। ऐसे ही जिसको कषाय आ रही है, क्रोध कर रहा है, उस पर भी तुम क्रोध मत करो, उसकी हिंसा मत करो, वह भी ठण्डा हो जायेगा। जब पानी ठण्डा हो जाता है, वही पीने योग्य हो जाता है। जो संसार की आत्मायें हैं, वे ही ठण्डी हो जाती हैं। वे ही परमब्रह्म परमात्मा हो जाती हैं। आज तुम जिनको हेय मान रहे हो वही भगवान् बन जाते हैं। किसको बुरा कह दिया, कोई संसार में बुरा था ही नहीं? हर क्रिया में धर्म निहित है।

माँ मिट्टी के भी पैर पड़ लेती है, क्यों? इसमें गड्ढा मत करना। क्यों? इसके भीतर भी परमब्रह्म है। आप जिस मिट्टी को खोद रहे थे, जिस मिट्टी पर चल रहे थे, मिट्टी कह रही है मित्रो! विश्वास रखो, सबके दिन एक-से नहीं होते। मैं भी तेरे सिर पर बैठ जाऊँगी। गहरी बात सुनना! माताओ! जब घर पहुँचो, तब समझ में आना चाहिये जो प्रवचन सुनने गया था, वह दूसरा था, अब प्रवचन सुनकर कोई दूसरा आया है। इतना बदल कर घर पहुँचना। पानी-भोजन तेरे घर में रखा हुआ था। तेरी माँ ने भोजन परोसा। भोजन गर्म था। तूने थाली फेंक दी। क्या अच्छा किया? नहीं। अच्छा होता भोजन तो गर्म था ही, तुमको मौका था, तुम भगवान् के नाम की माला फेरने बैठ जाओ। एक जाप भी हो जायेगी और भोजन

भी ठण्डा हो जायेगा। तूने क्या किया? भोजन की थाली फेंक दी, माँ का दुलार भी फेंक दिया, अब भूखे किसको मरना पड़ेगा? इसलिए ठण्डे होना सीखो। अग्नि के संयोग से पानी गर्म हुआ, हमने पानी को फेंकना शुरू कर दिया। नहीं। मिट्टी कह रही थी कि तुम चिन्ता मत करो, सबके दिन एक-से नहीं होते। जमीन पर मिट्टी पर फावड़ा चल रहा था, ज्ञानी मुस्करा रहा था, मिट्टी खुद रही है। **जीवन में सहन करना सीखो सिर पर बैठना है तो। बड़ा कैसे बना? बेचारी दाल से पूछो, पिसना पड़ता है, फिर गरम पानी में डूबना पड़ता है, फिर कढ़ाही में सिकना पड़ता है, तब भी इन माताओं को साता नहीं पड़ती, खटाई के पानी में और डुबो दिया, फिर दोना में लग कर आता है। उसका नाम क्या हो गया? बड़ा। जो पिसना व सिकना सहन कर लेता है, वह बड़ा बन जाता है।** मिट्टी कह रही थी कि तुम घबराओ नहीं, सबके दिन एक-से नहीं होते। कुम्भकार ने मिट्टी को खोदा, पानी में डाला और फिर पैरों से रौंदा, तब भी लोग मुस्करा रहे थे। फिर उसे चाक पर रख दिया, घड़ा बन गया। अब भी साता नहीं मिली तो उसे अवा के अन्दर अग्नि में रख दिया। तब भी मिट्टी बिलख रही थी 'हाय! मुझे कितना सहन करना पड़ रहा है।' पक कर आया, बाजार में पहुँच गया, अब पूछ रहा है ज्ञानी, कितनी कीमत है? अब मिट्टी कह रही थी कि तुम वही हो जब मैं रुँद रही थी, तू मुस्करा रहा था। आज मेरी कीमत आँकने आ गया। जब उसमें पानी भर कर आया, माँ पनघट से सिर पर रख कर घर कीओर आ रही थी जैसे ही भरा कलश देखा सो जेब से सिक्का निकाल कर डाल दिया। मटका कहता है 'सबके दिन एक-से नहीं होते। कभी लोग मुझे पैरों में रोंदते थे, आज सिर पर रखे हुये हैं, कलश में सिक्के डाले जा रहे हैं। दुनियाँ की रीति है कि भरे को दुनियाँ भरती है, खाली को कोई नहीं पूछता है। एक भैया कहता है कि महाराज जी! जल्दी बैठ जाना प्रवचन करने और देर तक करना। क्यों? ऐसा तुझे क्या मिल गया? कहता है, अन्दर की बात है। अब जो है, सो है। मिश्री कैसी होती है? मीठी। कैसी मीठी? अब खा कर देखो। जो है, सो है। ऐसे ही परमब्रह्म है, जो वेदान्त है, अद्वैत है, अध्यात्म है। कोई पूछे, महाराज! उसकी अनुभूति बताओ,

वह होती कैसी है? तुम प्रकृति में आकर बैठ जाओ और प्रकृति को निहार लो, तो तेरी प्रगति हो जायेगी। प्रकृति बन्द हो जायेगी तो प्रगति हो जायेगी। फिर क्या होगा? जो है, सो है। वही परमब्रह्म है। परा विद्या, जिसको अद्वैत कहते हैं। अद्वैत धारा ही परा विद्या है। द्वैत धारा अपरा विद्या है। जब तक भक्त और भगवान् का भाव है, तब तक अपरा विद्या है। द्वैत्व भाव है जहाँ भक्त व भगवान् का भेद समाप्त हो करके भगवान् भी समाप्त हो जाते हैं, निज में ही भगवान् दिखना प्रारम्भ होते हैं, उसका नाम परम विद्या है, वही अध्यात्म है। ऐसा अध्यात्म कि फिर शरीर नहीं दिखेगा, देह नहीं दिखेगी, कोई भेद नहीं दिखेगा। दर्पण दिखना बन्द हो जायेगा, पानी दिखना प्रारम्भ हो जायेगा। ऐसे ही मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं देव, मैं नरकी ये सारे विकल्प समाप्त हो जायेंगे। जो वेदान्त में लिखा हुआ है, वह कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में लिखा है। जो समयसार में लिखा हुआ है, वही वेदान्त है। अन्तर इतना है कि एक संस्कृत भाषा में बोल रहा है, एक प्राकृत भाषा बोल रहा है।

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते, गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति॥ इष्.41॥

जो चलते हुए भी नहीं चल रहे हैं, बोलते हुए भी नहीं बोल रहे हैं देखते हुये भी नहीं देख रहे हैं वे कौन हैं? आत्मस्वरूप में स्थिर है ऐसा परम योगी ही उस अवस्था से युक्त है। वही राम आत्माराम है। दशरथ के बेटे राम को तुमने अनन्त बार सुना। कौशिल्या के बेटे राम को तुमने अनन्त बार सुना। एक बार आत्माराम को सुन ले। घट-घट में राम हैं, वो तेरे अन्दर भी राम हैं और बैल के अन्दर भी राम हैं। कौन राम? आत्माराम। एक क्षण ऐसा आता है जब इस जीव को कैवल्य प्रकट होता है। ऋद्धि शब्द का प्रयोग वेदान्त में भी होता है, तो सारा विश्व दिखना बन्द हो जाता है आँखों से, सारा विश्व दिखना प्रारम्भ हो जाता है आत्मा से। उसका नाम है कैवल्य/परा विद्या

योगीगम्यं रहस्य परमात्मानां।

जो रहस्य है, वह योगीगम्य है। परमात्मा का रहस्य योगीगम्य है। भक्तिमार्ग में बाल-गोपाल सब लग जाते हैं, लेकिन ज्ञान मार्ग में योगी ही जा पाते हैं। ज्ञानमार्ग

के लिये जब सारे विकल्प शून्य हो जाते हैं अरस है, अरूप है, अगन्ध है, अवक्तव्य है, अलिङ्गी है, वह जो है सो है, वही परम ब्रह्म है

यहाँ के गाय चरानेवाले, हल जोतनेवाले भी आज परमब्रह्म की बात कर रहे हैं तो इस मिट्टी में कितना अध्यात्म भरा होगा?

प्रारम्भिक काल में भक्तिमार्ग की आवश्यकता है। निष्णात काल में भक्तिमार्ग समाप्त हो जाता है। स्वामी-सेवक के भाव वाला स्थूल मार्ग है जहाँ स्वामी सेवक के भाव का भी अभाव हो जाता है, वह सूक्ष्म मार्ग है। मैं महावीर की वन्दना करने जाऊँ, मैं किसी मन्दिर की वन्दना करने जाऊँ, ये स्वामी-सेवक भक्तिमार्ग है। जहाँ ये दर्शन का भाव भी समाप्त हो जाता है, निज में निज का दर्शन प्रारम्भ हो जाता है, वही परमब्रह्म-मार्ग है। यहाँ परमब्रह्म से तात्पर्य चतुर्मुखी ब्रह्मा को स्वीकार मत कर लेना। वेदान्त का परमब्रह्म वेदों का ब्रह्मा नहीं है। ये भूल मत कर लेना जीवन में। वेदों का ब्रह्मा एक कोई पुरुष है पुरुष की कल्पना की है वेदान्त का ब्रह्म घर-घर में बसा है, वह आत्मब्रह्म है, वही परम ब्रह्म है। वह क्या है?

मलरहिओ णाणमओ, णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो, परमो बंभो मुणेयव्वो ॥26॥ तत्त्वसार

देह मल से रहित अशरीरी परमात्मा मोक्ष में विराजा है, सिद्धालय में विराजा है, वैसा परमब्रह्म तेरे देह में विराजा है परम ब्रह्म की व्याख्या है, अन्य किसी व्यक्ति की व्याख्या नहीं है।

जब तक हम दो लेकर रहेंगे, तब तक अद्वैत का आनन्द नहीं आयेगा। किसी ने दाल का स्वाद चखा? इसके बेटे की माँ बघार न लगाये, नमक न डाले, तो बोलेगा 'क्या सानी-सा बना कर रख दिया है।' मात्र पानी में उबली दाल चखो, तब पता चलेगा कि दाल का स्वाद कैसा होता है? आपने तो मिश्र का स्वाद चखा है। जब दाल का स्वाद नहीं चखा, साग का स्वाद नहीं चखा, तो परमब्रह्म का स्वाद क्या चखा होगा? जो मिश्र है, जिसमें नमक मिर्च मिली हुई है, वह शुद्ध स्वभाव नहीं है। ऐसे ही जिसमें भगवान् की भक्ति मिली हो, विषयों की अनुभूति

मिली हो, वह शुद्ध आत्मा का स्वभाव नहीं है। इन सबसे भिन्न जो है, वह परमब्रह्म का स्वाद है, वह अद्वैत है। वहाँ न ईश्वर है, न ब्रह्मा है, न महावीर है, न आदिनाथ है। मात्र मेरा निजनाथ ही नाथ है। हाँ, यही सत्य है। सारी उपासना निज नाथ के समझने के लिये है। दर्पण को देखे बिना चेहरा दिखता कहाँ? दर्पण को देखने नहीं जाते, दर्पण में देखने जाते हो अपने चेहरे को। ऐसे ही मन्दिरों में भगवान् को देखने मत जाना, भगवान् में देखने जाना। जो भगवान् में देखने जाते हैं, वे ज्ञानी भक्त हैं। बोलना—प्रभु! जो आपने किया है, वही मैं करना चाहता हूँ। मैं कैसे करूँ? दर्पण को देखकर के तुम अपनी कारोंच छुटा लेते हो, ऐसे ही परमात्मा को देख करके अपने विकारों की कालिमा को छुटा लेना, उसी का नाम निज को देखना है। घट-घट में आत्मा- राम है।

आये राम, गये राम। दशरथ के राम आये, दशरथ के राम गये। आत्मा राम, सदा राम। वे राम आये थे, वे राम चले गये, मेरा आत्माराम सदा रहा है। आये राम गये राम को जानो, आत्माराम को पहचानो। आज से दर्पण देखने मत जाना, दर्पण में देखने जाना।

आज के युवा बड़े शौकीन हो गये हैं। जैसे वालों को सीधा कर लेते हो बालों को सँभाल लेते हो कि वे तिरछे न हो जायें, ऐसे परिणामों को सँभालने लग जाओ तो बाल सँभालने की क्या आवश्यकता है? ये बाल व बालायें काम में नहीं आयेंगे परिणामों को सँभालो। तुम्हारा पूरा जीवन दो में ही गया है।

अपने जीवन में परम सत्य को समझना। आज से लड़ना-झगड़ना बन्द। आपको हर व्यक्ति में राम देखना चाहिये, परमात्मा देखना चाहिये।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

कर्मबन्ध के कारण

परिग्रहपरिष्वङ्गाद्रागद्वेषश्च जायते।
रागद्वेषौ महाबन्धः, कर्मणां भवकारणम्॥ सा. स. 254॥

अन्वयार्थ—परिग्रहपरिष्वंगात् = परिग्रहों को स्वीकार करने से **रागद्वेषः च जायते**= राग और द्वेष उत्पन्न होते ही हैं **रागद्वेषौ कर्मणां महाबन्धः** = राग-द्वेष ही कर्मों के महान् बन्ध के कारण हैं और **भवकारणम्** = इन्हीं से संसार बढ़ता है।

भावार्थ—हे आत्मन्! परिग्रह की आसक्ति से राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं। राग-द्वेष से ही कर्मों का महाबन्ध होता है और यह महाबन्ध ही संसार का कारण है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्म- स्वतन्त्रता के हेतु कर्मबन्धन से मुक्त होने का व्याख्यान कर रहे हैं। जयवन्त हो वीतराग श्रमण संस्कृति, श्री जिन नमोस्तु शासन।

श्रमणपरम्परा में तीर्थंकर भगवन्तों ने योगियों के दस कल्पों की व्याख्या की है। उन दस कल्पों में एक मास कल्प होता है। इसका अर्थ है कि ये दिगम्बर मुनि एक मास विहार करें, एक मास वाचना करें। चार मास का चातुर्मास एक स्थान पर करने के बाद, वाचना का आदेश है। वाचना कोई नयी परम्परा नहीं है। पाँच प्रकार के स्वाध्याय में वाचना एक स्वाध्याय है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी दिगम्बर जैन परम्परा में श्रेष्ठ आचार्य हुये हैं। कभी-कभी हम ग्रन्थों को नहीं निहार पाते। ग्रन्थ खुलते हैं तो निर्ग्रन्थों का बोध होता है आचार्य कुलभद्र स्वामी ने सारसमुच्चय ग्रन्थ में समन्तभद्र का श्रावकाचार, कुन्दकुन्द का समयसार, युगपद् लिखा है। एकसाथ व्याख्या की है। वह दृष्टि प्रदान की है कि वस्तुस्वभाव की प्राप्ति के लिये, वस्तुस्वरूप में प्रवेश के लिये वस्तु का बोध अनिवार्य है। जब तक वस्तु का बोध नहीं है, तब तक आत्मा का शोध नहीं है आत्मा का शोध करना चाहते हो तो, वस्तु का बोध करना अनिवार्य है। जब बोध होगा, पहले ज्ञान होगा, तब श्रद्धान होगा, तभी सम्यग्ज्ञान होगा। जब तक

जाना नहीं, तब तक पहचाना कैसे? जिसको जान लिया हो, पहचान लिया हो, उन पर श्रद्धान न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। इसलिये पहले जानो-पहचानो, फिर प्रतीति करो। शीघ्र प्रतीति करने की आवश्यकता नहीं है। आस्था है, श्रद्धा है, विश्वास है। विश्वास शीघ्र नहीं करना चाहिये। श्रद्धा शीघ्र नहीं सौंप देना चाहिये। जब हमने जान लिया पहचान लिया और श्रद्धान किया है, फिर दृढ़ श्रद्धान है, फिर हिमगिरि डिग जाये, लेकिन मेरा सम्यक्त्व न डिग पाये। श्रद्धायें हिलने वाली नहीं हैं, विश्वास डिगने वाला नहीं है। जीवन में वही तुम्हारा नव वर्ष होगा जिस दिन मिथ्यात्व का विगलन होगा। जीवन का वही नववर्ष होगा जिस दिन चारित्र होगा। जीवन का वही नव वर्ष होगा जिस वर्ष रत्नत्रय धर्म की आस्था होगी। बाकी की वही कामना, वही वासना, वही कषाय, वही द्वन्द्व, तो यह नया वर्ष किस बात का? वही नव वर्ष होगा जिस दिन हाथ में पिच्छी-कमण्डल होगा। वही आत्माराम का मिलन, वही जीवन का अभिनव वर्ष होगा। सभी के ऐसे नववर्ष आयें। जिस दिन पर्यायदृष्टि से परादृष्टि हो जाये, द्रव्यदृष्टि बन जाये, वही मेरे जीवन का अभिनव वर्ष है।

कुलभद्र स्वामी ने उन दृष्टियों को बराबर बना कर रखा हुआ है। द्रव्य बन्ध नहीं है। यदि जगत् के द्रव्य बन्ध हो गये, तो निर्बन्ध कब होगा? द्रव्य कभी समाप्त होंगे नहीं, बन्ध कभी समाप्त होगा नहीं। परद्रव्य बन्ध नहीं है। पर द्रव्य पर आत्मदृष्टि बन्ध है। यदि वस्तु से बन्ध होने लग गया, तो ये जगत् में निर्बन्ध कैसे बनेगा? द्रव्य का विनाश तो होता ही नहीं है। द्रव्य तो त्रैकालिक है। यदि त्रैकालिक द्रव्य का विनाश हो गया, तो अवस्तुता आ जायेगी और लोक-अलोक का भी अभाव हो जायेगा। लेकिन लोकालोक का अभाव नहीं होता है, वस्तुव्यवस्था भंग नहीं होती है। द्रव्य त्रैकालिक है, उन त्रैकालिक द्रव्यों में मैं भी एक द्रव्य हूँ। ज्ञानी! भूल कहाँ चल रही है? हमने जानने का प्रयास ही नहीं किया है। दूसरे को जानना-देखना सरल है, लेकिन जाननहार को जनना कठिन है। जो-जो तुमने जाना है, जो-जो तुमने पहचाना है, वह दूसरे को ही विषय करती है। निज को विषय करती ही नहीं है। अज्ञानी जीव सोचता है कि मैं इन्द्रियों से आत्मा को जान लूँ।

जो निज को विषय ही नहीं बना पाती है, उससे तुम निज को क्या जान सकोगे? पाँचों इन्द्रिय के विषयों में एक भी निज आत्म विषय नहीं है। स्पर्श के विषय हैं हल्का, भारी, कड़ा, नरम, रुखा, चिकना, ठण्डा, गरम। कर्ण के विषय हैं सा रे ग म प ध नि सा। चक्षु के विषय हैं लाल, काला, सफेद, पीला, नीला। घ्राण के विषय हैं सुगन्ध-दुर्गन्ध। रसना के विषय हैं खट्टा, मीठा, कडुवा, कषायला, चरपरा। ऐसे सत्ताइस विषय इन्द्रियों के हैं, वे सत्ता वस्तुभूत हैं। इन्द्रियों ने मात्र पर को ही विषय किया है। इन्द्रियाँ निज को विषय करती ही नहीं हैं। आपने दु:ख भी भोगा है, वह किससे भोगा, किसने भोगा? इसलिये द्वैत ही संसार है। सम्बन्ध ही संसार है। सम्बन्ध ही बन्ध है। इन्द्रियों से सम्बन्ध को ही जाना है, निर्बन्ध को कहाँ जाना? जो निर्बन्ध है, वह अतीन्द्रिय है जो अतीन्द्रिय है, वह इन्द्रियों का विषय नहीं है, वह आत्मा आत्मा का ही विषय है। यह मत सोचना कि समयसार समझ में नहीं आता। अपन स्वयं समयसार हैं। जो सुन रहा, वह कौन है? कान से सुन रहे हो, कान नहीं सुन रहे। यदि कान सुनते होते, तो मुर्दे को भी सुनना चाहिये। सुननेवाला कोई-और है। वह भगवान्-आत्मा है।

इन्द्रियाँ किसको विषय कर रही हैं? सूँघने की इच्छा होगी तो किससे होगी? संगीत सुनने के भाव आ रहे हैं तो पर का आलम्बन। जो-जो पराधीन हैं, वे सब इन्द्रियों के विषय हैं। अतीन्द्रिय का विषय पराधीन होता ही नहीं है। आँख पर को देखने के लिये खोलना पड़ती है, निज को देखने के लिये आँख खोलने की क्या आवश्यकता है? इन्द्रियों से तुमने पर को ही देखा है और पर की इन्द्रियों को तृप्त करने के लिये तुमने स्व की इन्द्रियों को सजा कर रखा है। अहो बहेलियो! एक शिकारी जाल बिछा कर रखता है कि कोई खरगोस आकर फँस जाये, हिरण आकर फँस जाये, मैं इसको फँसा लूँ। तुमने अपने चेहरे पर क्रीम-पाउडर लगाया, लिपिस्टिक आदि का प्रयोग किया, इस चेहरे को तुम सुन्दर करके जा रहे हो। ये अपने आप को दिखाने के लिये नहीं आये हो, यह पर को दिखाने के लिये आये हो। तुम्हारी आँखें तुम्हारा चेहरा दिखाने के लिये आये हो। तुम्हारी आँखें तुम्हारा चेहरा देखती ही नहीं हैं। निज के नयनों ने निज के चेहरे को नहीं भोगा।

अपना चेहरा भी सजाया तो पर को दिखाने के लिये सजाया। कितना समय बरबाद किया? स्वयं में स्वयं को निहार लेता तो देह सजाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। मेरे मित्र! मन को सुन्दर कर लेता, मन को सजा लेता तो ये तन तुझे न सजाना पड़ता। जिनके मन सजे नहीं होते हैं, वे तन को सजाते हैं। जिनके मन सुन्दर हैं, वे तन नहीं सजाते हैं, वे चेतन को निहारते हैं। इसलिये नयन से भी पर के ही चेहरे को देखा है और पर के चेहरे को देख करके निज की परिणति को विकृत करके संसार में भटक रहा है ऐसा सोचा नहीं था क्या? तो आज ही सोच लो। आपकी इन्द्रियों ने मात्र पर को ही जाना है, निज को जाना ही नहीं है। आपको काजल लगाना पड़ रहा है, इत्र तेल फुलेल लगाना पड़ रहे हैं, वह सब मात्र दूसरे को देखने के लिये।

ये नयन खराब कैसे हो गये? नयन खराब न होते तो नयन खराब न होते। हृदय की आँखें ठीक होतीं तो तेरी आँखें कभी खराब न होतीं। भीतर की आँखें बाहर को देखने की इच्छा करती हैं तो बाहर की आँखें खराब हो जाती हैं। **नयनों में सब झलकता है, व्यक्ति की वाणी और व्यक्ति की आँखें सब बता देती हैं। नेत्रों से आपने पर को ही देखा। दूसरे को असंयमित करने के लिये ऐसा सुन्दर जाल बिखेर कर लाये हैं कि आप मेरे चेहरे को देखो और अपने संयमित भाव को विकृत कर लो। ये जाल है। शिकारी जाल को प्राणी की हत्या के लिये फैलाता है और तुम ब्रह्म की हत्या के लिये चेहरा सजा कर लाये हो। दूसरे के ब्रह्म का घात हो जाये, इसलिये चेहरा सजा कर लाये हो सहज रूप में जीना सीखो, भारतीय संस्कृति में जीना सीखो। वस्त्र-आभूषण को विवेकपूर्वक पहनना सीखो।**

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं बन्ध का कारण वस्तु नहीं है। फिर महाराज! ये सब बातें क्यों कह रहे हो? ज्ञानी! जो मैं कह रहा हूँ, वे शब्द आपके कानों में जा रहे हैं। कानों में जाने पर कुछ-कुछ परिणमन भी हो रहा है। मैं आपसे भिन्न हूँ। 'मैं' शब्द भी आपसे भिन्न है। 'मेरे' शब्द भी आपसे भिन्न हैं। स्याद् 'मेरे' शब्द मेरे से भी भिन्न हैं। बेटे का चेहरा सामने नहीं है, लेकिन पर का पुत्र सामने

आ जाये तो निज के बेटे की याद आ जाती है। जब परपुत्र को देखने से निज पुत्र का स्मरण हो आता है, तो परमात्मा की मूर्ति देखने से परमात्मा का स्मरण हो जाता है। परवस्तु को देखने से तू निज वस्तु का विवेक खो बैठता है दृष्टि से देख लिया तो हर्ष-विषाद चल रहा है। हर्ष-विषाद का कर्ता, निमित्त-दृष्टि ही चल रही है। परवस्तु बन्ध का कारण तो नहीं है, पर वस्तु बन्ध के कारण का कारण तो है। इसलिये बंध का कारण है।

हे जीव! राग-द्वेष से अपनी रक्षा करना चाहता है, मात्र सुनने का कोई राग है या बन्ध से बचने का भाव है? बन्ध से बचने का भाव है, तो सुनने का राग भी छोड़ देना। जितना बन्ध तुमने सुन-सुन कर किया है, उतना प्राप्त नहीं कर सके हो। जो सुन-सुन कर रखा है आपने कि अमेरिका में क्या हो गया? भोपाल में क्या हो गया? घर में बैठा हुआ है, टी.वी में देख रहा है और सुन रहा है और यहाँ राग-द्वेष कर रहा है।ये सुनने का त्याग करो। जिनवाणी सुनने का मत कर देना। लेकिन ध्यान रखना, **स्वरूपलीनता तभी आयेगी, जब जिनवाणी सुनना भी बन्द हो जायेगा। निज में निज का रमण होगा, तभी भगवान् बन पायेगा। भगवान् बनने के लिये तो एक ही स्थान है। भगवान् बनने के मार्ग की प्राप्ति का उपाय बताने वाली जिनवाणी है। जब तक आपने उपाय नहीं जाना है, तब तक जिनवाणी सुनना। उपेय को चाहते हो तो जिनवाणी को भी सुनना बन्द करना पड़ेगा, तो जगत् की मनमानी सुनने से मोक्ष कहाँ हो पायेगा?** शब्दों का राग भी बन्द करना पड़ेगा। द्रव्यश्रुत ज्ञान नहीं है, द्रव्यश्रुत पौद्गलिक है। पौद्गलिक मेरी आत्मा का धर्म कैसा? समयसार जी में सर्व विशुद्ध अधिकार में कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है, ज्ञानियो! ऐसा न हो जाये कि द्रव्यश्रुत को सुनते-सुनते तुम उसी में मग्न हो गये, उसे ही आत्मज्ञान मान बैठे। यह आत्मज्ञान नहीं है, यह द्रव्यश्रुत है। जो पुद्गल की पर्याय है, पुद्गल की पर्याय इस जीव की पर्याय कैसी? हमारा मुमुक्षु इसी में तो डूबा है। वह सोचता है कि ऐसे ही सुनते-सुनते मेरा कल्याण हो जायेगा। मेरे मित्र! अभी और भीतर जाना पड़ेगा। अभी तो आप शब्दों को सुन रहे हो, कितना आनन्द लूट रहे हो? ये केवल अध्यात्म शब्दावली की अनुभूति

चल रही है जो आपके भीतर अन्तरङ्ग परिणति में विशुद्धि बढ़ रही है, वह मात्र तुम्हारे लिये कल्याणकारी है। ये शब्द तुम्हारे लिये कल्याणकारी नहीं हैं। इसको कहने के लिये भी शक्ति चाहिये। नहीं-तो लोगों को डर लगता है कि कहीं जिनवाणी को न छोड़ दे। अरहन्त का सच्चा भक्त जिनवाणी छोड़ ही नहीं सकता है। तुम्हारी जिनवाणी के राग में जिनवाणी को नहीं बताना, तो जिनवाणी किस बात की?

कुन्दकुन्द स्वामी ने तो वो परोसा है जो इस युग में कोई भूल नहीं सकता। आनन्द की बात ये है कि प्रतिदिन भी तत्त्व की चर्चायें चलें, तो भी वो अपूर्व-अपूर्व आनन्द को देनेवाली होती हैं। वस्तुस्वरूप ऐसा है। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि कहीं आप ऐसा मान कर मत बैठ जाना कि पाँच पाप में से एक भी पाप छोड़ न सकूँ, शब्द स्वाध्याय मात्र करता रहूँ। इससे अपना कल्याण मत स्वीकार लेना। यह तो उपाय को बतानेवाला श्रुतज्ञान है। उपेयभूत तो भावश्रुत है। वह संयमभूत है, स्वरूपलीनता है। उस भावश्रुत की प्राप्ति चाहिये तो **चिंतामुक्त हो जाओ, क्योंकि चिंता ध्यान का नाश करा देती है। भावश्रुत की लीनता तो बहुत दूर है, चिन्ता में डूबा व्यक्ति भावश्रुत को भी प्राप्त नहीं कर सकता। चिन्ता से युक्त प्राणी अक्षर तो गिन सकता है, पर अक्षर में लीन नहीं हो सकता। अक्षर यानि ये वर्ण और अक्षर यानि आत्मा। जिनका क्षय नहीं होता है, जिसका क्षरण नहीं होता है, उसका नाम है अक्षर। इन अक्षरों का भी क्षरण नहीं है और आत्मा का भी क्षरण नहीं है, इसलिये आत्मा भी अक्षर है।** चिन्ता नश्यते ज्ञानं। चिन्ता से ज्ञान का नाश होता है। जिनको ग्रन्थ रटे हुये थे, उनकी बुद्धि चिन्ता में भ्रष्ट हो गई। जितने शास्त्री लोग थे, जब से दाल रोटी कढ़ी भात में लग गये, उनका ज्ञान विलीन हो गया। योगियों का ज्ञान प्रशस्त क्यों हो जाता है? उनको अहर्निश एक ही तो काम है, स्वाध्याय। इन दिगम्बर वीतरागी धरती के देवता तपोधनों को भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा करना है तो इनको राष्ट्र देश समाज के द्वन्द्वों से रक्षा करनी पड़ेगी। जो योगी प्रपञ्च में लीन हो गया, उसका मोक्षमार्ग नष्ट हो जाता है। 'ज्ञानांकुश' नाम के ग्रन्थ में लिखा है। ग्रन्थ का नाम नोट कर लिया करो, नहीं-तो कल कहोगे कि महाराज जी पता नहीं कहाँ से बोल

कर चले गये। हम लोगों को पता ही नहीं है। भाई! पता होता तो तुम भी ज्ञानी बन जाते, फिर भी ज्ञानी हो। कभी-कभी ऐसा ही होता है कि लोग स्वाध्याय करते नहीं और प्रश्न खड़े करते हैं कि ऐसा कैसे बोल दिया? मेरे मित्र! आपने अध्ययन नहीं किया तो आप कम-से-कम आकरके प्रश्न कर सकते हो, पूछ सकते हो, ग्रन्थ खोलकर देख सकते हो कि ग्रन्थों में ऐसा लिखा है। परम्परा में क्या चलता आया है, इसको छोड़ दो पहले निर्ग्रन्थों के ग्रन्थों को पढ़कर देखो।

प्रपञ्चरहितं शास्त्रं, प्रपञ्चरहितो गुरुः।
प्रपञ्चरहितो मोक्षो, दृश्यते जिनशासने।

यह आचार्य योगेन्द्रदेव स्वामी का श्लोक है, ज्ञानांकुश नाम के ग्रन्थ में लिखा है। वही शास्त्र 'शास्त्र' है, अन्यथा शस्त्र हो जायेगा, जिस शास्त्र में प्रपञ्च से रहित व्याख्या है, आडम्बर रहित व्याख्या है। अहिंसादिक व्रतों की व्याख्या है, वही शास्त्र 'शास्त्र' है। जिसमें दुनियाँ के कन्यादान, स्वर्ण दान, गोदान, भूमिदान आदि प्रपञ्चों की व्याख्या कर दी गई हो, वे ग्रन्थ नहीं हैं। हमारे आगम ग्रन्थों में औषध, शास्त्र, अभय, आहार इतने ही दान की व्याख्या है। आजकल तो लोगों ने रक्त को भी 'दान' संज्ञा दे दी है। आगम के बाहर की बातें बाहर तक ही रखना, लेकिन आगम की गद्दी पर रक्त को 'दान' संज्ञा कह करके भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का नाश मत करा देना। मैं यह करुणादृष्टि से बोल रहा हूँ। तुमको पर की पर्याय पर करुणा है, मुझे तीर्थंकर महावीर की वाणी पर करुणा है। कहीं जिनशासन का लोप न हो जाय। आज तुम रक्त को दान कह दोगे तो कल माँस भी औषधि में आने लगेगा। अन्य जगह आयुर्वेद के रूप में माँसपिण्ड को भी औषधि ग्रहण किया है। दिगम्बर जैन आम्नाय में मात्र 'कल्याणकारक' एक ऐसा आयुर्वेद शास्त्र है जिसमें माँस का प्रयोग नहीं लिखा है। अन्य आयुर्वेद ग्रन्थों में बहुत सारे अशुद्ध द्रव्य औषधि में लिये हैं। कहीं आपने इन सब बाहर की बातों की, अरहन्त की गद्दी पर बैठ करके, प्ररूपणा इन ग्रन्थों में लिख दी और प्रारम्भ हो गई, तो अरहन्त के अहिंसा-शासन का क्या होगा? यहाँ पर्याय के नाश का राग नहीं होता है, यहाँ तो कहीं अहिंसा-धर्म का विनाश न हो जाय, इसका सुराग रहता है। इसलिये वही

शास्त्र 'शास्त्र' है जिसमें अहिंसा धर्म की व्याख्या है। ध्यान देना, विवेक से सुनना, क्योंकि आजकल छोटे-छोटे बच्चों के भी सामने ऐसी-ऐसी पुस्तकें आ रही हैं। हर व्यक्ति ज्ञानी बाद में बनना चाहता है, लेखक पहले बनना चाहता है। जब ज्ञानी नहीं होगा, तो लेखक किस बात का? मेरे मित्र! पहले ज्ञाता होना चाहिये, फिर वक्ता होना चाहिये। दिगम्बर जैन आम्नाय में 'लघीयस्त्रयी' नाम का बहुत बड़ा दर्शनशास्त्र है। जो आनन्द निर्ग्रन्थों के ग्रन्थों में आता है, वह ग्रन्थों के ग्रन्थों में आता ही नहीं। 'लघीयस्त्रयी' में 'प्रवचन प्रवेश' नाम का एक अधिकार है। उसमें लिखा है कि पहले ज्ञाता होना चाहिये, फिर वक्ता होना चाहिये। जो ज्ञाता बने बिना वक्ता बन जाते हैं, वे बक सकते हैं, लेकिन वक्ता नहीं हो सकते। अरे! वस्तुस्वरूप का बोध होना चाहिये। हमारे तीर्थंकर भगवान् पहले कैवल्य को प्राप्त होते हैं, फिर वाणी खिरती है। दीक्षा के बाद मौन ले लेते हैं जब ज्ञाता हो जाते हैं, फिर वक्ता होते हैं। एक बार तुमने अशुभ बोल भी लिया तो तू बाहर निकल गया; लेकिन एक बार लिख दिया तो वह इतिहास बनता है। इसलिये यह कहीं नहीं लिख देना। कहीं बच्चों के बालबोध में लिख कर बैठ जाओ कि रक्तदान अभयदान। यह मत लिख देना। रक्तदान अभयदान नहीं है। छोटे-छोटे बच्चे जानते नहीं हैं। वे तो यही कहेंगे कि शास्त्र में लिखी है। यह शास्त्र में नहीं लिखी किसी के हाथों के शस्त्र से लिख गई। 'प्रपञ्च रहितं शास्त्रं' प्रपञ्च से रहित शास्त्र और प्रपञ्च रहित मोक्ष है, ऐसा भगवान् जिनेन्द्र के शासन में देखा जाता है। जब बुद्धि में प्रपञ्च आयेंगे, तो तनाव से ग्रसित गृहस्थ ज्ञान को सुरक्षित नहीं रख सकता और प्रपञ्च से ग्रसित साधु ज्ञान को सुरक्षित नहीं रख सकता। श्रमण दीक्षा का उद्देश्य समझो।

आपके पिता जी ने आपको जन्म दिया, उनका क्या उद्देश्य था? यथार्थ मानना, मेरा सभी समाज से कहना है, सन्तान को जन्म देना तुम्हारा उद्देश्य नहीं है। सन्तान को जन्म देने का उद्देश्य उन्हीं का सम्यक् है जो सन्तान हमारी सनातन परम्परा को लेकर चलेगी इसलिये सन्तान को जन्म दिया है कि बेटा! हमारे धर्म को आगे लेकर चलो। यदि सन्तान नहीं बचेगी, तो हमारा सनातन धर्म कैसे बचेगा?

बेटा-बेटियाँ ही धर्मविहीन हो जायेंगे, तो जो ये बड़े-बड़े मन्दिर तीर्थ बन रहे हैं उनकी रक्षा कैसे होगी? इसलिये जन्म देने के साथ-साथ थोड़ा दृष्टि भी रखो कि ये कहाँ जा रहे हैं? किसको ला रहे हैं? किसको ले जा रहे हैं? इस पर भी दृष्टि रखो। संकेतों को समझा करो। सनातन धर्म की रक्षा के लिये श्रावक सन्तान को जन्म देता है तो सनातन जिनागम की रक्षा के लिये आचार्य शिष्यों को जन्म देते हैं। ये उद्देश्य होता है मात्र घूमना-फिरना, ये आचार्यों का उद्देश्य नहीं है। आगम में स्पष्ट लिखा हुआ है कि साधुओं को दीक्षा लेकर आगम का अध्ययन करना चाहिये जिससे तुम्हारे आगम-ग्रन्थों की परम्परा की रक्षा हो। बेटी ने जन्म ले लिया और दादा की पिताजी की सम्पत्ति को तुम नहीं सम्हाल पा रहे। ऐसे ही यहाँ आचार्यमहाराज कह रहे हैं कि दीक्षा लेने के बाद साधु भी प्रपञ्च में पड़ गया और शुद्ध ज्ञान से विमुख हो करके बाहरी क्रियाकाण्ड में लिप्त हो गया, तो आचार्य भगवन्त भी कहेंगे, 'अहो! मेरी श्रुत-सम्पदा को सुरक्षित नहीं कर पाये। मैंने इसलिये दीक्षा नहीं दी थी कि तुम जादू-टोना प्रपञ्च में पड़ जाना। दीक्षा इसलिये दी थी कि तुम सनातन श्रुत की रक्षा करना।' ये दृष्टि है। इसलिये उपदेश आगम पर ही होना चाहिये।

जो श्रुत निबंध है, वह तो द्रव्य- श्रुत है। जो भावश्रुत है, वह स्वात्मभूत है। जो शुद्धोपयोग की दशा है, वह भावश्रुत है। शुभ-उपयोग की दशा द्रव्यश्रुत है। आप चाहो कि मैं यहाँ-वहाँ की बातें करूँ तो कोई लाभ नहीं है।

चिन्ता से ज्ञान का नाश होता है।जिनके घरों में बच्चे पढ़ाई कर रहे हों, उन सब माता-पिता से मेरा कहना है कि इन बालकों को चिन्ता में डालना बन्द करो। उनका क्षयोपशम देखकर पढ़ाई कराओ। 'चिन्ता नश्यते बलम्' चिन्ता से बल का नाश होता है। मुझे तपस्या करना है, मुझे दीक्षा लेना है, ऐसी दीक्षा की चिन्ता आपने की, उस चिन्ता में आपका शरीर सूख गया, अब साधना कैसे करोगे? शरीर तो पहले ही सुखा लिया। चिन्तन करना, चिन्ता नहीं करना। चिन्ता करने से बुद्धि का क्षय होता है। **चिन्ता से बुद्धि भ्रष्ट होती है। जो विशाल निर्णय लेने वाले लोग होते हैं, वे चिन्ता में डूब जायें तो उनके निर्णय फैल हो जायेंगे। जब**

तुम भोजन करने जाओ, भजन करने जाओ, प्रवचन करने जाओ, कोई कुछ कहना चाहे तो कह देना कि बाद में देखूँगा। चिता तो एक बार जलाती है, लेकिन चिन्ता बार-बार जलाती है। इसलिये चिन्ता नहीं करना। जिसको वस्तुस्वतन्त्रता का बोध हो गया है, उसकी चिन्ता पलायन कर जायेगी। चिन्ता बुद्धि का नाश कर देती है। डाक्टर! वैद्य! यदि आप रोगी को ठीक करना चाहते हो तो दवाइयाँ कम दिया करो, पहले सूत्र सुनाया करो, सुन ज्ञानी! तू ठीक होना चाहता है, जगत् में जितनी व्याधियाँ होती हैं, सब चिन्ता से होती हैं। आप सिरदर्द की दवाई तो देते हो, दूसरा रोग और हो जाये। ये नहीं कहते कि सिरदर्द हुआ कैसे? सबसे ज्यादा सिरदर्द चिन्ता से होता है।

संसार में ऐसा कौन-सा महापुरुष होगा जो तुम्हारी विभूति देखकर मुस्कराये, वो भी पंचम काल में। पंचमकाल में ऐसा कोई भोला जीव नहीं है जो तुम्हारी विभूति/सम्पन्नता/ उत्कर्ष को देखकर प्रसन्न हो जाये। वह तो तुमको डुबाने की ही बात सोचेगा, वह तो तुम्हें चिन्ता में डालने की ही बात सोचेगा। चिन्ता देना उसका काम है; लेकिन लेना या नहीं लेना, तुम्हारा काम है। जो है, सो है। जीवन में आनन्दमय जीवन जीना चाहते हो तो आपत्तियाँ सामने आकर खड़ी हो जायें, तुम मुस्कराना तब आपत्तियाँ भी आपत्तियों में पड़ जायेंगी कि चलो इसके द्वारे से, ये तो अभी भी मुस्करा रहा है। अपन तो ऐसा ही करते हैं। जगत् में कितने ही शब्द सुनाई पड़ें, कितना कुछ भी सुनाई पड़े, 'जो है सो है।' जो आनन्दमय जीवन जीता है, दीपावली तो वर्ष में एक बार आती है, उस व्यक्ति के तो क्षण-क्षण में दीपावली होती है, क्योंकि उसको कभी चिन्ता नहीं सताती। निरोग होना चाहते हो, स्वस्थ होना चाहते हो, तो आज से चिन्ता करना छोड़ दो। अरे भाई! जन्म जरा, मरण तीनों रोग ठीक हो जाते हैं, सामान्य रोग तो छोड़िये। स्वाध्याय करो, योगियों के साथ रहो, तीर्थों की वन्दना करो, तनावमुक्त हो जाओ। ये टेंसन की गोलियाँ नहीं खानी पड़ेंगी और नींद की गोलियाँ नहीं खानी पड़ेंगी। **जो नींद की गोलियाँ खाते हैं, वे तो आधे पागल हो जाते हैं, कुछ दिन बाद पूरे पागल हो जायेंगे। जिनको पागल नहीं होना है, वे आज से नींद**

की गोलियाँ खाना बन्द कर देना। तुमको नींद नहीं आये तो स्वाध्याय करना प्रारम्भ कर देना, अपने आप नींद आना प्रारम्भ हो जायेगी। वस्तु बन्ध का कारण नहीं है। यह सत्य है। बन्ध का कारण का कारण होने से वस्तु का त्याग करना अनिवार्य है। इस सूत्र को बहुत अच्छे से समझ लेना।

चाहे चेतन हो, चाहे अचेतन हो, चाहे मिश्र हो, ये तीन प्रकार का परिग्रह है। ग्रहस्थ अपेक्षा से धन धरती आदि, स्त्री पुत्र आदि। ये चेतन, अचेतन, मिश्र परिग्रह है और साधु की अपेक्षा से चेला-चेली चेतन परिग्रह है। पिच्छी-कमण्डल, जिनवाणी आदि अचेतन परिग्रह है। इनसे युक्त मिश्र परिग्रह है। श्रावक को धन, धरती, स्त्री, पुत्र आदि से विरक्ति होना चाहिये। साधुओं को चेला-चेली, शिष्य-शिष्यायें, छात्र-छात्रायें इनसे भी विरक्ति की जरूरत है। इनमें भी आत्मबुद्धि गई, तो बन्ध का ही कारण है। मैं तुम्हारी तुम मेरे। जब मेरी देह ही मेरी नहीं है, तो तुम मेरी कहाँ से हो गयी? अत्यन्ताभाव है। चेला हो सो हो, लेकिन चेला तो चेला ही है, चेला मेरा चित्-स्वभाव नहीं है। नहीं-तो गुरु-शिष्य गुरु-शिष्य, इसके राग में पता ही नहीं चला कि मेरी समाधि का क्या होगा?

परिग्रह का ग्रहण राग-द्वेष को उत्पन्न करनेवाला है। जब घर में कुछ नहीं था, तब माँ के द्वारा परोसी गई एक थाली में चार भाई भोजन कर लेते थे। कुछ भी राग-द्वेष नहीं होता था, क्योंकि गरीब था। याद करो अपनी-अपनी। जब से तुम्हारे घर में कुछ बढ़ गया, आँगन में दीवालें खड़ी हो गई, सो आँगन भी दिखाई नहीं दे रहा, तुम कितने छोटे हो चुके हो। भाई का भाव बदल गया तो वह बोला भैया! अलग हो जाओ। नहीं-तो अपन कमायेंगे, ये खायेंगे। हे धन! तुझे धिक्कार हो। तूने भाई से भाई को दूर करा दिया। बूढ़े माता-पिता को छोड़ने के लिये तैयार हो जाते हैं कि अब ज्यादा सेवा मत करो, नहीं-तो अपन को ही करनी पड़ेगी और बड़े भैया ने देखा कि पिता जी के पास सम्पत्ति है, तब तो पिताजी बड़े अच्छे हैं, बहुत सुन्दर हैं और सम्पत्ति नहीं है तो इनसे घिना कोई नहीं है। वह पिता को घिना बोल रहा है, धिक्कार हो। जिसने तेरे मल को उठाया हो, जिसने तुझे अपनी छाती पर खिलाया हो, उस पिता से तू क्या बोल रहा है?

हे धन! तुझे धिक्कार हो। सम्पत्ति को देखकरके समता को मत खो बैठना। सम्पत्ति रहने वाली नहीं है, वह तो दूर हो ही जायेगी; परन्तु तेरे पास जो समता थी, उसे उसके पीछे क्यों छोड़ बैठा? सम्पत्ति टिकनेवाली नहीं है।

राग-द्वेष को बढ़ानेवाला परिग्रह है और राग-द्वेष है महाबन्ध। भव का कारण कर्म को लानेवाला कोई है, तो राग-द्वेष है और राग-द्वेष का कारण परिग्रह है, इसलिये ऐसे परिग्रह का त्याग करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

महाफल देने वाला योग

सर्वसङ्गान् पिशुन कृत्वा, ध्यानाग्निनाहुतिं क्षिपेत्।
कर्माणि समिधश्चैव, योगोऽयं सुमहाफलम्॥ सा. स. 255॥

अन्वयार्थ—ध्यानाग्निना = ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा **कर्माणि समिधः च एव** = कर्मों को यज्ञ में होमने की लकड़ी मानकर जलावे और **सर्वसङ्गान् पिशुन कृत्वा आहुतिं क्षिपेत्** = सर्व अंतरङ्ग व बहिरङ्ग परिग्रहों को तिरस्करणीय मान कर उनकी आहुति डाले **अयं योगः सुमहाफलं**= यह योगाभ्यास का यज्ञ महाफलदायी है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! धनरूपी अग्नि के द्वारा कर्मरूपी समिधा की और अन्तरंग व बहिरंग परिग्रह रूपी पशुओं की आहुति देना, यह सुफल देनेवाला महायज्ञ है।

॥ सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मा की निर्बन्ध दशा की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। निश्चल निर्बन्ध स्वभाव भगवान्-आत्मा का है, उस आत्मा को महाबन्ध में रखनेवाला राग-द्वेष है। निज के प्रति किञ्चित् भी करुणा हो दया हो, स्व-पर अनुकम्पा के परिणाम हों, तो आत्मा की रक्षा राग-द्वेष से करो। जिन निमित्तों को लेकर तुम राग-द्वेष कर रहे हो, वे निमित्त तुम्हारे सहकारी नहीं हैं, कार्यकारी भी नहीं हैं, सहभावी भी नहीं हैं, क्रमभावी भी नहीं हैं। वे निमित्त यहीं पड़े रह जायेंगे। जितने जीव इस पर्याय को छोड़कर गये हैं, उनको जाते-जाते देख लिया करो। बहुत अच्छे से देखा करो कि क्या-क्या लेकर जा रहे हैं? जीव वर्षों-वर्षों राग-द्वेष कर रहा था, वे द्रव्य तेरे साथ नहीं होते। यदि साथ कोई होगा, तो राग-द्वेष से उपार्जित बन्ध ही साथ होगा।

इन्द्रियों के माध्यम से तुमने पर को देखा, इन्द्रियों के माध्यम से तुमने निज को कभी नहीं देखा। इन्द्रियाँ जान नहीं रही थीं, इन्द्रियों से देखा, इन्द्रियों से जाना। जाननहार आत्मा ही था, देखनहार आत्मा ही था। इन्द्रियों से जाननहार को नहीं जान सका देखनहार को नहीं देख सका। इन्द्रियों से आपने जो भी जाना-देखा,

वह दूसरे को देखा। वेदन भी दूसरे का ही किया। आपने ही किया है, आत्मा ने नहीं किया। इन्द्रियों से देखा, इन्द्रियों से जाना इसका तात्पर्य यह नहीं है। **इन्द्रियाँ पाप नहीं कर रही हैं पाप तेरी आत्मा ही कर रही है और पुण्य भी आत्मा ही कर रही है।** शुभ-अशुभ परिणति आत्मा के परिणामों की है। जब अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होता है, तब इन्द्रियों का कार्य बन्द हो जाता है। जब तक इन्द्रियों से कार्य ले रहा है, तब तक शुभाशुभ आस्रव-बन्ध ही कर पाओगे। शुभाशुभ बन्ध का अभाव करना चाहते हो तो इन्द्रियों से काम लेना बन्द करना पड़ेगा, आत्मा से आत्मा का कार्य करना पड़ेगा। आत्मा से आत्मा का जो कार्य है, वह ज्ञान का ज्ञान में निज का परिणमन है। परज्ञेयों को कोई स्थान नहीं परज्ञेयों में हेयबुद्धि नहीं, परज्ञेयों में उपादेय बुद्धि नहीं। वह दशा जिसकी है? जो आत्मा से आत्मा को समझ रहा है। इन्द्रियों के ज्ञान से शून्य होकरके आत्मा से आत्मा के ध्यान को प्राप्त हो रहा है। जिन आँखों से, जिन इन्द्रियों से जो-जो तुमने जाना है, वह पर को ही जाना है। जो-जो इन्द्रियों से वेदन किया है, वह पर का ही किया है। आत्मा ने। जो आप कह रहे थे कि मैं अपनी आँखों से अपने को देख रहा हूँ, मेरा हाथ गोरा है। जिसे तू देख रहा है, वह गोरे को देख रहा है। जो गोरा है, वह पुद्गल का गुण है, चेतन का गुण नहीं है। अरस, अरूप, अगन्ध अवक्तव्य जो अलिङ्गी है वह आत्मा का धर्म है, उसे तू आँखों से देख कर बता? निमित्त सहकारी है, पर निमित्त कार्यकारी नहीं होते हैं। कार्यकारी अंतरंङ्ग निमित्त होता है, उपादान होता है, पर निमित्त सहकारी मात्र होते हैं। सहकारी के अभाव में कार्यकारी कार्यभूत परिणत नहीं होता। इसे निमित्त की आवश्यकता है। ध्रुव सत्य यह है कि कार्यकारी जब भी होगा, उपादान ही होगा, बहिरङ्ग निमित्त नहीं होगा। बेलन-चौकी सहकारी तो हैं, कार्यकारी नहीं हैं। लोई सहकारी नहीं, कार्यकारी है। लोई रोटीभूत परिणत होगी, लेकिन बेलन-चौकी के अभाव में रोटी नहीं बनेगी।

पिच्छी, कमण्डल, दिगम्बर मुद्रा सहकारी है। इसके बिना दिगम्बर मुनि नहीं होगा। परन्तु कार्यकारी नहीं है। पिच्छी, कमण्डल और दिगम्बर मुद्रा का भेष यहीं रह जायेगा, परन्तु भगवान् तो आत्मा ही बनेगी। कार्यकारी उपादान ही होता है,

कार्यकारी बहिरङ्ग निमित्त नहीं होता। पर बिना सहकारी निमित्त के कार्यकारी कार्यभूत परिणत होता नहीं है। यही निमित्त-उपादान दृष्टि है। इसलिये ज्ञानी जीवों को चाहिये कि बहिरङ्ग में ऐसे विशुद्ध निमित्त इकट्ठे करें, संग्रहीत करें, जिससे अन्तरङ्ग का उपादान पवित्र बने। ऐसे बहिरङ्ग निमित्तों को अपने पास भटकने भी न दें जिन निमित्तों से आपके अन्तरंग में विषय और कषाय का जन्म हो जाये। ये स्व पुरुषार्थ है, पर पुरुषार्थ नहीं है। इस विषय को आज से परिपूर्ण रूप से विस्मृत कर लेना कि पर के निमित्त से मेरा कल्याण हो जायेगा।

मेरे मित्र! पर कल्याण के उपदेश कर्ता तो हो सकते हैं, लेकिन पर कल्याण के कर्ता नहीं हो सकते हैं। तीर्थंकर भगवन्त, आचार्य भगवन्त, उपाध्याय भगवन्त, मुनि भगवन्त, ये सबके सब जितने वक्ता हैं, ये वस्तुस्वरूप के उपदेश के कर्ता हैं, वस्तुस्वरूप के कर्ता नहीं हैं। ये सब वस्तुस्वरूप के उपदेश के कर्ता हैं, वस्तुव्यवस्था की व्याख्या के कर्ता हैं, पर वस्तुव्यवस्था को व्यवस्थित करने के कर्ता नहीं हैं। प्रत्येक द्रव्य द्रव्यत्व दृष्टि से, स्व पारिणामिक भाव से, स्व उपादान की योग्यता से, अहेतुक है। अहेतुक को तुम क्या देख रहे हो? जो अहेतुक है, उसका कर्ता कौन है? वह होता है। अहेतुक जो होता है, वह होता ही है। बहुत अच्छी बात है, भगवान् शीतल नाथ स्वामी की नगरी में ऐसे परम रहस्य उद्घाटित हों। यदि ये शब्द समझ में आ गये तो एक सामान्य श्रावक से लेकर निर्ग्रन्थ योगी भगवन्त तक के मस्तिष्क में यह गूँजना चाहिये। यदि ये शब्द नहीं गूँजते, ये शब्द समझ में नहीं आते, तो मेरे मित्र! विश्वास रखना, मुनिपना तो बहुत दूर है, सम्यक्त्वपना भी नहीं है। अहेतुक का हेतु क्या? इस शब्द का प्रयोग आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने किया है, परन्तु आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी की गूढ़ विद्या को लोग समझ नहीं पाये और कुछ अज्ञानियों ने तो कह दिया कि आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी वेदान्त से प्रभावित हैं, जबकि वे वेदान्त से प्रभावित नहीं हैं, वे आत्म-वेद से प्रभावित हैं। जब पण्डित जी पूजन पाठ की व्याख्या करते हैं तो ज्ञानी कहने लगते हैं कि ये बाहर से आये हैं। चरणानुयोग की बातें भी बाहर से आयी हैं, द्रव्यानुयोग की बातें भी बाहर से आयी हैं। तो मेरा प्रश्न है, अहो जैनियो! तुम्हारे

पास कुछ भी नहीं था क्या? तीर्थंकर की देशना खोखली थी क्या? तीर्थंकर की वाणी में कुछ नहीं झलका क्या? सबकुछ दूसरे के घर से लाकर इकट्ठा करके बैठ गये हैं क्या? इस भ्रम को निकाल दो, इस मिथ्यात्व को निकाल दो कि हमारे आचार्य दूसरे से प्रभावित हुये हैं।

मन्दिर के कुए से पानी ले गया और ज्ञानी कहता है 'भो स्वामिन्! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध। मेरे घर का आहार-पानी शुद्ध है, स्वीकार करो।' व्यवहार यही कहेगा, ऐसा ही बोलना चाहिये, परन्तु परमार्थ यह कहेगा कि तेरे घर का पानी कहाँ से आ गया? मन्दिर के कुए के पानी को अपने घर का पानी क्यों बोल रहा है? जिसका पानी है, उसका कभी नहीं मानते हो। कुए ने तुमको पानी दिया है। ज्ञानियो! ध्यान रखना, बिलछानी का प्रयोग करना, तो कुए के पानी का ही प्रयोग करना, हेण्डपम्प/जैटपम्प का प्रयोग बिल्कुल नहीं करना किसी साधु को। कुए का पानी निकाल लिया और बिलछानी डालने नहीं गये, तो तुम जान करके हिंसक हो। तुम कुए का पानी लेकर आये और कह रहे हो कि मेरे घर का पानी है।

ऐसे ही तीर्थंकर महोदधि से अनेक सूत्र रूपी मोतियों को लोगों ने अपनी अंजुली में भर करके अपने घरों में रख लिया और कहने लगे कि ये मेरा ज्ञान है, ये मेरा विषय है। जगत् में जितनी सत्यता है, वह अरहन्त मात्र की वाणी है, दूसरे की वाणी नहीं है। इसलिये आज से यह कभी मत कहना कि हमारे आचार्य बाहर से लेकर आये हैं। अपने चिंतन को विशाल करो, परन्तु अमृतचन्द्र स्वामी, कुन्दकुन्द स्वामी जैसे योगी पर प्रश्नचिह्न खड़ा करके अपने सम्यक्त्व में दोष मत लगा लेना।

अहेतुक शब्द यदि समझ में आ गया, तो जन्मजयन्ती मनाना तो बन्द ही कर दोगे। सब वर्षगाँठें बन्द हो जायेंगी। यह हर्ष-विषाद किस बात का? जितना आप उत्साह कर रहे हो, या तो राग के प्रतीक हैं या द्वेष के प्रतीक हैं। धार्मिक महोत्सव भी उतने ही धार्मिक हो पायेंगे जितनी आपके परिणामों में शुभ-उपयोग की धारा है। धार्मिक उत्सव में भी यदि किञ्चित् मात्र खिन्नत्व भाव आया है, तो वह अशुभ उपयोग की धारा है, धार्मिक उत्सव में भी किञ्चित् मात्र भी खिन्नत्व भाव आया है वह अशुभ उपयोग ही है।

आप धार्मिक अनुष्ठान भी कर रहे हो, गृहस्थिक अनुष्ठान भी कर रहे हो, उस समय यदि एक क्षणमात्र को कषाय की फिटकरी पर परिणामों की जीभ फिर गई, वहाँ नियम से बन्ध की जिह्वा हिलेगी-ही-हिलेगी। आप कहोगे, महाराज! ये तो मैंने धर्म के निमित्त से किया था। ज्ञानी **कषाय धर्म न थी, न हुई, न होगी। कषाय तो पाप ही है। अज्ञानी जीवों ने धर्म के नाम पर कषाय करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी भूल जीवन में कभी मत करना। कषाय कभी धर्म होती ही नहीं।** कषाय धर्म हो गई तो 'अकषाय भाव स्वरूपोऽहं' इस सूत्र का क्या होगा? उत्तम क्षमा धर्म है, उत्तम मार्दव धर्म है, उत्तम आर्जव धर्म है, उत्तम शौच धर्म है, उत्तम तप, त्याग, आकिञ्चन्य, ब्रह्मचर्य धर्म है। यदि कषाय धर्म हो गई, तो इन धर्मों का क्या होगा? भैया! कम-से-कम आज अपने मस्तिष्क ठण्डे हैं, जब मस्तिष्क ठण्डे हों तभी विचार कर लिया करो कि मैं धर्म के नाम पर कोई कषाय नहीं करूँगा, क्योंकि धर्म अलग वस्तु है, कषाय अलग वस्तु है।

भैया! झोली फैलाकर माँगने वाले जो लोग होते हैं, वे झोली में गेहूँ डलवा लेते हैं। कोई चने डाल दे तो वह भी डलवा लेते हैं। दोनों डलवा लेते हैं। जब अपने निजी स्थान में पहुँचते हैं तो उनके पास चलनी होती है, वे धीरे-से गेहूँ छान कर अलग कर लेते हैं और चने को अलग कर लेते हैं। दोनों धान्य भिन्न हैं। गेहूँ भिन्न है और चना भिन्न है ऐसे ही धर्म भिन्न है और कषाय भिन्न है। ये एकसाथ दिखाई अवश्य देते हैं, एक झोली में अवश्य हैं, परन्तु दोनों एक नहीं हैं। इसलिये धर्म को धर्म स्वीकारना। जो अहेतुक है वह धर्म है। धर्म की इससे बड़ी और-कोई परिभाषा नहीं होगी। जो अहेतुक होता है, जो अहेतुक है, वह धर्म है। जीवन में कभी पानी में अंगुली जली क्या? नहीं। वह अग्नि का सोपाधिक धर्म था। पानी अग्नि के संयोग में गया सो पानी से अंगुली जल गई। पर वास्तव में अग्नि से ही अंगुली जली है। जो पानी का धर्म है, वह उष्ण नहीं है। पानी का धर्म शीतल है। उष्णता सहेतुक है और शीतलता अहेतुक है। घी से भी अंगुली जल जाती है। अहेतुक अज्ञान नहीं है। अज्ञान तो सहेतुक है, मिथ्यात्व सहेतुक है। अविरति सहेतुक है, प्रमाद सहेतुक है, योग सहेतुक है, लेकिन स्वभाव अहेतुक है। मिथ्यात्व कर्म की प्रकृति का हेतु न बने, तो जीव को अश्रद्धान न आये। मिथ्यात्व सहेतुक है।

ज्ञानावरणी कर्म न पेरे तो अज्ञान न आये। सहेतुक है अज्ञान। चारित्रमोहनीय कर्म न सताये तो जीव के अविरति परिणाम न हों। सहेतुक है अविरति। मन वचन काय की चंचलता न सताये, कषाय न सताये, आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन न हो मन-वचन-काय के निमित्त से, तो योग नहीं हो सकते हैं। इसलिये योग अहेतुक है। **'कुशलेषु अनादरः प्रमादः'** कुशल क्रियाओं में अनादर भाव आना 'प्रमाद' है। यह प्रमाद काषायिक भाव है, यह सहेतुक है। असंयम सहेतुक है। संसार ही सहेतुक है। संसार की प्रत्येक दशायें सहेतुक हैं। परन्तु मैं तो अहेतुक हूँ। आत्मा का ज्ञानगुण किसके निमित्त से प्रकट हुआ है? आत्मा का सुख गुण किससे प्रकट हुआ है? आत्मा का वीर्य गुण किससे प्रकट हुआ है? हेतुओं का अभाव हो जाय, यही आत्मा का धर्म है। अहेतुक है। अजन्मा, अजरत्व स्वभावी। अजन्मा स्वरूपोऽहं। अजरत्व स्वरूपोऽहं। जो जन्म दिख रहा है, वह देह का है। जो देही है, उसका जन्म आज तक हुआ ही नहीं है।

हे जनक! हे जननी! आप देह के निमित्तकर्ता भी नहीं हो। हे तात्! हे जननी! सत्य बताओ, आपके उपादान में तो कामवासना का जन्म हुआ था, मेरी पर्याय का जन्म नहीं हुआ था। हे जनक-जननी! आपने अपनी इच्छाओं की पूर्ति की है। मेरा जन्म तो मेरे मनुष्य-आयु- कर्म के उदय से हुआ है। क्या यह सत्य नहीं है? है सत्य ही है। यही सत्य है। जिस समय अहेतुक पर दृष्टि चली जायेगी, उस दिन आप एक दम शांत होंगे। जो मेरा पारिणामिक भाव है, जीवत्व भाव है। गतियों की बात नहीं कर रहा हूँ, इन्द्रियों की बात नहीं कर रहा हूँ, मैं जीवत्व की बात कर रहा हूँ। जीवत्व भाव किसके निमित्त से उत्पन्न हुआ है? आप पर के जनक की बात तो छोड़ दीजिये, आप स्वयं के भी जनक नहीं हो। मैं अपना कर्ता नहीं हूँ। तुम राग-द्वेष के कर्ता हो, तुम अपने कर्म-नोकर्म के कर्ता हो, लेकिन तुम अपने चैतन्य गुण के कर्ता नहीं हो। जब मैं अपना ही कर्ता नहीं हूँ, तो तेरा कर्ता कैसे हो सकता हूँ? लोगों के अन्दर जितना कष्ट पनप रहा है उसका कारण है कर्तृत्व बुद्धि, कि मैंने यह किया, मैंने यह किया। परन्तु मैंने मैंने को ही नहीं किया, तो मैंने अन्य को क्या किया? यह है शुद्ध समयसार। इसे भी समझना पड़ेगा अन्यथा ये विशुद्धसागर पिच्छी- कमण्डल तो दे पायेंगे, लेकिन पिच्छी-कमण्डल लेने के

उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पायेंगे। मैं विशुद्धसागर से कह रहा हूँ, आप पिच्छी-कमण्डल ढोते रहोगे, शीत-उष्णता की वेदना सहन करते रहोगे, लेकिन अहेतुक का अनुभव नहीं कर सकोगे। ज्ञानियो! बिना किसी पुराण के भी आगम की व्याख्या है।

ज्ञायकभाव निमित्ताधीन नहीं है, परन्तु ज्ञान की पर्याय निमित्ताधीन अवश्य है। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ये ज्ञान निमित्ताधीन हैं। कर्म के आवरण के हटने पर ही प्रकट होते हैं। तदावरण का अभाव होने पर, तद्-प्रतिबन्धक भाव के अभाव होने पर ही ज्ञान गुण की पर्याय विकसित होती है। 'सारसमुच्चय' को समझना है तो, करणानुयोग का गहनतम अध्ययन होना चाहिये। यदि आप करणानुयोग का अध्ययन नहीं करोगे, तो समयसार को विपरीत कर दोगे। दर्शन शास्त्र, सिद्धान्त शास्त्र, शब्द शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो जाये, तब पढ़ना द्रव्यानुयोग। क्या सोच रहे हो? जो है, सो है। अहेतुक है। मेरा द्रव्य तो अहेतुक है। आप किस पर राग कर रहे हो, किस पर द्वेष कर रहे हो? जिस पर राग-द्वेष है, वह सहेतुक है। जिस पर तुम करना चाहते हो, उस पर कर नहीं सकते हो। वह अहेतुक है। एक क्षण के लिये चिन्तन कर लो।

हे ज्ञानियो! योगाभ्यास करो। जैनदर्शन में कोई अलौकिक विद्या है, उसका नाम 'ध्यान' है। ध्यान-साधना ही श्रेष्ठ साधना है। ध्यान से ही कर्मों का क्षय होता है। श्रमणों को निर्विकल्प ध्यान होता है।

हे भव्य! ध्यानरूपी अग्नि के द्वारा कर्मों को यज्ञ में होमने की लकड़ी मानकर दहन करो। उसमें सर्वपरिग्रहों को तिरस्करणीय मानकर उनकी आहुति समर्पित करो। यह अहिंसक योगाभ्यास का यज्ञ महाफलदायी है। ज्ञानी! जिस दिन कर्म स्वाहा हो जायेंगे, उस दिन यह आत्मा सिद्धालय में स्थापित हो जायेगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

यज्ञ की महिमा

राजसूयसहस्त्राणि, अश्वमेधशतानि च।
अनन्त भाग तुल्यानि, न स्युस्तेन कदाचन॥ सा. स. 256॥

अन्वयार्थ—राजसूयसहस्त्राणि = हजारों राजसूय यज्ञ किये जावें **अश्वमेध शतानि च** = और सैंकड़ो अश्वमेध यज्ञ किये जावें **तेन अनन्त भागतुल्यानि कदाचन न स्युः** = तो भी उनका फल उस ऊपर लिखित आत्मयज्ञ के अनन्तवें भाग के बराबर भी कभी नहीं हो सकता है।

भावार्थ—हे विशुद्धात्मन्! हजारों राजसूय यज्ञ और सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ भी उपरि कथित आत्मयज्ञ के अनन्तवें भाग बराबर भी कभी नहीं हो सकते।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्य भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में द्रव्य ज्ञायक स्वभावी भगवान् आत्मा के निर्विकल्प निर्विकार दृष्टि से दिखाने की प्ररूपणा कर रहे हैं जितने विकार हैं वे राग द्वेषमय हैं रागद्वेष का मूल स्रोत परिग्रह है। परिग्रह ही रागद्वेष का जनक है। चाहे बहिरङ्ग परिग्रह छोड़ भी देगा और अंतरङ्ग परिग्रह नहीं छूटा तेरे मन में राग द्वेष है सारी विषमताओं का हेतु क्लेश कष्ट दुख अशान्ति का मूल कारण परिग्रह में आत्म बुद्धि है। सम्बन्ध जुड़ रहे हैं तो परिग्रह, सम्बन्ध टूट रहे हैं तो परिग्रह से टूट रहे हैं। जिसके पास 'श्री' अधिक हो गई दूसरा ईर्ष्या करने लग गया उसके सम्बन्ध टूटने लगे। जिसके पास 'श्री' अधिक है उससे भी तुम्हारा राग बढ़ता है। जिससे मैत्री भाव प्राप्त कर लो इससे जो मिलेगा वह परिग्रह है अंतरङ्ग में प्रवेश करके देखो। पवित्र से पवित्र सम्बन्धों का विच्छेद हो रहा था उसमें कहीं न कहीं परिग्रह बैठा हुआ था। जो आत्मा को चारों ओर से जकड़ करके बैठा हुआ था जो आत्मा को चारों ओर से जकड़ कर बैठा हुआ है वह परिग्रह है। लोग गृहों की आराधना कर रहे हैं बोला शनि देव लग गया मुनिसुव्रत नाथ की आराधना कर लो। अरे ज्ञानी! चौबीसों तीर्थंकर की शक्ति समान है एक भी तीर्थंकर की वीतरागता में न्यूनता नहीं है आपने शनि के लिये मुनिसुव्रत नाथ स्थापित

कर लिया। शनि क्या करता है? सब उतर जाये, कुछ बचे नहीं। कुछ नहीं बचे यही तो हमारा धर्म है। सब उतर जाये आपके लिये रास्ता हो जायेगा यदि शनिग्रह लग गया यह बहुत अच्छी बात है तू दिगम्बर हो जायेगा और दिगम्बर हमारा धर्म है। लेकिन ध्यान रखना यदि आपने शनि ग्रह निवारण के लिये मुनिसुव्रत नाथ की आराधना की है, तो उस समय उद्देश्य क्या है मात्र परिग्रह की वृद्धि है परिग्रह उतार दो तो सारे ग्रह अपने आप उतर जायेंगे जीव यत्र तत्र भटक रहा है उसका उद्देश्य क्या है? चींटी भी दिनभर घूमती है परिग्रह के लिये घूम रही है।

एकेन्द्रिय जीव के भी परिग्रह संज्ञा है। **वनस्पति की जड़ें उसी ओर जाती हैं जिस तरफ पानी है जहाँ खाद है, जहाँ धन गड़ा हुआ है उसी ओर जड़ें पहुँच जाती हैं, यह परिग्रह संज्ञा है।** सर्वत्र विवेक का नाश हो उसका मूल बिन्दु परिग्रह है। आचार्य महाराज ने तो यह कह दिया महाबन्ध का कारण रागद्वेष है और रागद्वेष का कारण परिग्रह है। सोचो चिन्तन करो। क्लेश दुख कहीं है क्या? जिस द्रव्य को मान्यता में अपना मान बैठे हो उस मान्यता को आप समाप्त कर दो, दुख समाप्त हो जायेगा। मान्यता को ही ठीक किया जाता है वस्तु को कुछ नहीं किया जाता। जो भूमि आपको अधिकृत थी उसे आपने दूसरे को सौंप दिया अब उस भूमि पर कुछ भी हो जायें आपको विकल्प समाप्त हो चुके हैं। जब तक पर द्रव्य में निज की मान्यता है तभी तक कष्ट है। यहाँ आप यह मत सोचना कि मेरे घर का क्या होगा? मेरी ग्रहस्थी का क्या होगा? वस्तु स्वरूप समझो जो आप क्लेश को प्राप्त हो रहे हो दुख को प्राप्त हो रहे हो मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर के मनुष्य के सुख का वेदन नहीं हो पा रहा है तो और क्या कर पायेगा। **मनुष्य पर्याय के सुख का बोध ही देवत्व की उत्पत्ति है। मनुष्य पर्याय के सुख की भी अनुभूति ही मोक्ष है। मनुष्य पर्याय के सुख का भोग ही सिद्धत्व की सिद्धि है।** मनुष्य पर्याय के सुख का भोग ही स्वर्ग ले जायेगा। आप अभी मनुष्य पर्याय के सत्यार्थ सुख को नहीं भोग रहे हो, मनुष्य पर्याय के भूतार्थ सुख को नहीं भोग रहे हो। मनुष्य पर्याय में जो शुद्ध मनुष्य पर्याय का सुख है उसका फल ही मोक्ष है। मनुष्य पर्याय का समग्र सुख मोक्ष का कारण है और असमग्र सुख देवत्व का कारण है। मनुष्य पर्याय में पाँच इन्द्रियों का भोग, मनुष्य पर्याय की वास्तविकता

का सुख नहीं है। यह मिश्र धारा है। जिसे तुम सुख मान रहे हो वह दु:ख भूत है जिसे आप सुख मान रहे हो वह संक्लेश भूत है। जिसमें संक्लेशता है वह दु:ख है सुख नहीं है। खोज करो। यदि आप इन्द्रिय सुख का भोग करते हो वह तभी सुख महसूस होता है जब किसी अन्य प्रकार की संक्लेशता नहीं होती है, यदि इन्द्रिय सुख के काल में भी कोई संक्लेशता तुम्हारे बगल में बैठी हुई है, तो आपको सुख की अनुभूति हो नहीं सकती। किसी ने आपको अच्छी से अच्छी सामग्री सौंप दी है और कहा आप इसका सेवन करो यह आपके लिये अभीष्ट है जैसा आप चाहते हो वैसा ही भोजन है, जैसे—ही वह ग्रास मुख की ओर ले जाने लगा ध ीरे से कह दिया मैं सुबह से आपको बताना नहीं चाहता था वहाँ से ऐसा समाचार आया है आपका बेटा बाहर गया था उसका एक्सीडेंट हो गया है। आप भोजन शुरू करो फिर देख लेना भोजन तो करलो बाद में पता कर लेना अब भोजन का स्वाद कैसा होगा? क्या भोजन के स्वाद में कमी है? नहीं, क्या भोजन का वैसा आनन्द आ रहा है?

ध्रुव सत्य है आनन्द तो आत्मा का ही गुण है। आनन्द तो आत्मा का ही धर्म है, पर द्रव्य के निमित्त से जो आनन्द आ रहा है वह यथार्थ में पर द्रव्य निमित्त मात्र है। आनन्द तभी आयेगा जब संक्लेशता का अभाव है। निमित्त मात्र की संक्लेशता चल रही है आप विश्वास रखो तीर्थंकर के समोशरण में भी उस जीव को आनन्द नहीं आ सकता मारीचि से पूछो। शान्ति नाथ जिनालय में खड़े हो करके आप घण्टों-घण्टों खड़े हो, लेकिन मन के कोई क्लेश छा जाये आप द्रव्य तो चढ़ा देंगे, लेकिन भगवान् की प्रतिमा नहीं दिखेगी। मनुष्य पर्याय का सुख मोक्ष का कारण कैसे है इसे समझके संक्लेश रहित परिणति, आतम को सुख सो सुख आकुलता बिन कहिये, आत्म सुख आकुलता शून्य है, आकुलता शिव में नहीं है इसलिये आप शिवमार्ग में लग जाओ। शिवमार्ग में कौन लगेगा ? नारकी देव तिर्यञ्च ? मनुष्य लगेगा। यथार्थ में जो मनुष्य पर्याय आपको मिली है वह आकुलता से रहित सुरत की प्राप्ति की साधना के लिये मिली है। आकुलता में लीन हो जाना यह मनुष्य पर्याय की प्राप्ति की सार्थकता नहीं है। इतने क्षण हमने अपनी पर्याय के कहाँ विलीन कर दिये? हृदय से ही पूछ लेना, घर में सुख सम्पत्ति होने पर भी

आनन्द अपको तभी आता है जब चित्त प्रसन्न होता है। सुख सम्पत्ति चित्त प्रसन्नता का कारण नहीं है वह सुख का कारण नहीं है। आप स्त्री पुत्र धन आदि की प्राप्ति को सुख बोलते हो। यथार्थ में सुख विशुद्धि है निराकुलता है। इसलिये दरिद्रता आने पर भी सुखी हो सकता है और अरबपति होने पर भी दु:खी हो सकता है। खोज करो आकुलता निराकुलता, है कौन-सी वस्तु? इसे आप आँख खोल कर नहीं खोज पायेंगे। इस विषय को आप चाहें कि मैं भगवान् के पास जाकर देखूँ, वहाँ भी नहीं मिलेगा आप चाहें मैं गुरु के पास जाकर देखूँ वहाँ भी नहीं मिलेगा। आपने पड़गाहन किया और आपके मन में भाव आया कि आज मेरे घर मुनिराज जी पधार जायें प्रशस्त परिणाम हुये। मुनिश्री निकले और किसी दूसरे चौके में पड़ग गये। परिणामों से पूछना क्या हो रहा है ? जहाँ-जहाँ पर-द्रव्य की प्राप्ति की भावना रखोगे वहाँ नियम से आकुलता बनेगी, जहाँ-जहाँ पर-द्रव्य को लक्ष्य बनाओगे वहाँ नियम से आकुलता होगी, पर द्रव्य से बुद्धि हटा लेगा वहीं निराकुल सुख को प्राप्त कर सकेगा। आकुलता बढ़ गई आप सोच कर आये थे उस पुरुष से मेरा ऐसा काम हो जायेगा। उसके पास उस कार्य की सामर्थ नहीं थी। वह आपका कार्य नहीं कर सका कल तक वह आपका मित्र था, वह तो वहीं है, जो था। तुम्हारी भावनाओं ने उसे शत्रु बना दिया है वह मित्र ही था शत्रु बना ही नहीं था। शत्रु आपकी आकांक्षाओं ने बनाया है। नारायण प्रतिनाराण का युद्ध वर्तमान की पर्याय में देखा जाय उन दोनों की शत्रुता नहीं होती, लेकिन नियोग ऐसा नरायण के यहाँ कोई विशिष्ट वस्तु होती है। प्रतिनारायण कहता है—आप मुझे अपना हाथी सौंप दो, आप राज्य में जो नृत्याङ्गनायें हैं उन्हें मुझे सौंपदो ये तुम्हारे राज्य में शोभा नहीं दे रही ये मेरे राज्य की शोभा बढ़ायेगी। वह कहता है आपमें ताकत है तो लेकर जाओ इतना युद्ध हुआ कि प्रतिनारायण का घात नारायण के हाथ से हो जाता है। और कर्म की विचित्रता देखो नारायण कभी चक्र रत्न सिद्ध नहीं करते। चक्ररल की सिद्धि प्रतिनारायण को होती है। लेकिन मुख्य की योग्यता को निहारो—**धनवान् है बलवान् है श्रीवान् है धी मान् है यदि पुण्यवान् नहीं है तो सारे वान् कुछ नहीं कर सकते, पुण्य क्षीण हो गया तो बलवान् का बल काम में नहीं आता, धनवान् का धन काम में नहीं आता बुद्धिमान् की बुद्धि काम में नहीं आती।**

विद्वान् लोग सेठों के यहाँ नौकरी कर रहे हैं। धीमान् है श्री मान् नहीं है इनके पास मात्र धी का ही पुण्य था श्री का पुण्य नहीं था शास्त्र वाचन से पुण्य कमा कर रखा लेकिन दान के नाम पर कंजूसी करते थे पूर्व में सो विचारे धन हीन हो गये कर्म का न्याय सबके साथ बराबर है। वे प्रबल पुण्यात्मा जीव हैं जिनके पास 'श्री' भी हो धी भी हो। नारायण को प्रतिनारायण ने चक्र सौंपा नहीं था कि लो भैया चक्र ले जाओ आपके काम में आयेगा। प्रतिनारायण कुपित होकरके नारायण के सिर को छेद करने के लिये चक्र रत्न घुमाता है। वह नारायण की परिक्रमा लगाकर उसी के हाथ में थम जाता है। जड़ द्रव्य भी चैतन्य के पुण्य पर आकर्षित होती है। जड़ द्रव्य का नियोग की आपके पुण्य पर आश्रित है, जिस चक्र रत्न को प्रतिनारायण इष्ट मानता था अपना आराधना भूत मानता था, परम अस्त्र मानता था वह भी दूसरे के हाथ में पहुँच गया। सबके दिन एक से नहीं होते, **किसी पर विश्वास करने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास करना हो तो मात्र दो पर करना भाग्य और भगवान्। लोगों को बदलने में देर नहीं लगेगी। जिस ओर हवा चलती है मन्दिर की पताका उसी ओर फहराती है।** लोगों की भीड़ को देख करके, इस विश्वास में मत चले जाना सब एक हैं ऐसा कभी मत सोचना।

कितनी बार पार्टियों को बदलते देखा। कल्पना करिये आप अपने घर में इस विषय को अच्छी तरह समझ सकते हैं। जन्म देने वाली माँ भी छोटे-बेटे के प्रति दुलार रख रही थी बड़े बेटे ने कुछ ज्यादा नाटक कर दिया तो माँ का चेहरा बदल जायेगा—इसलिये आज जिनवाणी के पादमूल में भाव बना लेना। हे माँ जिनभारती! जगत् के जीवों को आनन्ददायिनी मैं उस माँ की गोद में नहीं जाना चाहता हूँ जो चेहरा बदलती हो। मैं उस माँ की गोद में जाना चाहता हूँ जो निगोदियासे लेकर के चौदहवें गुणस्थान तक के जीवों के लिये बराबर संकेत कर रही हो। चाहे गरीब पहुँचें चाहे अमीर पहुँचें चारों आँचल बराबर खुले हों वह जिनवाणी है। जैसे जिनालय की भू पर तुम जिन विम्ब निहारते हो कभी बाहर आ कर के मन्दिर के कलश और छज्जा को भी देखा करो।

''दृष्टवा जिनेन्द्र भवनं भव ताप हारी''

वे पुण्यात्मा जीव हैं जिनके भवनों से जिन भवन दिखाई देता है। मन्दिर में शिखर तो होना ही चाहिए। वृद्धावस्था में मन्दिर नहीं पहुँच पाया तो कम से कम शिखर की वन्दना करके भव ताप से दूर हो जायेगा। दादा! अभी तो मन्दिर दौड़-दौड़ कर जाना। कदाचित् मन्दिर न पहुँच पाओ, शरीर काम न करे, तो ऐसे स्थान पर पहुँच जाना जहाँ से मन्दिर का शिखर दिखता हो।

भगवान् जिनेन्द्र के भवन के दर्शन मात्र भव के ताप को दूर कर देते हैं। जब शिखर को देखो तो लहराती ध्वजा की ओर देखना और पूछना-हे ध्वज। तेरा नियत स्थान क्या है ? वह ध्वजा कह देगी मेरा कोई नियत स्थान नहीं है। जिस ओर हवा होती है, उसी ओर मेरा तन लहराता है। ऐसे ही ये संसार एक ध्वजा के समान है। जिस ओर पुण्य की हवा होती है, उस ओर सारा संसार साथ होता है। हवा मुड़ गई, तो सारे चेहरे मुड़ जायेंगे। यदि आपको आनन्दमय जीवन जीना हो, तो अगल- बगल और आगे-पीछे के लोगों को अपना मानना बन्द कर दो। आज समझ में न आये तो अन्तिम श्वास तक समझ लेना। अन्तिम समय समझ में नहीं आये तो अगली पर्याय में समझ लेना। लेकिन ध्रुव सत्य यही है कि कोई भी जीव तुम्हारा साथ देने वाला नहीं है। सब मोह की माया है। मनुष्यपर्याय का आनन्द लूटनेवाला ही मोक्ष जायेगा।

दूध में भी मल होता है—देखा ? मक्खन तपाने पर जो मरी निकलती है, वह क्या है ? दूध का मल ही तो है। दूध के मल को, मक्खन बनाने पर, तपाकर मरी के रूप में निकाल लेते हो। जब आप दूध पी रहे थे तब आपने कितना मल पी लिया था, किसी को पता नहीं है। तपाने पर मरी अलग हो गई, शुद्ध घी बन गया है। ये सारी-की-सारी प्रक्रियायें गोरस दूध की ही हुई हैं। ऐसे-ही जो तुम मनुष्य पर्याय का आनन्द समझ रहे हो, वह विकृत आनन्द है। आप कहेंगे महाराज जी! अभी तक तो मैं यह सोचता था कि साधु बनूँ, लेकिन आज तो आनन्द आ गया, आज तो आपने कह दिया कि मनुष्यपर्याय का आनन्द भोगना ही मोक्ष जाना है। अब साधु बनने की जरूरत ही नहीं है। ज्ञानियो इस जीव ने इतना तो सुन लिया, लेकिन मनुष्य पर्याय का आनन्द कौन-सा ? दूध पीने वाला या मक्खन तपाकर मरी निकाल कर फिर अनुभूति लेगा वह आनन्द ? आप मनुष्य पर्याय

का आनन्द सुनिये। एक मिनिट का ध्यान और एक घण्टे माला फेरना, इन दोनों में कोई उत्कृष्ट है तो एक मिनिट का ध्यान है। एक घण्टे की पूजा और एकाग्र होकरके णामोकार की एक माला फेरना, इसमें उत्कृष्ट माला है। क्यों ? आप लोग पूजा मत छोड़ देना। पूजा भी करना है, माला भी फेरना है; लेकिन विषय को समझो। सिर पर टोकरी रख करके रोड़ पर जो मजदूर काम कर रहे हैं, उनका वेतन कितना होता है? मेहनत उसकी ज्यादा हो रही थी। वहाँ पर एक इंजीनियर खड़ा हुआ है, वह फीते से नाप रहा है उसका वेतन और टेकनी वाले का वेतन क्या बराबर होता है? नहीं, इंजीनियर का वेतन ज्यादा होता है। क्यों? वह तो ज्यादा काम नहीं करता ?

एक बाबू जी गाड़ी से आये, सब मजदूर खड़े हो गये सेठ भी खड़ा हो गया और देख रहा था कि कोई अधिकारी आया है, उसका वेतन अधिक है। ऐसा क्यों ? जैनदर्शन की साधना की विधा बहुत गहरी है। जो टोकनी डाल रहा था, उसके शरीर की मेहनत तो बहुत हो रही थी, लेकिन टोकनी भर कर फेंकने में बुद्धि ज्यादा नहीं लगती। जो फीता नाप रहा था, उसको टोकनी वाले की अपेक्षा मस्तिष्क का प्रयोग अधिक करना पड़ रहा था और जो अधिकारी आया था उसको बुद्धि का व्यायाम अधिक करना पड़ता है। ऐसे ही जो भक्ति-पूजा करते हैं, ताली भी बजाते हैं, द्रव्य की चढ़ाते हैं, उन्होंने यह किया कि जो हमारा चित्त अनन्तों में भटक रहा था, उसको सीमित में भटकाया। इसलिये पूजा करना श्रेष्ठ है, परन्तु जब माला फेरने बैठे थे, तो जो द्रव्य थाली मूर्ति में उपयोग जा रहा था वह मात्र मन्त्र जाप में गया, आपने अपने आप को संकुचित किया। जब ध्यान करने बैठे, तब मन्त्रजाप भी बन्द हो चुका था इसलिये उत्कृष्ट साधना का नाम ध्यान है।

मनुष्यपर्याय का आनन्द ही मोक्ष दिलाता है। मनुष्यपर्याय का आनन्द रत्नत्रय धर्म है। निर्विकल्प ध्यान शुद्धोपयोग स्वात्मोपलब्धि सिद्धि का साधन, उपेक्षा भाव, मध्यस्थ परिणाम, परम उदासीनता जिसने एक क्षण भी प्राप्त कर ली, वह जगत् के विषयों पर आँख खोल कर भी नहीं देखेगा। जो मनुष्यपर्याय का असमग्र सुख भोग रहा है, ध्यान का असमग्र सुख भोग रहा है, वह स्वर्ग जायेगा। जिसने समग्र रत्नत्रय की पूर्ति को प्राप्त कर लिया है, वह नियम से निर्वाण को प्राप्त होगा।

इसलिये आप अभ्यास इस बात का करो, भले आप गृहस्थ हो, पर सबके बीच में रहते हुये भी वही मान कर चलो कि मैं इनके साथ रह अवश्य रहा हूँ, परन्तु मैं इनके साथ नहीं हूँ। **जिनमें कर्तृत्व बुद्धि है, उनमें अपनत्व बुद्धि है। जिनमें कर्तृत्व बुद्धि नहीं है, उनमें अपनत्व बुद्धि नहीं है। जैसा पड़ोसी का बेटा तेरे काम में नहीं आयेगा, वैसा तेरा बेटा भी काम में नहीं आयेगा। पड़ोसी का बेटा तो फिर भी कन्धा लगाने पहुँच जायेगा। जिसको तुमने कुछ भी हिस्सा नहीं दिया था, उसके कान्धों पर तेरी यात्रा चलेगी और जिसको तूने हिस्सा दिया है, वह अग्नि ही लगायेगा।** ऐसा ही सत्य है। भैया कितने संस्कार करके आये हो, तब भी समझ में नहीं आया। जिनको तू हाय-हाय करके हिस्सा देकर गया है, वह आग ही लगायेगा और जिसको तूने कुछ नहीं दिया है, वह कान्धा लगायेगा। इतना सत्य सुनने के बाद भी समझ में नहीं आये तो अब महावीर समझाने नहीं आयेंगे। सच भले ही कड़वा लगे, लेकिन मलेरिया तो कड़वी कुनैन से ही उतरेगा। आपको परम आनन्द की अनुभूति लेना है तो आज घर जाकर कह देना कि सम्बन्ध तो सम्बन्ध है, सम्बन्ध स्वभाव नहीं है। परद्रव्य में आत्मबुद्धि ही कषाय की जननी है।

आचार्य महाराज ने परिग्रह को पशु कहा था—कारण में कार्य का उपचार। वह परिग्रह पशु बने या न बने, परन्तु परिग्रह का संचय करने वाले पशु वृत्ति में अवश्य चले जाते हैं। बोरा उठाकर जब पीठ पर लादते हो तो क्या आकार होता है ? बेचारे तिर्यञ्चों को कितने हण्टर खाना पड़ते हैं। चलानेवाले अशुभ शब्दों का प्रयोग भी करते हैं। आप भी जब दुकान पर बैठे होते हो तो उस पैसे के राग में कितने ग्राहकों की कितनी बातें सुनकर शान्त बैठे रहते हो। ऐसा क्यों ? माँ कुछ बोल दें तो भनभना जाये, पिता कुछ बोल दे तो कह दे कि अलग कर दो। वे तेरे कौन लगते थे जिनकी दुनिया की बातें सुनकर भी शान्त बैठा था? कुछ कह देंगे तो कल से व्यापार नहीं चलेगा। जो सर्विस करते होंगे उनसे और पूछ लो। अधिकारी की बातें कितनी बार सुनी हैं? पता नहीं होता कि वह कौन-से वंश का है, कौन-सी जाती का है। तू उच्चकुलीन वंश का होने पर भी तुमको वह जानकर डाँटता है कि आज मौका है इनको डाँटने का। तब सोचता है ओ

हो! मैंने अपने पिता की आँख को नहीं देखा, माँ की डाँट को नहीं झेला। आज मुझे कौन डाँट रहा है ? तत्त्वज्ञानी उसी दिन सब छोड़ कर भाग जायेगा कि छोड़ो ये सब व्यर्थ के काम धन कमाने के राग में पशु बन रहा है। छाँटो ऊपर-नीचे से, कितनी जगह आपको समझौते करने पड़े है। कितना ही यज्ञ कर लो, उनका फल न्यून है। **जिसने परिग्रह रूपी पशु को छोड़ दिया, वह महायज्ञ के फल को प्राप्त होता है।** षट्खण्डागम तो हमारे आगम की जननी है। वहीं से तो सब प्रारम्भ होते हैं। इतना कमाया, इतना कमाया, जो-जो कमा कर रखा है, पहले कमाने में राग-द्वेष किया, अब उसको देखने में राग-द्वेष कर रहा है। किसको दूँ, किसको नहीं हूँ, यह भाव चल रहा है। दे पायेगा कि नहीं दे पायेगा, यह कोई नियत नहीं है। यदि देने के राग में चला गया और दूसरे ने ले लिया, तो साँप बन कर डसने पहुँच जायेगा। धन के ऊपर साँप बन कर बैठा था। जिसको देना था, सो वहाँ से हट गया और नहीं देना था, उसको डस लिया। यह सत्य घटना है। अजगर, साँप हो गया। इसलिये धन के राग में लिप्त मत होना। पुद्गल में पुद्गल को रखने के लिये आप कितने आनन्दित होते हैं।

एक पुद्गल पर दूसरे पुद्गल को लपेटने पर क्या आनन्द आयेगा ? यदि मनुष्य-पर्याय का आनन्द लूटना है तो आर्यिका दीक्षा के परिणाम बनाओ, मुनि बनने के परिणाम बनाओ, मनुष्यपर्याय का आनन्द वो है। लेकिन मुनि तब बनना जब परिपूर्ण वैराग्य हो। यदि परिपूर्ण वैराग्य नहीं है, तो मुनि व आर्यिका की सेवा करना परन्तु दीक्षा लेकर संख्या मत बढ़ाना। आपने वैराग्यशून्य दीक्षा ले ली तो जिसके लिये चले थे उसका आनन्द आ नहीं रहा है। जिसमें तुम्हें आनन्द आता था, वह मिल नहीं रहा है। अब तो संक्लेशता-ही-संक्लेशता है। गृह बाद में छोड़ना, गृह का राग पहले छोड़ देना। प्रवचनसभा में इतना तो समझ में आना चाहिये कि सुख का कारण कुछ-और भी है। जिसे मैं सुख मान चुका था, उसके अलावा कुछ-और भी है। जिसे आप कुछ-और कह रहे हो, वही सत्य है। जिसे आप सुख मान कर बैठे हो, वह दु:ख ही है। इसलिये मनुष्यपर्याय का जो आनन्द है, वह निर्विकल्प है, निराकुल है। निराकुल आनन्द का फल ही सिद्धि है।

लोक में अनेक प्रकार के यज्ञ हुये हैं। नरमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ। अश्वमेध यज्ञ का तात्पर्य यह नहीं था कि अग्नि में घोड़ों का हवन कर देना।

अश्वमेध यज्ञ का अर्थ था, अश्व यानि घोड़ा, घोड़े की गति द्रुत होती है। घोड़े के समान यह मन है। इस मन रूपी कुण्ड को ज्ञान रूपी रस्सी से पकड़ करके वश कर लेना और ध्यान की अग्नि कुण्ड में लगा देना, इसका नाम अश्वमेध यज्ञ है, न कि जीवों को अग्नि में पटक देना। लोगों की अज्ञानता जो भी बना कर रखे। लोगों ने अन्तरङ्ग की वृत्ति को बहिरङ्ग में खड़ा कर दिया। वो था नरमेध यज्ञ। गौमेध यज्ञ यानि गाय को अग्नि में पटक दिया। यह गौमेध यज्ञ नहीं है। गो यानि वाणी।

जिनवाणी के सोलह नाम हैं। सोलहवाँ नाम है गौ, ऐसी भगवती माँ जिनवाणी 'गौ' की आराधना में लीन होना, उसका नाम गौमेध यज्ञ है। गायों को अग्नि में पटकना गोमेध यज्ञ नहीं है। वह तो गौ हत्या है। ऐसा हमारे आगमग्रन्थों में कथन किया है। अज्ञानी जीवों ने उसका विपर्यास कर लिया।

शब्द क्यों छोड़ दिये अपन लोगों ने ? षट्खण्डागम जी में (धवला पुस्तक नौ में) समोशरण का वर्णन है। उसमें प्रत्येक द्वार पर बलि-पीठ होता है। बलि-पीठ का अर्थ लोगों ने हत्या में करना प्रारम्भ कर दिया, सो हमने बलि शब्द का प्रयोग करना बन्द कर दिया। बलि पीठ का तात्पर्य होता है, जिस स्थल पर भगवान् को द्रव्य समर्पित किया जाता है। नैवेद्य सौंपते हैं, उस स्थान का नाम है बलि-पीठ। लोगों ने प्रासुक द्रव्य की जगह पशुओं को चढ़ाना शुरू कर दिया, सो हमने बलि शब्द का त्याग कर दिया। बहुत सारे शब्दों का दुरुपयोग किया है। जैसे-जैसे काम बदलता गया, लोगों ने उसका दुरुपयोग किया, आप छोड़ते चले गये। बल्कि ये सभी शब्द आगम के हैं। पाखण्डियो! इतना सौभाग्य तुम्हारा कहाँ ? अभी तुम पाखण्डी नहीं हो, पाखण्डी तो ये बैठे हुये हैं। (मुनियों की ओर इशारा करते हुये) भैया! हमारे गुरु को पाखण्डि कह दे तो लड़ना नहीं। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'समयसार' जी में गृही लिङ्ग और पाखण्डि लिङ्ग का वर्णन किया है पाखण्डिलिङ्ग का अर्थ होता है दिगम्बर मुनि। क्षपक खमण यानि दिगम्बर मुनि निर्ग्रन्थ। गृहीलिङ्ग का तात्पर्य है श्रावक। जो पापों के खण्डन में तल्लीन है जिस लिङ्ग के धारण करने से पापों का खण्डन होता है। उस लिङ्ग का नाम है पाखण्डिलिङ्ग। लोगों ने पाखण्डि शब्द को ढोंगों में लगा दिया, सो अपन लोग उसे पाखण्डि मूढ़ता कहते

हैं। पर शब्द के साथ इतिहास है । शब्द विज्ञान होता है।

अहो श्रावको! आप से महाभाग्यवान् और कौन जीव होगा? आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं। हे मुमुक्षु! हजारों राजसूय यज्ञ, सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ करने वाला जीव उस फल को कभी प्राप्त नहीं करेगा। उसके अनन्तवें भाग बराबर भी प्राप्त नहीं कर सकता। जिस यज्ञ की मैंने चर्चा की है, जो परिग्रह रूपी पशु का त्याग कर देता है, उसे उस यज्ञ का कोटिक गुना फल प्राप्त होता है।

आज तो विचार कर लो कि कुछ किये बिना इतना फल मिलता है तो फेंको कपड़े सब। ठीक, मुनि नहीं बन पाओ तो कोई बात नहीं है। जो पेटियों में भरे रखे हो, ठण्डियों में जो गरीब ठिठुर रहे हों उनको दे देना। वे तो सड़ ही जायेंगे। ज्यादा राग में यह जीव चला गया तो कहीं उन्हीं वस्त्रों में जाकर कीड़ा बन जायेगा। माँ भेंट दे तो कहना माँ! ये परिग्रह पशु क्यों बता रही हो मुझे। इसे तो मुझे छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिये ज्ञानियो! एक लक्ष्य बनाकर तो चलना कि जीवन में अन्तिम श्वास निकलने के पहले परिग्रह पशु से दूर हो जाना। घर जाकर इतना तो बोल ही देना कि मैं परिग्रह पशु से दूर रहना चाहता हूँ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सच्ची प्रज्ञा

सा प्रज्ञा या शमे याति, विनियोगपराहिता।
शेषा च निर्दया प्रज्ञा, कर्मोपार्जनकारिणी।। (257/सा. स.)

अन्वयार्थ–(**सा प्रज्ञा शमे याति**) वही विवेकबुद्धि शान्ति की ओर ले जाती है (**या हिता विनियोगपरा**) जो वैराग्य के भीतर तत्पर है (**शेषा च प्रज्ञा कर्मोपार्जन कारिणी निर्दया**) उसके सिवाय जो बुद्धि राग-द्वेष में लवलीन है, वह कर्मों का बन्ध करानेवाली है और निर्दय है, आत्मा की दया से शून्य है।

भावार्थ–हे भव्य ! वही सच्ची प्रज्ञा या हितकारिणी बुद्धि है जो वैराग्य भाव में तत्पर हो, आत्मा को समताभावों की ओर ले जाती हो। इसके सिवाय जो बुद्धि कर्मों का बन्ध कराने वाली है, वह निर्दय है और आत्मा से शून्य है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में आज उस प्रज्ञा की व्यख्या कर रहे हैं जो प्रज्ञा हमारी मित्र है, जो प्रज्ञा हमारी शत्रु है। हमारा सोच दूसरे पर चला जाता है कि ये हमारा शत्रु है, हमारा मित्र है। **पर की प्रज्ञा, हमारे परिणामों के विघात का कारण न हुई न हो सकेगी। पर की प्रज्ञा मेरे विनाश का कारण न हुई न हो सकेगी। पर की प्रज्ञा से मेरा विनाश आज तक हुआ ही नहीं। पर की प्रज्ञा ने मेरा अहित किया ही नहीं है। जब भी मेरा अहित होगा तो निज की प्रज्ञा से ही होगा। जो-जो मेरे बारे में अशुभ सोचेगा, वह मेरे से भिन्न है मैं उससे भिन्न हूँ।** इस युवावस्था में जैसा सम्यक् बोध हो गया, वही अन्तिम समाधि का साधन बनेगा। इसी युवावस्था में यदि आपने विपरीत समझ लिया और तुम्हारी पर्याय का दुरुपयोग करते रहेंगे, तो वह तुम्हारी दुर्गति का कारण बन जायेगा। जिनकी पर्याय विपरीतता में अर्ध मृतक हो चुकी है, उन प्रज्ञाओं से आपको चर्चा नहीं करना है। चर्चा उस प्रज्ञा से करना है जो प्रज्ञा मेरी मित्र है, जो प्रज्ञा मेरी शत्रु है। निज की प्रज्ञा ही मेरी मित्र है, निज की प्रज्ञा ही मेरी शत्रु है। समय सार ग्रन्थ के सत् के रूप में यह सार- समुच्चय ग्रन्थ रखा हुआ है।

कुन्दकुन्द स्वामी ने 'समयसार' जी में कहा—जब तू भयभीत हो रहा है तो तू बन्ध को प्राप्त हो चुका है। हाय हाय! अब मेरा क्या होगा? अब तो मैंने पाप ही कर लिया है। अब मेरा क्या होगा ? कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि अब मत रोओ, दुःखी मत हो।

इस विषय को पूरे राष्ट्र में समझाने की आवश्यकता है। **पाप से पापी जीव आत्म हत्या नहीं कर रहे, पाप के पश्चात्ताप से जीव अधिक आत्महत्या कर रहे हैं। जब पाप स्वयं समझ में आने लगता है, उसके पश्चाताप को सहन नहीं कर पाते हैं तो लज्जा/लोकमर्यादा से भयभीत हो करके आत्महत्या करने बैठ जाते हैं। आत्महत्या किसी पाप का प्रच्छालन नहीं है। आत्महत्या लोक के अवर्णवाद को दूर करने का उपाय नहीं है। जितने लोग आत्महत्या कर रहे हैं, वे अपनी हीन वृत्ति से कर रहे हैं।** समयसार के गूढ़ रहस्यों को आपने मात्र धर्म के रूप में व्याख्यायित किया। वस्तुस्वभाव के रूप में व्याख्यायित करते तो सारा विश्व ही कहता कि समयसार तो मेरा ग्रन्थ है।

एक पुरुष शिल्पकार था। वह शिल्पकार विशेष हथकड़ी बेड़ियाँ तैयार करता था। साँकलें बनाया करता था। उसकी साँकले शासन खरीदता था। उन साँकलों का प्रयोग अपराधियों के बन्धन में किया जाता था। साँकल की एक कड़ी में वह अपनी मोहर अवश्य लगाता था। उसका मार्का था। वह साँकल बनाने में बहुत प्रसिद्ध हो गया। **सुमेरू पर्वत को उठाकर फेंक देना सरल है, परन्तु दूसरे की प्रसिद्धि को पचा पाना बहुत कठिन है। वर्षों के उपवास/लंघन कर लेना सरल है, लेकिन दूसरे की उन्नति को देखना सीख लो, यही तुम्हारी तपस्या है।** उस साँकल बनाने वाले की प्रसिद्धि को सुन करके लोगों को चैन नहीं आया। उसने सम्राट के कान भर दिये। उसने उस शिल्पकार को हथकड़ी डाल करके काराग्रह में डाल दिया। वह शिल्पकार काराग्रह में भी मुस्करा रहा था कि मैं तो इतनी मजबूत बनाता हूँ, ये तो कहीं-और की होगी, मैं तोड़ लूँगा। वह साँकल में नजर घुमा रहा था। उसको अपनी मुद्रा दिखाई दे गई। जैसे ही सील को देखा, उसका चेहरा उदास हो गया। पूछा गया-क्या हो गया ? तो कहता है कि दूसरे के द्वारा निर्मित होती तो मैं तोड़ लेता। ये तो मैंने ही मजबूत बनाई है, अब इसको कैसे तोडूँगा?

भीतर से दृढ़ता का गुरु बोलता है–आपको मालूम होना चाहिये कि बनाने की ताकत जिसमें है, तोड़ने की ताकत भी उसी में है। एक समय पूर्व खिन्न था, दूसरे समय पुनः प्रसन्न हो गया। जेलर पूछता है कि तू मुस्करा क्यों रहा है ? लोग तो जेल में रोते हैं। रोयें वो जिन्हें अपनी करतूती का बोध न हो। जिस प्रज्ञा ने बन्ध किया है, उसी प्रज्ञा से मोक्ष होता है। जिन हाथों से हथकड़ियाँ बनाई गई हैं, उन्हीं हाथों से हथकड़ियाँ तोड़ी जा सकती हैं। **जिस बुद्धि से कर्मबन्ध किये जाते हैं, उसी बुद्धि से कर्मबंध तोड़े जाते हैं। आत्महत्या करने से कर्म छूटने नहीं हैं। अपराध आपने किया है, दोष आपने किया है। लोक का अपमान सहन कर लेना, पर प्राण छोड़ कर मत जाना।** शक्ति एक है। जिनालय में विद्युत से बल्ब जल रहा है। ज्ञानी आया और शान्तिनाथ भगवान् के दर्शन करके अनन्त गुनी कर्मनिर्जरा करके चला गया। वही एक बल्व वेश्यालय में लगा हुआ है, वहाँ एक कामी पुरुष आया और कामिनी के चेहरे को देख करके, विकारों से भर करके, पाप करके, असंख्यात लोकप्रमाण कर्मबन्ध करके चला गया। चेहरा दिखाने वाला कौन था ? वही बल्व था। एक बल्व ने वेश्या का चेहरा दिखाया दूसरे बल्व ने प्रतिमा दिखायी। दोनों में कितना अन्तर है। ऐसे ही जैसे विद्युत एक है। अस्ति में प्रयोग किया, उसको शान्ति नाथ प्रतिमा दिखी। नास्ति में प्रयोग किया, उसको वेश्या का चेहरा दिखा। विद्युत एक है, ज्ञान एक है, ज्ञान का उपयोग करने वाला एक है, उपयोग करनेवाले की विचार धारायें एक हैं पुरुष की विचारधारा जैसे होगी, ज्ञान का प्रयोग वैसा होगा। ज्ञाता! पर को दोष मत दे, तेरा ही दोष है। आजतक आपने क्या किया? पर को ही दोष देकर आनन्द लूटा है। लगता था कि आनन्द लूट रहा है, परन्तु आनन्द फूट रहा था। निन्दा–रसालु कभी आनन्द चख पायेगा क्या? निन्दा–रसालु यदि आनन्द में चला गया, तो नीच गोत्र का बन्ध करने कौन आयेगा ? आपने जिस जीव की निन्दा की, उस जीव का यदि पुण्य तेज है, सो वो जो है सो है, लेकिन आपने निन्दा की, विश्वास रखना, यदि आप जिन हो और जिनवाणी को सत्य मानते हो, तो सम्भल कर जीना।

पर की निन्दा, स्वयं की प्रशंसा, दूसरे के सद्गुणों को ढकना, असद्गुणों को प्रकट करना, इससे नीच गोत्र का आस्रव होता है। भगवान् नहीं करायेंगे। मेरे भगवान्

जैसे भगवान् कहीं दुनियाँ में नहीं मिलेंगे। वे कभी नाराज ही नहीं होते, वे कभी प्रसन्न भी नहीं होते। यदि नाराज हो गये तो भगवान् नहीं, प्रसन्न हो गये तो भगवान् नहीं। अपन कौन से भगवान् को मानते हैं ? जो कभी नाराज नहीं होते, जो कभी प्रसन्न भी नहीं होते। तुम पूजा करो या न करो, कभी भी नाराज नहीं होते। आप प्रतिदिन पूजा करो तो भी कभी प्रसन्न नहीं होते।

यदि तुमको पूज्य बनना है तो पूजा करना मत छोड़ देना और यदि तुमको दुर्गति में जाना है तो पूजा करने कभी मत जाना। दुर्गति में जाना है तो कभी भूल कर भी मन्दिर मत चले जाना। दुर्गति में नहीं जाना है तो भूल कर भी मन्दिर जाना बन्द मत कर देना। हमारे भगवान् के पास माँगने मत जाना। **तीनलोक के नाथ के चरणों में भक्त बनकर जाना, भिखारी बनकर मत जाना। जो घर, दुकान, दुनियाँ की विभूति भगवान् के पास माँगते हैं, वे सब भिखारी लोग होते हैं। भिखारी वे ही होते हैं, जो विकारी होते हैं। जो विकारी नहीं होता, वह भिखारी नहीं होता। जो भिखारी नहीं, तो वह सच्चा भक्त होता है।** इसलिये माँगने मत जाना। पूर्वाचार्यों ने एक ही शिक्षा दी है–

माँगन मरण समान है, मत माँगो तुम भीख।

भैया ! जीवन में खाने को न मिले तो णमोकार पढ़कर सो जाना। नींद नहीं आये तो रात्रि में बैठे-बैठे जाप करते रहना, लेकिन किसी के घर माँगने मत जाना। अशुभ के दिनों में विपत्ति के काल में तो कभी किसी के द्वारे जाना ही मत। लगे में लगती है, गिरे को दुनियाँ गिराती है। इसलिये अशुभ के दिनों में पर घर में नहीं जाना। जब-जब आपत्ति के दिन आयें, 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि' चार की शरण में चले जाना।

अरहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

और जब परमार्थ दृष्टि में प्रवेश कर जाओ तो–

"अप्पा सरणं पव्वज्जामि"

फिर ज्ञानी! कुछ नहीं होगा विपत्ति ही समझ में नहीं आयेगी। कहाँ ? अप्पा सरणं पव्वज्जामि। भगवान्-आत्मा की शरण में चले जाना, लेकिन आपत्ति के काल

में दूसरे के घर कभी मत जाना। भाई से भी माँगने मत जाना। क्यों ? सम्बन्ध भाई का है, कर्म का भाई का सम्बन्ध नहीं है भाई के कर्म का सम्बन्ध तेरा नहीं है। इस बात को आज से भूल जाना सब कोई, कि मेरा बड़ा भैया सुख से रहता है और मैं दु:खी हूँ। भाई-भाई का सम्बन्ध है, लेकिन दोनों के कर्म का सम्बन्ध एकभूत नहीं है। इसलिये जितने भाई यहाँ बैठे हैं, जिस भैया के पास सम्पत्ति है, उसके प्रति ईर्ष्या मत करना और जिस भैया पर विपत्ति है, उसके प्रति हीन भावना मत रखना। नहीं-तो तुम इस अहंकार में डूब जाओ, पिता जी ने तो बराबर बाँटा था इसने नाश कर लिया। ऐसा कोई नहीं सोचता की नाश हो जाये। परन्तु नाश कराने वाला कर्म है, उसने नाश करा दिया है। उस कर्म को नाश करने वाला तू ही है कर्म को बुलानेवाला तू ही है। घर का हिस्सा बटाया जा सकता है, भाग्य का हिस्सा कोई नहीं बटा सकता। यदि कर्म का हिस्सा बटाने की ताकत किसी में होती तो चक्रवर्ती, कामदेव स्वयं तीर्थंकर को जिनके जन्म से ही नहीं, गर्भ से कोटि-कोटि देव माता- पिता के द्वार पर खड़े रहते हों, किंकर के समान कर जोड़ करके जिनके द्वार पर सौधर्म इन्द्र खड़ा हो, वे तीर्थंकर भी, जब छः महीने विधि ा नहीं मिली, विधि नहीं थी सो विधि नहीं मिली, तब सौधर्म इन्द्र का अवधिज्ञान भी काम नहीं आया। तीर्थंकर जैसे महा पुण्यात्मा जीव को। इस वसुधा पर प्रबल पुण्यात्मा कोई जीव होता है, उसका नाम एकमात्र तीर्थंकर भगवान् होता है। ऐसे तीर्थंकर जैसे जीव को भी मुद्रा लगा कर घूमना पड़ गया। स्वामी! विधि क्यों नहीं मिली ? क्या करें, विधि मैंने ही बिगाड़ी थी, सो विधि मेरी बिगड़ गई। जो लोग वर्तमान मात्र को देखते हैं, वे जैनत्व से शून्य होते हैं। लेकिन अभी तक मैंने जाना था कि मात्र वर्तमान को देखो। दोनों बातों को समझो। वर्तमान को देखो तब कहना जब वर्तमान में संकटों की भीड़ लगी हो, चारों ओर अन्धकार दिख रहा हो, कोई सहारा दिखाई न देता हो। उस समय वर्तमान को ही देखना और पूर्व में अशुभ किये थे सो घेरे में आ गये। आज मेरा सौभाग्य है कि हम पूर्व को तो ठीक नहीं कर पायेंगे, लेकिन भविष्य तो बना कर रख सकता हूँ। कोई सोचे कि मैं अपने बूढ़े शरीर को पुनः युवा बना लूँ, सो इनके आयुर्वेद में कोई ताकत नहीं है। न

अंग्रेजी औषधियों में ताकत है। परन्तु इतना अवश्य है कि तुम पूरा गन्ना चूस लो, लेकिन गन्ने की जो गाँठ बचती है उसे फेंको मत, उसे खेत में गाड़ दो। वही गाँठ जो तुम फेंकने वाले थे, वही पूरा-का-पूरा रसवान् गन्ना दे देगी। ऐसे ही जो बूढ़ा शरीर है, इसे तुम मृत्यु के गड्ढे में मत डालो, इसे समाधि के खेत में डाल दो, तो पुनः तुम्हें सुन्दर शरीर मिल जायेगा और जन्म-मरण से रहित होने का पुनः पुरुषार्थ कर लेना। इसलिये जिनागम में मरण को स्वीकारा ही नहीं है। दुनियाँ के लोग मरने पर रोते हैं, जिनशासन में मृत्युमहोत्सव मनाते हैं। परन्तु मृत्युमहोत्सव उनका ही मनता है, जो पिच्छी-कमण्डल के साथ जाते हैं। डण्डों के साथ जाने वालों का मृत्युमहोत्सव नहीं होता है। अब क्या है? जो है, सो है।

वर्तमान को जब देखना, एक समय के परिणामों की पर्याय को निहारो जो भूत में पर्याय निकल चुकी, उसमें मत रोओ। भविष्य में क्या होगा, इसके लिये मत बिलखो। भूत नष्ट हो चुका है, भविष्य अजन्मा है, वर्तमान जीवित है। उसको सुधार लो तो तीनों सुधर जायेंगे। जो मात्र वर्तमान को ही देखकर जी रहा है, उसको मैं जैनत्व के बाह्य कह रहा हूँ। ये मैं ही नहीं कह रहा हूँ, पूरा जिनागम कह रहा है। अपेक्षित बनाना। वर्तमान मात्र को देखनेवाला जिनागम के बाह्य है कैसे बाह्य है ? महाराज ! मैंने आज तक किसी जीव का अशुभ नहीं सोचा, अशुभ नहीं किया, कराया भी नहीं है अनुमोदना भी नहीं की, लेकिन तब भी ये मुझे सता रहे हैं। ये जीव मुझे क्यों सता रहा है? मैंने तो इसका कुछ किया ही नहीं है। मित्र ! सुन, जो बात आप किसी को नहीं बता पाते, वह मित्र से बता देते हो। इसलिये हमारे आचार्यों ने कई जगह मित्र शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि तात् शब्द का प्रयोग किया। जब वजन देकर कहना चाहते हैं तो कहते हैं 'मेरे तात्! सुनो।' जैसे अपने बुन्देलखण्ड में कह देते हैं जब आदमी थक जाता है—'अरे बाप रे! सुन ले।' जब पिता जी थक जाते हैं बोलते हैं अपने बेटे से—अरे बाप रे! सुन ले। ऐसे ही कई जगह कई आचार्यों ने, अमृतचन्द्र स्वामी तक ने अध्यात्म अमृत कलश में लिखा है—हे तात्! सुन लो मेरी बात।

सुन। 'महाराज! मैंने कुछ भी नहीं किया, फिर भी ये मुझे सता रहे हैं।' इसका

मतलब है कि जैनदर्शन का प्रारम्भिक सूत्र ही आपको पता नहीं है। भैया! सबकी पर्याय विलीन होनेवाली है, उसमें अपना भी नम्बर है, इसलिये अपन तो शन्ति की साधना कर रहे हैं—हे भगवान् ! आँख बन्द होने के पहले, देह का धुँआ निकले इसके पहले कषाय का धुँआ निकल जाये और जलने के पहले जलना छूट जाये। मित्र! जलने के पहले जलना छोड़ो।

क्या-क्या देखी क्या-क्या होगी। यह पुरुषार्थ की कमी के लिये नहीं लिखा, कि जो-जो देखी सो-सो होसी। यह कषाय की कमी के लिये है लोगों ने पुरुषार्थ की कमी के लिये लगा दिया। ऐसे जुड़ चुके थे, चारों ओर से संकट के घेरे थे और कोई पूछने वाला भी नहीं आ रहा है, फिर ये कह रहा है 'क्या कर सकते हैं?'

जिस देश में जिस काल में जिस विधान से जीव का जैसा नियत है, चाहे जन्म हो चाहे मरण हो, उसको इंद्र या जिनेन्द्र या तीर्थंकर भी नहीं टाल सकते हैं। तब ये लगाना, इसके पहले और-कुछ सोचना। **स्वतन्त्रतः कर्ताः।** जिनागम का पहला सूत्र सुनो। जितने वक्ता हैं, वक्ता बनने की भावना रखते हैं, वे जब भी उपदेश करने बैठें, युवा पीढ़ी को सबसे पहले एक सूत्र दो **'त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं'** तीन काल हैं और छह द्रव्य हैं। यह सूत्र आपको मालूम नहीं है तो आप वर्तमान मात्र को देखते-देखते चार्वाक हो जाओगे। चार्वाक होकर आप क्या सोचोगे? ज्ञानी मुझे कष्ट दे रहा है जबकि मैंने उसका कुछ नहीं किया। आपको मालूम होना चाहिए 'त्रैकाल्यं' काल तीन हैं। तीनों कालों में षट् द्रव्य हैं, वे त्रैकालिक हैं, आप भी त्रैकालिक हो। वर्तमान की पर्याय तात्कालिक है। लेकिन पर्यायों में रहनेवाला जो पर्यायी है, वह त्रैकालिक है। आपने आदिनाथ स्वामी को देखा क्या ? आप आदिनाथ स्वामी से मिले कि नहीं ? मैं तो आदिनाथ से भी पुराना हूँ। मैं भूल से नहीं, बहुत विवेक से बोल रहा हूँ। मैं ही पुराण हूँ, मैं ही 'ज्ञा' हूँ। मैं ज्ञानी हूँ। वस्तुस्वरूप ऐसा ही है। 'महाराज जी! आपको डर नहीं लगता? निडर होकर बोलते हो।' डरते डरते पंचमकाल में आ गये, अब भी मिथ्यात्व से डरते रहोगे तो अब छटवें काल

में जाना है क्या? बिल्कुल नहीं डरना, पापों से डरना।

ज्ञानियो! वैराग्य को धारण करो। त्याग-तप का मार्ग ही श्रेष्ठ है। मुक्ति का कारण है। वैराग्य के लिए जगत् की विचित्रता के बारे में चिंतन करते रहना और इस नश्वर देह की ओर दृष्टिपात करना, कि यह तो विनाशीक ही है, इससे तप करना ही श्रेष्ठ है।

ज्ञानियो! प्रज्ञा ही बन्ध कराती है और प्रज्ञा ही निर्बंध कराती है। आत्मा और अनात्मा के विवेक को प्रज्ञा कहते हैं। प्रशस्त प्रज्ञा को प्राप्त करके जो आत्मस्वरूप में लीन हो जाता है, वह निर्वाणसुख को प्राप्त करता है।

हे ज्ञानी ! वही सच्ची प्रज्ञा है, हितकारिणी बुद्धि है, जो वैराग्यभाव में लगा दे। जो निर्बन्ध मार्ग को प्रशस्त करे, वही प्रशस्त प्रज्ञा है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सेवन करने योग्य प्रज्ञा

प्रज्ञाङ्गना सदा सेव्या, पुरुषेण सुखावहा।
हेयोपादेयतत्त्वज्ञा याऽरता सर्वकर्मणि॥ (258/सा. स.)

अन्वयार्थ—(**पुरुषेण**) पुरुष को उचित है कि (**प्रज्ञाङ्गना सदा सेव्या**) प्रज्ञारूपी स्त्री की सदा सेवा करे (**या**) जो (**सुखावहा**) सुख देने वाली है (**हेयोपादेय तत्त्वज्ञा**) त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्य तत्त्व को जाननेवाली है और (**सर्वकर्मणि याऽरता**) जो सर्व मन-वचन-काय के कार्यों में रत नहीं है।

भावार्थ—हे भव्य ! जो प्रज्ञा हेय-उपादेय सत्त्व को जानने वाली है, सर्व मन वचन और काय की क्रियाओं में रत नहीं और सुख देने वाली है, वही प्रज्ञा (बुद्धि) रूपी अंगना (स्त्री) सदा पुरुष के द्वारा सेवन करने योग्य है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में समीचीन प्रज्ञा की व्याख्या कर रहे हैं। हितकारिणी बुद्धि। परम मित्र कोई है, तो मेरी निज प्रज्ञा ही है। आज तक मुझे किसी ने सम्यक्-मार्ग भी नहीं दिया और आज तक किसी ने मुझे विपरीत मार्ग भी नहीं दिया। पर अपनी प्रज्ञा से सम्यक् विचार करता है, अपनी प्रज्ञा से विपरीत विचार करता है। मेरा सम्यक्पन और मेरा विपरीत- पन पर प्रज्ञा से कोई सम्बन्ध नहीं रखता। निज का सम्बन्ध निज की प्रज्ञा से है, निज का सम्बन्ध निज के ज्ञान से है। किसी व्यक्ति के क्षयोपशम के बढ़ाने में आप सहकारी नहीं हो सकते हो। किसी जीव के क्षयोपशम का नाश करने में तुम सहकारी नहीं हो सकते हो। दूसरे के अहित के बारे में सोच करके अपने शुभ का नाश अवश्य कर सकते हो। अपना अहित अवश्य कर सकते हो, लेकिन पर का अहित आपके सोचने मात्र से बिल्कुल नहीं होता। ये दृढ़ श्रद्धा बना लो यह श्रद्धा बनाने का विषय नहीं है। ऐसा ही है, वस्तु का यही स्वरूप है। कषाय के आवेश में आकर हम विचार कर लेते हैं कि मैं अमुख व्यक्ति का नाश करके रहूँगा, लेकिन सत्यता यह है कि आप किसी का नाश नहीं कर पायेंगे। यदि सामनेवाले का परघात

नामकर्म का उदय है, तो आप निमित्त बन पाओगे और किसी का परघात नामकर्म का उदय नहीं है, तो आप उसका कुछ नहीं कर पाओगे। वारिषेण के ऊपर राजा श्रेणिक ने तलवार चलवा दी थी पिता ने बिना विचार किये। वारिषेण कृष्ण चतुर्दशी के दिन, अष्टमी के दिन श्मसान में ध्यान किया करते थे ये साधना का काल था। वारिषेण भी निर्वस्त्र होकरके रात्रि में साधना कर रहे थे। इसी बीच में नगर की वेश्या ने अपने प्रेमी से कहा कि सेठानी के कण्ठ में जो रत्नों का हार है, यदि वह मुझे नहीं मिला, तो आप मेरे भारतार नहीं हो। कामी अन्धों में महा-अन्धा होता है। प्राण का विकल्प छोड़करके पर की इच्छा की पूर्ति के लिये चल देता है। उसने सेठानी के हार को तो चुरा लिया, लेकिन रत्नों के प्रकाश के प्रभाव से वह कोतवाल से बच नहीं सका। दौड़ता-दौड़ता आता है और सोचता है कि अब मेरे कहीं भी प्राण बचने वाले नहीं हैं। जहाँ वारिषेण ध्यानस्थ खड़े थे उनके सामने हार को फेंक दिया और स्वयं झाड़ी में छिप गया। कोतवाल ने देखा कि यह हार तो वारिषेण के पास पड़ा हुआ है। हार को उठा लिया और श्रेणिक से कह दिया—राजन्! अब किसके बारे में चर्चा करूँ? कुमार ही हार को चुरा कर लाये और सामने निर्वस्त्र होकर खड़े हो गये। जीवन में ध्यान रखना, आँखों-देखा भी सत्य नहीं होता। तो क्या वारिषेण चोर थे ? हार उनके चरणों में था। जीवन में किसी व्यक्ति के ऊपर कभी भी निर्णय करो, आशङ्का खड़ी करो, उसके पहले अपने चित्त को निः शंकित करने का प्रयास करना। **पता नहीं शङ्काओं में हम कितने पाप का बंध कर चुके हैं ? जो जैसा नहीं होता है, उसके बारे में वैसा सोच लेते हैं और सोच में इतना सोचना हो जाता है कि आपको दयनीय दशा में खड़ा कर देता है।**

ज्ञानी ! जीवन में वस्त्रों को शुद्ध करने के लिये बहुत पानी का प्रयोग किया, देह शुद्ध करने के लिये बहुत पानी का प्रयोग किया, अपनी सफाई देने के लिये बहुत शब्दों का प्रयोग किया, हे जीव ! आपने कोटि-कोटि द्रव्यों का दान भी दिया है, लेकिन तेरा सोच शौच हो जाता तो दुनियाँ में स्नान करने की क्या आवश्यकता थी? मुमुक्षु! सोच को शौच बनाइये। बेतवा में डुबकी लगाने से कल्याण नहीं

होगा। सोच को शौच बनाइये। जिसका सोच 'शौच' नहीं उसके पास कोई धर्म नहीं है। जिसका सोच शुचिमय हो जाय, तो सारा जगत् आपको पवित्र नजर आयेगा। जो सोच को शौच बनाये, वही ज्ञानी है। जो सोच को शौच नहीं बनाये, ज्ञान का दुरुपयोग करे, वह अज्ञानी है। किसी को सफाई देने की आवश्यकता नहीं है, मात्र सोच को शौच बनाने की आवश्यकता है।

वारिषेण जैसे खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे। पिता ने कुछ नहीं देखा। ये राज्य, ये अधिकार, ये अहंकार इतना कठोर होता है कि अपने जन्मे (सगे) पुत्र पर भी इतना कठोर निर्णय ले लिया। लेकिन तनक सोच को शौच बना लेते और कहते—मेरे वीर्य में ये अशुद्धता हो ही नहीं सकती है जिस वंश में तीर्थंकर वर्द्धमान की पूजा होती हो उस वंश में चोर का जन्म कैसे हो सकता है? राजा ने चाण्डाल को आज्ञा दी कि जाओ वारिषेण के सिर को निकाल कर लाओ। चेलनी महारानी का बेटा, वर्द्धमान की मौसी का बेटा, ऐसा काम कैसे कर सकता है? परन्तु पिताओं से कहना है कि शीघ्र कोप करके ऐसा निर्णय मत कर लेना। **अपने हाथ से लगाये पौधे को काटना भी घोर पाप है, फिर सन्तान को नाश करना महापाप है। अपने हाथ से लगाये पौधे को भी लोग नहीं काटते, फिर सन्तान के नाश के भाव कैसे? वार करने के लिये तुम स्वतन्त्र हो, परन्तु मारने में स्वतन्त्र नहीं हो। तुम वार कर सकते हो, लेकिन किसी को मार नहीं सकते हो। मरण आयु के क्षय से होगा।** जैसे ही तलवार का वार किया राजकुमार युवराज के कण्ठ पर, पुष्पहार में वह तलवार परिवर्तित हो गई। 'धम्मं सरणं पव्वज्जामि'। अग्नि हिम हो जाती है, नाग भी हार हो जाते हैं धर्म के प्रभाव से। सोमा के लिये सास ने नाग रखा था, वह हार हो गया। सीता अग्निकुण्ड में कूदी तो शीतल नीर हो गया। धर्म के प्रभाव से अग्नि भी नीर हो जाती है। सब देखते रहे। जीवन में कुछ सीख सको तो इतना सीख लेना—

देखो, जानो, जानो दो।

सबसे महान् साधना है ज्ञायकभाव। जो साधना में लीन होना चाहते हैं, जो भगवान् को अपने नेत्रों के सामने बुलाना चाहते हैं, वे भगवान् को बुलाने में ताकत

लगाते हैं। जो तुम्हारे सामने है, उसको देखना प्रारम्भ कर दो। तब भगवान् अपने आप दिखना प्रारम्भ हो जायेंगे। ज्ञानी ध्यान में बैठ गया और ध्यान प्रारम्भ किया—'हे भगवान् ! मेरे बेटे की माँ का चेहरा मेरी आँखों के सामने न आये।' उसने ध्येय क्या बनाया? वही सबसे पहले सामने आयेगा। तूने ज्ञेय किसे बनाया, तूने ध्येय किसे बनाया? तुझे यह कहने की क्या आवश्यकता पड़ गई कि मेरे बेटे की माँ का चेहरा मेरी आँखों के सामने न आये? यदि उसका चेहरा आ रहा था तो उसे ही ज्ञायकभाव से देखना प्रारम्भ कर देता और चिन्तन प्रारम्भ कर देता 'अहो! इस चेहरे के राग में, इस स्वरूप के राग में, इस रूप के राग में मैं जिन स्वरूप को भूल गया। ये रूप मेरे स्वरूप को भुलाने में निमित्त बन गया। यदि मेरा उपादान सशक्त होता, तो ये रूप मेरा क्या कर सकता था? क्षण मात्र में प्रभु का रूप तेरे सामने आ जाता।

वारिषेण निहार रहे थे, अन्दर-ही-अन्दर आनन्दित हो रहे थे, अहो! रति का सत्य समझ में आ गया, लोक का सत्य समझ में आ गया। जगत् ने क्या निर्णय लिया है? बहुत अच्छा निर्णय हुआ। नहीं तो युवराज राज्य पद में अधिष्ठित होकरके दुर्गति का भाजन बनता। आज मेरा अहोभाग्य है। तलवार पुष्पहार अवश्य बन गई, यह पुण्य का प्रभाव था, यह शील का प्रभाव था। संसार के लोगों की अन्तरङ्ग की कामना का भी बोध हो गया। हर व्यक्ति के जीवन में अशुभ दिन भी आना चाहिये, एक मिनिट को आये। इतना अशुभ आना चाहिये, तूफान जैसा आ जाये। अभी इतना स्वच्छ दिख रहा है, अभी शीतल मोसम चल रहा है। अभी कोहरा छा जाये, कोहरा इतना घना होता है कि उस कोहरे के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता। ऐसे ही जब उत्तर भारत में आँधी-तूफान आते हैं, चक्रवात आते हैं, तब भी इतनी कालिमा हो जाती है कि आपस में उसको नजर नहीं आ रहा है। **एक अशुभ क्षण जीवन में आने पर मालूम चलता है कि इस तूफान में कितने लोग मेरे साथ थे। बटलोई की पेंदी और ढक्कन को देखो। बटलोई के सिर पर ढक्कन रहता है और आँच को पेंदी सहती है। जब तक उबाल नहीं आता, तब तक ढक्कन साथ रहता है। जैसे ही उबाल आता है, ढक्कन तुरन्त दूर भाग जाता**

है। पेंदी पहले भी साथ थी, अब भी है। जीवन में ढक्कन-जैसे मित्र मिलें तो दूर से ही नमस्कार कर लेना। मित्र बनाना हो तो पेंदी जैसे मित्रों को साथ में लेना। जब तक तुम्हारे पुण्य का उदय है, भरपूर सम्पत्ति है तब तक सारा लोक पारे की भाँति तेरे सिर पर बैठा मिलेगा ! ऐसे भी पारे (ढक्कन) होते हैं जो अलग से समझ में नहीं आते हैं। ढक्कन और बटलोई इतने बढ़िया सेट रहते हैं कि मालूम ही नहीं चलता कि इनमें द्रव्य पना है कि नहीं ? तब मालूम चलता है जब तूफान (उबाल) आता है। ऐसे ही बहुत सारे ऐसे मित्र मिल जायेंगे कि पता ही नहीं चलेगा कि भैया है कि मित्र है ? सगों से भी ज्यादा प्रीति कर बैठेगा, लेकिन जब समय आयेगा, तब मालूम चलेगा कि उफान के काल में क्या होता है ?

इसलिये जो स्व स्व है, वही मेरा परम मित्र है। जो द्रव्य में मित्रत्व भाव है वह पारे के समान है।

जब वारिषेण के ऊपर तलवार हार बन गई, तो राजा श्रेणिक नंगे पैर दौड़ा-दौड़ा आया, 'मेरे लाल! क्षमा करो। मेरे बेटे! क्षमा करो, घर चलो।' अहो तात्! संसार में दुःख के हेतु संयोगज हैं। ये संयोग न होता तो ये तलवार न खिंची होती। जिसको घर चलने के लिये कहने आये हो, वह तो पर्याय से निर्वस्त्र खड़े थे, निर्वस्त्र ही हो लिये। श्रेणिक हाथ जोड़ कर नमोस्तु करने लग गया। वारिषेण ने वीतरागी आचार्य के चरणों में पहुँचकर दिगम्बरी दीक्षा लेली।

तब समझ में आया कि संसार में कौन किसका है ? आप सब एक दूसरे की इच्छाओं की पूर्ति कर रहे हो, इसीलिए आपकी मित्रता जीवन्त है, बन्ध व्यवस्था भी जीवन्त है। जिनको बन्ध व्यवस्था भङ्ग करना हो, तो जगत् की राग की मित्रता से दूर होना पड़ेगा। यथार्थ मानो, जो आकांक्षा लेकर आये हो, वह आकांक्षा जिससे पूर्ति हो रही है, वह जीवन भर आपका मित्र रहेगा; लेकिन जिस दिन आपने उसकी आकांक्षा पूरी नहीं की, उसी दिन वह आपका प्रथम शत्रु होगा। इसलिये मित्र बनाने के पहले सोच लेना। विषमता के काल में पहला शत्रु यही होगा। पुष्पमाला अधारण करने की यदि तुम्हारे अन्दर सामर्थ्य है तो इतनी ही निन्दा सहन करने की सामर्थ्य इकट्ठी कर लेना। क्योंकि चन्द्रमा ही वृद्धिमान होता है, चन्द्रमा ही

हीयमान होता है। तारे न छोटे होते हैं, न बढ़ते हैं; जैसे होते हैं, वैसे ही होते हैं महापुरुषों पर ही पुष्पमालायें पड़ती हैं और उन्हीं पर उपसर्ग होते हैं। सोच को शौच बनाओ। ये ही पवित्रता है। हमने सबको शौच किया, लेकिन अपनी सोच को शौच नहीं किया। परिवर्तन करने में कोई कष्ट नहीं होता, छोड़ने में कष्ट होता है।

आप पसीना बहा-बहा करके पैसा कमाते हो और सुबह ही सागमण्डी में कमर झुका करके, सिर झुका करके, हरे-हरे नोट देकर आ जाते हो, तब तुझे कष्ट नहीं होता ? महाराज ! मैं तो साग लेकर आ जाऊँगा। प्रकृति का परिणाम तो देखो। जेब बनाई तो हृदय पर। सीने पर रखी है, छाती में चिपकी है। छाती से चिपका नोट कुँजड़े को देकर आ गया। महाराज जी! देकर ही नहीं, वो तो लेकर भी आया हूँ। यदि जेब का सिक्का गिर जाता, कोई छीन लेता तो ? कोई कहता कि मन्दिर की गोलक में डाल आओ, फिर भी सोचना पड़ता है।

परिवर्तन में कष्ट नहीं है छोड़ने में कष्ट है। मोक्षमार्ग परिवर्तन का मार्ग नहीं है, मोक्षमार्ग छोड़ने का मार्ग है। व्यवहार कहेगा कि छोड़ने का मार्ग है। परमार्थ कहेगा कि छूटने का मार्ग है। सागमण्डी में पैसा दिया, परन्तु कष्ट नहीं हुआ और बिना प्रयोजन के यदि खर्च हो जाये तो कष्ट होगा। ऐसे ही आपने धर्म किया और धर्म के पूर्व आप तिजारा जी गये पद्मपुरी जी गये, महावीर जी गये। हे भगवान्! मेरे बेटे की सर्विस लग जाये तो मैं एक सिद्धचक्र विधान कराऊँगा। ज्ञानी! यह तो आपने परिवर्तन किया है विधान नहीं किया। भगवान् के साथ व्यापार किया है। अष्ट कर्म विनिर्मुक्तं अष्ट कर्मों से विमुक्त होने के लिये। अष्टम वसुधा पर विराजमान होने के लिये सिद्धों की आराधना करता है और सिद्धों की आराधना करे ऐसी साता का उदय होता है कि सारी असाता नष्ट हो जाती है और बिगड़े काम बनना प्रारम्भ हो जाते हैं अज्ञानी कहता है कि सिद्धों ने कर दिये, ज्ञानी कहता है कि शुभ उपयोग की भक्ति के प्रभाव से असाता साता में संक्रमित हो गई और हमारा काम होना प्रारम्भ हो गया। मैं भक्ति को नहीं छुड़वा रहा हूँ, मैं तो सत्य का बोध करा रहा हूँ। आप यह व्यापार करना बन्द कर दो, भक्ति

करना प्रारम्भ कर दो। सौधर्म इन्द्र स्वर्ग में व्यापार करके नहीं बना। ब्रह्माण्ड में सबसे अधिक भक्ति सौधर्म इन्द्र के पास होती है। सारे विश्व में यह पहला प्राणी होता है जिसे एक सौ सत्तर तीर्थंकर भगवन्तों के कल्याणक मनाने का अहोभाग्य प्राप्त होता है। दूसरे प्राणियों का सौभाग्य ही नहीं है।

असाता में चिल्लाने से काम नहीं बनेगा। अपनी हँसी ही कराना है। जिनके साता के उदय चलते हैं, वे अपनी असाता को देखकर हँसेंगे ही। ज्ञानी धर्मात्मा था, आज उसको कष्ट है, लोग जरूर कहेंगे कि देखो पहले कैसे घूमता था, आज कमर झुकाये घूम रहा है। ऐसे कहने वाले बहुत मिलेंगे। इसलिये अपना रोना सुनाने तो कहीं जाना ही नहीं। जब-जब असाता का उदय आये तो तेरा अहोभाग्य है, क्योंकि लोगों की सत्यता का बोध होता है परिवार की और बेटे की माँ की प्रीति का बोध होता है। तेरी माँ के दुलार का बोध होता है, पिता के पुचकार का बोध होता है। और स्वयं की सहनशीलता का बोध होता है और ध्रुव सत्य ये है कि जब मेरे अशुभ चल ही रहा है, तो शान्ति से एक किनारे बैठ करके भगवान् की भक्ति करने का परम अहोभाग्य मिला है। इसलिये कहीं नहीं जाना। विवेक का परम अहोभाग्य मिला है इसलिये कहीं नहीं जाना। विवेक उत्पन्न होता है कि जगत् कैसा-कैसा है ?

वृद्ध पिता अस्वस्थ हो जाये और लम्बे समय तक जीता रहे, तो बेटों के मुख से निकलता है कि प्रभु! जल्दी उठा लेते तो ठीक होता। जो जल्दी उठाने की बात करते हैं, वे पंचेन्द्रिय के घात का पापार्जन करते हैं। ज्ञानी! ज्ञान का जैसा उपयोग करना चाहो कर सकते हो। ज्ञान कह रहा है कि मैं तटस्थ हूँ। ज्ञाता जैसा मेरा उपयोग करना चाहे कर सकता है। मेरा प्रशस्त उपयोग करेगा तो तेरा अध्यवसाय प्रशस्त होगा और प्रशस्त अध्यवसाय होगा तो तेरी गति प्रशस्त होगी। **यदि ज्ञान का विपरीत उपयोग किया तो अध्यवसाय अप्रशस्त होगा और फिर गति भी विपरीत होगी।** इतना स्वतन्त्र कथन करने वाला विश्व में कोई दर्शन नहीं है। आपको एकदम सबसे दूर खड़ा कर दिया। किसी के पास मिलने-जुलने जाना हो तो चले जाना, लेकिन किसी से कुछ माँगने जाने की आवश्यकता नहीं है, किसी

को दु:खड़ा सुनाने की आवश्यकता नहीं है, किसी को सुख सुनाने की आवश्यकता नहीं है। जिस दिन तटस्थ बुद्धि प्रवेश कर जायेगी, उस दिन विषमता को भी ज्ञायक-भाव से देखेगा और विभूति को भी ज्ञायकभाव से देखेगा। जिस दिन बेटे की माँ की डॉट तुझे डॉट समझ में न आये, उस दिन तुम मुनि बनने के परिणाम करना। जिस दिन तुम बेटे की माँ के ताने-बाने भी सहज भाव से सुन लो, कि कुछ नहीं है, **जिसके भीतर वैषम्य होगा, उसकी भाषा भी विषम होगी। जिसके भीतर साम्य होगा उसकी भाषा भी साम्य होगी। भाषा प्रतीक है भावों की। भाव बालते नहीं हैं, भाषा बोलती है, भाव बुलवाते हैं। यह वाच्य-वाचक भाव है। वाच्य भाव है, वाचक भाषा है। भाषा को देखकर व्यक्ति के भावों का बोध होता है।** जितना सहज में चला जायेगा, उसकी भाषा सहज हो जायेगी। जितना असहज में जायेगा उतनी भाषा असहज हो जायेगी। उद्रेक की भाषा और विवेक की भाषा में अन्तर है। भक्ति की भाषा और अभक्ति की भाषा, दोनों में अन्तर है। **जोश की भाषा और होश की भाषा दोनों में अन्तर है। मोक्षमार्ग पूर्ण होश का मार्ग है।** एक व्यक्ति गाड़ी से जा रहा था। उसका बेलेन्स (संतुलन) बिगड़ने पर मात्र शरीर ही टूटेगा, परन्तु यदि मोक्षमार्ग में भाषा और भावों का बेलेन्स बिगड़ गया तो तेरा पूरा मोक्षमार्ग उल्टा हो जायेगा। इसलिये उन मित्रों से दूर रहो, उन निमित्तों से दूर रहो जिनसे भाषा और भाव दोनों में विघ्न आये। उन निमित्तों से आत्मा की रक्षा करो। सिंह उजागर शरीर का चर्वण करेगा, शरीर का भक्षण करेगा लेकिन निज के भाव निज के घाव हमारे भवार्जण को बढ़ा देंगे यदि अशुभ हुये तो। मित्र कौन है, शत्रु कौन है ? ऐसा लगता है कि आचार्य कुलभद्र स्वामी निज की प्रज्ञा का अवलोकन परिपूर्ण रूप से कर रहें हों और अन्त में जब उन्होंने निर्णय किया तब जगत् में कोई शत्रु ही नहीं मिला। तुझे शत्रु तभी मिलेगा, जब राग-द्वेष से सहित करनी हो। राग-द्वेष विराजमान है तो कहीं भी तुझे मित्र मिलनेवाला नहीं है। कठिन साधना है, हम तटस्थ होना सीख लें। **मध्यस्थ भाव ही चारित्र है। मध्यस्थ भाव ही स्यात् शुद्धोपयोग है।** मध्यस्थ भाव को शुद्धोपयोग का पर्यायवाची कहा है। आप जिसे मध्यस्थ कह रहे हो, एक दूसरे से बात करना बन्द कर दिया,

मैं तो मध्यस्थ हो गया, ज्ञानी ये मध्यस्थ भाव नहीं है। राग-द्वेष की निर्वृत्ति का अभाव रुके। जो स्वरूप में मध्य में स्थित हो चुका है, उसका नाम मध्यस्थ भाव है। नहीं-तो मालूम चला कि मैं ज्ञानी से अपने मन की कुछ कहलवाना चाहता था और उनने मेरे मन की नहीं कही सो मैं कह देता हूँ कि मैं तो उनसे मध्यस्थ हो गया हूँ। ये मध्यस्थ नहीं हो गये हो, ये आप कषाय को भीतर सुरक्षित करके रख लिये हो। मध्यस्थ होगा वहाँ, जहाँ न राग है न द्वेष है। शान्त भाव है, उसका नाम मध्यस्थ भाव है। क्षण क्षण में अभ्यास करना पड़ेगा। जैसे वीतरागी भावलिङ्गी योगी क्षण-क्षण में निज का अवलोकन करते हैं, ऐसे ही श्रावक को भी क्षण-क्षण में अपने आठ अङ्गों का अवलोकन करना पड़ेगा कि मेरे अन्दर सम्यक्त्व के अङ्ग झलक रहे, कि नहीं झलक रहे हैं? समझो, धर्म का राग भी धर्म नहीं है। आप कौन- सा धर्म मानते हो ? अहिंसामयी विश्वधर्म मानते हो। आपने जो अहिंसामयी विश्वधर्म का प्रयोग किया है, उस विश्वधर्म में आपका स्वयं का द्रव्य है या नहीं? आप जगत् के जीवों के कल्याण का भाव रखते हैं, प्राणिमात्र पर आप दया का भाव रखते हैं और आपने नारा लगाया 'विश्वधर्म की जय हो' और किसी ने प्रति उत्तर के रूप में नहीं बोला आप उसी पर बरस गये कि आप कैसे लोग हो, ध र्म की भी जय नहीं बोलते हो? ये दुबारा जो आपने कहा है, यही तुमने हिंसा कर दी है। हिंसा हो चुकी है। वस्तुस्वभाव से जानना। पुनः बोला 'अहिंसा धर्म की जय हो।' पहले धर्म से बोल रहे थे, अब तुम कषाय से बोल रहे हो कि लोग सुन क्यों नहीं रहे हैं? **जहाँ-जहाँ कषाय है, वहाँ-वहाँ हिंसा ही है। जो-जो कषाय कर रहा है, वह बन्धक कषायी ही है।** इसे आप टाल नहीं सकते हो। इसलिये यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि वही प्रज्ञा हितकारी है, वही प्रज्ञा मित्रभूत है, जो साम्य- भाव को जन्म देती है। किसी ने आपको आक्रोष भरे शब्दों से भी पुकारा, उस समय आपकी प्रज्ञा को बोलना चाहिये 'हे जीव! जिसने पुकारा है, वही तो सोच रहा है, वही तो बोल रहा है, उसी की तो भाषा विकृत हो रही है, इसमें तेरा क्या जा रहा है? जो बोल रहा है उसका उपादान ही ऐसा है। आप इसको स्वीकार क्यों कर रहे हो ? 'ये मेरे लिये बोल रहा है।' वह अपने उद्देश्य से बोल

रहा है, वह अपने उपादान से बोल रहा है, वह अपनी भाषा वर्गणा से बोल रहा है, वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम लगा रहा है, लेकिन उसमें तेरा क्या जा रहा है ? 'कुछ नहीं।' फिर तू क्यों आँखें खींच रहा है? जब आप कषाय कर रहे हो, उस जीव ने कषाय उत्पन्न नहीं कराई, उसका द्रव्य भी तेरे में प्रवेश नहीं किया। उसका क्षेत्र, काल, भाव भी तेरे में प्रवेश नहीं किया। तूने कषाय अपने चतुष्टय में की है, इसलिये कषाय का कारण तू ही है पर तेरी कषाय का कर्ता नहीं है। अज्ञानी जीव है, जिसे तत्त्व का वास्तविक निर्णय नहीं है। उसकी व्याख्या है, वह कहेगा-'सुनो, उन्होंने मेरे लिये ऐसा बोल दिया है।' मेरे मित्र! कोई जीव निज की निन्दा में बैठा हुआ चिन्तन कर रहा था। उसी के सामने से ज्ञानी निकल पड़ा। वो तो कह रहा था आगे की बढ़िया, पीछे की बढ़िया, बीच की बेकार है। जीवन में कभी भी अनर्थ मत कर लेना, परम सत्य को समझना। तीन स्त्रियाँ पनघट से पानी लेकर आ रही थीं। आगे ब्राह्मण की पत्नि थी, पीछे वैद्य की पत्नि थी, मध्य में क्षत्राणी थी। कोई साधु वृक्ष के नीचे बैठे ध्यान में लवलीन थे। शब्द सुनते ही क्षत्राणी को आग लग गई। माताओ! बुरा मत मानना। ज्ञानी! जीवन में उत्कर्ष चाहते हो तो स्त्री-परिणामी जीव की बात पर विश्वास करके शीघ्र निर्णय मत कर लेना। स्त्री-परिणामी जीव लोक में सर्वाधिक हैं। पुरुष-परिणामी जीवों की संख्या लोक में बहुत कम है। मेरा संकेत माताओं की ओर नहीं है, मैं करणानुयोग से बोल रहा हूँ । स्त्री-परिणामी जीव लोक में अधिक हैं। पड़गाने वालों की संख्या कम है, पानी डालनेवालों की संख्या बहुत अधिक है।

'गोम्मटसार' जी ग्रन्थ में कह रहे हैं—जिस जीव को किञ्चित् भी **पर की आलोचना करने में आनन्द आता हो, वे समझ लें कि इस समय मेरे परिणाम स्त्री वेद के चल रहे हैं। जिस समय तुम्हारे परिणामों में दूसरे को देख करके मोह उत्पन्न कराने के भाव आ रहे हों, तो समझ लेना कि मेरे स्त्री-परिणाम चल रहे हैं। जो दूसरे में दोष ढूँढ़े, दोष दे, दोष दिलाये और दोषी कर दे, स्वयं दोषी हो पर को दूषित करे, दूषण करना जिसका धर्म है, उसका नाम स्त्री है, चाहे वह पुरुषवेदी हो, चाहे वह स्त्री- वेदी हो, चाहे नपुंसकवेदी हो।**

ये द्रव्य से हो सकते हैं, लेकिन भाव से ये तीनों ही स्त्रीवेदी हैं। अपनी खोज करिये जब आप चटाई पर एक घण्टे भी सोते हो तो आपके शरीर में लाइनें बनी दिखती हैं। एक घण्टे सोने पर लकीरें पड़ सकती हैं, तो जो व्यक्ति चौबीस घण्टे मोह करते हैं, नामकर्म कहता है कि तुम्हें जो पसन्द है। तुम वैसे ही बन कर रह जाओगे।

यथार्थ मानिये, जिसके मस्तक पर चिन्ता की रेखा खिंचने लगी है, कुछ दिन बाद उसका सुन्दर चेहरा नियम से विकृत हो जायेगा। जिनके भावों की विशुद्धि का ह्रास हो चुका है उनका चर्म का चेहरा भी विकृत दिखता है। जिनकी भावों की विशुद्धि होगी उनके आगे सिंह भी आकर सिर टेकता है। ये योगी के भावों की विशुद्धि का परिणाम है। स्त्री-परिणाम कह रहे हैं कि भाई! ये मात्र मैं आपसे कहता हूँ कि ऐसा ऐसा हो गया, उन्होंने आपके बारे में ऐसा कह दिया। भैया! उस जीव से कहना कि बढ़िया आँगन है, माँ के आँगन में जो आनन्द है, वह पत्नि के कमरे में नहीं है। वे कषाय के कमरे होते हैं, माँ का आँगन शुद्ध दूध-रोटी का आनन्द है। माँ भले ही उसे रसोईघर में परोसे खीर बना कर के, लेकिन बच्चों की आदत होती है कि वे आँगन में आकरके बैठते हैं। आँगन का आनन्द कमरे में पहुँचते ही अलग हो जाता है। आँगन 'प्रमाण' है, तो कमरे 'नय' हैं। पिता का कमरा अलग हो जाता और बेटे का कमरा अलग हो जाता है, जबकि आँगन में सब एकसाथ बैठते हैं। भेद कर दिया।

दो महिलायें तो मुस्करा गईं कि बड़ा आनन्द है मेरी प्रशंसा तो योगी भी कर रहा है, परन्तु मध्य की क्षत्राणि खिसया गई 'धिक्कार हो मेरे जीवन को, इस जीवन में क्या जीने का जिसकी निन्दा साधु भी करते हों।' जबकि साधु न प्रशंसा कर रहा था, न निन्दा कर रहा था। वह तो वस्तुस्वभाव का चिन्तन कर रहा था। सत्यता यह है कि अभी जो बालक बेंड बजा रहे थे, आप जैसा सोचो वैसी आवाज आती है। एक बालक कह रहा था, महाराज श्री! आपको कैसा लगा जब हम लोग बजा रहे थे? आपको वस्तुस्वभाव वैसा ही दिखता है जैसा तुम्हारा चिन्तवन होता है। वह तुम्हारे मन की आवाज नहीं थी, वह तो जो थी सो ही थी। तुम्हारा जैसा सोच

था, वैसी सुनाई पड़ रही थी। मध्य की स्त्री कोपभवन में जाकर गिर पड़ती है। स्वामी आता है, पूछता है, प्रिये ! क्या हो गया ? वह कहती है कि कुछ नहीं। अब यह जीवन 'जीवन' नहीं है। मैं पानी लेकर आ रही थी, वहाँ रास्ते में एक साधु बैठा हुआ था, वह कह रहा था 'आगे की बढ़िया, पीछे की बढ़िया, बीच की बेकार है। बीच में तो मैं ही थी।' धन्य हो देवी। शस्त्र भण्डार का ताला खोलिये। शास्त्र भण्डार का ताला खुलवाने वाला कह रहा है कि शस्त्र भण्डार का ताला खोलिये और नंगी तलवार निकाल ली और कहता है, 'हे देवी! जिसने मेरी नारी का अपमान किया हो, मैं उसको देख कर आता हूँ।' भैया! अधूरी बात सुन कर कभी निर्णय मत कर बैठना। तलवार लेकर चल दिया। लेकिन आपको बोध होना चाहिये है **'बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च।'** आचार्य उमास्वामि 'तत्त्वार्थ सूत्र' के पाँचवें अध्याय में कह रहे हैं भूतल पर जितने रसायनशास्त्री हैं, इन सबको तत्त्वार्थ सूत्र का बोध होना चाहिये है। जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, वह अपनी ओर आकर्षित कर लेता है, अपने रूप परिणत करा लेता है। कभी गुड़ मिट्टी हो जाता है तो कितने सारे लोग गुड़ के साथ मिट्टी खाते हैं। मजदूर जूते पहन करके गुड़ के ढेरों में कूदते हैं। तुम्हारे घर में आते ही सोले का हो जाता है।

जो जितना अधिक बोलते हैं, वे रहस्य नहीं समझ रहे हैं। जितना बन्द करके रखते हैं उतने ही जल्दी दाल पकती है जितना मुख बन्द करके रखते हैं कर्म उतने ही जल्दी पकते हैं और मोक्ष चले जाते हैं। यही अन्तरङ्ग की वीतराग- वैज्ञानिकता है।

वह क्षत्रिय तलवार लेकर चल दिया। जैसे ही साधु के नजदीक तक पहुँचा सोचता है तलवार तो मेरे हाथ में है ये जायेंगे कहाँ ? लेकिन वार करने के पहले बात कर लें तो अच्छा है। **लोगों के जीवन में ये भूल चल रही है कि बात नहीं करना चाहते, वार करना चाहते हैं। वार करने के पहले बात कर लो तो जीवन में कभी रोना नहीं पड़ेगा।** जिसे तुम सोच रहे हो, वह है ही नहीं और जो है, उसे सोच ही नहीं पा रहे हो। वह क्षत्रिय सोचता है—ये जायेंगे कहाँ? तलवार तो मेरे हाथ में है। वार तो बाद में कर सकता हूँ। ये चलेंगे तब भी कर दूँगा।

लेकिन बात तो कर लूँ। जैसे ही और नजदीक पहुँचता है, सोचता है कि बात क्यों करूँ? जो ये कह रहे हैं, उसे ही तो सुनूँ। आगे की बढ़िया, पीछे की बढ़िया, मध्य की बेकार। उसका मस्तिष्क घूम गया। मेरी पत्नि कह रही थी कि मुझे देखकर कह रहे थे, लेकिन यहाँ तो अभी कोई नहीं है, फिर भी साधु जी बोल रहे हैं। इसका मतलब कुछ-और होना चाहिये है। ये नारी-स्वभाव ने गलत सुन लिया। उस पुण्यात्मा के प्रशस्त परिणाम से युक्त जीवन के भावों से क्षेत्र ऐसा पवित्र हो चुका था कि उस क्षेत्र में प्रवेश करते ही भाव अपने आप बदल जाते हैं। **जैसा क्षेत्र होगा, जैसा काल होगा, जैसा द्रव्य होगा, जैसा भाव होगा, वैसा वस्तु का परिणमन होगा। वर्धमान स्वामी के समोशरण में गौतम स्वामी शिष्य बनने नहीं गये थे, समझाने गये थे, लेकिन मानस्तम्भ को देखते ही मान विगलित हो गया और समझानेवाला शिष्य बनकर बैठ गया।**

इसलिये बोल देना कि किसी से कुछ नहीं चाहिये। बस, अपनी शक्ति को बनाये रखना चाहिये। मुट्ठी बन्द करो तो अन्दर शक्ति आ जायेगी। संघात में शक्ति है। बिरलन शक्ति को क्षीण कर देता है। जो क्षत्रिय तलवार से वार करनेवाला था, वह तलवार को तो एक किनारे रख देता है और हाथ जोड़कर जो सिर निकालने गया था, वह सिर झुकाये बैठा है। सबके दिन एक-से नहीं होते। सिर झुका करके, नमस्कार करके, कहता है, महात्मन्! मैं जानना चाहता हूँ कि आप कौन-से मन्त्र का जाप कर रहे हो? योगी बोले—आप मेरे समय को व्यर्थ नष्ट करवाना क्यों चाहते हो? मुझे अपना काम करने दो। नहीं, स्वामी! इसको जाने बिना मैं नहीं जाऊँगा। मेरे मुख से अचानक ये सूत्र निकल पड़ा चिन्तन करते-करते कि आगे की बढ़िया, पीछे की बढ़िया, मध्य की बेकार। इसमें बड़ा रहस्य है बेटे। आगे की बढ़िया बाल्यावस्था। जिसमें न राग है, न द्वेष है, न विकार है। यथाजात दशा होती है। इसलिये आगे की बढ़िया है। पीछे इन्द्रियाँ शिथिल हो गई, इसलिये वह भी बढ़िया। क्या करेंगे चारपाई पर पड़े-पड़े? भगवान् का नाम लेते रहेंगे। इसलिये पीछे की बढ़िया। मध्य की बेकार है। युवावस्था में ऐसा अन्धापन आता है, वह दोनों अवस्थाओं को विकृत करने का स्थान है। क्षत्रिय तलवार के दो टुकड़े कर

देता है और फेंक देता है, फिर साधु के चरणों में सिर टेकता है, कहता है, महात्मन्! यदि आपसे बात न करता और वार कर बैठता, तो यतिहत्या करके सत्य के ज्ञान से अनभिज्ञ रहता। आज मेरी समझ में आ गया कि **बिना सोचे बिना समझे जो नारी-स्वभाव की बात में आ जाते हैं तो भाई भाई अपने भाईपने को भूल जाते हैं।** बस, इतना नियम कर लो, देवी की सुनने के बाद सोच लेना, फिर निर्णय करना। नारी-स्वभावी जीव की बात को सुनकरके पहले सोचना, फिर निर्णय करना, नहीं-तो सगे भाई 'भाई' नहीं कहला पाओगे। विश्वास रखना, पिता हो तो पुत्र को जन्म तो दे सकते हो, पर भैया को जन्म नहीं दे सकते हो। वही प्रज्ञा हितकारी है, शेष प्रज्ञा निंदनीय है। **जो तेरी बुद्धि पर के दोषों में, छलकपट में, मायाचारी में प्रयुक्त हो रही है, वह प्रज्ञा तेरी लिये निर्दय है। नरक कौन भेजेगा, दुर्गति में कौन भेजेगा ? स्वयं की प्रज्ञा। मेरा अहित करानेवाली मेरी ही निर्दय प्रज्ञा है।** मन से कह रहा हूँ कि उस क्षण जब तुम्हारा मन अशुभ विचारों में जाये, तब उससे कहना 'हे मन! तू निर्दयी है। आज तो मैं जिनालय में बैठा हूँ, जिनवाणी सुन रहा हूँ, निर्ग्रन्थ गुरुओं के पास में हूँ, मेरा ऐसा भाव बनता रहा तो पता नहीं तू किस नाली का कीड़ा मुझे बनायेगी?

जब घर से मन्दिर की ओर जाते हैं तो भूमि को देखकर चलते हैं, सोले के कपड़े पहन कर गाड़ी में आ जाते हैं तो न सोला बचा, न दया बची। और सुनो, गाड़ी के कपड़ों में आकर श्री जी का अभिषेक रकना मत। न साधु को आहार देना। जो जीवों को कुचल कर आ रहे हैं, उनसे कहना कि जैसे तुम स्थल को देखकर आते हो, ऐसे ही अलग-बगल में जो नालियाँ रहती हैं, उनको दूर से देख लिया करो। उनमें पूँछवाले कीड़े दिख जायें, तो उनसे पूछ लिया करो मेरे मित्र! तुम्हारा आगमन यहाँ किस योग से हुआ है? वे भी तो भावी भगवान् हैं। आप यहाँ कैसे आ गये हो? वे प्रेम से कह देंगे, मेरे मित्र ! इसमें किसी का कोई दोष नहीं है। मैंने मूँछ और पूँछ के पीछे अपनी प्रज्ञा का दूषण किया था, इसलिये मैं पूँछवाला कीड़ा हो गया। वह प्रज्ञा निर्दयी है। धन्य है उस प्रज्ञा को जिसने अर्घ चढ़ानेवाले को और तलवार मारनेवाले को दोनों को आशीर्वाद दिया हो। यही व्यवहार

से सम्यक् प्रज्ञा है। धन्य हो उस प्रज्ञा को, जिसने तलवार से वार किया, जिसने फलों का हार पहनाया, तब भी न आशीर्वाद दिया न कोप किया, वह प्रज्ञा परम सुन्दर है निश्चय से।

एकत्व-विभक्त चिद्रूप जो आत्मा का स्वभाव है, वही लोक में सर्वत्र सुन्दर है। उस सुन्दरता को चाहिये है तो देह की सुन्दरता से निज को दूर करके देखना पड़ेगा। हे भगवान्! आप अशरीरी सिद्धालय में विराजते हो, लेकिन हे भगवान्! जब तक आँखें खुली रहें, तब तक आँखें जिनदेव, जिनवाणी, जिनगुरु को देखें और आँखें बन्द होने लग जायें तो निज के चैतन्य भगवान् को देखें, अन्य किसी को कभी न देखें। व्यवहार से सम्बन्ध रखना चाहो तो पंचपरमेष्ठी से रखना और सम्बन्धित होना चाहो तो पर के सम्बन्ध पहले छोड़ना और निज के सम्बन्ध जोड़ना। अपादान स्वभाव की प्राप्ति चाहिये है तो सम्बन्ध को आपको दूर करना पड़ेगा और इस विषय को भूल जाइये कि स्वयं हो जायेगा। मेरे मित्र ! पुरुषार्थ करना पड़ेगा। पुरुष को चाहते हो तो पुरुषार्थ करना पड़ेगा। 'अस्ति पुरुष चिदात्मा' जो चैतन्य आत्मा है, वही मेरा परम पुरुष है। स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण से रहित है, वही मेरा ध्रुव पुरुष है। इसलिये माताओ! वह पुरुष आपके भीतर भी है। इसलिये जितने माया धर्म हैं, इन सब को निज से भिन्न करिये उस पुरुष को देखना है तो। यथार्थ समझिये पर्याय के बहुत सारे निषेक हम भोग चुके हैं। कोई नियत नहीं है कि कितने निषेक और भोगने को मिल पायेंगे, क्योंकि कोई साक्षात् प्रत्यक्षज्ञानी बतानेवाला नहीं है। आज अपन को बोध हो रहा है। किसी के पास दस का नोट है, कहे, चलो भाई : पान के ठेले पर पान खाकर आते हैं। तो कहेगा ठहरो भाई! मैं गरीब आदमी हूँ। आज ही तो दस का नोट आया है। मैं पान के ठेले में नहीं जाऊँगा, मैं जिनालय में जाकर भगवान् के चरणों में श्रीफल चढ़ा कर आऊँगा। एक जीव पान खाकरके गलियों को गन्दा करना शुरू कर रहा है। अपना मुख गन्दा कर लिया हाथ गन्दे कर लिये, हाथ में कुछ नहीं मिला। एक ने भगवान् के चरणों में श्रीफल चढ़ा करके श्रेयो फल की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त कर लिया और मोक्षफल की ओर आगे बढ़ चुका है। इतना ही अन्तर है। कुछ जीवों ने उस नोट

को श्रेयो फल में लगा लिया है और ये जीव पान की पीक में लगा रहे हैं। ज्ञानी! समय है। गली बिगाड़ने में कुछ नहीं रखा जिसके जितने आयुकर्म के निषेक बचे हैं, अब पत्नि भी कहे स्वामी! मुझे आपसे दस मिनिट चाहिए, कहना देवी ! दस का नोट देना पसन्द करता हूँ, लेकिन व्यर्थ में मेरे दस मिनिट नष्ट मत कराइये, क्योंकि मैं एक आदमी की नाक में आक्सीजन की नली देखकर आ रहा हूँ और उसका बेटा कह रहा था मेरा भैया अमेरिका में डाक्टर है, ऐसा कर लो कि ये तीस मिनिट तक चल जायें। वे मुम्बई आ चुके हैं, बस इतना बचा लो, मैं आपको अभी-अभी दो लाख रुपये देता हूँ। तीस मिनिट के लिये दो लाख दे रहा था। लेकिन मित्रो! तुमने ऐसे कितने मिनिट नष्ट किये हैं व्यर्थ की बातों में। अब सुनो तो वही सुनो, बोलो तो वही बोलो जानो तो उसे ही जानो कि मेरा भगवान्-आत्मा कैसा है ? जितनी आयु भोग चुके हो, अब उतनी बची हो, कोई नियत नहीं है। मैं तो बहुत सारी बातें हाँ-हाँ कह कर टाल देता हूँ। क्योंकि मुझे मालूम है जिसके पीछे तुम शीत/उष्ण की वेदना को सहन कर रहे हो, उसका ही वेदन नहीं कर पाओ तो लोभ कषाय में पड़ कर नंगे होने से लाभ क्या है? जहाँ आत्मा का वेदन किया, वहीं निर्ग्रंथ स्वभाव है। आज अपनी-अपनी प्रज्ञाओं से बोलना 'कोई शत्रु नहीं है तेरा, विपरीत परिणाम ही शत्रुता है।

मुक्ति को वधू कह दिया, क्योंकि लोगों का आकर्षण तो विषम लिंग में है। मुक्तिवधू वोल दिया मोक्ष को। प्रज्ञा को अङ्गना बोल रहे हैं। बिल्कुल सत्य बात है। माताओ! आप सर्वथा खराब नहीं हो। ऐसी मातायें बहू बनकर ऐसे घर में पहुँची जिस घर में कोई मन्दिर नहीं जाता था। पति कभी मन्दिर के द्वार पर नहीं जाता था। ऐसी बिटिया कभी बहू बन कर पहुँची है जिन्होंने उसको भगवान् का भक्त बना दिया। यदि शादी ही करना हो तो चेलनी जैसी खोज कर लाना जिसने श्रेणिक को बौद्ध से जैन बना दिया। परन्तु ऐसी शादी मत करना उर्मिला का पति जैन था उसको उर्मिला ने बौद्ध बना दिया। आचार्य महाराज ने प्रज्ञा को अङ्गना कहा, स्त्री कहा। वसुदेव ने एक युद्ध जीता, उसमें सम्राट ने अपनी कन्या देने को बोल दिया। वसुदेव ज्ञानी जीव था, उसने देखा कि इसकी चाल-ढाल चेहरा ये

तो घर बिगाड़ देगी। वह राजा के सामने सिर टेक देता है—'यह अवसर तो इस सेवक को दिया था, वास्तव में विजय तो इसने प्राप्त की है, मैंने तो कुछ नहीं किया शत्रु को तो इसने पकड़ा है, इसलिये शादी इसके साथ की जाय।' वह बच गया, उसने शादी नहीं की। ऐसे ही जो सज्जन-पुरुष होते हैं, वे जो प्रज्ञा हितकारी होती है उस बुद्धि का ही ज्ञानी पुरुष सेवन करते हैं। दुर्बुद्धि का सेवन ज्ञानी पुरुष नहीं करते। जैसे कुमारी कन्या को सज्जन पुरुष कभी सेवन नहीं करते, ऐसे ही व्यभिचारिणी बुद्धि को साधु पुरुष कभी स्वीकार नहीं करते। जो प्रज्ञा हेय उपादेय तत्त्व को जाननेवाली है और मन- वचन-काय की क्रिया में रत नहीं है, बस अपनी प्रज्ञा से आप मिलना और कहना— हे प्रज्ञा ! तू ऐसी बनकर रहे जिससे मेरी शिवत्व की यात्रा हो।

अपने जीवन में ऐसे ही द्वादशाङ्ग जिनवाणी का पान करो और अपनी भगवान-आत्मा का अवलोकन करो, पंचपरमेष्ठी की भक्ति के साथ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

सेवनीय दया अंगना

दयाङ्गना सदा सेव्या, सर्व-कामफलप्रदा।
सेवितासौ करोत्याशु, मानसं करुणात्मनम्॥ (259/सा. स.)

अन्वयार्थ—(**सर्वकामफलप्रदा**) सर्व कामनाओं के फल को देनेवाली (**दयाङ्गना**) दयारूपी स्त्री की (**सदासेव्या**) सदा सेवा करनी चाहिए (**असौ**) यह दया (**सेविता**) सेवन की हुई (**आशु**) शीघ्र ही (**मानसं करुणात्मनम् करोति**) मन को दयाभाव से पूर्ण कर देती है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन् ! सर्व कामनाओं के फल को देने वाली दयारूपी महिला सदा सेवन करने योग्य है। सेवन की हुई यह दया-स्त्री शीघ्र ही मन को दया से परिपूर्ण कर देती है।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में शुद्धात्म प्रज्ञा की व्याख्या कर रहे हैं। वही बुद्धि श्रेष्ठ है, वही ज्ञान श्रेष्ठ है, जो आत्म-विशुद्धि का साधन बने। जिस ज्ञान की सत्ता में असत् कार्य में प्रवृत्ति हो, वह ज्ञान 'ज्ञान' नहीं है, वह ज्ञान स्वयं का शत्रु है। जितने जीवों का नाश हुआ है, स्वयं की खोटी प्रज्ञा से हुआ है। एक वह जीव है जो अपने विचारों में उत्कर्ष देखता है। किसी से प्रच्छना मत करना। सहज बैठने पर आपको स्वयं महसूस होता है कि हमारी विचारधारा किस ओर जा रही है ? विशेष पुरुषार्थ भी नहीं चल रहा है, **अशुभ-ही-अशुभ परिणाम चल रहे हैं, अशुभ-अशुभ करने का ही मन चल रहा है, अशुभ-अशुभ बोलने के भाव आ रहे हैं, शरीर की चेष्टा भी अशुभ ही हो रही है तो समझ लेना कि मेरा कुमति कुश्रुत काम कर रहा है। जिसके अन्तस् में कुमति छा चुकी है, उसके अन्दर श्रेष्ठ कार्य करने के परिणाम हो ही नहीं सकते।** जब लंकेश का पुण्य प्रबल चल रहा था, तब सारे काम सफल हो रहे थे; लेकिन जब विनाश का समय आया, तब उसकी बुद्धि खोटी चलना प्रारम्भ हो गई। इसलिए जीवन में किसी का कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। जब लोक में कहा जाता है कि चींटी के विनाश का समय आता है तो उसके पंख

आ जाते हैं और पतंगे के पंख उसके मृत्यु के कारण हो जाते हैं, इसलिये स्वयं तटस्थ होकर विचार करने की आवश्यकता है। **मन में उच्च पद की आकांक्षा उच्च पद नहीं दिलाती है, अन्तस् की परिणति उच्च पद दिलाती है। आकांक्षा तो हर व्यक्ति के अन्दर है। आकांक्षा की पूर्ति यदि आकांक्षा करने से होती होती, तो आज विश्व में कोई जीव जीवित नहीं मिलता।** ऐसा क्यों ? हे ज्ञानी! विश्वास रखो, आप जिनके साथ रहते हो, आवश्यक नहीं है कि वे चौवीस घण्टे आपके हित के बारे में सोचते हों। पर रहना पड़ता है। आप उनके बिना रह भी नहीं सकते हो, वे आपके बिना रह भी सकते हैं। संसार का नियोग देखो। इस जीव का हर समय चिन्तन चल रहा है कि कब मौका मिले। ज्ञानी! जैनदर्शन विश्व में इसी बल पर तो जीवित है।

विराधकः कथं हंत्रे, जनाय परिकुप्यति।
त्र्यंगुलं पातयन् पद्भ्यां, स्वयं दण्डेन पात्यते॥ 10/इष्टोपदेश॥

जमीन पर फावड़ा पटकने वाले व्यक्ति से पूछना-तू जमीन पर फावड़ा गिरायेगा तो तुझे पहले अपनी कमर भी टेड़ी करनी पड़ेगी। कमर टेड़ी हुये बिना जमीन से मिट्टी खोद नहीं सकते हो। किसान के खलिहान में एक त्रयङ्गुल रखा होता है, जिससे भूसा खिंचता है। उस भूसा खींचने वाले यन्त्र पर कोई पुरुष पैर रख दे तो उसका बेंत उसके सिर पर लगेगा। पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं यदि आपने मेरे साथ अहित किया है, तो कर्म स्वयं देख रहा है, मैं परेशान होने क्यों जाऊँ? सीता ने कभी नहीं सोचा था कि लंकेश का नाश हो जाय। कोई किसी व्यक्ति का नाश कर ही नहीं सकता है। जब भी नाश होगा, कषाय के आवेश में। जो पुण्य का द्रव्य पचास साल तक चलने वाला था, वह पाँच मिनिट में नष्ट होता है और एक मिनिट के अंदर सत्ता पलट जाती है। सबके दिन एक-से नहीं होते। बुन्देलखण्ड में कहते हैं कि घूरे के भी दिन बदलते हैं और महलों पर भी घूरे गिरते दिखाई देते हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। जिस भवन में बैठ कर तुम प्रवचन सुन रहे हो, इस स्थान को मैंने खेत के रूप में देखा है। जिस भूतल पर तीनलोक के नाथ पारसनाथ स्वामी विराजते हैं, वहाँ मैंने गड्ढा खुदा देखा है।

इसलिये तुम्हारे हृदय पर कोई गड्ढा भी खोदने चला आय, विश्वास रखना, अवश्य ही इस पर कोई भवन खड़ा होने वाला है; क्योंकि विकास वहीं होता है, जहाँ त्रास दिया जाता है। वहाँ नियम से विकास होता है। ह्रास वहीं होता है, जिस दिन तुम्हारे अन्तस् में दूसरे को त्रास देने के परिणाम आ चुके होते हैं। मकान बनाने वाला शिल्पकार ऊपर की ओर जाता है, परन्तु कुयें को खोदने वाला कारीगर नीचे की ओर ही जाता है। आयतनों की रक्षा करना तो उद्देश्य है, पूरा करें, लेकिन मुझे ये नहीं सोचना है कि किसका क्या हो रहा है? परन्तु कर्म कह रहा है कि आप मत सोचो, मैं सबको देख रहा हूँ। जब तक पर को त्रास देने के परिणाम नहीं हों, तब तक उसका ह्रास कैसे होगा? आपने नहीं देखा क्या ? दीपावली में बच्चे चकरी चला रहे थे। चकरी घूम रही थी, सबके नयनों को हर रही थी उसकी रोशनी कब तक थी ? जब तक चकरी में बारूद है, तब तक तू चक्कर काट ले जितना काटना चाहती है। जैसे ही बारूद झुलस जायेगी, तब तुझे राख दिखाई देगी। पुण्य की बारूद झुलस जाती है, तब चकरी बन्द हो जाती है। सबके दिन एक से नहीं होते, भूल मत जाना। कुछ भी बन जाना, लेकिन फटी चड्डी फटी बनियान को चौबीस घण्टे ध्यान में रखना कि मेरी शुरूवात कहाँ से हुई थी ? **जो जीवन की शुरूवात को भूल जाते हैं, वे गिरने पर रोते हैं। जो शुरूआत को कभी नहीं भूलते हैं, वे जानते हैं, कि उठा ही नहीं था तो गिरा कब हूँ ?** जो है, सो है। पाटे पर पाटा रख दिया है, तो सिंहासन नाम दे दिया। उस पर आपने बिठा दिया, लेकिन मुझे मालूम है कि यह भी शाश्वत् नहीं है। सल्लेखना लेने के पूर्व सिंहासन से उतरना पड़ेगा। समाधि तभी होगी, जब सिंहासन से उतर जाओगे। नहीं-तो समाधि होनेवाली नहीं है। जीवन में कभी भूल मत करना। बस ज्ञायक भाव से निहारना। दूसरे के उतार-चढ़ाव अनन्तबार देखा है। स्वयं के उतार-चढ़ाव को देखना प्रारम्भ कर दे, यही ज्ञानी का धर्म है। पराश्रित द्रव्यों के संग्रहीत होने पर विकास मान लिया। पराश्रित द्रव्यों के संग्रह को तूने उत्कर्ष मान लिया है। जब तक पराश्रय है, तब तक स्वाश्रय का विग्रह होगा। स्वाश्रय में किसी का सम्बन्ध नहीं है। स्वाश्रित निज घर का भोजन है। घर की रसोई में कभी भी द्वार खोलने की आवश्यकता

नहीं आओ और बैठ जाओ। यदि ससुराल भी जायेगा तो तुझे बन कर बैठना पड़ेगा। भूख लग भी रही होगी तो एक बार झूठी मना करेगा। जो-जो पराश्रय है वह माया धर्म से युक्त बनावटी होता है। बिना मायाचारी के तू ससुराल आज तक नहीं गया। बुरा लगे तो लग जाये। लाला कहलवाना हो तो ससुराल जाना पड़ता है। मायाचारी का मतलब समझिये। व्यवस्थित बैठेगा, घर-जैसे नहीं बैठेगा। भोजन भी करेगा तो थोड़ा। ये संसार की दशा है कि व्यक्ति कोटि पीड़ा तो सहन कर लेता है, लेकिन जीव माया धर्म को छोड़ नहीं पाता। सारे संसार को रोग हो गया है। समझ रहा है कि इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। और कभी-कभी यह होता है कि जीव को आपत्ति सामने आती दिखाई दे रही है। लेकिन तब भी कहता है कि अपना स्वभाव कैसे छोड़ दूँ ?

जीवन में कभी भी दु:ख/कलेश को प्राप्त नहीं होना। पूर्व में कह दिया है कि जगत् की आकांक्षा से यदि काम होने लग जाये तो विश्व में कोई जीव जीवित नहीं बचेगा। कारण समझो ऐसा कोई लोक में नहीं होगा जो तेरे लिए हित ही चाहे। उनके अहित के सोचने से मेरा अहित होने लग जाता, तो जगत् में हर व्यक्ति का अहित सोचने वाले लोग हैं। यदि सभी की इच्छा पूर्ति हो जाती तो बताओ बचता कौन ? सारे लोक को अपना चिन्तन व्यवस्थिति कर लेना चाहिए। बुन्देलखण्ड में एक कहावत और बोलते हैं कि **कौए के कोसने से ढोर नहीं मरते**। ऐसे ही एक सज्जन मेरे से कह रहे थे कि मेरे एक ही तो बेटा है, और ये पड़ौसी मेरे से कहता है कि तेरा बेटा मर जाये। मैंने कहा-तू भी पागल आदमी है, वह तो बहुत अच्छा बोल रहा है। 'महाराज जी! मतलब क्या हुआ ?' उनके कहने से जन्म-मरण होता होता तो जब वह छोटा था, तब उसकी माँ उसको खिला-पिला रही थी। उसने मुख से दूध निकाल दिया था, तब उसकी माँ ने एक झापड़ मारा और कहा 'जा, मर जा तू।' तो क्या वह बच्चा मर गया? नहीं।

हे जननी ! इस भाषा को तू ठीक कर ले। आपके अशुभ भाषण से कभी बेटे की मृत्यु नहीं होती, लेकिन माँ की ममता की मृत्यु अवश्य होती है। बेटे को अपना मत मानो, लेकिन पंचेन्द्रिय जीव मानो। तुमने पंचेन्द्रिय जीव की हत्या

के परिणाम किये, तुम्हें पंचेन्द्रिय के बध का दोष लगेगा। जितने माता-पिता अपने बच्चों के बारे में अशुभ सोचते हैं, कर्म कहता है मैं किसी का सहोदर नहीं हूँ। मैं तीर्थकर को नहीं छोड़ता तुम कौन हो ? भगवान् पारसनाथ स्वामी पर दस भव तक उपसर्ग चलता रहा। ऋषभदेव को देखो, विधि नहीं मिली। सुकुमाल-सुकोशल को देखो, कैसा उपसर्ग सहन किया।

हे भव्य! दयारूपी स्त्री की सदा सेवा करनी चाहिए। सर्वकामनाओं के फल को प्रदान करने वाली दयारूपी वनिता प्रतिपल सेवन करने योग्य है। अपने जीवन में दया भाव को धारो, इन्द्रियों का दमन करो, त्याग को धारण करो और वैराग्यपूर्वक समाधि को धारण करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

❖ ❖ ❖

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई
श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री माँगीलालजी किशोरजी महाड़िया, हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचदजी बड़कुल, इंदौर,
श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर
श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,
श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर
श्री मांगीलालजी रमेशकुमार जी पहाड़िया, हैदराबाद
श्री टी.के. वेद, इंदौर
श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर

संरक्षक

श्री सचिनकुमारजी जैन, (उद्योगरत्न), इंदौर
श्री अनिलकुमारजी जैन, (जैनको), इंदौर
श्री चक्रेशकुमार जी जैन, (बड़कुल) इंदौर,
श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर
डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर
श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,
श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर
श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर
श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर
श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा
श्री जैन राजेशजी कानूगो, इंदौर
श्री पंकलकुमारजी कमलाकर, भोपाल
श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर
श्री कमलेशकुमारजी पहाड़िया, इंदौर
इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल
श्री राकेशकुमारजी पाटनी, नागपुर
श्री निर्मलकुमारजी जैन, गोदिया
श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल
श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल
श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल
श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल
श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल
श्री मनोहरलालजी टोंग्या, भोपाल
श्री प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल
श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल
श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल
डॉ. सुभाषजी जैन (लखारिया), भोपाल
श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी बांझल, विदिशा
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई

श्री सनतकुमारजी अरविन्द सतभैया परिवार
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी लुहाड़िया, भिलाई
श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा
श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा
श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा
श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा
श्री सोहनलालजी गंगवाल, भीलवाड़ा
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी बाकलीवाल, दुर्ग
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (सुपारी वाले), सागर
श्री देवेन्द्र कुमारजी जैन, हलोटे
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री ऋषभजी जैन, भोपाल (शाहगढ़)
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री शैलेन्द्रजी जैन, कोटा
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्दौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्री विद्युतकुमारजी करणमलजी डोसी
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया)
श्री कैलाशचंदजी रवीन्द्रकुमारजी जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी
श्री महावीरप्रसादजी जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन
श्रीमती वीणाजी जैन
श्री विमलकुमारजी राजमलजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)

श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोभितजी जैन, ग्यासपुर
श्रीमती सुनीताजी भरतकुमारजी जैन, भोपाल
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री जेठालाल कुबेरदास शाह, मुंबई
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा